उपोद्घात

इस अभिनन्दन-ग्रथ की योजना के पीछे एक इतिहास है—अभिनन्दन करना चाहनेवालो की इच्छा और अभिनन्दनीय अर्थात् श्री सीतारामजी सेकसरिया की अनिच्छा एव अस्वीकृति के मध्य होने वाले सघर्ष का। एक ओर इच्छा और दूसरी ओर अनिच्छा का यह सघर्ष कम-से-कम पन्द्रह वर्षो तक चलता रहा। सब से पहले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के वर्तमान उप-सम्पादक भाई गोविन्दप्रसाद केजरीवाल की ओर से इसका प्रस्ताव रखा गया था परन्तु भाई सीतारामजी की तीव्र एव दृढ अनिच्छा के कारण उस प्रस्ताव को पनपने का ही अवसर नही मिला। उसके बाद लगभग पॉच वर्ष पहले मेरे परम स्नेही मित्र श्री जगन्नाथ बेरीवाल ने भाई सीतारामजी के द्वारा पल्लवित-पुष्पित मारवाडी बालिका विद्यालय की स्वर्ण-जयती मनाने के साथ-साथ उनको अभिनन्दन-ग्रथ भेंट करने का प्रस्ताव रखते हुए दृढता के साथ कहा—"हमे जो ठीक लगता है, उसे करेगे ही। श्री सीतारामजी की स्वीकृति के लिये हम बैठे नही रहेगे।" इस प्रकार दृढतापूर्वक प्रकट की हुई उनकी सदिच्छा ने हम लोगो की दबी हुई भावनाओ को फिर से जगा दिया और श्री सेकसरियाजी को पूछे बिना ही तदर्थ हमने एक समिति का गठन कर लिया, पत्र छपवा लिये, मित्रो के साथ पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया और सामग्री-सकलन का भी श्रीगणेश हो गया। श्री सीतारामजी की स्वर्गीय पत्नी श्रीमती भगवानदेवी के भ्रातृ-पुत्र सत्यनारायण सुरेका ने बडी तत्परतापूर्वक उनकी डायरियो, लेखो आदि को टकित करवाने, उनके पास आगत और उनके द्वारा प्रेषित पत्रो की खोज करने तथा चित्रो के अनुसधान और सकलन करने का कार्य शुरू कर दिया। सुशीला सिंघी और ज्ञानवती लाठ ने अर्थ-योजना का भी आरम्भ कर दिया। तथापि श्री सीतारामजी को जब इसके विषय मे मालूम हुआ तो उन्होने फिर उपेक्षा ही नही दिखलाई बल्कि ना-पसन्दगी और नाराजी की भावना भी प्रकट की, जिससे हमे पुन अपनी इच्छा को दबा लेना पडा। हार पर यह हमारी दूसरी हार हुई। दुर्भाग्य से इसी बीच जिनकी दृढता ने इस काम को आगे बढाने की प्रेरणा दी थी, बल दिया था, वे भाई जगन्नाथजी ४ फरवरी १९७१ को सदा के लिये हमारे बीच से चले गये।

श्री सीतारामजी हमेशा यही कहते रहते थे—"मै ने जो कुछ देखा और अनुभव किया है, सोचा और किया है, वही अगर आप प्रकाश मे लाना चाहते हैं, तो मेरे लेख और डायरियाँ छप जाने से ही उस उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी। उसके अलावा प्रशसा के पुल बाँधने वाली औपचारिकता से लगी-बधी अभिनन्दन-योजना मे क्या रखा है?" इस पर हम कुछ बोल नही पाते थे। पर जब उनके लेखो और डायरियो के प्रकाशन हो गये—सस्ता साहित्य मडल, नई दिल्ली के द्वारा 'बीता

युग नई याद' तथा भारतीय ज्ञानपीठ के द्वारा 'एक कार्यकर्ता की डायरी', तब फिर अभिनन्दन की चर्चा छिड़ी। इस बार हमने पूरी तरह ठान लिया कि अभिनन्दन होगा ही। उस दिन का हमारा सकल्प सफल हुआ और आज यह ग्रथ आप के हाथो मे है।

मै इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि इस योजना के बनने, बन्द होने और फिर बनते समय विभिन्न अवसरो पर मै इसके केन्द्र मे रहा। एक तो, मेरा भाई सीतारामजी से साथ ३८ वर्षों का घनिष्ठ सम्बन्ध है, देश और समाज की विभिन्न राष्ट्रीय, सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियो मे मैने उनके साथ काम किया है, उनको निकट से देखा और जाना है, उनके साथ विचार-विमर्श और कई दफा वाद-विवाद करने का भी अवसर आया है, और दूसरी बात यह कि अपने मित्रो के बीच मै लिखने-पढने वाला आदमी ही विशेष तौर से समझा जाता रहा हूँ। इसलिये इस तरह की योजनाओ के साथ अनायास मेरा घनिष्ठ सबध हो ही जाता है। अपने तई मै हमेशा ही यह मानता हूँ कि निमित्त और हेतु कुछ भी हो, जिस काम मे सरस्वती की सेवा है, उसमे मुझे जीवन का सब से बड़ा सुख मिलता है। अन्तर की इस बलवती इच्छा ने ही मुझे सदा सरस्वती के मंदिर के सान्निध्य मे रखा है, नही तो जो और जितनी व्यक्तिगत, सामाजिक और राष्ट्रीय घटनाएँ और धाराएँ मुझे बहा ले जाने का उपक्रम करती रही है उनमे बिल्कुल बह ही जाता। इस अभिनन्दन-ग्रथ के विषय मे भी यही बात है। इसके सपादन–प्रकाशन मे पिछले एक वर्ष मे मैने अपना जो समय लगाया है, उससे मुझे अत्यत आनन्द मिला है। मुद्रणालय मे बैठ कर कार्य करते हुए श्रम के स्वेद-कणो ने भी मुझे आनन्द की मधुर फुहारो मे अभिसिन्चित किया है। लोगो से पत्र-व्यवहार कर, श्री सीतारामजी की डायरियो के पृष्ठ पढ कर, उनके जीवन के अनेक सस्मरण उनसे और उनके अतरग मित्रो से सुन कर, श्री सीतारामजी के धन्य-धन्य जीवन के बारे मे सोच कर, लेख एव टिप्पणियाँ लिख कर मै भी अपने तई धन्यता का ही अनुभव करता रहा हूँ। अभिनन्दन-ग्रथ के प्रकाशन मे प्राप्त यह प्रसाद सचमुच मेरे लिये बहुत मधुर और आल्हादकारी है।

श्री सीतारामजी के सीता-पक्ष की करुणा ने समाज को बहुत दयार्द्रता से छुआ है और उनके राम-पक्ष के पुरुषार्थ ने सघर्ष और सेवा की अपूर्व साधना की है। जिन सैकडो लोगो ने उनके बारे मे लेख और कविताए लिख कर श्रद्धा का निवेदन किया है, उनमे सारे ही विशेषण, प्रेय और श्रेय, आ गये है। विशेषण-जातीय शब्दो का अमर-कोष ही है उनमे। इस दृष्टि से भी मै इस ग्रथ के सपादन को एक विशेष उपलब्धि मानता हूँ।

श्री सीतारामजी ने अपनी शक्ति और समय का बहुत बडा भाग स्त्री-शिक्षा के प्रचार, प्रसार और पुरस्कार मे लगाया है। भारतीय नारी की शिक्षा और प्रगति के इतिहास पर उनके हस्ताक्षर सदा-सदा के लिये अकित हैं और रहेगे। इसीलिये यह उचित समझा गया कि उनका अभिनन्दन-ग्रथ उनकी ही जीवन-गाथा मे समाप्त

नही हो जाय बल्कि हमारे देश मे स्त्री-शिक्षा की जो और जैसी स्थिति रही है, उसका यथोचित सर्वेक्षण और विश्लेषण भी रहे। ग्रथ मे स्थान की सीमाओ का ध्यान रखते हुए जो और जितनी सामग्री इस विपय की देना सभव हो पाया, वह दी गई है। भारतीय नारी ने शिक्षा एव सामाजिक प्रगति के क्षेत्र मे कहाँ से आरम्भ किया और कहाँ तक वह पहुँच गई है तथा आगे उसे किधर चलना है, इन प्रश्नो पर विदुपियो और विद्वानो के लेखो से ग्रथ की महत्ता और उपादेयता अवश्य वढ गई है, मै ऐसा मानता हूँ। स्त्री-शिक्षा विषयक खण्ड के लिये सामग्री के सकलन मे जिन सब लोगो से मुझे मूल्यवान सहायता मिली है, उनमे गुरुकुल महिला कालेज, पोरवन्दर (गुजरात) के उपाचार्य मेरे स्नेही मित्र श्री शकरदेव विद्यालकार के प्रति मै विशेष कृतज्ञ हूँ।

कुल मिला कर जो कुछ इस ग्रथ मे आ सका है, वह अनेक मित्रो के सहाय्य और सहयोग का ही परिणाम है। भाई सीतारामजी के जिन मित्रो, सहकर्मियो एव प्रशसको ने अपने सस्मरणात्मक तथा श्रद्धात्मक लेख आदि भेज कर इस यज्ञ मे भाग लिया है, उनके प्रति मै आभारी हूँ। तदुपरात आवश्यक अर्थ के योग और सयोजन मे सर्वश्री भागीरथ कानोडिया, प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, राधाकृष्ण कानोडिया, रामकुमार भुवालका, रामेश्वर टॉटिया, नथमल भुवालका, लक्ष्मीनिवास झुझुनूवाला, हनुमान प्रसाद धानुका, पुरुषोत्तमदास और श्यामसुन्दर वेरीवाल, माधोदास मूधडा, ज्ञानवती लाठ, मदनलाल सराफ, हरिप्रसाद माहेश्वरी, दीपचन्द नाहटा, परमानन्द चूडीवाल, सुशीला सिंघी, जगमोहन खेमानी, काशीप्रसाद खेडिया, रामलाल राजगढिया आदि से जो सहायता मिली है, उसके लिये वे सव भी धन्यवाद के पात्र है।

सामग्री का सकलन करने मे, लेख और पत्रादि ढूढने मे, वगला और अग्रेजी से अनुवाद करने मे, डायरियो मे से चिंतन और विचारो का सग्रह करने मे, जीवन की घटनाओ के वारे मे पढ, पूछ और सुन कर लिखने मे, लिपिक-प्रयोजन एव ग्रथ सवधी अन्यान्य कार्यो मे जिन लोगो ने सहायता दी है, उनमे सत्यनारायण सुरेका, सुशीला सिंघी, प्रतिभा अग्रवाल, निर्मलकुमार श्रीवास्तव, कमला शास्त्री, लीनाराय, सोमा चटर्जी, कल्याणी सेन, सुकृता अजमानी, सुशील गुप्त, सिंदूर विरिक, प्रतिभा आचार्य, फुलवत कौर, सुस्मिता सिंघी आदि के नाम उल्लेखनीय है। उनके प्रति मै आभारी हूँ। मेरे पास कार्य करने वाले शीघ्र-लिपिक एव टकक श्री पदमचन्द्र जैन का तत्परतापूर्ण सतत सहयोग भी उल्लेख योग्य है। सुप्रसिद्ध चित्रकार श्री इन्द्र दूगड ने मेरी कल्पना के अनुसार ग्रथ का परिच्छद चित्राकित कर जो सहयोग दिया है, उसके लिये मै उनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। कलकत्ता मे दिन-प्रति-दिन अनुभव हो रहे बिजली-सकट के दौरान लेख-सामग्री छापने मे मिश्रा एण्ड कम्पनी के मिश्रा-बन्धुओ ने और चित्रो के व्लाक बनाने तथा उनको छापने और परिच्छद आदि की योजना एव व्यवस्था मे भारत फोटोटाइप स्टूडियो के सचालक श्री अजीतकुमार गुप्त ने जो सहयोग दिया हे, उससे ही सब कठिनाइयो के बावजूद मुद्रण कार्य इतनी जल्दी मे भी अच्छी तरह

हो सकता है। उनके प्रति भी मैं कृतार्थ हूँ। इन परिस्थितिजन्य कठिनाइयों और मेरी अपनी कमियों के कारण ग्रंथ में यदि और जो त्रुटियाँ, कमियाँ अथवा मुद्रण की भूलें रह गई है, उनके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ।

अभिनन्दन-योजना की सफलता में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के सम्पादक भाई मनोहर श्याम जोशी और उप-सम्पादक श्री गोविन्दप्रसाद केजरीवाल तथा 'धर्मयुग' के सम्पादक भाई धर्मवीर भारती, और दैनिक 'विश्वमित्र' के समाचार-सम्पादक भाई कृष्णचन्द्र अग्रवाल से प्राप्त सहयोग के लिये उनके प्रति भी मैं अत्यन्त आभारी हूँ। श्री शिक्षायतन कालेज के सभी कार्यकर्ताओं, विशेषकर श्री आर० सी० यादव से अभिनन्दन संबंधी कार्यों में जो सहयोग मिला है, उसके लिये उनकी भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

अंत में, पुनः एक बार भाई सीतारामजी के प्रति अगाध श्रद्धा ज्ञापित करते हुए मैं उनके स्वस्थ और सुदीर्घ जीवन की शत-शत मंगल-कामनाएँ करता हूँ।

सपादक

पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया अभिनन्दन-ग्रंथ

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

पृष्ठ

चित्रानुक्रम

—·०·—

पद्मभूषण
श्री सीताराम सेकसरिया
अभिनन्दन ग्रन्थ

संपादक
भँवरमल सिंघी

प्रथम खण्ड

श्रद्धा

एवं

संस्मरण

विद्या-वारिधी,
विश्व-विश्रुत भाषा-वैज्ञानिक,
मानविकी विद्याओं के राष्ट्रीय प्राध्यापक

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी

निवेदितात्मन् !

अर्थं वै लोकसेवायै-यस्येय भावना ध्रुवा ।
सौजन्य-मूर्तये तस्मै लोकहित-व्रताय च ।।१।।

सस्कृति-पूत-चित्ताय क्षेमे निवेदितात्मने ।
बालेषु स्नेहवृत्ताय कन्यकासु तथैव च ।।२।।

शिक्षासस्कृति-कार्येषु सदैवयत्नशालिने ।
सन्तु प्रीतिनमस्कारा सीतारामाय धीमते ।।३।।

स्मित-स्निग्ध मुख यस्य वचो हित मनोहरम् ।
विलासो वै सदालापे सीताराम स नन्दतु ।।४।।

पद्म-भूषण-सम्मान यस्मै राष्ट्रपतिर्ददौ ।
सर्वजनप्रियो जीवेत् सीताराम शत समा ।।५।।

तस्याशीतितमे वर्षे उत्सवे च शुभे शिवे ।
सेकसरिया-कुलोद्भूत सीताराम-विपश्चित ।।६।।

सर्व-मित्र-सुहृद्-बन्धु-प्रीतिभाजा शुभेच्छया ।
भगवत्कृपया चैव शतायुष्य सुख भवेत् ।।७।।

——:०:——

गांधीजी के सहकर्मी,
एवं उनके विचार तथा दर्शन केमहाभाष्यकार,
सुप्रसिद्ध साहित्यकार एव शिक्षा-शास्त्री,
सतत सेवा-रत और कर्म-निष्ठ परिव्राजक

काका कालेलकर

जीवन-योगी !

अभी मैं वनस्थली वाले हीरालालजी शास्त्री की आत्मकथा पढ रहा हूँ। उसमे देखता हूँ कि राजस्थान को प्रेरणा देने वाले श्री जमनालालजी वजाज और घनश्यामदासजी विडला से भी वढ कर उन्हे विशेष लाभ हुआ श्री सीतारामजी सेकसरिया की सहानुभूति से। यह पढ कर मुझे आनन्द हुआ किन्तु आश्चर्य नही हुआ। श्री सीतारामजी की हृदय-सिद्धि उनकी अपनी कमाई हुई चीज है। प्रारभ मे जव वे सनातनी रूढ सस्कार के असर के नीचे थे, तव भी केवल रूढी-पूजक नही थे। सनातन धर्म मे ही जीवन की उन्नति के आवश्यक सव तत्व मौजूद है, ऐसी सामान्य किन्तु गहरी श्रद्धा से वे प्रेरित हुए थे। यही गहरी श्रद्धा अखड जागृति के कारण और अनुभवमूलक चिंतन के द्वारा अधिकाधिक विशुद्ध और कार्यकारी वनती गई। गाधी-युग की राष्ट्र-व्यापी और जीवन-व्यापी प्रेरणा से प्रभावित होते उन्हे न देर लगी, न मन मे सकल्प-विकल्प का झगडा सहन करना पडा।

हरएक जीवन-साधक को आजीविका का सवाल हल करना ही पडता है। अपने कौशल्य, समाज की उदारता और ईश्वर-निष्ठा—तीनो की इसमे पूरी कसौटी होती है। सीतारामजी ने नौकरी से शुरूआत की। वाद मे व्यापार मे वैश्यो से भी वढ कर चातुर्य का प्रयोग कर देखा और अत मे निर्णय किया कि सारा समय और सारी शक्ति आजादी की उपासना और तेजस्वी राजनीति को ही देनी चाहिये। फिर तो उन्होंने सामाजिक जडता एव सास्कृतिक अन्याय का आमूलाग्र विरोध करने वाली रचनात्मक राष्ट्र-सेवा के लिये ही सारा जीवन अर्पण कर दिया। स्वराज्य-प्राप्ति के दिनो मे, जव क्षात्र-तेज प्रकट करना था, वे सत्याग्रही के रूप मे अनेक वार जेल भी गये। राष्ट्र-निर्माता के रूप मे खादी, अस्पृश्यता—निवारण, राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा, राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार आदि अनेक रचनात्मक कामो मे उन्होने अपना चित्त, वित्त और शरीर-श्रम अर्पण किया।

सीतारामजी के प्रति मेरे मन मे विशेप आदर इसलिये है कि उन्होने मानव-जीवन का चिंतन करते हुए निर्णय किया कि मानव-जाति का भविष्य माताओ के उद्धार पर ही निर्भर है। मै भी मानता हूँ कि मानव-जाति के भविष्य के उत्थान और उत्कर्प के लिये आज सच्चे स्त्री-हृदय के नेतृत्व की ही आवश्यकता है। इसी सार्वभौम, सर्वश्रेष्ठ श्रद्धा से सीतारामजी प्रेरित हुए हैं, और स्त्रियो के द्वारा उत्तमोत्तम राष्ट्र-सेवा और मानवता के उत्कर्ष की अपेक्षा करते रहे है।

सीतारामजी की पत्नी भगवान देवी ने प्रारभ से ही उनके सेवा-कार्य मे जो साथ दिया, उसके फलस्वरूप ही आज स्त्री-शिक्षा एव स्त्री-सेवा की अनेक सस्थाए चल रही हे। उनको देख कर सीतारामजी को कितना सतोप और गौरव अनुभव होता होगा ?

ऐसी व्यवस्थित सस्थाए स्थापित करना और चलाना अब कठिन नही है, लेकिन जब सीतारामजी स्वय घर-घर जाकर लडकियो को पढने के लिये प्रेरित और प्रोत्सा-हित करते थे, गर्भवती माताओ की चिंता करते थे, उनकी सुश्रूषा की व्यवस्था करते थे, उनका सुख-दुख समझ कर सहानुभूति के साथ उनको सेवा का आश्वासन देते थे, तब वह कितना कठिन कार्य था ? वह महान कार्य था। उससे सेवा करने वाले और लेने वाले दोनो की हार्दिक उन्नति होती थी।

स्वराज्य-प्राप्ति के लिये सर्वस्व अर्पण करने वाले हमारे जमाने को भारतमाता को स्वतत्र हुई देख कर जो आनन्द मिलता है, वही आनन्द सीतारामजी को अपनी सस्थाए सारे समाज मे मान्य और प्रतिष्ठित हुई देख कर मिलता होगा। पिता की धन्यता और माता की वत्सलता दोनो तरह की अनुभूति उनके मन मे झकृत होती होगी।

आज भी नवयुवको और नवयुवतियो को उनसे जो प्रेरणा मिलती है, उसकी धन्यता को सत्ययुगीन ही कहना चाहिये।

—— o ——

स्वतत्रता-सग्राम के महान् नेता,
काग्रेस के भूतपूर्व सभापति

आचार्य जे० बी० कृपलानी

हृदय-स्पर्शी विनम्रता

श्री सीताराम सेकसरिया एक सुपरिचित स्वतत्रता-सेनानी है। मै उन्हे वर्षो से जानता हूँ। यद्यपि उन्होने अपना जीवन एक व्यवसायी के रूप मे प्रारम्भ किया था, किन्तु गाधीजी और जमनालालजी बजाज के सम्पर्क मे आने पर वे इस क्षेत्र मे अधिक दिनो तक नही रह सके। उन्होने सत्याग्रही के रूप मे १९३०-३२ और फिर १९४१-४२ मे स्वाधीनता आन्दोलन मे सक्रिय भाग लिया। बगाल के काग्रेसी क्षेत्रो मे उन्होने अपने लिए एक उत्तरदायित्वपूर्ण और सम्मानित स्थान बना लिया था। वे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के भी सदस्य रहे। सक्रिय राजनीतिक कार्यों ने उनकी कार्य-क्षमता को क्षीण नही किया। खादी-प्रचार, हरिजन-उद्धार, छुआछूत-उन्मूलन, नारी-जागरण एव हिन्दी-प्रचार आदि गाधीजी द्वारा निर्धारित रचनात्मक कार्यों के प्रति वे सदा ही समर्पित रहे।

मारवाडी समाज मे जन्म लेने के कारण वे उन असुविधाओ के प्रति पूर्णतया सजग थे, जो उनके समाज की नारी को सहनी पडती थी। उनको पर्दे से बाहर लाने, बाल-विवाह का विरोध करने तथा विधवा-विवाह को प्रोत्साहन देने के लिए उन्होने बहुत कुछ किया। वे जानते थे कि नारी को विकास और प्रगति की ओर ले जाने का सब से अच्छा साधन उसे अच्छी शिक्षा देना है। इस क्षेत्र मे उनका योग-दान सर्वथा स्तुत्य है। कलकत्ता मे नारी-शिक्षा की दो महत्वपूर्ण सस्थाओ—मारवाडी बालिका विद्यालय एव श्री शिक्षायतन का सगठन उन्होने ही किया है। जयपुर के निकटवर्ती वनस्थली विद्यापीठ की प्रगति मे भी उन्होने योग-दान किया है।

पूर्वी भारत मे हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा की स्थापना कर उन्होने काफी दिनो तक कार्य किया। यद्यपि उन्हे स्वय नियमित रूप से शिक्षा पाने का सुयोग नही मिल पाया, किन्तु वे एक स्व-शिक्षित व्यक्ति है और उनकी गणना हिन्दी के अच्छे लेखको मे की जाती है।

श्री सीतारामजी बहुत सर्व-प्रिय व्यक्ति हैं। उनका व्यवहार स्नेह-सौजन्यपूर्ण है। वे शायद ही कभी निर्मम और कठोर शब्दोका व्यवहार करते हो। उनमे एक हृदय-स्पर्शी विनम्रता है। अत उनके अनेक मित्र और प्रशसक है।

मैं उनके दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ, ताकि वे इसी प्रकार बराबर मातृ-भूमि की सेवा मे लगे रह सके।

—— ० ——

स्वाधीनता-संग्राम के महान् सेनानी,
समाजवादी-सर्वोदयी नेता

श्री जयप्रकाश नारायण

तपःपूत जीवन

श्री सीतारामजी सेकसरिया देश के उन थोडे मे लोगो मे हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय एव सामाजिक क्षेत्र मे और साथ ही शिक्षा तथा साहित्य के क्षेत्र मे मूल्यवान मेवाए की हैं। वे एक उत्कट देश-भक्त, अग्रणी समाज-सुधारक, समर्थ शिक्षाविद् तथा सुधी साहित्य-सेवी हैं। इन विविध रूपो मे महत्वपूर्ण कार्य कर उन्होंने निर्मल यश प्राप्त किया हैं। उनका हिन्दी-प्रेम वस्तुत अनूठा हैं। शातिनिकेतन का हिन्दी-भवन तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सेकसरिया पुरस्कार उनके प्रगाढ हिन्दी-प्रेम और साहित्य-प्रेम के जीते-जागते उदाहरण हैं।

मेरी दृष्टि मे उनके व्यक्तित्व का सब से उज्ज्वल तत्त्व है—उनकी त्यागमय निस्पृह सेवा-भावना और निर्मल चारित्र्य। अपना सारा जीवन उन्होंने देश और समाज की सेवा मे लगाया, लेकिन प्रतिदान मे कुछ चाहा नही। आज के युग मे जब सेवा सत्ता के व्यापार का साधन बन रही है, सेकसरियाजी ने, व्यापारी समाज मे जन्म लेकर भी, नि स्वार्थ सेवा का धर्म निभाया हैं। स्वातत्र्योत्तर काल मे निर्लिप्त सेवा का ऐसा उदाहरण मिलना कठिन हैं।

सीतारामजी से मेरा व्यक्तिगत सबध मधुर तथा आत्मीय रहा हैं और यह आत्मीयता उत्तरोत्तर बढती गयी है। उनके तप पूत यशस्वी जीवन के ८२ वर्ष अब पूरे हो गये है। इस अवसर पर उनके प्रति हार्दिक सम्मान व्यक्त करते हुए मैं उनके शतायु होने की कामना करता हूँ।

—— ० ——

गाँधीजी के सहकर्मी राष्ट्रीय नेता,
पश्चिम बगाल के प्रथम मुख्य मंत्री

डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष

प्रीति-अर्घ्य

श्री सीतारामजी सेकसरिया मेरे अन्यतम मित्रो मे से है। लगभग ५० वर्षों से मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। असहयोग-आन्दोलन के दौरान जो सम्बन्ध स्थापित हुआ, वह आज भी ज्यो-का-त्यो कायम है। आज सीतारामजी राजनीति के क्षेत्र मे सक्रिय नही है पर समाज-सेवा और विशेषकर स्त्रियो की शिक्षा के क्षेत्र मे अत्यत कर्मठता के साथ क्रियाशील है। फल की ओर दृष्टि नही रखते हुए वे निरतर समाज-सेवा की कर्म-निष्ठ प्रचेष्टाये करते जा रहे है। वास्तव मे, कोई भी शुभ-प्रचेष्टा कभी व्यर्थ नही होती।

भगवान् सीतारामजी को दीर्घायु दे ताकि उनकी सेवा-साधना उत्तरोत्तर अधिक विस्तृत और फलप्रद हो।

इस मगल अवसर पर उनके प्रति मै अपने अन्तर की समस्त प्रीति और शुभेच्छा प्रकट करता हूँ।

—— ० ——

स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के क्रातिकारी नेता,
पश्चिम बगाल के भूतपूर्व मुख्य मत्री

श्री अजयकुमार मुखर्जी

निस्वार्थ और निस्पृह !

श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ प्राय ४० वर्षो से मेरा अत्यन्त घनिष्ठ सबध है। वे एक सच्चे गाधीवादी व्यक्ति है। चाहे सामाजिक सेवा के क्षेत्र मे हो, और चाहे राजनीति के क्षेत्र मे हो, उनका जीवन सदा ही निस्वार्थ और निस्पृह रहा है। जन-सेवा के लिये उन्होंने काफी त्याग और बलिदान किया है। मैं स्वय एक बार उनके साथ जेल मे था, जिससे मुझे उनको निकट से देखने और जानने का अवसर मिला। वे आज भी गरीबो के लिये, पिछडे हुए लोगो के लिये, हरिजनो के लिये और खास कर स्त्रियो की शिक्षा के लिये पूर्णतया तन-मन-धन लगा कर कार्य कर रहे हैं।

उनकी साधना सफल हो, यही इस अवसर पर मेरा उनके प्रति सन्मान है, श्रद्धा-निवेदन है।

— ० —

हिन्दी को महान् कवियत्री,
प्रयाग महिला विद्यापीठ की सचालिका

श्रीमती महादेवी वर्मा

ज्योति-बिन्दुओं का मेघ

खोज ही चिर प्राप्ति का वर,
साधना ही सिद्धि सुन्दर।

जो व्यक्ति अपनी प्रतिकूल परिस्थितियो से सघर्ष करके उन्हे अपने अनुकूल होने पर बाध्य कर देते हैं, वे समय के स्वामी हो जाते है और जो अपनी परिस्थितियो से सघर्ष मे अक्षम, अत पराजित, होते है, वे समय के दास हो कर खो जाते है।

भाई- सीतारामजी अपनी कठिन और प्रतिकूल परिस्थितियो से निरन्तर सघर्ष कर तथा उन्हे अपनी रुचि एव आस्था के साचे मे ढाल-ढाल कर उनका नित्य नया कायाकल्प करते रहे हैं। परिणामत उन्हे समय पर सहज ही स्वामित्व प्राप्त है।

भाई सीतारामजी की जन्मपत्नी के ८२ वर्ष उनकी कर्मपत्नी के अनन्त वर्ष है। ये अनन्त वर्ष अतीत के कोहरे मे खो नही गए है, वरन् ज्योति-बिन्दुओ का मेघ वन गए है। यही स्मरण करना-कराना उनके अभिनन्दन का लक्ष्य है। आज के वैज्ञानिक युग ने जिस ईश्वर को निर्वासन दे डाला है, वह ऐसे व्यक्तियो के कर्म मे ही अपने अस्तित्व का सकेत देता है।

मेरी अनन्त शुभ कामनाये!

—— ० ——

गांधी-विचार और दर्शन के भाष्यकार,
सुप्रसिद्ध वक्ता और लेखक

दादा धर्माधिकारी

सौहार्द-मूर्ति !

जहाँ तक मुझे स्मरण है, श्री सीतारामजी से परिचय का सुयोग वर्धा मे १९३५ मे हुआ था। वर्धा शहर मे एक छोटी-सी सभा मे मेरा भाषण हुआ। उसके बाद पुण्यश्लोक जमनालालजी ने एक व्यक्ति से मेरा परिचय कराया—शरीर दुबला-पतला, स्वच्छ गौर वर्ण, मुद्रा पर मधुरता और ऋजुता, दृष्टि मे स्निग्धता और मद स्मित का आभास। ये सीतारामजी सेकसरिया थे। उन्होंने उस पहली भेट मे ही मुझे कलकत्ता आने का निमत्रण दिया था। उनके विषय मे मन पर उस दिन जो अनुकूल छाप पडी, वह आज तक ज्यो-की-त्यो बनी है। वैसे उनसे बहुत निकटता या घनिष्ठ सबध क्वचित् ही आया होगा। फिर भी चित्त पर हमेशा यह गहरी छाप रही कि स्नेह और सौहार्द उनके हृदय के स्थायी भाव है। इन अडतीस वर्षो मे मिलने के अनेक प्रसग आये, परन्तु प्रथम मिलन की छाप अमिट ही रही।

ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी मुद्रा पर जो आकर्षक अव्यक्त मुस्कान प्रतीत होती है, वह जीवन-व्यापी बने।

—o—

हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यालोचक,
उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

'सहज सुभाव, छुआ छल नाहीं'

कोई चालीस वर्ष पहले मुझे श्रद्धेय श्री सीतारामजी सेकसरिया से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। वे अपने विद्यालय की बालिकाओ के साथ शान्तिनिकेतन आए हुए थे। साथ मे थे शान्तिनिकेतन के स्वय-नियुक्त 'हैड पडा' प० बनारसीदास चतुर्वेदी। वे सब प्रकार से मेरे अग्रज थे, इसलिए उन्होने जब मुझे 'असिस्टेट पडा' का पद दिया तो मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। लेकिन यह असिस्टेट पडा का काम बडा सुखद सिद्ध हुआ। चतुर्वेदीजी के यजमानो का निरन्तर आगमन होता रहता था और मै यथा-शक्ति इन यजमानो की सेवा किया करता था। 'यथा-शक्ति' के साथ 'यथा-बुद्धि' भी जोड देना चाहिए क्योकि कभी-कभी मै यजमानो का महत्व समझने मे गलती भी कर जाता था। शायद इसीलिए चतुर्वेदीजी तीर्थ-यात्रियो के बारे मे पहले से ही विस्तारपूर्वक लिख दिया करते थे ताकि 'असिस्टेट' सेवा मे चूक न कर बैठे। सेकसरियाजी के बारे मे भी उन्होने पहले से ही लिख दिया था। परन्तु इस बार वे स्वय भी साथ आए थे। सेकसरियाजी के दर्शन करने पर मेरे मन मे पहली छाप यह पडी कि वे बाहर से भी स्वच्छ है और भीतर से भी। मुझे लगा था कि वे 'सहज सुभाव, छुआ छल नाही' की प्रत्यक्ष मूर्ति है और मैंने उनके जाने के बाद गुरुदेव से चतुर्वेदीजी की शब्दावली मे ही कहा था कि विधाता ने सेकसरियाजी को विशुद्ध स्नेहमयी माता का हृदय दिया है। तब से आज तक मेरे ये विचार निरन्तर दृढ से दृढतर होते गए हैं।

प० बनारसीदासजी ने मेरे ऊपर अनेक प्रकार की कृपा की है। मै उनका बहुत ऋणी हूँ परन्तु उनकी बडी कृपाओ मे अत्यन्त दूरगामी महत्व की कृपा है, मुझे सीतारामजी जैसे साधु पुरुष के निकट लाना। मुझे अनायास सीतारामजी का स्नेह मिल गया। आगे चल कर उन्ही की कृपा से मारवाडी समाज के अन्य नर-रत्न श्रद्धेय भागीरथजी कानोडिया का गाढ स्नेह भी अनायास ही मिल गया। सीताराम जी और भागीरथजी अनन्य मित्र है, एक का स्मरण करते ही दूसरे का स्मरण अवश्य हो जाता है। फिर तो इन दोनो महानुभावो से साथ-साथ और अलग-अलग मिलने के इतने अवसर मिले कि उसका कोई हिसाब नही बताया जा सकता। कलकत्ता

जाने का अवसर मिलते ही उन दोनों विभूतियों के दर्शन करना मेरा नियम बन गया है। दोनों के प्रति मेरी श्रद्धा निरन्तर बढ़ती ही गई है। कितने कठिन अवसरों पर इन दोनों महानुभावों ने मेरी सहायता की है और बल दिया है, यह शायद वे भी नहीं जानते। इन लोगों के निश्छल चरित्र का और सहज व्यवहार का मेरे मन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

सीतारामजी पर महात्मा गांधी का बड़ा प्रभाव था और आज भी है। सत्य और अहिंसा उनके लिए कोई दर्शन जैसी चीज नहीं है बल्कि उनके जीवन का अविच्छेद्य अङ्ग है। वे बाहर जितने साफ रहते हैं, उतने ही अन्दर से भी साफ हैं। कलकत्ता के सांस्कृतिक जीवन के साथ वे इस प्रकार घुल-मिल गए हैं कि उनके बिना कोई उत्तम प्रगतिशील सांस्कृतिक समारोह सोचा ही नहीं जा सकता। उनका मैत्री-भाव बड़ा ही प्रशस्त है। सभी सम्प्रदायों और विचारों के लोग उनका आदर करते हैं और उनसे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

चालीस वर्ष पहले शान्तिनिकेतन में सेकसरियाजी का प्रथम दर्शन करने के समय से ही उनके त्यागी, निस्पृह और सहज व्यक्तित्व का मेरे ऊपर जो प्रभाव पड़ा था, वह इन ४० वर्षों में निरन्तर बढ़ता ही गया। शान्तिनिकेतन में रहते समय मुझे कलकत्ता के अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक आयोजनों में सम्मिलित होने का अवसर मिला। यह सम्बन्ध अब भी बना हुआ है। मैंने यह अनुभव किया कि हिन्दी-भाषियों के सभी साहित्यिक और सांस्कृतिक आयोजनों में—भले ही वह जैनों, बौद्धों, सनातन-धर्मियों, आर्य-समाजियों या अन्य किसी सम्प्रदाय-विशेष के लोगों द्वारा आयोजित हो—सीतारामजी सेकसरिया की उपस्थिति सर्वत्र आवश्यक समझी जाती है। मुझे बंगाली और गुजराती भाइयों के भी सांस्कृतिक समारोहों में सम्मिलित होने का अवसर मिला है। सीतारामजी वहाँ भी निश्चित रूप से मिले हैं। कलकत्ता में सेवा-संबंधी जो भी कार्य-कलाप होते हैं, उनमें सीतारामजी का रहना निश्चित है। वे हर वर्ग के साहित्यिक, सांस्कृतिक और सेवा-कार्यों में सोत्साह भाग लेते हैं, यथा-शक्ति सहायता भी करते हैं और प्रेरणा देते रहते हैं। वे कलकत्ता में "अजातशत्रु" जन-सेवक हैं। कलकत्ता के बाहर भी जो संस्थाएँ साहित्यिक और सांस्कृतिक कार्य करती हैं तथा मानव-सेवा के लिए प्रयत्न करती हैं, उन्हें सीतारामजी सेकसरिया का वरद हस्त अवश्य प्राप्त होता है। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझ से एक बार कहा था कि सीतारामजी को विशुद्ध माता का हृदय प्राप्त है। कहीं भी दुःख-कष्ट देख कर वे द्रवित हो जाते हैं। मजेदार बात यह है कि इतना सेवाव्रती व्यक्ति स्वयं कोई धनवान सेठ नहीं हैं। परन्तु उनका व्यक्तित्व इतना निर्मल है और आचरण इतना पवित्र है कि उसका प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है जो धन का सदुपयोग करना चाहते हैं। यही कारण है कि न जाने कितने कर्म-निष्ठ सेवक और संस्थायें उनकी कृपा से काम करने में सदा प्रेरणा पाती रही हैं।

गाँधीजी ने मानवीय संवेदनाओं से भरपूर सत्य-निष्ठ रचनात्मक सेवा के युग का प्रवर्तन किया था। उनके आह्वान पर उस समय सहस्रों की संख्या में उत्साही सेवा-व्रतियों की एक विशाल वाहिनी अनायास खड़ी हो गई थी। अपनी-अपनी

रुचि के अनुसार उन्होने राष्ट्र-निर्माण के क्षेत्र चुन लिए। देश आज भी वही है पर आह्वान करने वाला नही है। गाँधीजी ने न जाने कितने लोगो को जन-सेवा की प्रेरणा दी थी। सीतारामजी भी उसी प्रेरणा से सेवा-कार्य मे आए थे। उन्होने एक-रस रह कर इस वृद्धावस्था तक उस प्रेरणा के अनुसार काम किया है।

शुरू-शुरू मे सीतारामजी ने महिलाओ के उत्थान की ओर विशेष ध्यान दिया था। मारवाडी बालिका विद्यालय तथा श्री शिक्षायतन आदि अनेक सस्थाए, जो इन दिनो महिलाओ के उत्थान और सेवा मे लगी हुई है, उनकी सेवाओ से ही समृद्ध हुई हैं। मारवाडी समाज मे स्त्रियो के प्रति जो उपेक्षा का भाव था और अनेक सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित थी, उन्हे दूर करने मे सीतारामजी और उनके साथियो ने अथक परिश्रम किया है, कष्ट सहा है और असुविधाओ को भी भोगा है। आज बहुत सी कुरीतिया प्राय समाप्त हो गई है और स्वस्थ पारिवारिक जीवन का महत्व समाज मे स्वीकृत होता जा रहा है। इसके लिए निस्सन्देह मारवाडी समाज का भावी इतिहास-लेखक सीतारामजी के प्रयत्नो को बहुत मूल्यवान बतायेगा। परन्तु यह नही समझना चाहिए कि उनकी मातृ-जाति सबधी सेवा केवल मारवाडी समाज तक ही सीमित रही है। सीतारामजी के मन मे इस प्रकार का सकीर्ण मनोभाव है ही नही। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के बल पर कह सकता हूँ कि उन्होने किस लगन और उत्साह के साथ अन्य समाज की स्त्रियो का भी दु ख दूर करने का प्रयत्न किया है। मेरी जानकारी के क्षेत्र मे केवल हिन्दू समाज की स्त्रिया ही नही हैं, मुस्लिम तथा अन्य समाज की स्त्रिया भी शामिल है। उनके मन मे सेवा के क्षेत्र मे धनी-गरीब, ऊँच-नीच, छोटी-बडी जाति आदि शब्द है ही नही। उनका हृदय बहुत विशाल है और सेवा का क्षेत्र बहुत व्यापक है।

सीतारामजी ने अपने जीवन के प्रत्येक दिन के अनुभव को लिख रखा है—डायरी के रूप मे। मुझे उनकी डायरियो को पढने का सौभाग्य मिला है। किस प्रकार निश्छल भाव से उन्होने अपनी बाते लिखी हैं और कैसे-कैसे महानुभावो से मिल कर उनकी मार्मिक बाते सुनी है, वह इन डायरियो मे अकित है। सौभाग्य से उनकी डायरियो की दो जिल्द प्रकाशित हो गई हैं। इनमे हमारे राजनीतिक सघर्ष के अतिम दिनो का—सन् १६२६ से १६४२ तक का—विश्वसनीय चित्र उभरा है। लेकिन जो बात सब से अधिक उसमे आकर्षक लगती है वह है लेखक का शालीन चरित्र और विनम्र भाव। अनेक घटनाओ, सघर्षो और महापुरुषो के सम्पर्क के जो चित्र इन डायरियो मे प्रतिफलित हुए है, वे मानो एक स्वच्छ दर्पण से प्रतिफलित विश्वसनीय प्रतिच्छवि है। एक विशेष बात जो इन डायरियो मे ध्यान आकर्षित करती है, वह आलस्य, प्रमाद और मिथ्याचार के प्रति आक्रोश है। कितनी ही बार उन्होने अपने भीतर इन दोषो को पा कर प्रायश्चित्त कर के आत्म-शुद्धि की है और निश्छल भाव से अपनी कमजोरियो को भी कह दिया है। वे अपने—आपके सबध मे सदा सजग आलोचनात्मक दृष्टि रखते है। एक स्थान पर उन्होने लिखा है कि "भूखो को देख कर जगी हुई सहानुभूति दूसरे ही क्षण परोसी हुई थाली के सामने बैठते ही गायब हो जाती है।" यद्यपि इसमे उन्होने अपने-आप को ही आलोचना का लक्ष्य बनाया है

परन्तु इस प्रकार की आलोचनाएं वस्तुत हमारे देश के समाज पर अनायास घटित हो जाती है। सीतारामजी की डायरियों मे उनका अद्भुत सस्कारी व्यक्तित्व बार-बार ऊपर आ जाता है। अपनी दुर्बलताओ को उन्होंने कही छिपाया नही, और यथासाध्य उनको दूर करने का प्रयत्न किया है। अत्यन्त विशाल हृदय ही भूलो को स्वीकार भी करता है और जीवन से उन्हें यथासाध्य हटा देने का भी प्रयत्न करता है।

श्री सेकसरियाजी का जीवन सामाजिक कुरीतियो, व्यापक अशिक्षा, विदेशी शासन से उत्पन्न विकृतियो मे सघर्ष करते ही बीता है। वे महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी हैं। वे अन्तरतर मे विश्वास करते हैं कि साध्य और साधन दोनो ही पवित्र होने चाहिए। आधुनिक भारत के राजनीतिक जीवन मे यह आदर्श लुप्त हो गया है। कभी-कभी उन्हें इस स्थिति मे बडा मानसिक कष्ट होता है। दुर्भाग्यवश देश की राजनीतिक स्थिति महात्मा गांधी के आदर्शों से एकदम अलग हो गई। कोई भी आज न साध्य की आध्यात्मिक ऊँचाई मे विश्वास करता है, और न साधन की पवित्रता मे।

महात्मा गांधी ने साध्य और साधन दोनो की पवित्रता पर बडा बल दिया था। आज कोई उस पर विचार करना जरूरी नही समझता। ऊँचे-से-ऊँचे आसनो पर आसीन लोग भी इस ओर ध्यान नही देते। सारा वातावरण परस्पर के आरोप-प्रत्यारोप और निन्दा-कुत्सा से कलुषित हो गया है। जिन जीवन-मूल्यो के लिए गाधीजी ने सम्पूर्ण जीवन उत्सर्ग कर दिया, वे अब केवल इतिहास की बात रह गये हैं। सीतारामजी का सवेदनशील चित्त इस बात से बहुत दुखी होता है। मैंने सेकसरियाजी को एक बार इस कारण से अत्यधिक दुखी देखा कि एक मूर्धन्य नेता के सम्बन्ध मे उन्हें यह पता चला था कि उन्होंने सच्ची बात छिपा कर अपना पद बचा लेने का प्रयत्न किया था। दुखी तो मैंने उन्हें और भी कई बार देखा है लेकिन उस समय जो दुख उनके चेहरे पर घनीभूत होकर छाया हुआ था, वैसा मैंने पहले कभी नही देखा था। सार्वजनिक जीवन मे व्याप्त झूठ उन्हें सब से अधिक कष्ट पहुँचाता है।

सेकसरियाजी बीते हुए युग के निस्पृह, सत्य-निष्ठ, सस्कारी जन-सेवको की श्रेणी के जीवित मूर्धन्य रत्न हैं। उनके और उन्ही के समान कुछ थोडे से सत्य-निष्ठ लोगो के साथ यह पीढी समाप्त हो रही है। परन्तु क्या यह परम्परा ही समाप्त हो रही है? सीतारामजी का जीवन आलोक-शिखा की भांति सदा भावी पीढी को मार्ग-दर्शन कराता रहेगा।

कविवर रविन्द्रनाथ की ये पक्तियाँ मानो सेकसरियाजी के जीवनादर्शों की ही वाणी हैं —

संसारे ते लभिले शक्ति पाइले शुधु वन्चना,
तोमाके येनो ना करि संशय।

—— ० ——

स्वतंत्रता-संग्राम के विशिष्ट सेनानी,
भारत सरकार के रक्षा-मंत्री

श्री जगजीवन राम

सराहनीय सेवाएँ

श्री सेकसरियाजी की राष्ट्रीय, सामाजिक, शैक्षणिक और सास्कृतिक क्षेत्रो मे सराहनीय सेवाए रही हैं। स्वतत्रता-सग्राम मे योग-दान के साथ-साथ उन्होने सामाजिक और शैक्षणिक, विशेषकर स्त्री-शिक्षा का, कार्य भी किया। इनकी सेवाओ को समादृत करने के लिए अभिनन्दन-समारोह आयोजित करने और अभिनन्दन-ग्रथ भेट करने की योजना कलकत्ता के नागरिको का सराहनीय कार्य है।

—— o ——

भारतीय संसदीय राजनीति के वरिष्ठतम स्तंभ,
देश-भक्त और समाज-सेवी,
हिन्दी के प्रसिद्ध नाट्यकार

सेठ गोविन्ददास

त्यागमय जीवन

मैं श्री सेकसरियाजी को ५० वर्ष से भी अधिक समय से निकट से जानता हूँ। इस मर्त्य-लोक की रचना ही कुछ ऐसी है कि यहां जो भी आया है, उसे जल्दी या देर से एक दिन जाना है। मनुष्य-योनि बड़ी कठिनाई से प्राप्त होती है और उसे प्राप्त करने के पश्चात् दीर्घ जीवन बड़ी भारी बात है। फिर यदि वह जीवन श्री सेकसरिया-जी के सदृश उपयोगी हो, तब तो पूछना ही क्या है?

श्री सेकसरियाजी ने जिस देश में जन्म लिया, उसकी स्वतंत्रता के लिए सब कुछ बलिदान कर दिया। उनके त्यागमय जीवन से न जाने कितनों को प्रेरणा प्राप्त हुई है? फिर देश के रचनात्मक कार्यों में भी वे अग्रसर रहे। वे ऐसे कार्यकर्त्ता नहीं हैं जो स्वतंत्रता के संग्राम में केवल एक स्वयं-सेवक के सदृश ही कार्य करते रहे हों। स्वतंत्रता के संग्राम में तो उन्होंने सब कुछ किया ही पर इसी के साथ देश के विभिन्न भागों में रचनात्मक कार्य कर उन्होंने सोने में सुगन्ध का मिश्रण कर दिया।

एक दिन सभी को जाना है। वे भी जायेंगे ही पर मर कर भी अमर रह जायेंगे।

मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि उन्हें सौ वर्ष का पूर्ण जीवन देकर उन से देश की इसी प्रकार सेवा कराता रहे।

—— o ——

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी और शिक्षाविद्,
स्त्री-शिक्षा की अखिल भारतीय ख्याति-प्राप्त संस्था
वनस्थली विद्यापीठ के संस्थापक-संचालक,
स्वातंत्र्योत्तर राजस्थान के प्रथम मुख्य मंत्री

श्री हीरालाल शास्त्री

आदि सुहृद!

भाई सीतारामजी से पिछले ४५ वर्षों से मेरी ऐसी अभिन्नता रही है कि मै यदि उनके विषय मे कुछ लिखू तो वह ज्यादातर मेरे खुद के विषय मे लिखा हुआ लगेगा। हम दोनो का सम्बन्ध व्यक्तिगत एव पारिवारिक जैसा है, परन्तु इस सम्बन्ध का वास्तविक आधार सार्वजनिक है।

१६२८ के अप्रैल महीने मे नियति मुझे एक प्रकार से अस्थायी निवास के लिये कलकत्ता ले गयी। मेरे जिम्मे कुछ सार्वजनिक सस्थाओ का काम देखना था। उस सिलसिले मे कलकत्ता के कई सार्वजनिक भावना वाले लोगो से सम्पर्क हुआ, जिनके साथ थोडे ही समय मे मेरा मित्र-भाव बन गया। मेरी देख-रेख वाली सस्थाओ मे प्रमुख स्थान बासतल्ला स्थित मारवाडी बालिका विद्यालय का था और मेरे कलकत्ता वाले नये मित्रो मे प्रमुख स्थान सीतारामजी का हो गया। उन दिनो सीतारामजी मारवाडी बालिका विद्यालय के मत्री थे।

जो भाई कमाने-खाने के लिए राजस्थान से बाहर निकलते थे, उनमे अच्छा पढा-लिखा शायद ही कोई होता था, परन्तु मेरे लम्बे सहवास ने बताया कि वे लोग आम तौर से बडे बुद्धिमान, व्यवहार-कुशल और अध्यवसायी होते थे। और, उनमे कुछ-न-कुछ 'धर्म' का काम करने की भावना भी होती थी। उक्त धर्म की भावना कई लोगो के चित्त मे आधुनिक अर्थ मे सेवा की भावना का स्थान लेने लग गयी थी।

मारवाडी बालिका विद्यालय के इन मत्रीजी मे मेरी मुलाकात हुई। वे भी बहुत से दूसरे राजस्थानी भाइयो की तरह ही मामूली पढे-लिखे पाये गये। लेकिन मैंने तुरन्त समझ लिया कि उनमे सीखने की तीव्र इच्छा और प्रवृत्ति है। सीतारामजी की सचाई और सेवा-भावना का तो कहना ही क्या? कोई दूसरा होता तो मेरे साथ उसकी शायद ही पटती, वह सभवत मुझसे ईर्ष्या करने लग जाता। पर, सीतारामजी को बालिका विद्यालय के काम से मतलब था, अपने मत्रित्व के अधिकार का भान उन्हे नही था।

ऐसी हालत मे हम दोनो एक-जीव होकर विद्यालय के काम मे जुट गये। सीतारामजी कहते रहते है—"मैंने तुमसे यह सीखा और वह सीखा।" पर, मैं तो सीतारामजी का एक सहायक था। मैं किसी पद पर नही था, पद की मुझे आवश्यकता भी नही थी। हम दोनो के मिले-जुले परिश्रम से और प्रबंधकारिणी समिति के दूसरे सदस्यो के सहयोग से मारवाडी वालिका विद्यालय एक अच्छे-से हाई स्कूलका रूप लेने की दिशा मे आगे वढ गया। साथ ही सीताराम और हीरालाल मे अत्यन्त अनूठा और सुन्दर एकत्व आ गया।

मैं जयपुर छोड कर कलकत्ता रहने के लिए नही गया था। न मेरे सामने कमाने-खाने का सवाल था, क्योकि मैं माग कर खाने का व्रत पहले से ही ले चुका था। मुझे किसी भी शहर मे—जयपुर तक मे—रहना अच्छा नही लगता था और सीतारामजी के लिये कलकत्ता-निवास अत्यन्त प्रिय था। ऐसा नही है कि कलकत्ता की तमाम बातें सीतारामजी को पसन्द ही हो, पर उनका दिल कलकत्ता मे उलझ चुका था। उधर सीतारामजी की पत्नी भगवान देवी और मेरी पत्नी रतनजी के बीच भी एक खास तरह का अभिन्न भाव बन गया था।

शायद १९२८ के अन्त मे हम सब लोग वर्धा मे थे। मुझे राजस्थान के—असल मे जयपुर राज्य के ही—किसी गाँव मे जाकर बसने की धुन लगी हुई थी। मैंने गाँधीजी की इजाजत हासिल कर ली थी। मैंने जयपुर छोडा, तभी से भाईजी जमनालालजी और भाईजी घनश्यामदासजी मुझे सहारा देते रहे थे। सयोग से वे दोनो ही मेरे गाँव मे जाकर बसने के विचार के पक्ष मे नही थे। मैंने दोनो को ही ढिठाई का-सा जवाब दिया और बिना उनके सहारे ही वैसा करना मजूर कर लिया। तब भगवान ने सीतारामजी को मेरी मदद के लिए भेजा। सीतारामजी मेरे आग्रही स्वभाव को जानते थे। वे बोले—"क्या चिन्ता है? जितनी मुझ से हो सकेगी, उतनी मदद तुम्हारी मैं जरूर करूँगा।" और वैसा ही उन्होने किया।

वर्धा के एक मामूली से पेड की धूप-छाह मे उस दिन एक महासकल्प हो गया। वह महासकल्प मुझे वनस्थली ले गया। १९२९ की अक्षय तृतीया को जब मैं वनस्थली पहुँचा तो मेरे पास कुछ भी नही था। गाँव मे मैं एक नीम के पेड के नीचे बैठ गया। एक विद्यार्थी को अवश्य मैं अपने साथ ले गया था क्योकि मैं अपने-आप को कई प्रकार मे अपग मानता रहा हूँ। ऐसी विकट-सी स्थिति मे कलकत्ता मे बैठे हुए सीतारामजी का ही एक मात्र सहारा मुझे था। कलकत्ता के मारवाडी वालिका विद्यालय के बाद वनस्थली के जीवन-कुटीर ने हम दोनो को एक खास सूत्र मे बाध दिया। कलकत्ता नगर निवासी सीताराम सेकसरिया का नाम वनस्थली ग्राम के साथ "यावच्चन्द्र दिवाकरो" जुडा हुआ रहेगा। आगे जा कर भाई भागीरथजी कानोडिया आदि अनेक बन्धुओ ने—भाईजी जमनालालजी और घनश्यामदासजी तक ने—मेरी और वनस्थली की सहायता की। पर वनस्थली के "आदि सुहृद्" की पदवी केवल सीतारामजी ने पायी।

सीतारामजी एक नाजुक आदमी है। देखने मे सुन्दर, बोलने मे मीठे, वृत्ति मे विनयशील। और मैं? बिलकुल उलटा। एक बार मैं सीतारामजी को अपने

जन्म-स्थान जोवनेर ले गया। वहा न रहने का मकान, न शौच-सुविधा के लिये समुचित टट्टीघर, न नहाने को स्नान-घर, न पीने को मीठा पानी, न खाने को भले आदमी की सी रोटी। सीतारामजी को जो तकलीफ उस यात्रा मे हुई, उसकी कल्पना आज मैं करता हूँ तो मुझे वडी शर्म मालूम होती है। मैं सोचता हूँ, कितना अज्ञानी और कैसा अनाडी था मैं। और सीतारामजी? उन्होने मेरे उस खुरदरे प्यार की पूरी कीमत चुकायी।

वनस्थली किसी अमीर आदमी के रहने के लायक तो अब भी नही हुई है, हालाकि अब सीतारामजी जैसो का काम भी थोडा-बहुत चल सकता है। पर उन दिनो की वनस्थली का क्या कहना? सीतारामजी रात के १० बजे स्टेशन पर उतरे होगे, और एक वैलगाडी मे पडे सारी रात काली कर के वे जीवन-कुटीर पहुचे। मुझे याद है कि मैने यह समझा ही नही कि सीतारामजी को कोई खास तकलीफ हुई होगी। पर, सीतारामजी प्रेमी आदमी जो ठहरे, उन्होने सब कुछ भुगत लिया अपनी वनस्थली के प्यार की खातिर। सीतारामजी की यात्रा-भीरुता विलक्षण है, कलकत्ता महानगर का अपना स्थान छोडना उनके लिए एक प्रकार की अग्नि-परीक्षा होता है। पर, उनका प्रेमी स्वभाव उन्हे अपने प्यार के स्थान तक खीच ले जाने मे कभी-कभी समर्थहो ही जाता है।

मारवाडी वालिका विद्यालय के वाद सीतारामजी ने शानदार श्री शिक्षायतन वनाया। उसमे मेरा योग-दान बिल्कुल नही है। जो हो, श्री शिक्षायतन कलकत्ता मे सीतारामजी की विशिष्ट रचना है, जिसे देख कर अच्छे-अच्छे लोग मुग्ध हो जाते है। दैव-योग ऐसा हुआ कि आगे चल कर वनस्थली भी लडकियो की शिक्षा का ही स्थान बन गयी। इसलिये अब सीतारामजी के पास शहर मे श्री शिक्षायतन है और गाँव मे वनस्थली विद्यापीठ है—दोनो स्त्री-शिक्षा के सस्थान।

सीतारामजी ने समाज-कल्याण के अनेक काम किये हैं। मातृ-सेवा हो, खादी हो, दुखियो की सेवा हो—हर क्षेत्र मे सीतारामजी का अनुपम योग रहा है। वीच मे काग्रेस मे, राजनीति मे भी उन्होने रचनात्मक भाग लिया। सीतारामजी एक से अधिक वार जेल भी गये। जयपुर राज्य प्रजामण्डल के सत्याग्रह के समय तो जेल ने उन्हे वापस ढकेल दिया। अचानक ही गाँधीजी ने जयपुर सत्याग्रह को स्थगित करने का हुक्म दे दिया जिससे रतनजी बहुत दु खी हुईं। विडला हाउस मे सरदार वल्लभ-भाई कुछ बोल गये तो रतनजी ने गर्व के साथ जवाव दिया कि औरो को जाने दीजिए—ये सीतारामजी और सिद्धराज तो हमारे पास हैं न?

मुझे यह ठीक से याद नही है कि सीतारामजी ने अपना व्यापार पूरे तौर पर कब छोडा। जो हो, व्यापार मे ही लगे रहते तो वे वहुत वडी फैज पर पहुँच सकते थे, ऐसा मेरा विश्वास है। पर उन्होंने तो छोड दिया सो छोड ही दिया। ऐसा दूसरा महाजन मेरी जानकारी मे नही है। मैं सीतारामजी को शुरू से आज तक एक समाज और देश के पीछे पागल हुए आदमी के रूप मे ही देखता—जानता आया हूँ। सीतारामजी के असख्य पत्र मेरे पास सुरक्षित है। उनके अधिकतर पत्रो मे देश और

समाज की स्थिति के विषय मे चिन्ता प्रकट की हुई है। मैं उनसे कहता ही रहता हूँ—"आप श्रेष्ठ पुरुष हो, अच्छा-से-अच्छा काम करते हो, अपने लिए कुछ नही चाहते हो, फिर आप क्यो निरर्थक चिन्ता करते हो। मनुष्य अपने हिस्से का काम कर दे, उसके बाद वह बेकार की चिन्ता मे क्यो पडे? देश की करोडो जनता का अपना भाग्य भी तो है। समय आने पर सब कुछ अच्छा हो जायगा, आप 'पराये दुख दुर्बल' मत हुआ करो।" पर सीतारामजी को मेरा यह "उपदेश" नही जचता। उनका स्वभाव है बुरी बात को न देखने का, और अच्छे के लिये खटने का।

मेरा और रतनजी के भाइयो का एक खासा बडा सयुक्त परिवार है जिसके साथ सीतारामजी का बडा भारी मोह है। छोटे-से-छोटे बच्चे की कुशल वे नाम ले-लेकर पूछते है। रतनजी की माताजी को तो वे इतना मानते हैं कि रतनजी और मैं भी क्या मानूगा? हमारे सयुक्त परिवार को सीतारामजी "सतजुग" का सा परिवार मानते है। यह सब कुछ सीतारामजी के प्रेमी स्वभावका प्रताप है। सीतारामजी का खान-पान नफीस हैं, पर उसे वे बहुत नियन्त्रित रखते है। मेरे शौक पूरे करने का भगवान देवी के साथ-साथ सीतारामजी भी बहुत ध्यान रखते रहे है। भगवान देवी मेरे लिए हमेशा बढिया "राबडी" बनाती, तो सीतारामजी खुद मेरे लिये बढिया सेव लाते। सीतारामजी को भगवान देवी जैसी सहधर्मिणी मिली सो बडे सौभाग्य की बात थी। उस देवी को मै कभी नही भूल सकता।

सीतारामजी की गिनती प्रमुख सुधारवादियो मे की जाती है, पर मैं उन्हे एक भक्त के रूप मे भी देखता आया हूँ। गीता और रामचरित मानस उनके दैनन्दिन पाठ के प्यारे ग्रथ है। अच्छे भजन सीतारामजी को लोट-पोट कर देते हैं। सीताराम जी का जीवन सर्वथा नियमित है। उनकी प्रत्येक बात सुरुचिपूर्ण और सुसस्कृत हैं। मेरी डायरी लिखने की आदत देख कर शायद वे डायरी लिखने लगे होगे। वैसे मैं अपनी डायरी को सीतारामजी की डायरी के मुकाबले मे कुछ नही मानता हूँ। उनकी डायरी जवाहरात की खान जैसी है—अपनी तमाम अनुभूतियो को वे डायरी मे दर्ज करते हैं। उनकी डायरी और उनके पत्र सब के लिए प्रेणादायक सिद्ध होगे।

सीतारामजी का चारित्र्य उज्ज्वल है। वे स्वभाव से अमीर हो कर भी सही अर्थों मे त्यागी हैं। उन्हें मान-प्रतिष्ठा कुछ नही चाहिए। उनका प्रत्येक क्षण देश और समाज के कल्याण का चिन्तन करने मे जाता है। अपने समाज मे जो एक से एक बढ कर रत्न हैं, उनमे सीतारामजी अपनी विशिष्ट आभा से जाज्वल्यमान है। वाकई सीतारामजी बे-मिसाल है, लासानी हैं।

हीरालाल उजड्ड है, सीताराम नफीस।
तब भी दोनो एक हैं, मानो बिसवा बीस॥
दीर्घ काल से हैं बधे, बन्धन-स्नेह विचित्र।
बना रहेगा सर्वदा, भाव अभिन्न विचित्र॥

—— o ——

गाँधी-विचार के सुप्रसिद्ध लेखक,
गुजरात के भूतपूर्व राज्यपाल

श्री श्रीमन्नारायण

आदर्श कर्म-योगी !

आदरणीय सीतारामजी सेकसरिया देश के उन बिरले व्यक्तियो मे हैं जिन्होंने निःस्वार्थ भाव से वर्षों तक राष्ट्र और समाज की सेवा की है, लेकिन प्रकाश मे आने की कभी कोशिश नही की।

उनसे मेरा परिचय लगभग सैंतीस वर्ष पहले वर्धा मे ही हुआ था। वे पूज्य जमनालालजी बजाज के घनिष्ठ मित्रो मे थे और उन दिनो अक्सर वर्धा और सेवाग्राम आते-जाते रहते थे। शुरू से ही मेरे मन पर उनके व्यक्तित्व की बहुत गहरी छाप रही है। उनका सात्विक और सेवामय जीवन मुझे सदा प्रेरणा देता रहा है। मैं उनका एक आदर्श कर्मयोगी के रूप मे आदर करता रहा हूँ। यदि उन्हें ऋषि भी कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

मैं इस अवसर पर उनके प्रति अपने हार्दिक प्रणाम अर्पित करता हूँ।

—— o ——

हिन्दी के वरिष्ठ सम्पादक और लेखक,
भूतपूर्व राज्यसभा–सदस्य

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी

आत्म-दानी !

भाई सेकसरियाजी से मेरा परिचय अब तक इतना घनिष्ठ और विस्तृत हो चुका है कि अब उसकी प्रारम्भिक तिथि-तारीख या सन्-सम्वत का पता लगाना भी मेरे लिए मुश्किल है। शायद सन् १९२८ के मध्य या सन् १९२९ के आरम्भ में उनके प्रथम दर्शन हुए होगे।

पिछले ४४-४५ वर्षो मे श्री सेकसरियाजी ने मेरे अनेक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक यज्ञो मे जो प्रचुर सहायता प्रदान की है, उसे मै जीवन पर्यन्त नही भूल सकता। चौबे लोग यजमान–सग्रह मे विश्वास रखते हैं और सेकसरियाजी दर-असल सर्वश्रेष्ठ यजमान है।

सेकसरियाजी के बीसियो ही पत्र मेरे घर पर सुरक्षित है जो उनके सुसंस्कृत, उदार तथा पर-दुख-कातर व्यक्तित्व का चित्रण करते हैं। उनकी दान-शीलता मे अहम् भाव का नामोनिशान नही, बल्कि विनम्रता तथा सहज स्वाभाविकता का अद्भुत मिश्रण है। अपने दान से किसी पर भी अहसान लादने की वे कल्पना भी नहीं करते। दूसरे के सामने हाथ पसारने मे याचक जिस क्षुद्रता का अनुभव करता है, सेकसरियाजी से सहायता पानेवाले को उसका अनुभव कभी नही होता। इस प्रसग मे सुप्रसिद्ध अमरीकन कवि लॉवेल की एक कविता याद आती है जिसका भावार्थ है—'जो अपने दानके साथ आत्म-दान भी करता है, वह दान-पात्र को ही नही, स्वयं को और ईश्वर को भी उपकृत करता है। दान का महत्व उतना नही, जितना अपने साधनो को दूसरो के साथ मिल-बाँट कर उपभोग करने का है। आत्म-दान के बिना कोई भी दान बिल्कुल अधूरा ही है।' सेकसरियाजी ने अपने सीमित साधनो के बावजूद इस कविता को अपने जीवन मे चरितार्थ कर दिखाया है। वस्तुत सेकसरियाजी का सम्पूर्ण जीवन ही इस कविता की साक्षात् टीका है।

मै यहाँ कुछ ऐसी ही घटनाओ का वर्णन करूँगा, जिनसे सेकसरियाजी की मनोवृत्ति तथा विचारधारा पर कुछ प्रकाश पड सकता है।

एक बार सेकसरियाजी ने मुझ से कहा—'हमारे मारवाडी बालिका विद्यालय मे एक पुस्तकालय का उद्घाटन करने के लिए क्या आप समय निकाल सकेंगे ?'

मैंने हाँ भर ली और निश्चित समय पर उस विद्यालय मे उपस्थित हो गया। उस समय मुझे एक मजाक सूझा। उपस्थित छात्राओ को सम्बोधित करते हुए मैंने कहा—"कलकत्ता से कुल जमा निन्यानवे मील की दूरी पर विश्व के एक महान् कवि रहते है। मुझे पता नही कि आपने उनके दर्शन किये या नही। यदि नही किये हो तो इस विद्यालय के सचालको का यह कर्त्तव्य होता है कि वे आपको शान्ति-निकेतन की तीर्थ-यात्रा करा दे।" मैं तो यह मजाक कर के घर लौट आया पर इसके तीन-चार दिन बाद भाई सेकसरियाजी ने आ कर मुझ से कहा—"आप हमारे विद्यालय की छात्राओ को जो बहका आये, उसका नतीजा यह हुआ कि वे शान्ति-निकेतन की यात्रा के लिए जिद्द कर रही हैं। क्या आप समय निकाल कर हमारे साथ चल सकेंगे?" मेरे पास समय की क्या कमी थी? सम्पादकाचार्य रामानन्द ने मुझे पूर्ण स्वाधीनता दे रखी थी। मैंने कहा—"वक्त तो मेरे पास नही है, फिर भी आपके आदेश का पालन करूँगा।" मैंने यह किस्सा सुन रखा था कि चतुर ज्योतिषी लोग श्रद्धालु व्यक्तियो को ग्रह का प्रकोप तथा ब्राह्मण को दान बतला आते हैं। फिर वह भोला-भाला आदमी यह सोच कर कि अन्य ब्राह्मण को कहाँ तलाश करता फिरूँगा, उसी ब्राह्मण देवता को दान दे देता है। इस प्रकार मारवाडी बालिका विद्यालय की दस-बारह छात्राओ, जिनमे सेकसरियाजी की सुपुत्री पन्ना और एक अध्यापिका सरस्वती देवी साहित्याचार्य भी थी, ने सेकसरियाजी के साथ शान्ति-निकेतन की यात्रा मेरे साथ की।

उस घटना को आज ३९ वर्ष होने को आये, फिर भी उसकी याद मेरे मस्तिष्क मे ज्यो-की-त्यो ताजा है। उस यात्रा का वर्णन श्री सेकसरियाजी ने अपनी पुस्तक "बीता युग नई याद" मे विस्तार से किया है। उस समय गुरुदेव ने सरल बगला मे जो सक्षिप्त भाषण दिया था, उसका भी मुझे स्मरण है। उस भाषण का श्री सेकसरियाजी पर और कुमारी पन्ना पर बहुत प्रभाव पडा। गुरुदेव ने कहा था—"मैंने अपना सब कुछ शान्ति-निकेतन को दे दिया। नोबुल पुरस्कार के रुपये भी शान्ति-निकेतन को दे दिये। मेरी पुस्तको से जो आय होती है, वह भी शान्ति-निकेतन की है। तब भी शान्ति-निकेतन पर कर्ज हो गया है और उसके बोझ से मैं दबा जा रहा हूँ। मैं मद्रास जा रहा हूँ। इस तिहत्तर वर्ष की उम्र मे मैं बाहर नही जाना चाहता। आज न तो मुझ मे शक्ति है, न इच्छा है कि नाच-गान की पार्टी लेकर फिरूँ। पर क्या करूँ, शाति-निकेतन के लिए धन चाहिए। मैं यह भी चाहता हूँ कि यहाँ हिन्दी के लिए अच्छी व्यवस्था हो, हिन्दी की स्थायी सीट हो और हिन्दी-भवन बने, जिसका सुन्दर पुस्तकालय भी हो।"

श्री सेकसरियाजी ने धीरे से मुझ से कान मे कहा—"मैं हिन्दी-भवन के लिए गुरुदेव को पाँच सौ रुपये अर्पित करना चाहता हूँ। क्या यह इस समय उचित होगा?" मैंने कहा—"अवश्य कीजिये।" और, सेकसरियाजी ने वैसा ही किया। इस प्रकार हिन्दी-भवन की नीव उसी क्षण पड गई। कुमारी पन्ना, जो पूज्य पिताजी की तरह ही सवेदनशील है, ने प्रभावित होकर सेकसरियाजी से कहा—"गुरुदेव का कर्ज तो चुक जाना ही चाहिए। यह हम सब का कर्त्तव्य है।" श्री सेकसरियाजी

सहमत हो गये और श्री घनश्यामदासजी बिड़ला से भी इसके लिए उन्होंने निवेदन किया। आगे चलकर महात्मा गाँधी के अनुरोध पर श्रीमान् बिड़लाजी ने शांति-निकेतन का ऋण चुका दिया।

हिन्दी-भवन की स्थापना दीनबन्धु ऐण्ड्रूज ने की और उसका सम्पूर्ण व्यय-भार हलवासिया ट्रस्ट पर पड़ा। अब तक अन्दाज लाख-डेढ़ लाख रुपये हिन्दी-भाषियो, जिनमे मारवाड़ी समाज मुख्य है, के द्वारा दिये जा चुके है, जिसका श्रेय मुख्यतया श्री भागीरथ जी कानोडिया को मिलना चाहिए। दीनबन्धु कुछ अस्वस्थ से थे और विश्राम करने के लिए प्रोफेसर रुद्र के पास प्रयाग जा रहे थे। मैंने आग्रह कर के उनसे एक दिन कलकत्ता के लिए माँग लिया। उन बीस घण्टो मे मैंने उनके लिए कई कार्य-क्रम रख दिये। सब से प्रथम तो मैं उन्हें भागीरथ भाई के यहाँ बिना किसी सूचना के ले गया। भागीरथ भाई ने आश्चर्य से पूछा—"इन महापुरुष को आपने क्यो तकलीफ दी?" मैंने तब शांति-निकेतन के हिन्दी-भवन की चर्चा की और उन्होंने तुरन्त पाँच सौ रुपये दे दिये। फिर मैं दीनबधु को सेकसरियाजी के घर पर ले गया। उन्हे भी इसकी खबर नही दी थी। भाई सेकसरियाजी ने भी वही सवाल किया—"दीनबन्धु को क्यो कष्ट दिया? मैंने कहा—"आपने हिन्दी-भवन के लिये जो सहायता की है, उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करने को ये पधारे है।" सेकसरियाजी ने मुस्करा कर कहा—"ऐसे महापुरुष को अपने घर मे हम खाली हाथ नही जाने देंगे"। फिर उन्होने दो सौ रुपये और भी भेंट कर दिये। यह बात ध्यान देने योग्य है कि गुरुदेव सेकसरियाजी की सहायता को भी भूले नही। पटना की एक मीटिंग मे उन्होन उसका उल्लेख किया था।

इस प्रकार की एक घटना और भी मुझे याद आ रही है। भाई सेकसरियाजी ने एक दिन मुझ से कहा—"क्या आप समय निकाल कर हमारे एक अस्पताल को देखने चल सकेंगे?" मै राजी हो गया और अस्पताल देखने चला गया। अस्पताल का विधिवत् निरीक्षण मैंने जिन्दगी मे पहली बार ही किया था। अन्य कमरो मे घूमने के बाद हम एक कमरे मे पहुचे, जहाँ किसी स्त्री को खून दिया जा रहा था। रक्त-हीनता उसके चेहरे से टपकती थी। सेकसरियाजी ने डाक्टर से उसके हाल-चाल पूछे और पूरी सावधानी बरतने का आदेश दिया। फिर कमरे से निकलने के बाद उन्होंने मुझ से कहा—"आप जानते है कि इस अस्पताल के कायम करने का विचार मेरे मन मे कैसे आया?" मैंने अपनी अज्ञानता प्रकट की तो उन्होने कहा था—"जब प्रसूति मे आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया था, और मैं मातमपुर्सी के लिए आपके निवास-स्थान पर गया था, तभी मैंने यह सकल्प कर लिया था। इसके सिवा मेरी पत्नी को भी प्रसूति मे काफी कष्ट हो चुका था।" मै चकित रह गया।

सेकसरियाजी ने बड़ा ही सवेदनशील हृदय पाया है, जो दूसरो के कष्टो से तुरत ही द्रवित हो जाता है। कुछ घटनाए और भी लिख दूँ।

एक बार सेकसरियाजी ने मुझे भोजन के लिए निमन्त्रित किया। मैंने मजाक मे उनसे कह दिया—"क्या आप जानते हैं कि बिना दक्षिणा के चौबे लोग भोजन नही

करते ?" उन्होने कहा—"यह बात तो जग-जाहिर है। मैं कैसे नही जानूगा ?"

मैं भोजन के लिए गया और मेरे कहने से एक गरीब महिला के बच्चो की फीस तथा किताबो के लिए उन्होने इकावन रुपये दे दिये।

मौलवी जहरुउल हसन साहब का स्वर्गवास हो गया था। वे मौलाना आजाद के पुराने शिष्य थे और उन्होने आजाद साहब द्वारा की गई कुरान की टीका के एक अध्याय के आधार पर 'कुरान और धार्मिक मत-भेद' नामक किताब लिखी थी। वे तीन बार जेल भुगत चुके थे और प्रूफ सशोधन के लिए उन्हे पन्द्रह दिन तक मेरे पास रहना पडा था। मौलवी साहब की धर्मपत्नी को कुछ सहायता भागलपुर भिजवानी थी। अकस्मात् सेकसरियाजी का निमत्रण फिर मिला। मैंने पेशगी दक्षिणा ले कर उन्हे ५१) रुपये भिजवा दिये। इसके सिवा सेकसरियाजी ने उस ग्रथ की भी बहुत-सी प्रतियाँ खरीद ली।

'विशाल भारत' हमेशा घाटे मे ही चलता रहता था। एक बार उस पर घोर आर्थिक सकट आ गया। मेरी प्रार्थना पर सेकसरियाजी ने पाँच हजार रुपये उधार दे दिये। ब्याज का तो कोई सवाल था ही नही पर मूल चुकने मे भी काफी विलम्ब हो गया। राम-राम कह के वह चुक गया, पर भाई सेकसरियाजी सारी स्थिति से परिचित थे और रामानन्द बाबू को वे ऋषि-तुल्य पूज्य मानते थे, इसलिए उन्होने कोई उद्विग्नता प्रकट नही की।

श्रद्धेय रामानन्द बाबू के जीवन-काल मे ही मैं उन पर एक ग्रथ लिखना चाहता था, पर वे इसके लिए राजी नही हुए और अपने दामाद कालीदास नाग के मार्फत मुझे बुलवाया और कहा,—"मैं इस बारे मे पडितजी की कुछ भी सहायता नही कर सकता। मेरे चले जाने के बाद भले ही कोई उचित समझे तो मेरे बारे मे कुछ लिखे।" बडे बाबू के स्वर्गवास के कुछ वर्षों बाद मैंने इस श्राद्ध कार्य के लिये दिल्ली से कलकत्ता की यात्रा की और स्वर्गीय बालमुकुन्द गुप्त के सुपुत्र भाई नवलकिशोर के पास ठहरा। वे इतने दयालु व्यक्ति थे कि मुझे किसी दूसरी जगह ठहरने ही नही देते थे। बारह रोज मैं कलकत्ता मे रहा। रामानन्द बाबू के सुपुत्र श्री केदार बाबू से मिला। वे इस कार्य मे सहायता देने को उद्यत हो गये। पर मुख्य प्रश्न आर्थिक था। रामानन्द चटर्जी स्मृति ग्रथ के लिए ६ हजार रुपये की आवश्यकता थी। श्री सेकसरियाजी ने कहा—"आप पाँच-पाँच सौ रुपये मेरे और भागीरथजी के निश्चित समझ ले। यदि आप ५-७ दिन ठहर सकें तो पाँच-पाँच सौ देने वाले दस आदमी तैयार कर देगे।" पर मुझे बुखार आ गया और भाई नवलकिशोरजी चिन्तित हो गये। वे मुझ से चार वर्ष बडे थे। रात को उठ-उठ कर मुझे कपडे ओढाते थे। कुछ स्वस्थ होते ही मैं कलकत्ता छोड कर दिल्ली भाग आया और वह श्राद्ध कर्म जहाँ-का-तहाँ पडा रहा। रुपये इकट्ठे नही किये गये। तीस वर्ष के बाद अब उस पुण्य-कार्य को मैंने हाथ मे ले लिया है और उसका प्रबन्ध भाई सेकसरियाजी ने ही कर दिया है। यह देख कर हम दोनो को आश्चर्य हुआ तथा खेद भी कि ऐसे महत्वपूर्ण कार्य मे भी विलम्ब हो रहा है।

मेरा एक और स्वप्न भी जहाँ-का-तहाँ पडा रह गया और वह है कलकत्ता मे हिन्दी-भवन की स्थापना का। सन् १९४८ मे कलकत्ता गया हुआ था। स्वर्गीय रामदेव चोखानी वहाँ मिलने पधारे तो उन्होंने कहा—"चौबेजी, यह स्थान तो रहने लायक है नही।" मैने तुरन्त ही कहा—"आप लोग अगर हिन्दी-भवन बनवाते तो उसी मे ठहरता।" चोखानीजी ने उत्तर दिया—"आपको उसके लिये पन्द्रह-बीस दिन यहाँ ठहरना होगा।" मै ठहरा भी और हिन्दी-भवन के लिए २०-२१ हजार चन्दे के वचन भी मिल गये। स्वय चोखानीजी ने दो हजार देने को कहा था, भागीरथ भाई ने ढाई हजार, स्वर्गीय आनन्दीलाल पोद्दार ने पाँच हजार, इत्यादि इत्यादि। पर मुझे जल्द ही लौटना पडा और किसी ने पैसा उगाहा ही नही। मामला जहाँ-का-तहाँ रह गया। भाई सेकसरियाजी को इस बात का खेद है पर क्या किया जाय? अब तो इस स्वप्न की पूर्ति अत्यन्त व्यय-साध्य हो गई है। साम्प्रदायिकता के विरुद्ध जब मै ट्रेक्ट छपाना चाहता था, तब दो ट्रेक्टो की छपाई का व्यय सेकसरियाजी ने ही दिया था।

सेकसरियाजी मेरे लेखो को जितना ध्यान पूर्वक पढते है, उसे देख कर मुझे स्वय आश्चर्य होता है।

स्व० देवी प्रसादजी मुसिफ की लिखी रहीम खानखाना की जीवनी मे मैने पढा कि दिल्ली मे रहीम की समाधि बडी दुर्दशा मे पडी है। उसके आधार पर मैने पत्रो को एक लेख भेज दिया। उसे पढ कर सेकसरियाजी ने लिखा कि यदि ५-७ हजार रुपये से काम चल जाये तो प्रबध किया जाय। पर वह तो कई लाख का सवाल है और सरकार द्वारा ही हो सकता है।

सेकसरियाजी की सहृदयता का एक उदाहरण और भी दे दू। जब उन्हें पता चला कि मै अपने सग्रहालय की बहुमूल्य सामग्री को सुरक्षित करने के लिए चिन्तित हूँ, तो उन्होने तुरन्त ही पत्र लिखा कि वे काफी व्यय कर के मुझे आर्थिक चिन्ता से विमुक्त कर सकते है। पर इसकी आवश्यकता नही पडी। मेरे सौभाग्य से उन दिनो श्री भक्तदर्शनजी केन्द्रीय शिक्षा विभाग मे मन्त्री थे और उनकी कृपा से मेरी वह सामग्री राष्ट्रीय अभिलेखागार मे सुरक्षित कर दी गई है। मै अभी तक यह नही समझ पाया कि सेकसरियाजी की इतनी कृपा मुझ पर क्यो रही है। अनुमान से मै यही कह सकता हूँ कि हम दोनो की विचारधारा मे जो साम्य है, शायद वही उनकी इस उदारता के मूल मे है। हम दोनो ही महात्मा गाँधीजी के भक्त तथा कृपा-पात्र रह चुके है। और भी कितने ही व्यक्ति ऐसे थे और अब भी है, जो हम दोनो के श्रद्धेय थे और अब भी है। साम्प्रदायिकता तथा प्रांतीयता के हम दोनो कट्टर विरोधी हैं। भावी समाज-व्यवस्था के बारे मे हम दोनो के विचार एक सीमा तक मिलते-जुलते है।

श्री सेकसरियाजी अपने को लेखक नही मानते पर उन्होने जो कुछ लिखा है, वह उच्च कोटि का है। सीधी-सादी जबान मे अपने हृदय के भाव प्रकट कर देने की असाधारण क्षमता उनमे मौजूद है और डायरी-लेखक की हैसियत से तो वे बहुत ही सफल हो चुके है। पत्र-लेखको मे वे शिरोमणि हैं। मै यह अनुमान कर

सकता हूँ कि कुछ अनधिकारी व्यक्तियो ने भी उनकी उदारता से लाभ उठाया होगा, पर सेकसरियाजी कवीर की इस उक्ति के अनुयायी है—"कवीरा आप ठगाइये और न ठगिये कोई। आप ठगै सुख उपजै, और ठगै दुख होई"।

न जाने मेरे जैसे कितने कार्यकर्त्ताओ की सहायता उन्होने की होगी। ऐसे लोगो की सख्या सैकडो मे हो सकती है। इस मामले मे सव से वडी वात यह है कि सेकसरियाजी मनुष्य-मनुष्य मे कभी भेद नही करते। हिन्दू, मुसलमान, राजस्थानी, वगाली, गुजराती, पजावी सभी उनके लिए समान है।

दरअसल, सेकसरियाजी एक आदमी है और आदमी होना वहुत दुश्वार है।

—— ० ——

महात्मा गांधी के अन्यतम सहकर्मी,
पश्चिम बगाल मे रचनात्मक कार्यों के आदि-स्तम्भ,
सोदपुर खादी प्रतिष्ठान के सस्थापक

श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त

प्रिय-दर्शन

प्रिय-दर्शन, सहास्य-आनन्द सुहृदवरे
श्री सीताराम सेकसरियार,
अशीतितम जन्म-तिथि-पूर्ति उपलक्ष्ये
श्रद्धाजलि अर्पणम् एव अस्तु ॥

बन्धुवर, गाधीजी के आह्वान पर तुमने व्यवसाय मे अवकाश ग्रहण कर दारिद्रय-व्रत ग्रहण किया और अपने-आपको जन-सेवा की ओर लगा दिया। यह आज की वात नही है।

तुम्हारी उम्र तो ८२ वर्ष की हो गई किन्तु तुम ८२ वर्ष के बूढे नही हुए हो। तुम्हारी कर्म-क्षमता, प्रसन्न-चित्तता और निष्ठा ने तुमको आज भी युवक ही बना रखा है। तुम शतायु हो, एक सौ वीस वर्ष तक जीवित रहो, भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है।

भाई मेरे, ८२ वर्ष की पूर्ति के शुभ दिन के अवसर पर इसी मगल-कामना के साथ नमस्कार ग्रहण करो।

—— ० ——

राजस्थान के भूतपूर्व मुख्य मंत्री,
सम्प्रति मैसूर के महामहिम

श्री मोहनलाल सुखाडिया

चिर-स्मरणीय सेवा

श्री सीतारामजी ने अपना सारा जीवन समाज-सेवा के अन्दर लगा दिया है। स्वय धनवानो के वीच रहते हुए भी धनवान वनने का उन्होंने कभी प्रयत्न नही किया, यह उनकी उच्च भावनाओ और चरित्र की विशिष्टता रही हे। उनकी प्रेरणा से कलकत्ता के मारवाड़ी समाज ने सेवा के क्षेत्र मे भी जो कुछ कार्य किया, वह चिरस्मरणीय रहेगा। वे जितने मिलनसार और सरल स्वभाव के है, उसकी कोई कल्पना भी नही कर सकता। मेरा उनसे कई बार मिलना हुआ और हमेशा उनके विचारो से मैं प्रभावित हुआ हूँ।

परमात्मा उनको दीर्घायु करे, यही मेरी हार्दिक कामना है।

—— ० ——
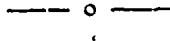
काग्रेस कार्य-समिति के एक-कालीन वरिष्ठ सदस्य,
पश्चिम बगाल के राष्ट्रीय नेता

श्री अतुल्य घोष

कुसुमादपि कोमल, वज्रादपि कठोर

मुझे जहा तक स्मरण है, श्री सीतारामजी सेकसरिया को सर्व प्रथम देखा था मैंने सन् १९२६ मे, सम्भवत शुद्ध खादी भण्डार के उद्घाटन के समय। मैं तब आल इडिया स्पिनर्स एसोसियेशन का सदस्य था। इसी कारण शायद मैं निमत्रित हुआ था। तत्पश्चात् सुदीर्घ ४८ वर्षों मे सेकसरियाजी से मिलने और कुछेक अवसरो पर उनके साथ कार्य करने का सुयोग भी मिला। अनेक वर्ष बीत गए, किन्तु उन्हे पहली बार जिस रूप मे देखा था, आज तक उसमे कोई परिवर्तन लक्षित नही हुआ। मुख पर वही मृदु मुस्कान, विनम्र व्यवहार और हर समय अपने को अयाचित भाव से आगे न लाने की सतर्कता।

कितने सार्वजनिक कार्यो मे सेकसरियाजी सबधित हैं, इसका ब्यौरा देना दुष्कर है। कोई भी सगठन—मूलक कार्य हो, सेकसरियाजी निश्चय ही उससे सबद्ध हुए मिलेगे। खादी-प्रचार के लिए उनके मन मे जैसा उत्साह है, गाँधीजी के दूसरे हर आदर्श के प्रचार का भी वैसा ही उद्यम है। आज भी विनोबाजी के आदर्शो के प्रचार के लिए हर समय वे आगे रहते है। शिक्षा-प्रसार की ओर भी वे निरतर अग्रसर रहते है।

यह तो है सेकसरियाजी का वाह्य व्यक्तित्व, किन्तु यह नम्र, विनयी एव सदा हास्यमय व्यक्ति कठोर सकल्प भी ग्रहण कर सकता है। समाज मे जो बुराइयाँ हैं, उन्हे दूर करने मे भी वे सदैव कृत-सकल्प रहते हैं। कलकत्ता मे जो इस कार्य मे अग्रणी हैं, सेकसरियाजी का नाम उनमे शीर्ष-स्थानीय है।

मैंने सेकसरियाजी के जीवन के दो विशेष पक्षो को लिया है। सेवा-कार्य का प्रश्न लिया जाय तो बाढ हो, महामारी हो, सूखा हो, सभी क्षेत्रो मे उन्हें विशिष्ट भूमिका के साथ कार्यशील देखा है। यह सब करते हुए प्रचार से वे हमेशा दूर रहते हैं। आज उनके बियासीवे जन्म-दिन पर अपनी श्रद्धा निवेदन कर उनके कर्मठ और दीर्घ जीवन की कामना करता हूँ। प्रभु से यही प्रार्थना है कि वे दीर्घ काल तक देश और जाति की इसी प्रकार सेवा करते रहे।

—— ० ——

स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी,
सुविख्यात राजनेता और समाज-सेवी,
पश्चिम बंगाल के भूतपूर्व उप-मुख्यमंत्री और वर्तमान सविद

श्री विजयसिंह नाहर

आदर्श पुरुष

शिक्षा-प्रचार, समाज-सेवा एवम् राजनीति के सच्चे समन्वय का दृष्टान्त विरला ही होता है। श्री सीतारामजी सेकसरिया उन विरल लोगो मे से ही है, जिन्होने राजनीति मे सक्रिय भाग लेने के साथ-साथ समाज-सेवा और शिक्षा-प्रचार हेतु भी स्वय को अर्पित किया। उन्होने महात्मा गाँधी के आदर्श को समक्ष रख कर जहाँ स्वतत्रता-सग्राम मे भाग लिया, वही खादी को प्रोत्साहन दे कर शुद्ध खादी भण्डार की स्थापना की। वर्षों तक वे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सदस्य रहे, और स्वातत्र्य-युद्ध मे अग्रणी रह कर कई बार उन्होने जेल-यात्रा भी की। इस प्रकार से सच्चे त्यागी और सेवक होने के कारण ही श्री सीतारामजी आदर्श पुरुष हैं।

उनसे मेरा कई वर्षों से सम्पर्क रहा है। बडाबाजार मे राजनीति का प्रभाव श्री सीतारामजी सेकसरिया और स्व० श्री वसन्तलालजी मुरारका के कारण ही मुख्य तौर से आया। इनकी जोडी प्रत्येक कार्य मे अग्रणी रही। मारवाडी समाज मे पर्दा-प्रथा के निवारण, दहेज-प्रथा के विच्छेद आदि के आन्दोलनो का सगठन और सचालन कर के उन्होने समाज की चिन्तन-धारा को नई दिशा प्रदान की।

जब भी श्री सीतारामजी से मिलने का मौका मिला, मैंने अनुभव किया कि वे अपने हसमुख चेहरे एव मृदु-भाषी व्यवहार से सब को अपना बना लेते है। मैंने उन्हें कभी किसी से झगडते नही देखा। विचारो मे अपने विरोधी का मुकाबला भी वे शान्त भाव से ही करते हैं। उन्होंने कभी किसी का अहित नही किया। इसीलिए वे हमेशा सब के प्रिय और श्रद्धेय व्यक्ति रहे।

स्वतत्रता-प्राप्ति के पश्चात् वे राजनीति से अलग रह कर समाज-सेवा मे ही लीन रहे। उन्होने कई सथाओ का निर्माण किया एव उन्हें सुचारू रूप से चलाया। श्री शिक्षायतन कालेज की अखिल भारतीय ख्याति उन्ही की देन का परिणाम है।

वे ८२ वर्ष के हो गये पर आज भी सेवा-कार्य मे पूरे जुटे हुए है।

आप शतायु हो एवम् सक्रिय रह कर समाज को दिशा-बोध देते रहे, यही हम सब की कामना है।

——०——

सुविख्यात भाषा-शास्त्री एव साहित्य-मर्मज्ञ,
सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के भूतपूर्व उपकुलपति
मुनिमेधातिथि, विद्या-मार्तन्ड

डा० मगलदेव शास्त्री

पुण्य-पियूष पूर्णा:

आदर्श-चरित्र श्री सीतारामजी मेकसरिया का प्रथम परिचय मुझे श्रद्धेय श्री काका साहब कालेलकर द्वारा १९७० मे प्राप्त हुआ था। वास्तव मे यह मेरा परम सौभाग्य था। सस्कृत-पद्यात्मक मेरी पुस्तक 'जीवन-ज्योति' को देखकर काका साहब बड़े प्रसन्न हुए थे। उनकी प्रेरणा से मैंने उसका हिन्दी-अनुवाद तैयार किया। उन्होंने उसे देख कर कहा—"असाम्प्रदायिक विश्व-मानवीय दृष्टि से जीवन-दर्शन को बतलाने वाली यह पुस्तक बिलकुल मेरी रुचि के अनुसार है और शीघ्र से शीघ्र इसका प्रकाशन होना चाहिए।" पुस्तक के प्रकाशन के सम्बन्ध मे उन्होंने श्री सेकसरियाजी को प्रेरित किया और उनको मेरा परिचय दिया। इसी प्रयत्न के फलस्वरूप भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा पुस्तक का प्रकाशन हुआ।

इसी प्रसग मे मुझे श्री सेकसरियाजी के आदर्श चरित्र के बारे मे साक्षात् दर्शन और दीर्घ-कालीन पत्र-व्यवहार द्वारा बहुत कुछ सुखद जानकारी प्राप्त हुई, जिसको मैं अपनी विशेष उपलब्धि समझता हूँ।

मुझे उनकी दो अत्यन्त रोचक पुस्तकें 'बीता युग नई याद" और "एक कार्यकर्त्ता की डायरी" पढने को मिली। इन पुस्तको ने उनके उदात्त चरित्र की और भी गहरी छाप मेरे हृदय पर अकित कर दी है।

मेरी सम्मति मे सस्कृत मे नीति-शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट कवि भर्तृहरि हैं। मानव-चरित्र के विभिन्न पक्षो का उनके द्वारा किया गया वर्णन जितना वास्तविक गहराई तक जाता है, उतना कदाचित् किसी अन्य कवि का नही। भर्तृहरि द्वारा पुरस्कृत आदर्श सत्पुरुष का वर्णन इस प्रकार है

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकार श्रेणिभि. प्रीणयन्त.।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्त सन्ति सन्तः कियन्त.॥१॥

अर्थात्, ऐसे सत्पुरुष ससार मे बहुत ही कम होते है, जिनके मन, वचन और शरीर मे मानो पवित्र अमृत भरा है, जो त्रिलोकी को विभिन्न रूप मे अपने उपकारो से प्रसन्न करते है, जो दूसरे के तुच्छ गुणो को भी पर्वत के समान मान कर अपने मन मे प्रसन्न होते है।

वदन प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषा केषां न ते वन्द्याः॥२॥

अर्थात्, जिनके मुख पर सदा सात्विक प्रसन्नता रहती है, जिनका हृदय दयालु है, जिनकी वाणी से मानो अमृत की वर्षा होती है, जो परोपकार-परायण है, ऐसे सत्पुरुष सभी के लिए वन्दनीय होते है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः॥३॥

अर्थात्, नीति-कुशल लोग चाहे उनकी निन्दा करे या प्रशसा, लक्ष्मी (धन) उनके पास आये या चली जाये, उनकी मृत्यु भी चाहे आज ही हो जाये या बहुत समय वाद, धीर सत्पुरुष न्यायोचित मार्ग से एक कदम भी विचलित नही होते है।

कहने की आवश्यकता नही है कि उपर्युक्त सारा वर्णन मानो कर्त्तव्य-परायण और नम्रता की मूर्ति श्री सीताराम सेकसरिया जैसे सत्पुरुषो को लक्ष्य मे रख कर ही किया गया है।

इस प्रसग मे मेरी पुस्तक 'जीवन-ज्योति' (प्रथम रश्मि) की चतुर्थ रचना को भी उद्धृत किये विना नही रह सकता। वह रचना यह है—

जयन्ति के जना भुवि ?

अर्थात्, ससार मे जय किन लोगो की होती है ?

परोपकारतत्पराः स्वदेश-भक्तिवत्सलाः।
अमत्सरास्तथापि ये जयन्ति ते जना भुवि॥१॥

अर्थात्, परोपकार-परायण और अपने देश की भक्ति मे तत्पर होते हुए भी जो अभिमान से रहित होते है, ससार मे उन्ही की जय होती है।

उदात्तकर्मशालिनो न दैन्यभावधारिणः।
तथापि सन्ति प्रश्रिता जयन्ति ते जना भुवि॥२॥

अर्थात्, उदात्त कर्मो को करने वाले और दीनता के भाव से दूर रहने वाले जो नम्र होते है, ससार मे उन्ही की जय होती है।

विहातुमुद्यता मुदा परार्थमात्मनो हितम्।
विशुद्धसत्वशालिनो जयन्ति ते जना भुवि॥३॥

अर्थात्, जो विशुद्ध उदात्त चरित्र वाले व्यक्ति दूसरो के निमित्त अपने हित को प्रसन्नता पूर्वक छोडने के लिए उद्यत रहते हैं, ससार मे उन्ही की जय होती है।

विसृष्टकीर्तिकामनाः स्वधर्मपालने रताः ।
तथाप्यहो ! यशस्विनो जयन्ति ते जना भुवि ।।४।।

अर्थात्, कीर्ति की कामना को छोड कर स्वधर्म के पालन मे तत्पर होते हुए भी जो यशस्वी होते है, ससार मे उन्ही की जय होती है।

विरागमूर्तयोऽपि नित्यमार्तदुःख दु खिनः।
सुखेन ये न शेरते जयन्ति ते जना भुवि ।।५।।

अर्थात्, स्वय वैराग्य की मूर्ति होते हुए भी जो आर्त जनो के दु ख मे दु खी होने के कारण कभी सुख की नीद नही सो पाते है, ससार मे उन्ही की जय होती है।

अमायिनो दृढव्रतास्तपस्विनो जितेन्द्रियाः।
सदाशया महाशया जयन्ति ते जना भुवि ।।६।।

अर्थात्, जो छल-कपट से रहित, दृढ-व्रती, तपस्वी, जितेन्द्रिय और शुभ तथा उच्च विचारो वाले होते है, ससार मे उन्ही की जय होती है।

'जीवन-ज्योति' की रचना मैने वर्षो पहले की थी, परन्तु इस समय मुझे ऐसा लग रहा है, मानो उक्त सारे पद्य श्री सीतारामजी सेकसरिया के आदर्श-चरित्र के वर्णनार्थ ही लिखे गये थे। इस को अतिशयोक्ति न समझा जाय। यथार्थ मे मेरी ऐसी ही भावना है।

आज मेरी यही शुभ कामना है—

समुद्योगपरः श्रीमान् लोककल्याणकाम्यया।
सत्कार्यसाधने दत्त-चितः प्राण पणैरपि ।।१।।
सदाचारपरो नित्यं भद्रभावनया युतः।
सतामादर्शभूत. स शतायुर्लभता ध्रुवम् ।।२।।
सेकसरिया कुलोत्तंस सीतारामोऽग्रजीः सताम्।
शरदः शतमसौ जीव्याद् "भूयश्च शरदः शतात्" ।।३।।

अर्थात् श्री सीतारामजी जो लोक-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर सदैव प्रयत्नशील रहते हैं, जो प्राणपण से सत्कर्मो को साधने मे दत्त-चित्त रहते है, जो सदाचार-परायण और भद्र भावना मे सयुक्त होने के कारण सत्पुरुषो के आदर्श को उपस्थापित करते है, वे वास्तविक कल्याण के भाजन हो, यही हमारी कामना है। सेकसरिया-वश के भूषण और सत्पुरुषो के अग्रणी श्री सीतारामजी सौ वर्षो के हो, सौ वर्षो के ही क्यो, उससे भी अधिक आयुष्य को प्राप्त हो।

—— ० ——

भारत के भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री,
सम्प्रति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उप-कुलपति

डॉ० कालूलाल श्रीमाली

अद्वितीय उदाहरण

भाई सीतारामजी से मेरा लगभग ४० वर्षो का परिचय है। राजस्थान का कोई भी कार्यकर्त्ता, जिसकी रुचि शिक्षा एव समाज-सेवा मे रही हो, सीतारामजी से अपरिचित नही रह सकता। जैसी उनकी सरल और सफेद वेष-भूषा है, वैसा ही उनका स्वभाव और हृदय भी है। कलकत्ता के मारवाडी समाज मे धनी लोगो के सम्पर्क मे रहते हुए भी वे कभी सेवा के मार्ग से विचलित नही हुए। जहाँ कही दीन-दुखियो की सहायता का प्रश्न होता है, वहा सीतारामजी अवश्य पहुँच जाते है।

राष्ट्रीय आन्दोलनो मे भी सीतारामजी ने सक्रिय भाग लिया परन्तु अपनी पूर्ण शक्ति उन्होने सदैव खादी, शिक्षा इत्यादि रचनात्मक कामो मे ही लगाई। सच्चे देश-भक्त होते हुए भी कभी उन्होने पद या सम्मान की कोई लालसा नही की।

श्री शिक्षायतन, जो महिलाओ का एक प्रगतिशील महाविद्यालय है, उन्हीके अदम्य उत्साह और परिश्रम का फल है।

भाई सीतारामजी के गुणो की क्या व्याख्या की जाय? उनका जीवन मारवाडी समाज के लिए ही नही, देश के लिये एक अद्वितीय उदाहरण है।

—— o ——

सुपरिचित कवि एव लेखक,
हरिजन सेवक सघ के अध्यक्ष

श्री वियोगी हरि

सदा एक-रस

वात १९२३ या १९२४ की है। आधी शताब्दी बीत गई। उन दिनो करीब एक महीने के लिए मैं कलकत्ता गया था, पहली ही वार। तब, जहाँ तक याद पडता है, मेरे मित्र श्री महावीर प्रसाद पोद्दार राष्ट्रीय दृष्टि को लेकर विद्वद्वर रामदास गौड से रीडरे लिखवा रहे थे। मैंने भी तब उस काम मे थोडा-सा योगदान किया था।

तभी एक दिन पोद्दारजी के साथ एक सज्जन से भेट हुई। गौर वर्ण, दुबला-पतला शरीर, मगर आँखो मे तेज। विनीत और हँसमुख। कुछ-न-कुछ पूछने, जानने और उसे ग्रहण करने की एक महज मनोवृत्ति। अन्तर निश्छल तथा राष्ट्रीय भावना मे पूर्ण। उस व्यक्ति की ओर विना प्रयास के ही औरो की तरह मैं भी स्वत खिच गया। फिर तो वह परिचय मित्रता और बन्धुता मे दिन-ब-दिन परिणत होता गया।

वह आकर्षक व्यक्तित्व है सीताराम सेकसरिया का।

मित्रो ने कहा है कि उस व्यक्ति मे सवधित कुछ लिखू, कुछ सस्मरणो की आडी-सीधी रेखाए खीच दूँ। यह वनेगा नही। स्वभाव कुछ ऐसा बन गया है कि जिसके साथ घनिष्ठता वल्कि एकात्मता हो जाती है, उसकी स्मृतियाँ स्पष्टतया नही उभर पाती हैं। एक प्रकार की अन-कही भावना घेर लेती है।

सीतारामजी से जब कभी कलकत्ता मे मिलना होता है, पाता हूँ कि उनके बाहर और भीतर मे कोई अन्तर नही आया। 'क्षणिकवाद' की वात को नही उठा रहा हूँ, नही तो प्रत्येक वस्तु मे प्रति क्षण अन्तर-ही-अन्तर देखने मे आयेगा। प्रेम का अन्तर भी हर क्षण नया-ही-नया होता जाता है, फिर भी वह एकरस रहता है। ऐसा ही कुछ सीतारामजी मे पाता हूँ मैं।

उनके वाह्य चित्र की इतनी ही कुछ रेखाएँ खीच सकता हूँ कि वे स्वभावत राष्ट्रीय वृत्ति के है, सभी धर्मों के प्रति उनकी भक्ति-भावना है, इसलिए कि अपने स्वय के धर्म के प्रति उनकी निष्ठा है। स्त्री-शिक्षा के द्वारा वे नारी-जागरण के पक्के समर्थक है, सत्साहित्य के उपासक हैं, तुलसीदास के तो परम भक्त है।

गाँधी के अर्थात् सत्य और सदाचार के विपरीत वे जो भी सुनते और देखते है, उससे उनको वेदना होती है, और ऐसा लगता है कि उनके सोये हुए तेजस् को किसी ने धक्का देकर जगा दिया हो। लेकिन, सामने लाचारी।

सीतारामजी कहने और लिखने की कला को भी जानते है। उन्होंने चन्द महापुरुषो के जो रेखा-चित्र खींचे है, वे सहज ही अपनी ओर खींच लेते है।

काल का अपना बही-खाता होता है। फिर भी आशा बलवती है। चाहता हूँ कि जब और जहाँ भी भाई सीतारामजी से मिलना हो, उनकी बन्धुता का आनन्द सदा पाता रहूँ।

—— ० ——

अखिल भारतीय सर्व सेवा सघ के अध्यक्ष,
सुप्रसिद्ध राष्ट्र-कर्मी और समाज-सेवी

श्री सिद्धराज ढड्ढा

स्नेही मित्र

करीव चालीस वर्ष पहले मैं काम के लिये कलकत्ता गया था। जीवन के आठ-दस मूल्यवान वर्ष मैंने वहाँ विताये। उस समय जो कई मधुर और जीवन को आधार देने वाले सवध जुडे, उनमे आदरणीय भाई श्री सीतारामजी सेकसरिया के साथ के सवध का स्थान मेरे लिए वहुत ऊँचा है। ज्यो-ज्यो यह सम्वन्ध वढता गया, त्यो-त्यो मन मे उनके प्रति आदर-भाव भी वढता गया। ऐसा अक्सर कम होता है। उनका स्नेह और मित्रता पा कर मैं कृतज्ञ हूँ।

श्री सीतारामजी मुझ से उम्र मे काफी वडे है, फिर भी उन्होंने अपनी ओर से सदा मित्र जैसा स्नेह दिया। अपनी ओर से मन-ही-मन उनका आदर करता रहा हूँ और उनके गुणो से प्रभावित होता रहा हूँ। उनका मेरा परिचय आज से करीव ४० साल पहले एक ऐसे व्यक्ति के जरिये हुआ जिसके स्वय के साथ का मेरा सपर्क और सवध भी इस जीवन की एक वहुमूल्य कमाई मेरे लिए रही है। अव तो उनकी स्मृति ही शेप रह गई है, लेकिन श्री सरदारसिंहजी महनोत भी ऐसे लोगो मे से थे जिनकी मित्रता पाकर कोई भी धन्य हो सकता है। उन्ही के द्वारा श्री सीतारामजी से मेरा पहला परिचय हुआ। सयोग से यह परिचय कलकत्ता के मेरे जीवन के प्रारभिक दिनो मे ही हो गया था। उसके वाद कई वर्षों मैं कलकत्ता मे रहा और फिर तो श्री भागीरथजी कानोडिया, श्री सीतारामजी सेकसरिया, श्री वसतलालजी मुरारका, श्री रामकुमारजी भुवालका, श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, श्री भवरमलजी सिंघी आदि लोगो का एक ऐसा मित्र-मण्डल कलकत्ता मे वन गया था जिसके कारण मुझे मेरे व्यक्तिगत और सामाजिक दोनो प्रकार के जीवन को समृद्ध वनाने मे काफी मदद मिली, और आज भी मिल रही है। इस मण्डली मे हम लोगो का सवध केवल सार्वजनिक काम तक ही सीमित नही रहा वल्कि परस्पर स्नेह, आदर और मित्रता मे परिणत हुआ जिसके कारण मुझे तो व्यक्तिश वहुत लाभ मिला।

इस प्रकार जिनसे वर्षों तक निकट सवध रहा हो, ऐसे मित्रो के वारे मे कुछ लिखना असमजस मे डालने वाला होता है। स्नेह के कारण, या शिष्टाचार के

कारण कुछ अतिशयोक्ति हो जाने का डर भी रहता है। पर श्री सीतारामजी से जो सपर्क आया, उसके बारे मे जितना तटस्थ हो कर सोचना सभव है, उतना सोचता हूँ तो उनकी सरलता, उनकी प्राजलता, उनकी शिष्टता, उनकी भद्रता, उनके स्नेहल स्वभाव, उनके साहित्य-प्रेम आदि की याद आये बिना नही रहती। मुझ से ज्यादा उनके जीवन और कार्यो के बारे मे जानने वाले और लिखने वाले बहुत लोग है, क्योकि बापू के जमाने से ही इस देश के सार्वजनिक जीवन मे काम करने वाले विविध प्रकार के लोगो के साथ सीतारामजी का बहुत सपर्क आया है, लेकिन मेरे लिए तो सीतारामजी सदा एक आदरणीय और स्नेही मित्र के रूप मे रहे हैं। उनके साथ के सबध को मै अपने जीवन की एक उपलब्धि मानता हूँ।

—— o ——

पत्रकार और लेखक,
महात्मा गाँधी के सुपरिचित सचिव

श्री प्यारेलाल

सफल साधना

सोतारामजी सेकसरिया को मैंने एक साधक के रूप मे देखा है। "स्वस्वे कर्मध्यभिरत· ससिद्धिम् लभते वर" के सूत्र को उन्होंने अपनाया है। उनकी वियासीवी वर्ष-गाँठ के अवसर पर मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी साधना सफल हो।

—— o ——

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ और लेखक

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

विदग्ध मानवता-प्रेमी

स्वर्ण वर्ण, तीखे नाक-नक्श, लबे कान, स्वप्निल नयन, मझोला कद, शान्त अभिराम स्वर, उदार दर्शन, खादी परिधान —सीताराम सेकसरिया।

प्राय पचीस साल पहले मिला था। मिलते ही मन का भरम मिट गया था। भरम था मारवाडी रूपरेखा का—उटुङ्गी धोती, लबा कोट, फेंटा या पगडी, तुदिल काया, गेहुँआ रग, माथे पर तिलक।

सेकसरियाजी को देखा तो बस देखता रह गया। लगा, वे परम्परागत मारवाडी नही, प्रगतिशील-चिन्तन-प्रधान आधुनिक व्यक्ति है। उनकी ओर विशेष खिचा।

वे सिद्ध समाज-सेवी, विदग्ध मानवता-प्रेमी, प्रगल्भ देश-भक्त हैं, यह तो जानता था; इस सबध मे जब-तब समाचार-पत्रो मे पढा भी था, उनकी आप-बीती प्रकट करने वाले लेखो से उनकी मानसिक प्रवृत्तियो का परिचय भी पाया था, पर इन दिशाओ मे क्रियाशील उनका मानस, उनकी कर्मठता के बावजूद, इतना अबघ, इतना क्रिया-आतुर होगा, सो नही जानता था।

जब भाई भँवरमलजी ने सेकसरियाजी के अभिनन्दन के लिए प्रकाशनीय ग्रथ के वास्ते उन पर लेख माँगा, तब इस उपक्रम के लिए मन मे सतोष हुआ। देश मे जब कोई नया आयोजन होता है, तब इस प्रकार के आयोजनो की बाढ आ जाया करती है। अभिनन्दन-ग्रथ भी व्यक्ति-पूजन के लिए बरसाती नालो की तरह इधर अविरल बह निकले हैं। अधिकतर उनके प्रति अनास्था हो गयी है। इसीसे अभिनन्दन-ग्रथो के व्यक्ति-पूजन मे कभी सहायक न हो सका। अगर कभी उनमे लिखा भी तो लिखने का विषय अभिनन्दनीय व्यक्ति से भिन्न सामाजिक अथवा अनुसधनीय चुना। पर जब सेकसरियाजी सबधी ग्रथ मे लिखने के लिए मुझ से अनुरोध किया गया, तब उसके पालन के लिए सहज ही उत्कठा हुई, मन मे धर्म-सकट नही उत्पन्न हुआ। कारण कि मैं सेकसरियाजी से इतना नही, जितना उनके व्यक्तित्व से प्रभावित था। व्यक्ति से व्यक्तित्व अधिक व्यापक होता है। व्यक्ति की रूपरेखा से भिन्न, उसकी मानवता-मानवीयता, मान्यता, सस्कार और समझदारी सब उसमे निहित होते है। उस व्यक्तित्व की याद अनेक बार मुझे विदेशो मे भी आयी। एक बार उनकी स्वच्छ मानवीयता की याद सन् बावन मे चीन मे आयी, जहाँ

भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के साथ शान्ति और निरस्त्रीकरण के विश्व-सम्मेलन मे शामिल होने गया हुआ था। तव मैंने अनेक भारतीय मित्रो, साहित्यकारो, विचारको को पीकिंग, कान्तोन, शघाई आदि से पत्र लिखे थे। मुझे सेकसरियाजी के शात स्वच्छ व्यक्तित्व की जव याद आयी, तव मैं लेखनी न रोक सका। उन्हें लवा पत्र लिखा जो मेरी पुस्तक 'कलकत्ता से पीकिंग' मे प्रकाशित हुआ। चीन जाने से पहले कई दिन उनके साथ कलकत्ता मे रहा था। तव तक चीन के प्रति हम सव की घनी भ्रातृ-भावना थी, जिसका उस देश के नये नेताओ ने अपनी दुर्बुद्धि द्वारा नाश कर दिया। चीनी प्रवास से लौटने पर वहाँ के नवनिर्माण की गतिविधि वताने के लिए सेकसरियाजी ने मेरे अनेक व्याख्यान कराये।

सेकसरियाजी से मेरे अपनापे का एक कारण और भी था। यह कारण निश्चय ही वौद्धिक नही कहा जा सकता, क्योकि उसमे तर्क से अधिक निजता की प्रधानता थी, वैयक्तिक रुचि की। ससार मे जिन जीवित व्यक्तियो ने मुझे अपनी ओर खीचा है, उनमे से एक पाडिचेरी के अरविंद-आश्रम की 'माँ' के पति पाल रिशार थे। यद्यपि पाश्चात्य और प्राच्य दोनो दर्शनो के अप्रतिम आचार्य होने से साधारण महान् व्यक्तियो से, विशेषकर अपनी सदाशयता के कारण, वे भिन्न थे, उनके राग-विराग, निश्छल स्वभाव, कायिक रूप और सुरुचि की याद मुझे सेकसरियाजी को देखते ही आ जाया करती है। मुझे पाल रिशार के साथ न्यूयार्क के पास नायक मे कुछ काल रहने का सुअवसर मिला था। हम दोनो ने वहाँ 'कल्चर आव इण्डिया लीग' की स्थापना की थी। मैंने उनसे एक वार कहा भी था कि अगर आपकी नाक पर चश्मा न होता, ठुड्डी पर छोटी सी फ्रेंच दाढी न होती, तो कुछ अजव नही जो आपको देख कर मुझे एक भारतीय मित्र का भ्रम हो आता।

पहली ही मुलाकात मे मैंने जाना कि सेकसरियाजी को पढने का व्यसन भी है। मेरे कुछ लेख उन्होने पढे थे, कुछ पुस्तके भी पढी थी, उन्हे सराहा था। पहले लगा, औपचारिक साधुवाद कर रहे है। पर जव घण्टो सविस्तर वाते हुई, लेखो-पुस्तको की चर्चा हुई तो जाना कि वे पढते भी हैं। मेरी समझ मे पढने वाले चार प्रकार के है—एक तो वे जो मात्र शीर्षक पढ कर पुस्तक पर अपनी धारणा वना लेते है, दूसरे वे जो पुस्तक न पढ कर उस पर छपी आलोचना पढते है, तीसरे वे जो पुस्तक के पन्ने उलट लेते और स्थान-स्थान पर उसे पढ लेते है, चौथे वे जो उसे आद्यन्त पढते है। सेकसरियाजी पुस्तकें, जो उन्हे भा जाती हैं, आद्यन्त पढते हैं।

उनके कुछ लेख पढे थे पर यह धारणा न थी कि वे व्यवस्थित रूप से लिख पाते होगे। राजनीतिक कार्यक्रमो से अभिन्न रूप से वँधे होने के कारण उनके प्रति यह धारणा सहज थी। पर इधर जो उनकी डायरी के दो खण्ड पढे तो प्रमाणित हो गया कि लेखन कार्य वे नित्य नियमित रूप से करते थे। दोनो खण्डो के छ-सात सौ पृष्ठ मैं दो दिनो मे पढ गया था, उनकी रोचकता ऐसी सहज थी। देश के राजनीतिक सघर्ष-काल का, कम-से-कम कलकत्ता के आदोलन का,

एक-एक दिन उनकी डायरी मे अपने प्रकृत रूप मे ग्रथ के पन्नो की तरह खुल पडा है। साहित्यिक सर्जना जहाँ एक मात्रा मे साधना से अधिक बुद्धिलाघव की अपेक्षा करती है, डायरी लेखक वहाँ अधिकतर दैनंदिन घटनाओ को कैमरे की सच्चाई से व्यक्त करता है। सेकसरियाजी की डायरी समसामयिक घटनाओ को सहज रूप से प्रतिबिंबित करती है। उससे उनके जीवन के वे प्रकरण खुल पडे हैं जिनके सदर्भ मे उन्होंने नारी-उन्नयन, सामाजिक सुधार, राजनीतिक स्वातत्र्य के लिए सघर्ष किये थे। उनके मानस की साधुता और चरित की चारुता उसमे सजी पडी है।

सेकसरियाजी के पढते-लिखते रहने का एक विशेष कारण है। टैगोर और गाँधी से लेकर मुझ जैसे ग्रथ-कीटो तक से मिलते रहने से उनका ऐसा होना अनिवार्य भी था। पहली मुलाकात मे ही मालूम हो गया था कि उनके मित्रो और मिलने वालो मे अन्य राजनीतिज्ञो के अतिरिक्त जयप्रकाश नारायण और राममनोहर लोहिया भी थे। उनसे उनका सबध मेरी मुलाकात से बहुत पहले हो चुका था। हजारीप्रसाद द्विवेदी से उनका स्नेह शाति-निकेतन मे अध्यापनकाल से ही हो चुका था। इस स्थिति मे व्यक्ति मे 'बहुश्रुत' के गुणो का घर कर लेना सहज होता है। सेकसरियाजी की 'बहुश्रुति', उनके अध्ययन से अलग, सन्तो की दिशा मे है। मैंने सदा सन्तो की साधना-प्रक्रिया को दार्शनिको के बुद्धिवाद के ऊपर रखा है। दार्शनिक सत्य की स्थापना की 'प्रतिज्ञा' कर तर्क-वितर्क द्वारा दर्शन को दर्शन से काट कर असत्य की स्थापना करता है, सन्त जितना जानता है सत्य जानता है, अनुभव के माध्यम से जानता है, तर्कणा के बौद्धिक घटाटोप और तन्तुवायिक ऊहापोह से ऊपर उठ कर सेकसरियाजी की बहुश्रुति सन्त की है।

ऐसा सदाशय व्यक्ति अपनी सेवा-वृत्ति मे तत्पर, सामाजिक कल्याण मे समर्पित, सौजन्य मे जागरूक, सुरुचि मे सपन्न चिरकाल तक सशक्त रहे, सहृदय स्वाभाविक ही इसकी कामना करेगा।

—— ० ——

महान् कलाविद् और लेखक,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे कला-भवन के सचालक

श्री रायकृष्णदास

समर्पित व्यक्तित्व

भाई सीताराम सरीखा अग्रज मुझे प्राप्त हुआ, इसे मैं अपने जीवन की एक महान् उपलब्धि मानता हूँ।

उनका व्यक्तित्व सारे समाज को अर्पित है, उसमे निजी कुछ भी नहीं।

ऐसे पवित्र जीवन को हमारा मनसा, वाचा, कर्मणा सामूहिक अभिनन्दन है।

सीताराम सेकसरियाजी,
हैं मेरे प्यारे भाई।
मैंने विश्व-वद्य बापू की,
एक झलक उनमे पाई ।।

—— ० ——

हिन्दी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्

डा० बलदेवप्रसाद मिश्र

अनुकरणीय सेवाभाव

पद्मभूषण श्री सीतारामजी सेकसरिया को मैं बीसियो वर्षो से जानता हूँ। उनका सेवा-भाव बहुत अनुकरणीय है। जब भी मुझे उनके दर्शन हुए, मैंने उन्हें प्रसन्नचित्त और कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक पाया। ऐसा ही जीवन धन्य होता है जो नि स्वार्थ वृत्ति से परोपकार-परायण हो। वे न केवल कलकत्ता महानगरी के गौरव हैं, बल्कि अखिल भारतीय जन-समाज के लिए भी एक विशेष प्रकाश-स्तभ और प्रेरणा-स्रोत हैं। उनके सद्गुणो की संख्या इतनी अधिक है कि किस-किस का उल्लेख किया जाय। वे आज अपने जीवन के बियासीवें वर्ष मे प्रवेश कर रहे है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि सेवा-भाव की सक्रियता के साथ वे न केवल शतायुप हो किन्तु उसमे सवाया लगाते हुए कम-से-कम एक सौ पचीस वर्ष तक हम लोगो को अपने सशरीरी सान्निध्य का लाभ दें। "भूयश्च शरद शतात्"

— ० —

बिहार के लोक-प्रिय नेता
लेखक और राष्ट्रकर्मी
बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी के अध्यक्ष

डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु

वंदनीय

श्री सीतारामजी सेकसरिया ने आरम्भ से ही जन-जीवन के साथ संबंध रखने-वाला नेतृत्व किया है। उनकी हिन्दी भाषा की सेवाएं भी बहुत प्रशंसनीय रही हैं। राष्ट्र के विविध अंगों में उनकी अनेक सेवाएं आदर के साथ गिनाई जाती हैं। ऐसे राष्ट्र-सेवक का जीवन जितना दीर्घायु हो, उतना ही राष्ट्र के लिए हितकर है। मैं वंदनीय सेकसरियाजी के दीर्घ जीवन की शुभकामना करता हूँ।

— ० —
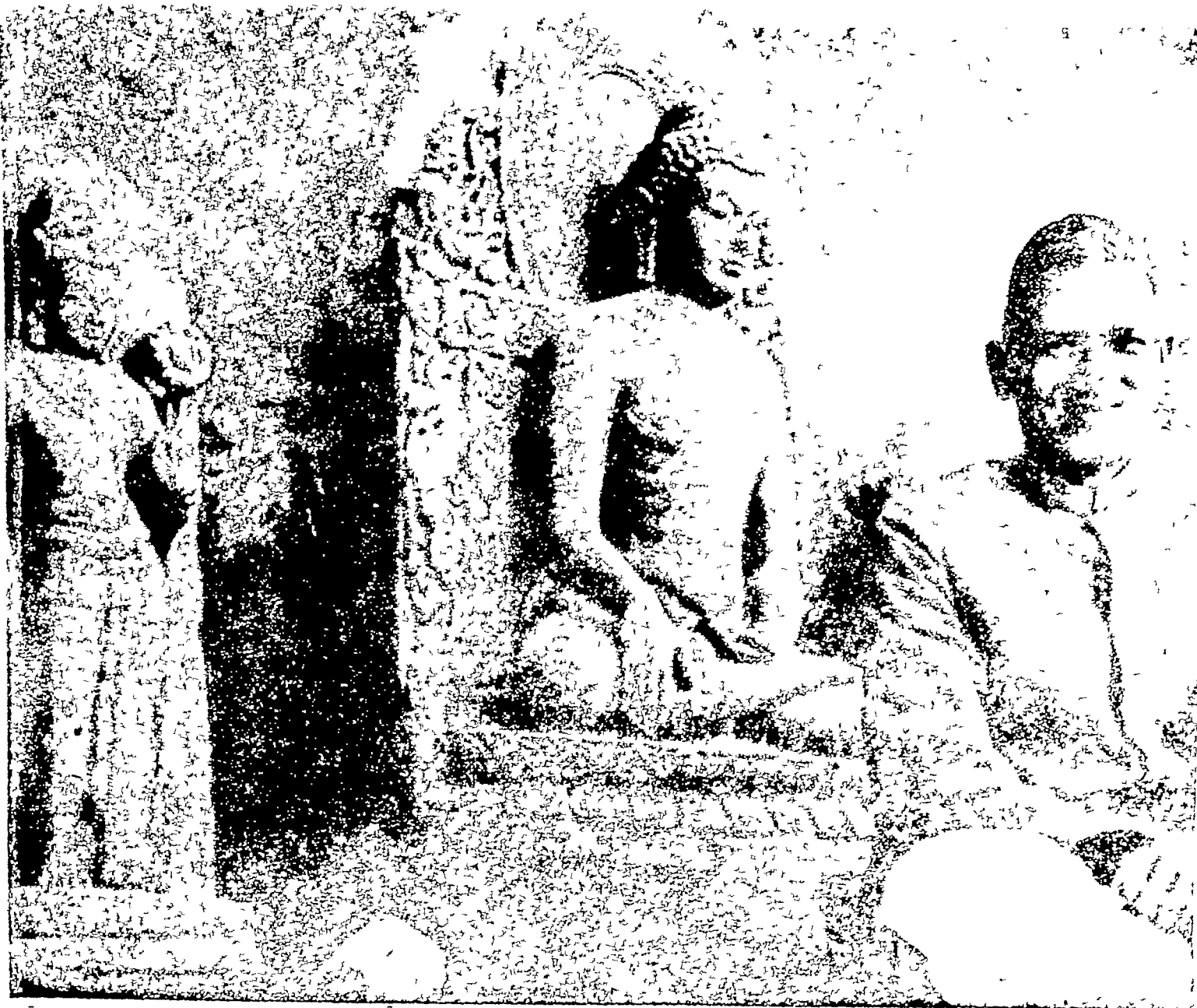
भगवान् बुद्ध की मूर्ति के चिर प्रेरणाप्रद सान्निध्य में श्री सीतारामजी

स्व० महाकवि निराला, श्रीमती महादेवी वर्मा तथा पश्चिम बंगाल के तत्कालीन वित्तमन्त्री स्व० श्री शैलेन्द्र मुखर्जी के सान्निध्य में भाषण देते हुए श्री सीतारामजी।
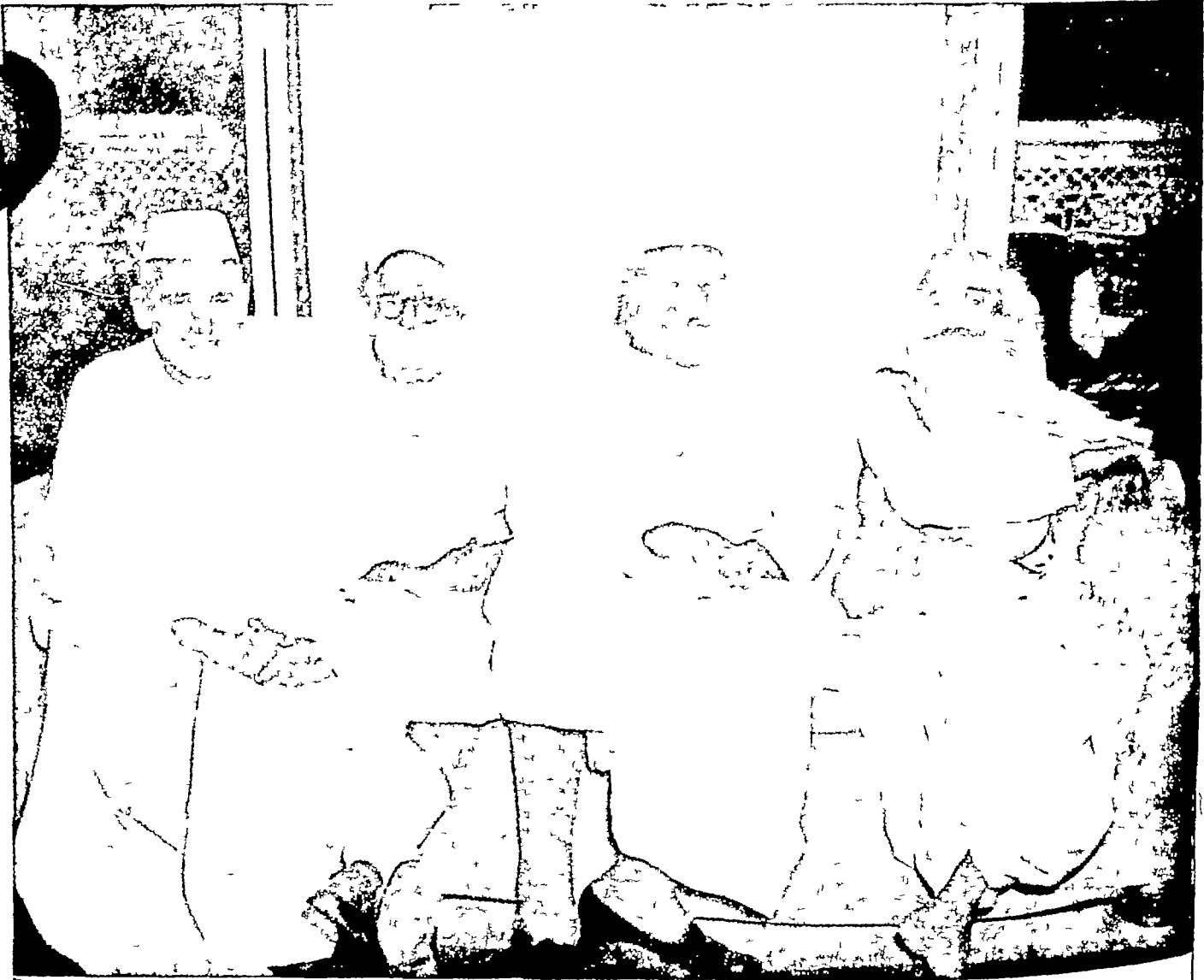
श्री सीताराम सेकसरिया, स्व० ओंकारमल सराफ, स्व० मूलचन्द्र अग्रवाल और स्व० पुरुषोत्तम दास टंडन

स्वाधीनता-संग्राम के सेनानी,
बिहार के भूतपूर्व मुख्य मंत्री

श्री महामाया प्रसाद सिह

तपस्वी !

अपने परम प्रिय पुराने मित्र श्री सीतारामजी सेकसरिया को ८२ वर्ष की आयु पूरी करने पर मैं हृदय से वधाई देता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यह वयोवृद्ध तपस्वी, समाज-सेवा एव गाधी-विचारधारा का पोषक नेता अधिक से अधिक दिनो तक जीवित रह कर हमे अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ रहने के लिये अनुप्राणित करता रहे।

मै इस शुभ अवसर पर उनकी मगल-कामना करता हूँ।

—— ० ——

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रदत्त
लाख रुपये का पुरस्कार प्राप्त-कर्ता
हिन्दी के महान् कवि

श्री रामधारीसिंह 'दिनकर'

श्रद्धेय !

कहते है, मनुष्य की आकृति मे, विशेषत उसकी आँखो मे, उसके हृदय का प्रतिबिम्ब होता है। और जिसके हृदय मे कुछ है ही नही, उसकी आँखे भी शून्य होगी। श्रद्धेय श्री सीतारामजी सेकसरिया की आँखे शून्य नही है। उन्होंने जीवन भर समाज-सेवा कर के जो पुण्य सचित किया है, वह उनकी आँखो मे झलक मारता है। उनकी आकृति से सादगी टपकती है, अहिंसा झलकती है, चींटी के भी न दब जाने का विनम्र भाव प्रकट होता है। वे अत्यन्त विशिष्ट अर्थ मे सुसस्कृत और सभ्य है। आलू तभी तक कडा है, जब तक वह पका नही है। पक जाने पर आलू नरम हो जाता है। सीतारामजी भी परिपक्व पुरुष है। अतएव विनम्रता उनका सब मे उजागर गुण हो गया है।

नमक-सत्याग्रह मे भाग लेने के लिए उन्होने व्यापार छोडा और जब छोडा तो छोड ही दिया। सन् १९३० ई० से उनका सारा जीवन देश और समाज के काम मे लगा रहा है। गाधीजी की आज्ञा से उन्होंने खादी का काम अपने हाथ मे लिया था और उसे उन्होने बडी निष्ठा के साथ निभाया। फिर उनका ध्यान स्त्री-शिक्षा की ओर गया और उसे भी उन्होने पूरी तन्मयता के साथ किया।

हमारे समय मे भारत मे महापुरुष अनेक हुए, किन्तु महात्मा गाधी और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर हमारे महापुरुषो मे सब से बडे थे। सीतारामजी का सौभाग्य रहा कि वे इन दोनो महापुरुषो के निकट सम्पर्क मे रहे और उनके विचारो को सामने रख कर अपने जीवन का उन्होंने निर्माण किया। श्री सीतारामजी का जीवन स्पृहणीय है, किन्तु ऐसा जीवन वही बिता सकता है, जो क्षण-क्षण सचेत रहे, आदर्श की सेवा के लिए सुखो का त्याग करे और हर दम अपने-आप पर पहरा देता रहे।

सीतारामजी की जो डायरियाँ छपी है, उनसे सीतारामजी के जीवन की बहुत-सी बाते मालूम होती है। उससे देश और समाज की तत्कालीन स्थिति की भी झलक मिलती है। उदाहरणार्थ, डायरी से यह प्रमाण मिलता है कि राजेन्द्रबाबू ने ब्रह्मपुर मे बगला मे भाषण दिया था और यह भी कि श्री बृजमोहनजी बिडला ने

अपनी सहधर्मिणी को परदा-निवारक सभा का सभा-नेतृत्व करने नही दिया क्योकि यह बात उनकी माताजी को पसन्द नही थी।

इसी प्रकार यह भी कि सन् १९३१ मे जब पडित मोतीलालजी नेहरू वीमार हो गये और उन्हे ले कर माता स्वरूपरानी कलकत्ता गई हुई थी, उस समय जवाहरलाल तो जेल मे थे ही, श्रीमती कमला नेहरू भी जेल मे चली गई थी। ऐसे मे कलकत्ता मे भापण देते हुए माता स्वरूपरानी ने कहा—"मै तो वीमार के साथ आई हूँ, नही तो देखती कि विलायती कपडा कैसे बिकता है?" कमला नेहरू के लिए व्याकुल होते हुए उन्होने कहा—"उसका राम वन मे है, वह सीता राम का साथ देने गई है।"

ये वडे मूल्यवान शब्द है।

इसी प्रकार सन् १९४१ मे ७ अगस्त की डायरी गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के पुण्य-स्मरण के कारण वहुत ही महार्ध हो उठी है।

सन् १९४१ मे ही सीतारामजी ने मोटर बेच दी थी और दूसरी अभी नही आई थी। मोटर के अभाव मे उन्हे जो तकलीफ हुई, उससे सीतारामजी मन-ही-मन ग्लानि का अनुभव करने लगे और इसे उन्होने कार्यकर्त्ता की कमजोरी समझा।

इसी प्रकार एक दिन अपनी डायरी मे उन्होने लिखा है—"अपने मे, मालूम होता है, अहम् आ गया है। एक प्रकार का अभिमान आ गया है। महत्त्वाकाक्षा तो कैसे कही जाय, पर अपने को मान की, अधिकार की भूख हो गई है, ऐसा तो लगता है। और यह मालूम होता है कि प्रतिक्रियावादिता भी आ गई है। ये सब बाते ऐसी है कि मनुष्य का पतन कर देती हैं।"

यह गाधीजी का उपदेश था कि कार्यकर्त्ता को घडी-घडी अपना परीक्षण आप करते रहना चाहिए। सीतारामजी इसी उपदेश का पालन करते-करते महान् हो गये।

सार्वजनिक काम के लिए चन्दा माँगने वाले लोग कलकत्ता जा कर सीतारामजी का समर्थन अवश्य प्राप्त करते है। दो-एक साहित्यिको की मदद के लिए जब मुझे सीतारामजी की सहायता की आवश्यकता हुई, उन्होने यह सहायता नि सकोच भाव से दी। सीतारामजी का सरल स्वभाव, निष्कपट और विनम्र व्यवहार श्रद्धा उपजाने वाला है। उनसे मिल कर चित्त प्रसन्न होता है और मनुष्य की करुणा मे विश्वास बढता है। विधाता आदमी तो ढेर के ढेर गढता ही रहता है, किन्तु सीतारामजी के समान मनुष्य का निर्माण वह कभी-कदास ही करता है। जव विधाता की अपनी करुणा उभार पर आई होती है, तब ही।

—— ० ——

हिन्दी-साहित्य के महारथी,
पद्मभूषण

डा० रामकुमार वर्मा

संस्कृति-पद्म के भूषण !

श्री सीतारामजी सेकसरिया उन महान् पुरुषो मे है जिनका कृतित्व देश के इतिहास मे सदैव ही स्मरणीय रहेगा। उन्होने वीतरागी जीवन के तपोवन मे अपने ऐश्वर्य का जैसा उत्सर्ग किया है, वैसा अन्यत्र देखने मे नही आता। शिक्षा के उच्चतम आदर्शो को सामने रखते हुए उन्होने जिस श्री शिक्षायतन की स्थापना की है, उसमे भारतीय सस्कृति का स्वरूप सहज ही साकार हो उठा है। वास्तव मे वे सस्कृति रूपी पद्म के भूषण है।

महिलाओ की प्रगति का ध्यान उन्हें निरन्तर रहा है। उनका विश्वास है कि जब महिलाओ मे वास्तविक जागरण हो, तब ही देश की धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति सच्चे अर्थो मे सभव हो सकती है। इसके लिए श्री सेकसरियाजी निरन्तर प्रगतिशील रहे है। उन्होने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से महिला सेकसरिया पारितोषिक की योजना पिछले अनेक वर्षों से कर रखी है। साहित्यिक निष्ठा उनमे इतनी अधिक है कि कलकत्ता मे होने वाले भारतीय हिन्दी परिषद् के वार्षिक अधिवेशन मे उन्होने हिन्दी साहित्यकारो का जो स्वागत और अभिनन्दन किया था, वह अभूतपूर्व था। व्यावसायिक अर्थ-लाभ न होते हुए उन्होने भारतीय हिन्दी परिषद् के भवन के लिए बिना किसी आग्रह के एक हजार रुपये का दान दे दिया।

स्वभाव से सन्त, स्नेह से मधुर, और व्यवहार से निष्कपट श्री सेकसरियाजी महामानव है। वे इलाहाबाद आये। उन्होने मेरे परिवार मे इतना ममत्व बाटा कि मेरे घर ही मे जैसे भागीरथी की एक धारा प्रवाहित हो गयी। उन्होने हम सब को कलकत्ता आने का इतना स्नेहपूर्ण निमत्रण दिया कि लगा कि उनका एक परिवार कलकत्ता मे है और दूसरा इलाहाबाद मे।

वे शतायु हो, यही हम सब की कामना है।

—— o ——

बंगला के सुप्रसिद्ध कथाकार

श्री मनोज बसु

प्राणोच्छल तरुण !

राजस्थान और बगाल—कितने जन-पद, पहाड, नदी और अरण्य दोनो के बीच मे। फिर भी हम कितने निकट है एक दूसरे के। रामायण और महाभारत हमारे दो महाकाव्य है और तीसरा महाकाव्य है "राजस्थान"। इस गौरव-गाथा के रचयिता है एक अग्रेज। और इस गौरवपूर्ण गाथा को बगाल ने आत्मसात करके सम्पूर्ण भारत मे विकीर्ण कर दिया। बकिमचन्द्र, रमेशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ, द्विजेन्द्रलाल आदि श्रेष्ठ साहित्यकारो ने उपन्यास, काव्य और नाटक लिख कर राजपूतो की महिमा को घर-घर पहुँचा दिया। राजस्थान के ऐतिहासिक पात्र प्रत्येक बगबासी के आत्मीय बन गये। दूर दुर्गम गाव मे मेरा बचपन व्यतीत हुआ है। यात्रा और पालागान के माध्यम से राजपूत वीर मेरे दूरस्थ गाँव तक पहुँच गये। मरुभूमि के सपूत राणा प्रताप और मरुलक्ष्मी पद्मिनी मानो छाया-स्निग्ध बगाल के किसी गाँव के ही सर्व-व्यापी पुत्र-पुत्री हो। बगाल की माताओ के अश्रु नित्य उनके वीरत्व को अभिषेक करते थे।

वीरत्व की यह परम्परा अक्षुण्ण है। राजपूत वीरत्व आज भी म्लान नही हुआ। श्री सीतारामजी सेकसरिया राजस्थान के सपूत है—मेरी आँखो के समक्ष वे एक दुर्दमनीय वीर के रूप मे विद्यमान है। जीवन मे कभी उन्होने असि धारण नही की, एक बिन्दु भी रक्त नही बहाया। सदैव हसमुख। सब प्राणियो के प्रति असीम ममता किन्तु अजित सग्रामी है वे। पचास वर्षो से अधिक हो गये है उन्हे नाना क्षेत्रो मे युद्ध करते हुए—अविचार, असत्य और पाप के विरुद्ध। अनेक अन्यायो के विरुद्ध सघर्ष करके अगणित विजय-माल्य उन्होने एकत्रित किये।

भयरहित है वे। विदेशियो की भृकुटि की अवहेलना की उन्होने। 'भारत छोडो' आन्दोलन के अन्यतम नेता के रूप मे असहयोग आन्दोलन करके कारागार गये वे। सामाजिक अन्याय के भारी पत्थर को प्राणो की बाजी लगा कर दूर करने का प्रयास किया अपने यौवन काल से ही उन्होने। इसीलिए समाज के कट्टर नेताओ के साथ उन्हे सुदीर्घ युद्ध करना पडा। बाल-विवाह का विलोप, विधवा-विवाह का प्रसार, पर्दा-प्रथा का निराकरण आदि जितने प्रगतिवादी प्रयास है, सब के साथ उनकी चिरकाल से एकात्मता रही है। नारियो की पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये उन्होने जो अनवरत साधना की है, उसी के कारण भारतीय समाज-सेवियो के मध्य वे शीर्ष

स्थानीय हैं। महात्मा गाधी के आदर्शों के वे अनुसरण-कर्त्ता है। अस्पृश्यता का वर्जन एव साम्प्रदायिक एकता की स्थापना—इन दोनो कार्यो मे उन्होंने अपने प्राणो को न्योछावर कर दिया।

विद्यालय एव महाविद्यालय मे पढने का स्वय अवसर प्राप्त नही किया किन्तु उनका सर्वोत्तम कीर्ति-स्तम्भ है श्री शिक्षायतन विद्यालय एव महाविद्यालय। सन् १९२० मे मारवाडी बालिका विद्यालय की स्थापना की। इस विद्यालय के रूप मे जो बीज-वपन हुआ था, उसी का पल्लवन बृहद वृक्षाकार रूप मे श्री शिक्षायतन है जो आज सम्पूर्ण भारत मे अन्यतम शिक्षा-प्रतिष्ठान है। एक दिन उन्ही से मुझे श्री शिक्षायतन का परिचय प्राप्त करने का सुअवसर मिला। ऊपर-नीचे भागते-दौडते वे मुझे अपनी सस्था दिखा रहे थे और उत्साहपूर्ण शब्दो मे विवरण दे रहे थे, और भविष्य की योजना पर भी प्रकाश डाल रहे थे। कौन कहेगा कि उनकी आयु अस्सी वर्ष पार कर चुकी है। लगता था कि उनके सिर के श्वेत केश कृत्रिम है। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि मै एक प्राणोच्छल तरुण से बात कर रहा हूँ—इक्यासी वर्ष का एक तरुण। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि उनका यह तारुण्य चिरकाल तक वर्तमान रहे।

उनकी शिक्षा किसी विद्यालय मे नही हुई, अपने अथक परिश्रम से ही उन्होने दुर्लभ पाण्डित्य प्राप्त किया। उनका लिखा हुआ पण्डितो के लिये ईर्षा की चीज हैं। वे सुवक्ता और सुलेखक भी है। वे अपने ४५ वर्षो की दिनलिपि नियमित रूप मे लिखते आ रहे है। अभी हाल ही मे उसके दो खण्ड प्रकाशित हुए हैं। हमारे जातीय विवर्त्तन का इतिहास उसमे विद्यमान है। मुझे लगता है कि श्री सीतारामजी सेकसरिया की पुस्तको का विभिन्न भारतीय भाषाओ मे, विशेषकर बगला मे, अनुवाद होना चाहिये, क्योकि कलकत्ता उनकी कर्मभूमि है और हम बगभाषी उन्हे नितान्त अपना समझते है।

—— ० ——

विख्यात सगीतज्ञ,
आकाशवाणी (कलकत्ता केन्द्र) के भूतपूर्व संगीत-निर्देशक

श्री ज्ञानप्रकाश घोष

सांस्कृतिक साधक

पद्मभूषण श्री सीतारामजी सेकसरिया की जन्म-भूमि राजस्थान होते हुए भी कर्म-भूमि मुख्यत कलकत्ता ही रही है। कलकत्ता मे उनके जैसे महान् व्यक्ति के साथ निकट सम्बन्ध होने का मुझे गर्व है। जो आदमी बडे होते है, जिनकी ख्याति दुनिया भर मे फैलती है, उनके काम को लोग देखते है, उसी की नापजोख करके उनको सम्मान देते हैं, श्रद्धा अर्पण करते है। परन्तु ऐसे दृष्टान्त पृथ्वी मे कम ही होते है, जहा विख्यात व्यक्तियो ने अपने जीवन मे सम्मान तो प्राप्त किया, किन्तु कभी पल भर के लिए भी सत्य, न्याय और नेकी के पथ से थोड़े से भी डिगे नही, क्योकि ख्याति, सत्ता, धन आदि ही ऐसी वस्तुए हैं जिनकी प्राप्ति के लिये नैतिकता का थोडा-बहुत ह्रास हो जाने देने मे आमतौर पर लोग झिझकते नही।

श्री सीतारामजी के अभिनन्दन मे मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि उन्होने अपने दीर्घ जीवन में देश और समाज की विभिन्न प्रकार की सेवा मे समर्पित रहते हुए भी लोक-कल्याण के लक्ष्य को छोड कर कभी व्यक्तिगत स्वार्थ की ओर नजर नही डाली।

स्वतत्रता-सग्राम, हिन्दी-प्रचार, शिक्षा-प्रसार, सामाजिक सुधार इत्यादि बहुतेरे क्षेत्रो मे उन्होने अपनी साधना लगा दी। बिना किसी प्रकार के सम्मान या प्रसिद्धि की भावना को मन मे रखते हुए उन्होने सदैव सत्य अनुभति और सत्य-प्रेरणा के आदर्श को ही कायम रखा। सम्मान या सम्पदा का मोह उन्हे कभी नही रहा। आत्म-सतोष ही उनका प्राण है, यह नि सन्देह कहा जा सकता है।

सगीत के विभिन्न आयोजनो मे मुझे श्री सेकसरियाजी की दर्शन-प्राप्ति का सौभाग्य मिला। भारतीय सगीत कला के प्रति उनकी रुचि और लगन देख कर बडा आश्चर्य लगता है क्योकि मेरा यह अनुभव है कि हमारे देश के नेतृस्थानीय व्यक्तियो मे भारतीय सास्कृतिक सगीत के प्रति वास्तविक रुचि बहुत कम है। श्री सेकसरियाजी इस मामले मे एक भाग्यशाली अपवाद है।

ऐसे सास्कृतिक साधक के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करने मे मैं अपना ही गौरव मानता हूँ।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ और स्थापत्य-विद्
प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, (बम्बई) के निर्देशक

डा० मोतीचद्र

जीवन-दर्शी !

श्री सीतारामजी उन व्यक्तियो मे है जिन्हे अपने काम मे इतनी लगन है कि इस बात की सुधि ही नही रहती कि दूसरे उनके बारे मे क्या सोचते अथवा समझते है। उनकी दृष्टि मे सेवा का रूप एकागी नही है। जीवन, शिक्षा और समाज के हर क्षेत्र मे उनसे जो कुछ भी हो सका, उन्होने किया है। समाज-सेवा के क्षेत्र मे, विद्या के क्षेत्र मे और कला के क्षेत्र मे उन्होने आज तक जो सेवा-साधना की है, उससे जीवन-दर्शन का एक अभूतपूर्व रूप उन्होने हमारे सामने उपस्थित किया है।

अनेक वर्षो से सेवा का जो मार्ग उन्होने दिखाया है, उस पर आगे बढने वाले युवक मिलेगे और सेवा का जो समष्टि-रूप उन्होने हमारे सामने उपस्थित किया है, वही नवयुवको का ध्येय बनेगा। भगवान् से यही प्रार्थना है कि वह उन्हे शतायु करे, जिससे वे अपने लक्ष्यो तक और आगे बढ सके और समाज-सेवा का उनका मार्ग अधिकाधिक प्रशस्त हो।

'शुभास्ते पथान सन्तु'

—— o ——

सुप्रसिद्ध महिला-नेत्री
अखिल भारतवर्षीय महिला सम्मेलन की भूतपूर्व अध्यक्षा,
भूतपूर्व संसद-सदस्या

श्रीमती रेणुका राय

विशिष्ट रचनात्मक कार्यकर्त्ता !

मुझे वह दिन याद आ रहा है, जब मैं कलकत्ता मे गाँधीजी से मिलने के लिए बिडला पार्क गई थी। वहाँ दो-तीन खादीधारी सज्जन गाँधीजी से बातचीत कर रहे थे। उनकी बातचीत का विषय था कि मारवाडी समाज की स्त्रियाँ भी आगे आये और दूसरे समाजो की बहनो की तरह ही समाज मे अपना उचित स्थान प्राप्त करे। बाद मे मालूम हुआ कि इन सज्जनो मे एक थे स्वर्गीय बसंत-लालजी मुरारका, जिनको मैं हमेशा समाज-सुधार का स्तम्भ मानती थी और दूसरे थे श्री सीतारामजी सेकसरिया। बातचीत के दौरान गाँधीजी ने विनोद करते हुए मुझ से कहा—"हिन्दू कानून-सुधार की दिशा मे ये लोग तुम्हारे अच्छे सहायक होगे क्योकि महिलाओ की प्रगति के ये बहुत जोरदार समर्थक है।" इसके पहले मैंने सीतारामजी के बारे मे इतना ही सुन रखा था कि वे सत्याग्रह-आदोलन मे गाँधीजी के अनुगामी थे, पर यह बात आज ही मालूम हुई कि सामाजिक और शैक्षणिक सुधारो के भी वे कट्टर समर्थक थे। उसके बाद तो धीरे-धीरे उनके साथ सबध बढते ही गये और हमेशा ही मैं उनके साहस और दृढ निश्चय से अत्यन्त प्रभावित हुई।

दीर्घ काल से वे अत्यन्त निष्ठा और एकाग्रता के साथ समाज-सेवा और समाज-सुधार का कार्य प्राणपन से करते आ रहे हैं। कोई बाधा, कोई कठिनाई उनको इस मार्ग से विचलित नही कर सकी। स्वतत्रता की लडाई के दौरान अहिंसक असहयोग के आन्दोलन मे भी उन्होने काफी त्याग और बलिदान किया है। वे हमारे प्रदेश के बडे विशिष्ट रचनात्मक कार्यकर्त्ता हैं। सामाजिक रूढियो के विरुद्ध किये गये सघर्ष मे भी उनका बहुत मूल्यवान अवदान है। खादी के प्रचार और हिन्दी के उन्नयन के लिये भी उनकी सेवाये सुविदित है।

अपने समाज मे स्त्रियो की स्वतत्रता के लिये उन्होने पर्दा-प्रथा के विरुद्ध और विधवा-विवाह के पक्ष मे जो आन्दोलन किया और सफलता प्राप्त की, उसके लिये उस समाज की स्त्रियाँ उनके प्रति चिर कृतज्ञ रहेगी। बाल-विवाह के निषेध और

दूसरी सामाजिक कुप्रथाओ के वधन काटने के लिये उन्होने निरन्तर सघर्ष किया। परन्तु उनका सबसे बडा अवदान स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे है। इस क्षेत्र मे श्री शिक्षायतन विद्यालय और महाविद्यालय उनके अवदानो के शिखर है। इस विशाल और महत्वपूर्ण सस्था को मैंने स्थापना-काल से ही देखा है और उसकी निरन्तर प्रगति की मै पर्यवेक्षिका रही हूँ। पीढी-दर-पीढी हमारी लडकिया इस सस्था के द्वारा शिक्षित-प्रशिक्षित होती रही है। यहा सभी समाजो और जातियो की लड़किया एक साथ पढती है और उनमे से कुछेक छात्रावास मे रहती भी है। इसमे सीतारामजी की राष्ट्रीय एकता की भावना भी दिखलाई पडती है। कुछ वर्ष पहले उन्होने मुझे स्वाधीनता-दिवस के अवसर पर इस सस्था मे झण्डोत्तोलन करने के लिए बुलाया था। उस समय उपस्थित छात्राओ को और अत्यन्त सुखद और स्फूर्तिदायक वहाँ के वातावरण को देख कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई। उस अवसर पर मुझे गाँधीजी का स्मरण हो आया। इस प्रकार की सस्थाओ को देखने के लिए यदि वे बचे होते तो उन्हें कितना सतोष होता, सुख मिलता ?

आज चारो तरफ हमारे सामने चुनौतिया है, पर सब से बडा सकट तो यह है कि हम जो कहते और बोलते है, उसके अनुसार जीवन मे व्यवहार नही करते। ऐसी स्थिति मे श्री सीतारामजी जैसे व्यक्तियो को अपने बीच मे कार्य करते देख कर कितना सुख मिलता है ?

आजकल हम लोग युवा वर्ग के बारे मे बहुत-सी बाते करते है और यह आशा करते है कि वे वर्तमान तमाम बुराइयो से समाज को मुक्त करेंगे, परन्तु हमे यह याद रखना चाहिये कि उम्र ही सब कुछ नही है, वास्तव मे यदि हमारा मन और मस्तिष्क भविष्य को देख और समझ सकने मे समर्थ है और यदि हम युग की आवश्यकताओ के अनुसार अपने-आपको बना और चला सकते हैं तो किसी भी आयु मे हम युवा ही है। श्री सीतारामजी ८१ वर्ष के हो गये किन्तु आज तो बहुत सारे १८ वर्षीय युवक भी मिल जायेंगे जिनके पास इतनी तेजस्वी दृष्टि और कार्य-शक्ति नही है। श्री सीतारामजी आज भी वृद्धावस्था के बावजूद बहुत कुछ सेवा कर रहे है। उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है और मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि उनको स्वस्थ और सुदीर्घ जीवन प्रदान करे ताकि वे राष्ट्र-सेवा मे अपना योग-दान निरतर देते रहे।

—— o ——

दैनिक 'विश्वमित्र' के संचालक-सम्पादक,
अग्रणी समाज-सेवी

श्री कृष्णचद्र अग्रवाल

महर्षि !

किसी अत्यन्त निकट के व्यवित के सम्बन्ध मे कुछ कहना या लिखना कठिन कार्य है। क्या लिखा जाये और क्या छोडा जाये, इसमे अन्तर करना धर्म-सकट बन जाता है। जिस व्यक्ति की वहुमुखी प्रतिभा हो या जिसके जीवन के साथ समाज और राष्ट्र का ऐसा लम्बा इतिहास जुडा हो कि उसे दर्पण की तरह देखा जा सकता हो, उसकी घटनावलि की गिनती भी केवल शोध के रूप मे हो सकती है। बाकी लिखना-लिखाना तो महज एक रस्म-अदायगी है, जिसमे तत्त्व कम होता है, भावना अधिक रहती है।

राष्ट्रकर्मी कहे या सामाजिक नेता, साहित्य-प्रेमी या हिन्दी के उन्नायक, कुटीर उद्योग के सक्रिय समर्थक या पिछडे वर्ग के शुभचिन्तक, एक व्यवित एक साथ इतने क्षेत्रो मे केवल सक्रिय ही नही हो, प्रभावशाली रूप से कार्य करे और वह भी किसी साधन या किसी दल के समर्थन और सहयोग के बिना, एकात अपने मनोबल के द्वारा, ऐसे उदाहरण देश मे अनेक नही है। बल्कि मैं तो कहूँगा कि शायद उगलियो पर ही गिना जाने लायक कोई नाम मिलेगा। मजे की बात यह कि वह व्यक्ति कोई विशेष शिक्षित नही, पारिवारिक या सामाजिक दृष्टि से भी पूर्व का ऐसा कोई सूत्र नही, जिसका उसे आधार मिला हो। किसी की गद्दी वैठना और उसके द्वारा सचालित कार्य को अजाम देना उतना कठिन नही किन्तु सर्वथा नये स्लेट पर ककहरा शुरू करना, जब कि कलम पकडने की भी विद्या ज्ञात न हो, एक ऐसा प्राकृतिक या दैनिक कर्म है, जिसे हम केवल ईश्वरीय देन ही कह सकते हैं, अन्यथा साधनहीन, अल्प-शिक्षित, अपरिचित व्यक्ति सहज मे कैसे हनुमान वन कर पर्वत धारण कर सकता है?

हमारे चरित्र-नायक श्री सीतारामजी सेकसरिया ने जिन अभावो एव सघर्षो की स्थिति मे जीवन प्रारम्भ किया और पीछे भी वर्षो तक जिस तरह उन्हे जीवन-यापन करना पडा, उन अस्वाभाविक और प्रतिकूल परिस्थितियो ने ही उनके जीवन को स्वर्णिम कर दिया, अपने पारस-स्पर्श से। मेरी यह मान्यता है, जो अनुभव एव शास्त्र-सिद्ध है कि जो मनुष्य जितना अधिक घिसता है, उसका जीवन-पथ उतना

ही प्रकाशवान, सुगंधित एव स्वर्णिम बनता है। जब कोई इन परिस्थितियो मे स्वय गुजरता है तो उसकी सवेदनशीलता स्वाभाविक रूप से मुखरित हो उठती है। जिनके जीवन मे अभाव एव सघर्ष का अवसर नही आया हो, वे सहानुभूति एव प्रेम का कितना भी मुखौटा धारण करे, उनकी सहानुभूति उतनी मुखर नहीं हो सकती। अभावो एव कष्टो की शृखला ने जहाँ उन्हे स्वय प्रेरणा दी, उनके साथी एव सहयोगी भी जीवन भर उनमे जुडे रहे तथा उनके कामो मे आस्था रखे रहे। वास्तव मे, इन सब की बुनियाद मे कदम-कदम पर बोलता हुआ सत्य था। आज कार्यकर्त्ता जब तक अपना दुख, अभाव और अभियोग प्रकट नही करता, तब तक उसके बारे मे जानना कठिन हो जाता है और जान कर भी उसका उचित समाधान हम नही कर पाते है। यही कारण है कि आज हर क्षेत्र मे कार्यकर्ताओ का दिनो-दिन अभाव हो रहा है। सेकसरियाजी स्वय ऐसी नाजुक एव कठिन परिस्थितियो से दिन-रात गुजरते रहे है। इसलिए उन्हे कार्यकर्ता का दर्द समझने मे देर नहीं लगती। केवल सामाजिक या राजनैतिक कार्यकर्ता ही नही, साहित्य एव शिक्षा के क्षेत्र मे भी हजारो कार्यकर्ता उनसे लाभान्वित एव उपकृत हुए। उनकी स्वय की स्थिति जहाँ सहायता करने मे असमर्थ हो जाती है, वहाँ वे अपने सम्पन्न मित्रो और प्रेमियो को सहायता के लिये प्रेरित करते है।

मेरी दृष्टि मे उनकी सफल जीवन-यात्रा मे जो सब से अधिक अणुतत्त्व रहा है, वह है उनकी सम्वेदनाशीलता। शायद यही कारण रहा है कि वे इतने रचनात्मक हो सके। सम्वेदनशीलता के गुण ने ही उन्हे मातृ-जाति के सब से निकट ला दिया। सवेदना की सब से नाजुक कृति नारी को पहचानने और अपनाने मे वे सहज ही समर्थ हो गये। महर्षि कर्वे के बाद श्री सीताराम सेकसरिया ही एक ऐसे व्यक्ति हुए, जो आजन्म नारी-जाति के अभ्युत्थान के लिये जीवन अर्पण किये रहे।

सवेदना का गुण धार्मिक होता है। बिना धर्म के सवेदना उपज ही नहीं सकती। सेकसरियाजी जीवन भर रामायण का अखण्ड पाठ करने वाले रहे। सीता-चरित्र ने जहाँ उन्हें नारी-जाति के उत्थान की ओर आकर्षित किया, गीता ने उन्हे जीवन मे कर्म की ओर निरन्तर प्रेरित किया। इसी बात को लेकर राष्ट्र-पिता बापू से लेकर बडे-बडे नेता, साहित्यिक, समाज-सेवी और शिक्षा-महारथी उनकी ओर आकर्षित हुए। सतत कर्ममय जीवन ही उनका लक्ष्य बना रहा। पर इसे पूर्णाहुति मान कर उन्होंने कभी विराम नही किया।

— o —

भारतीय दर्शन की प्रकाड पण्डित,
रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय की उप-कुलपति

डा० रमा चौधरी

सदा सुगन्धित !

पद्मभूषण श्री सीतारामजी सेकसरिया के ८२ वे वर्ष पर मैं उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा सहित अपनी बधाइया और शुभेच्छायें प्रेषित करती हूँ।

वे शतायु हो, उनका सेवा-मार्ग सदा प्रफुल्लित और सुगन्धित रहे, उनका जीवन सदा आलोकित रहे, और सदैव ईश्वर का आशीर्वाद उन पर रहे, जिसके प्रसाद-स्वरूप जीवन मे सदा-सर्वदा पूर्ण शाति और मगल की प्राप्ति होती रहे।

--- ० ---

विख्यात कलाविद् और साहित्यकार

श्री सौमेन्द्रनाथ ठाकुर

श्रद्धेय पुरुष !

श्री सीताराम सेकसरिया हमारे देश के एक श्रद्धेय पुरुष हैं। देश के स्वाधीनता-आन्दोलन और स्वदेशी-आन्दोलन के साथ वे घनिष्ठ भाव से ओत-प्रोत रहे हैं। उदार, मितभाषी, देश-प्रेमी और मानवतावादी सीतारामजी आज ८२ वर्ष के हो रहे हैं, उनके प्रति अपनी आंतरिक प्रीति और श्रद्धा प्रकट करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है। वे और भी दीर्घ काल तक हम लोगों के बीच रहते हुए समाज और देश की सेवा करते रहें, यही मेरी आंतरिक कामना है।

—— ० ——

हिन्दी के मूर्धन्य कथाकार

श्री अमृतलाल नागर

मानो राजर्षि जनक !

जो जग को सियाराममय मान कर आत्म-दान के चिर-उत्सर्गकर्ता बन गए, उन सीतारामजी को मैंने देखा है, मानो मैंने राजर्षि जनक के प्रत्यक्ष दर्शन किये है। अनास्था के भयावह मरुस्थल सम इस सक्राति-काल मे श्रद्धेय सीतारामजी का आस्थादायक समर्पित व्यक्तित्व सजीवन-सरोवर के समान है। उनकी बियाँसीवी जन्म-तिथि के मगलमय अवसर पर श्रीराम से उनकी दीर्घायु के लिए प्रार्थना करता हूँ।

—— ० ——

सुपरिचित राष्ट्र-कर्मी और समाज-सेवी
'दैनिक 'लोकमान्य' के सम्पादक

श्री रामशकर त्रिपाठी

स्त्री-शिक्षा के मेरुदंड !

श्री सीतारामजी मे मेरा परिचय अब मे प्राय ४८ वर्ष पूर्व १९२९ मे हुआ था। १९२८ मे कलकत्ता मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ था और उसकी समाप्ति के प्राय साथ-साथ जनवरी १९२९ के आरम्भ मे महात्मा गाँधी के कर-कमलो से शुद्ध खादी भण्डार का उद्‌घाटन हुआ। यद्यपि खादी भण्डार के प्रमुख कार्यकर्त्ता और सचालक के रूप मे प्रख्यात हिन्दी-सेवी श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार सामने थे। परन्तु वास्तव मे खादी भण्डार के मेरुदण्ड सीतारामजी ही थे, जो आज तक उसी निष्ठा और त्याग-वृत्ति से उसकी देखरेख कर रहे है। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यो—खादी, चर्खा, हिन्दू-मुसलिम एकता और हरिजन-सेवा मे सीतारामजी की गहरी रुचि रही है और इन कार्यो मे उनका उल्लेखनीय योग-दान है। १९३० के नमक-सत्याग्रह आदोलन मे आप सर्वात्मना कूद पडे, बडा बाजार आईन अमान्य परिषद् के डिक्टेटर नियुक्त किये गये और स्वल्प काल मे ही कारागार भेज दिये गये। उस समय बडा बाजार के पुलिस केस जोडाबगान कोर्ट मे होते थे। मुझे आज भी कोर्ट मे सीतारामजी का मामला और मैजिस्ट्रेट द्वारा उनको कारादण्ड देने का दृश्य भली भाति याद है।

१९३२ और १९४२ मे भी आपने वर्षों तक देश के लिए जेल की यातना अविचलित रह कर सहन की। जयपुर मे श्री हीरालाल शास्त्री ने आपके सहयोग से १९२९ मे रचनात्मक कार्य आरम्भ किया था। आज के विराट वनस्थली विद्यालय का मूल श्री सीतारामजी का ही सहयोग है। समाज-सुधार आन्दोलन मे आपने बडा ही सक्रिय अश ग्रहण किया और जाति-बहिष्कार जैसे कठिन दण्ड को सहर्ष अगीकार किया। आज तो जाति-बहिष्कार स्वय ही बहिष्कृत हो गया है। पर्दा के विरोध मे आपने प्रबल लोक-मत उत्पन्न किया। इन कार्यो मे आप को अपनी धर्मपत्नी स्वर्गीय भगवान देवीजी से पूरा समर्थन और सहयोग मिलता रहा। सीताराम जी की चर्चा करते हुए मुझे बार-बार बहन भगवान देवीजी की याद आती है। और आसू, रोके नही जा सकते। विद्या की कमी होने पर भी उनमे विद्या के सभी गुण पूर्ण मात्रा मे थे। ऐसी उदार, दयाशील और पुण्यवती महिला बहुत कम देखी जाती हैं।

सीतारामजी ने अपने बहुमूल्य जीवन का सब से बडा भाग नारी-शिक्षा के कार्य मे लगाया और नि सन्देह इसमे उनको असाधारण सफलता मिली। १९२९ मे वे मारवाडी बालिका विद्यालय के अवैतनिक मत्री नियुक्त हुए थे और आज वे श्री शिक्षायतन जैसी महती सस्था के कर्णधार है। हिन्दी-सेवा और हिन्दी-प्रोत्साहन मे आपका उल्लेखनीय सहयोग प्रारम्भ से ही चल रहा है। आपकी अन्य भी अनेक सुन्दर रचनाए हैं। महिलाओ के लिये आपने सेकसरिया पुरस्कार की स्थापना की। मैंने भी नारी-शिक्षा और सुधार मे समर्पित जीवन प्रो० धोडो केशव कर्वे की जीवनी 'कर्मयोगी कर्वे' के नाम से १९२९ मे लिखी और प्रकाशित की थी। वास्तव मे, पुस्तक लिखने की प्रेरणा श्री सीतारामजी से मिली थी और पुस्तक की छपाई का पूरा व्यय उन्होने ही दिया था। ऐसे देश और समाज-सेवी प्रिय मित्र के सार्वजनिक अभिनन्दन की घोषणा से सचमुच बडा हर्ष हुआ है। परमात्मा से सीतारामजी के दीर्घ-जीवन और उत्तम स्वास्थ्य की प्रार्थना है।

—— ० ——

राजस्थान के वरिष्ठ लोक-नेता,
विनोवा-पथ के साधक

श्री गोकुलभाई दौ० भट्ट

सेवामय प्रेम-श्रोत

मौ मे वस वीम शेष
पूरे हो माल सौ।
मनायें उत्सव अमोल ॥
स्नेहभरा, दर्दभरा
पीडित की सुन पुकार
रूदता जो आत्म उच्च।
ऐसे ही भ्रात ज्येष्ठ
सेवामय,
प्रेम-स्रोत,
सीताराम भाई, आप।
वधुवर !
आपको अनेक वार
वदन, मेरे प्रणाम !
लेना उन्हें स्वीकार॥

— ० —

सुप्रसिद्ध कलाविद्
शांतिनिकेतन मे कला-भवन के निर्देशक

श्री दिनकर कौशिक

सेवा कर्मसु कौशलम्

श्रीमद् गीता का एक परिचित सूक्त है—"योग कर्मसु कौशलम्"। हमारी कला-गोष्ठियो मे हम इस सूक्त का थोडा-सा रूपान्तर कर दिया करते है। कहते है "कला कर्मसु कौशल"। जब हम पद्मभूषण सीतारामजी जैसे सुजन को सेवा-योग मे आत्म-समर्पित देखते है, तो सहज ही "सेवा कर्मसु कौशलम्" का भाव प्रत्यक्ष होने लगता है।

श्रद्धेय सीतारामजी से मेरा प्रत्यक्ष सम्बध ज्यादा नही रहा। शान्तिनिकेतन वे जब भी आये, उनके व्यक्तित्व ने कभी कही आत्म-प्रचार की जडो को जमने नही दिया। जहा भी वे गये, जो भी किया, जो भी बोले, सब मे एकान्त-प्रिय और पर-दु ख कातर रहे। अह को उन्होने जितना ही दबाया, उतना ही हम उनकी गौरव-गाथा और अकृत्रिम सरलता की महिमा के विपय मे सुनते रहे।

श्री सीतारामजी सेवा और त्याग के ज्वलन्त प्रतीक हैं। वे सदैव पर-हित मे ही लगे रहे। जब विद्यार्थी लोग अपने कष्ट-सभार को ले कर उनके पास जाते है, तो सहानुभूति और आत्मीयता के साथ वे उनका दुख-दर्द सुन लेते हैं, अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से उनकी जरूरत समझ लेते हैं। तत्काल पत्र, पुष्प, फल कुछ-न-कुछ दे ही देते हैं। अनेक शिक्षा-सस्थाए उनका सातत्य पा रही है। शिक्षा, विशेपतया नारी-शिक्षा के उत्थान के लिये उनका सर्वदा ही प्रथम चरण रहा है।

खादी का लिवास, स्नेह-सरल मुख-छवि और अनुकम्पा-युक्त मित-भापण-इन त्रिविध अभिव्यक्तियो के कारण वे आबाल-वृद्ध सब मे स्नेह और आदर पाते रहे हैं। आज सत्यवादिता का कोई समर्थन करे तो मुह दबा कर लोग हसते है, कोई त्याग और प्रेम के गुण गाये तो आम तौर से विश्वास ही नही होता। ऐसी स्थिति मे सीतारामजी के समान महानुभावो का विशेप महत्व है।

मानव मात्र का उत्कर्ष समग्र-शिक्षा के माध्यम से ही होगा, इस पर उनकी दृढ श्रद्धा है। इसी कारण अपना अमूल्य समय और सेवा वे इस वेदि पर अर्पित कर रहे है। श्री सीतारामजी ने बगाल को ही अपना प्रात बना लिया है। उन्होने

अपनी सारी शक्तियाँ इसी प्रांत के लिये समर्पित कर दी है। शान्तिनिकेतन के साथ उनका अत्यन्त प्रीतिपूर्ण संबंध रहा है। वे समय-समय पर यहाँ आकर हिन्दी-भवन के लिये प्रगति-मार्ग का दर्शन कराते रहे हैं।

अपनी श्रद्धा ज्ञापन करते हुए मैं यही कामना करूँगा कि ईश्वर हमें उनकी संगति सदैव दे, जिससे हमारी दीन-हीन मृत्तिका स्वर्णमयी बन जाये।

—— o ——

सुप्रसिद्ध उद्योगपति,
सुलेखक

श्री लक्ष्मीनिवास बिरला

सदा सस्मित, सदा सक्रिय

सुजन समाज सकल गुन खानी,
करउं प्रनाम सप्रेम सुबानी।

प्रणाम करने योग्य सज्जनो को प्रणाम करने मे भी एक रस आता है।

मुद्दत की बात हो गई, जब मैं पहले-पहल सीतारामजी से मिला। सन् १९२६ मे कलकत्ता के हिन्दू-मुस्लिम दगे के पश्चात् गाँधीजी यहाँ आये और बिरला-पार्क मे ठहरे। और-और बातो के साथ यह बात भी निकली कि कलकत्ता मे कोई अच्छा खादी भण्डार नही है। फिर क्या था, मेरे पूज्य पिताजी के सहयोग से खादी भण्डार खुल गया। महावीरप्रसादजी पोद्दार ने उसकी देख-रेख का भार उठाया। हर शनिवार को दो बजे आफिस बन्द होने के बाद मेरा तो नियम-सा ही हो गया था कि खादी भण्डार जा कर महावीरप्रसादजी के पास दो या तीन घण्टे बिताऊँ।

एक दिन 'पोद्दारजी, पोद्दारजी,' पुकारते एक लडकी खादी भण्डार मे आई। हम लोग महावीरप्रसादजी को उनके नाम से ही पुकारते थे। इसलिये पोद्दारजी कौन है, यह समझने मे जरा कुछ सेकेण्ड लगे। पूछने पर पता चला कि यह सीतारामजी सेकसरिया की लडकी पाना बाई है। सीतारामजी के नाम से मेरा पहला परिचय यही था। यह सन् १९२७ की बात है।

इसके बाद तो सीतारामजी से काफी मिलना-जुलना होता रहा। वह भी महावीरप्रसादजी का काम बटाने खादी भण्डार मे आते थे। सामाजिक विषयो पर और राजनीति पर भी कई बार उनसे बहस हो जाती थी। एक किस्सा मुझे याद आता है। शिशिरकुमार भादुडी ने 'नादिरशाह' नामक नया नाटक रगमच पर प्रस्तुत किया। नाटककार ने नादिरशाह को एक अच्छे नायक के रूप मे दिखाया और उसके अत्याचारो का कारण बताते हुए दिखाया कि वह जुल्म इसलिये करता था कि जनता बल्वा करे और तानाशाह को उठा फेके। मैंने कहा—'शायद यह तरीका हिन्दुस्तान पर भी लागू हो। अग्रेज ज्यादा जुल्म करेगे तो जनता मुकाबला करने

खडी हो जायेगी।' सीतारामजी ने इसका विरोध किया। उन्होने कहा कि 'जनता और भी चुप्पी साध लेगी।' मुझे ऐसा याद है कि शायद दो-तीन दिन तक जब-जब हम लोग मिले, इसी विषय पर चर्चा करते रहे। यो बाते होती थी, बहस चलती थी और हम लोग एक दूसरे को समझ रहे थे। कुछ समय बाद तो खादी भण्डार का पूरा दायित्व श्री सीतारामजी के ही हाथो मे आ गया। उनकी देख-रेख मे शीघ्र ही खादी भण्डार ने एक उन्नतिशील सेवाव्रती सस्था के रूप मे ख्याति प्राप्त कर ली क्योकि श्री सीतारामजी की इस देख-रेख के पीछे उनका त्यागमय उच्च आदर्श एव स्वप्न था।

तब से श्री सीतारामजी का जीवन सामाजिक सेवाओ के लिए एक सूत्र बन गया। जिस कार्य को उन्होने अपने हाथ मे लिया, उसमे उन्हे आशातीत सफलता प्राप्त हुई। इसका कारण यही है कि उन्हे कार्य प्रिय है और उसे वे पूरी लगन के साथ बिना किसी प्रदर्शन के करते है। समय-समय पर जब जैसी राष्ट्रीय आवश्यकता अनुभूत हुई, तब-तब उन्होने अपने काय-क्षेत्र मे भी परिवर्तन किया। जब-जब उन्होने नया दायित्व ग्रहण किया, उसे नवीन उत्साह और नये दृष्टिकोण के साथ सम्पन्न किया। इस प्रकार यद्यपि उनके कार्य मे वैविध्य होता रहा, तथापि उनके व्यक्तित्व और दक्षता की अमिट छाप हर कार्य पर पडती रही और उनकी इस योग्यता को खुले-आम स्वीकार किया गया। परन्तु स्वय उन्होने कभी भी ख्याति की आकाक्षा नही की। अपनी कार्य-दक्षता और कार्य-निष्ठा के परिणाम-स्वरूप ही वे विख्यात हुए है। पहले कुछ समय वे राजनीति मे भी सक्रिय भाग लेते रहे और "भारत छोडो" आदोलन के समय उन्हे कारावास भी मिला था। वे गाँधीजी के कट्टर अनुयायी है और आज जब लोगो ने गाधीजी को ही भुला दिया है, श्री सीतारामजी ने भी राजनीति मे सन्यास ले लिया है। राजनीति से अलग हो कर भी वे नि सन्देह रचनात्मक कार्यो मे अपने-आपको लगाये हुए है। श्री सीतारामजी के बारे मे दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि वे सदा सस्मित रहते है। इस उम्र मे भी मैंने कभी उन्हे निराशावादी नही पाया।

सन् १९२७ के प्रथम साक्षात्कार के बाद अब तक अनेक घटनाये घट चुकी है। मारवाडी बालिका विद्यालय और तदुपरान्त श्री शिक्षायतन के सदर्भ मे श्री सीतारामजी से मेरी भेट बराबर होती रही है। श्री शिक्षायतन को शिक्षा-क्षेत्र मे प्रतिष्ठित करने का श्रेय श्री सीतारामजी को ही है।

चाहे कार्य का दायित्व उन्हे सौंपा गया हो अथवा उन्होने स्वय अभिरुचिपूर्वक उसे लिया हो, दोनो ही दशाओ मे उन्होने अपूर्व कार्य-क्षमता का परिचय दिया है। सामाजिक दायित्व की भावना से उन्हे नि स्वार्थ सेवा की प्रेरणा मिली है और समाज के प्रति अपनी भावना तथा चेतना द्वारा उन्होने अपने को उत्तरदायी समझा है। यही कारण है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उन्होने पूण हार्दिक सहयोग दिया है और सदा अपने को सक्रिय रखा है। कार्य छोटा हो अथवा बडा, उन्होंने समान

रूप से रुचि ले कर उसे सुसम्पादित किया है। गाँधीजी के अनुयायी होने के नाते श्री सीतारामजी ने छोटे-से-छोटे दायित्व को सहर्ष स्वीकार किया है।

वर्ड्सवर्थ के शब्दो मे—"छोटी सेवा ही सच्ची सेवा है, यदि वह चिर-स्थायी हो"। श्री सीतारामजी इसके सजीव उदाहरण है।

शान्त, सरल, मृदुल स्वभाव श्री सीतारामजी कलकत्ता के सामाजिक क्षेत्र मे सुपरिचित व्यक्ति हैं। प्रत्येक सामाजिक कार्य-क्रम, चाहे वह समाज के उन्नयन के निमित्त कोई व्यापार हो, मानव-सेवा-हित हरिजन-उत्थान हो, स्त्री-शिक्षा-प्रसार जैसे उपक्रम हो, श्री सीतारामजी सदा अग्रिम पक्ति मे खडे रह कर हर प्रकार की लगन और निष्ठा के साथ जनता की भलाई मे दत्त-चित्त दिखलायी पडते है। ईश्वर से प्रार्थना है कि बहुत-बहुत दिनो तक वे जनता की सेवा करते रहे।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध गुजराती नाट्यकार और उपन्यास-लेखक

श्री शिवकुमार जोशी

अजातशत्रु

श्री सीतारामजी सेकसरिया जैसे महानुभाव के विषय मे लिखना-बोलना हो तो कोई भी योग्य वक्ता निश्चय ही कह सकता है—"परिवर्तिनि ससारे सजातो येन जातेन याति वश समुन्नतिम्"। बडे आदमी तो बहुत होते है परन्तु हरएक के बारे मे यह श्लोक नही कहा जा सकता। हरएक के व्यक्तित्व मे यह उक्ति सार्थक भी नही होती। किन्तु श्री सीतारामजी की बात आने पर बार-बार यह कहने की इच्छा होती है कि इनके द्वारा वश की उन्नति ही हुई है।

यह बात सुनते ही सीतारामजी फौरन हस कर पूछेगे—"भाई, मेरा वश कौन सा? क्या आपका अभिप्राय मेरे द्वारा सेकसरिया परिवार की उन्नति से है?" यह कहते समय उनका चाँदी की तरह चमकता हुआ हास्य मन को विभोर कर देने वाला होगा। इस व्यक्ति के लिये तो आकाश ही मर्यादा है–'स्काई इज द लिमिट'। वश की बात करे तो सारी मानव-जाति की ही बात आ जाती है। उन्होने कभी सकीर्ण दृष्टि रखी ही नही। रखते भी कैसे? जिस व्यक्ति ने बापूजी के तत्वज्ञान को आत्मसात कर आजीवन पुरुषार्थ-साधना की है, वह कैसे यह सोचे—"मै सेकसरिया हूँ, मै मारवाडी हूँ, मै हिन्दू हूँ, मै भारतीय हूँ।" इनका तो ध्येय ही विश्व-मानव बनने का है।

श्री सीतारामजी की मुखाकृति सर्वदा प्रसन्न और हास्य-मडित दिखाई देती है, मानो ईश्वर का वरदान ही इनको मिला है। जिनकी दृष्टि दूर-दूर के क्षितिजो तक तनी हुई है, जो सारे विश्व को अपना समझते हैं, उनको ही कदाचित् भगवान् का ऐसा वरदान मिलता है। श्री सेकसरियाजी की प्रसन्न मुखाकृति एक और बात को भी प्रदर्शित करती है और वह यह कि यह व्यक्ति अवश्य ही अजातशत्रु होगा। जो व्यक्ति 'सर्वभूत हिते रत' है, उसको अजातशत्रु कहा जाय तो नई बात क्या है? इस स्थिति को प्राप्त करना सरल नही होता। बडी तपश्चर्या के बाद ही मनुष्य अजातशत्रु होने की स्थिति मे पहुच सकता है।

योगसूत्र मे अहिंसा की व्याख्या करते हुए पातजलि ऋषि ने कहा है—'अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैर त्याग"। इस व्यवस्था के साथ श्री सीतारामजी की

प्रसन्न मुखाकृति का कितना सुमेल है, इसका अनुमान वे लोग फौरन ही लगा सकते हैं, जो उनके परिचय मे आये है। कट्टर-से-कट्टर विरोधी भी उनके निकट आने पर विरोध भूल जाते है। उनकी वाणी मे, छोटे-बडे हर कार्य मे, दैनन्दिन जीवन-व्यवहार मे उनकी निर्वैर वृत्ति अपने-आप प्रकट हो जाती है। निर्वैर अर्थात् निषेधात्मक वृत्ति नही। वे तो क्रियाशील पुरुष हैं। उनका सहवास हमेशा विधेयात्मक ही होता है। सिर्फ निर्वैर वृत्ति रख कर ही उनको सतोप नही होता, उनके पास तो सच्ची मैत्री का भण्डार है।

सन् १९३७ मे जब मैने कलकत्ता मे वसने का निश्चय किया तो मेरे पूज्य काका श्री लक्ष्मीशकरजी जोशी के साथ मं रहने लगा था। उन दिनो किसी आयोजन मे श्री सीतारामजी प्रधान वक्ता थे। वही मेरे काकाजी ने मुझे उनसे मिलाते हुए कहा था—"ये ही श्री सीतारामजी सेकसरिया हैं—सच्चे अर्थ मे लोक-सेवक हैं, गाँधीवादी है, बडे त्यागी है।"

कहाँ १९३७ और कहाँ १९७३? तीन और सात के अको ने स्थान वदल लिये है किन्तु इन ३६ वर्षों के दौरान श्री सेकसरियाजी तो मानो वैसे-के-वैसे ही हैं—स्थिर-आसन, दृढ-आसन।

बारीक खादी की वेश-भूषा और सुन्दर व्यक्तित्व—इन दोनो का वडा ही बढिया मेल बैठता है। यह बात भी मैने उसी क्षण मे अनुभव की थी। ३६ वर्ष पहले तो वे युवा ही थे परन्तु उस उम्र मे भी उनके व्यक्तित्व का जो आकर्षण था, वह आज की वृद्धावस्था मे भी उसी तरह से विद्यमान है। इस वात पर साधारणतया आश्चर्य हो सकता है परन्तु माइकेल ऐजेलो ने अपनी प्रख्यात कलाकृति 'पायटा' मे माता मेरी की चिरयुवा मुख-मुद्रा अकित करने के समर्थन मे कहा था—"जो आत्माये सचमुच पवित्र होती हैं, उनको वार्धक्य छू ही नही सकता"। श्री सेकसरियाजी के व्यक्तित्व की इस खूबी को देखते हुए माइकेल ऐजेलो का उक्त वाक्य उनके जीवन के प्रसग मे याद हो आना स्वाभाविक ही है।

श्री सीतारामजी युग-दृष्टा हैं। कहावत है—जन्मकुडली मे कुम्भ-सूर्य हो तो व्यक्ति उदार होता है, मिलनसार होता है, मानवीय होता है। मुझे नही मालूम कि श्री सीतारामजी की मडली मे कौन से ग्रह हैं परन्तु मेरा विश्वास है कि जिस व्यक्ति को मानवता के प्रति श्रद्धा है, मानव-हित के लिये जो सदा तत्पर है, जिसका सकल्प हमेशा शुभ और कल्याणकारी है, उसकी कुण्डली मे योग्य स्थान पर बैठ जाने के लिये ग्रहो मे भी प्रतियोगिता होगी।

"दैवायत्त कुले जन्म, मदायत्त तु पौरुपम्"—यह वात दानवीर कर्ण ने गरजते हुए कही थी—कुल का क्या महत्त्व है, दैव ने जो कुल दिया, सो दिया। किन्तु मेरे पौरुप का विधायक तो मै स्वय ही हूँ। श्री सीतारामजी ने कभी कर्ण की तरह गरिमापूर्ण गर्जना नही की किन्तु अनेक परिस्थितियो मे किये गये उनके अनेक पौरुपपूर्ण कार्य हमारे समक्ष खडे है। कुरुक्षेत्र के युद्ध मे दिखाई पडने वाले पौरुप की आज

सम्भावना नही है, आज तो प्रतिदिन तरह-तरह के प्रश्न हमारे सामने आते रहते हैं। एक प्रकार का प्रच्छन्न कुरुक्षेत्र ही चल रहा है। 'ततो युद्धाये युजस्व' की चुनौती की शक्ति समाज-सेवक के लिये सब से महत्व की होती है। श्री सीतारामजी इस प्रकार मे आपादमस्तक शसस्त्र समाज-सेवक के रूप मे निखरे है। उनके शस्त्र हैं--सन्निष्ठा, सत्य-परायणता, स्नेह-आर्द्रता और सारे मानव-समाज को 'विश्व मेक नीड' मान कर उसके साथ आत्मसात हो जाना और अपने अन्तर मे समस्त समाज को उसके समस्त सुख-दुख के साथ अपने में समा लेने की तत्परता।

—— o ——

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी,
श्री सीतारामजी के अन्तरग मित्र

श्री भागीरथ कानोडिया

'मोहि तोहि नाते अनेक'

भाई सीतारामजी का बचपन, कैशोर्य, प्रौढावस्था और वार्धक्य सेवा-समर्पित जीवन के क्रमागत चरण है। जिन परिस्थितियो मे वे रहे, जो सघर्ष उन्होने किये, जैसी प्रेरणा उन्होने दी, जिन परिवर्तनो के वे सारथी रहे, उनको मैने अपने लेख मे रेखाकित किया है, जो इस ग्रथ मे ही उनके जीवन-वृत्त के साथ अन्यत्र छपा है।

मेरे तो वे मित्र, भाई, स्वजन, प्रियजन, परिजन, साथी सभी कुछ है और है रहनुमा भी। उनके स्नेह का मै कितना अधिकारी हूँ, यह तो नही जानता लेकिन जो स्नेह मुझे उनसे मिला है, वह है भरपूर। मै उस स्नेह को अपने पूर्व जन्म के पुण्य का प्रतिफल ही मानता हूँ और चाहता हूँ कि मै उसे थाती के रूप मे सजोये रखू। ईश्वर से प्रार्थना है कि सीतारामजी का वरद हस्त मेरे ऊपर जीवन भर उसी तरह बना रहे तथा मै उनके गगा-जमुना के समान पवित्र और शीतल स्नेह-सलिल से सदा सिंचित होता रहूँ।

मित्र-धर्म-निर्वाह के बारे मे मै अपने अनुभव से यह कह सकता हूँ कि तुलसी-दासजी की निम्न चौपाई उन पर पूरी-पूरी लागू पडती है

निज दुख गिरि सम, रज करि जाना।
मित्रक दुख रज, मेरु समाना॥

ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह सीतारामजी को तन-मन और दिलो-दिमाग मे स्वस्थ रखे, ताकि वे समाज को अपनी सेवाये निरन्तर देते रहे।

—— o ——

हिन्दी के सुविख्यात कवि

पद्मश्री पोद्दार रामावतार अरूण

हे शील-पुरुष !

- राजनीति के सूर्य-चन्द्र बनने की इच्छा
  नही कभी भी उठी तुम्हारे उज्ज्वल मन मे
  मात्र मनुज-सेवा की ही कल्याण-भावना
  जाग्रत होती रही सदा अकलुप जीवन मे !
- विनयशीलता के प्रतीक तुम बने रहे नित
  सदाचार पर आधृत सस्कृति के प्राङ्गण मे
  भारतीयता के प्रकाश मे लिप्त रहे तुम
  ऋषि-समान शिव लक्ष्य लिए प्रिय जन के वन मे !
- बापू के पद-चिह्नो पर अविरल चल-चल कर
  अभिनव बापू बने स्वय ही निज नगरी के
  श्रद्धा, त्याग और सेवा के अग्रदूत तुम
  शोपित, पीडित, क्षुधित म्लान जनगण-डगरी के !
- सर्वमान्य व्यक्तित्व तुम्हारा सब से पूजित,
  अह-हीन माधुर्य तुम्हारा नित काव्यात्मक
  गुण ही गुण जिसमे, तुम वह उत्तम जन-सेवक
  हस-प्राण तुम शुभ्र, नही तुम पद-लोभी बक !
- स्वय सत्य-इतिहास विपुल मानव-सेवा के,
  स्वय अमिट सगीत कर्म-वीणा के स्वर के
  अनासक्ति के स्वय-सिद्ध तुम हृदय-दार्शनिक
  तुम आलोकित छन्द विमल आनन्द लहर के !
- नमस्कार हे शील-पुरुप, सहृदय-अभिनन्दित
  नमस्कार हे सन्त, विनम्रा सहृदयता के
  नमस्कार हे सौम्य विवेक-कुसुम मगलमय,
  जय-आकाक्षित मानवता की ज्योति-लता के !

—— ० ——

सुपरिचित हिन्दी साहित्यकार

श्री विष्णु प्रभाकर

समर्पित जीवन

जब हम किसी को उसके बाहरी रूप से पहचानने की कोशिश करते है तो प्राय धोखा खा जाते है। किसी को पाने के लिए उसके पास जाना होता है। पास जाना अर्थात् अन्तर मे पैठना, उसका हो जाना। जब कभी भी किसी के बारे मे लिखने बैठता हूँ तो अपने से यही प्रश्न करता हूँ—'क्या मै उसके पास जा सका हूँ ? क्या जितना मैने देखा और पहचाना है, उतना ही वह सत्य है ?' स्वीकार करूँगा कि यही प्रश्न इस समय मेरे मन मे उठ रहा है। सौम्य-मूर्ति श्री सीताराम सेकसरिया को क्या सचमुच पहचानता हूँ ? क्या उनके बारे मे लिखने का अधिकार मुझे है ? बहुत सुना है उनके बारे मे । देखा भी है, बातें भी की है। लेकिन पास जाने का सुयोग नही मिल पाया।

फिर भी उनके बारे मे लिखने से अपने को रोक नही पा रहा। सहज भाव से कह सकता था कि लिख सकू, इतना उनको नही जानता। पर कह नही सका। आखिर क्यो ? शायद इसलिए कि देखने मे वे जो इतने सहज, सौम्य और आत्मीय दिखाई देते है, क्या सचमुच वे ऐसे है ?

व्यक्ति सामने न हो तो प्राय उसके बारे मे निन्दा ही सुनने को मिलती है, लेकिन सेकसरियाजी है कि जिससे भी उनकी चर्चा आई उसने ही बेलाग हो कर यह कहा—"अजी, वे तो स्नेह और सौजन्य की मूर्ति हैं।"

—"वे तो अत्यन्त विनम्र, मधुर-भाषी और सौहार्द से पूर्ण हैं।"

—"वे अत्यन्त कर्मठ, सजग और सेवा-परायण है।"

—"वे सच्चे और ईमानदार है।"

सचमुच इतने सरल, इतने स्नेहमय कि जब भी मिले ऐसे मिले जैसे युग-युग का परिचय हो। छिपाने को जैसे कही कुछ है ही नही। असख्य व्यक्तियो से मिलना हुआ है परन्तु सेकसरियाजी उन विरल जनो मे से है, जो पहली ही भेट मे उस दूरी को पार कर लेते है जो द्वैत को जन्म देती है। उस दिन किसी व्यक्ति की चर्चा चल निकली थी। किसी ने तीव्र स्वर मे कहा, "वह, वह तो बडा बेईमान है।"

पाण्डीचेरी के अरविन्द आश्रम में डा० इन्द्रसेन सयोग से वहाँ पर थे। एक क्षण उन्होंने मेरी ओर देखा, जैसे कही खो गये हों। फिर बोले, "विष्णुजी, आपने सोचा है कि ईमानदार होना कितना कठिन है?"

वह दृश्य, वह मुद्रा और वह वाक्य जैसे मेरे मन पर सदा के लिए अंकित हो गया है। जब भी किसी के बारे में सोचता हूँ तो यही वाक्य याद आ जाता है। लेकिन सेकसरियाजी के बारे में तो किसी ने भूल कर भी नही कहा कि उनकी ईमानदारी में शका हो सकती है। कितना कठिन योग साधा है उन्होंने! इस साधना की कहानी वही जान सकता है, जिसने उनके जीवन को पास से देखा हो। दस वर्ष के भी न हो पाये थे कि माता-पिता दोनों उन्हें छोड कर चले गये। वे अभावों के बीच पले, सघर्षों से जूझे, निरन्तर अपना मार्ग आप बनाते हुए इस स्थिति पर पहुचे कि मनुष्य का प्यार पा सके। आदर नही, प्यार। आदर में दूरी रहती है, प्यार द्वैत को मिटाने वाला है।

उनसे कई बार मिला हूँ। बातचीत भी हुई है, लेकिन यह सब मुझे जरा भी याद नही। क्योंकि जब भी ऐसा अवसर आया, उनकी वह सौम्य, सरल और आत्मीयता से ओतप्रोत मूर्ति विराट होकर मुझ पर छा गई। मैं बस उन्हें देखता ही रहा हूँ। क्या कह रहे है, यह नही सुन सका। मनीषियों से सुना है, देखना पास लाता है, सुनना दूरी पैदा करता है। प्रेम की भाषा शब्द की अपेक्षा नही करती।

इधर 'एक कार्यकर्ता की डायरी' पढी। सेकसरियाजी मानते है कि वे कार्यकर्ता ही है। निरन्तर कार्यरत। न हो तो जीवन-योगी का विरद कैसे पायें? यह डायरी साक्षी है कि उनका जीवन मारवाडी समाज के अभ्युदय की कहानी है। किस तरह उस दकियानूसी समाज को प्रकाश मिला? किस तरह उसने धीरे-धीरे अपने को उन रूढियो से मुक्त किया जो युग-युग से उसे पगु बनाये हुए थी? वह पूरा इतिहास उनके जीवन से जुडा है और साथ ही जुडी है गाधी-युग के स्वतन्त्रता-सग्राम की पूरी कहानी। इस सग्राम का सही-सही तलस्पर्शी विवरण यदि जानना हो तो इस डायरी मे मिल सकता है। उनका जीवन जैसे गांधी-युग का दर्पण है। उस युग की जटिलताओं, अन्तर्विरोधो और अन्तर्द्वन्द्वो का उन्होंने जैसे पारदर्शी भाषा मे सहज भाव से चित्रण कर दिया है।

वे गांधी पर मुग्ध थे। गांधी के अतिरिक्त उनके लिए और कोई नही था। उनकी प्रशसा करते हुए वे अघाते नही। वायसराय को लिखे उनके पत्र को पढ कर उन्होंने लिखा, "सरस चीज थी, सचाई की छाप थी, अहिंसा का सौरभ था, मित्रता की झकार थी, स्वतन्त्रता की पुकार थी ..."। इन शब्दो मे काव्य-सौष्ठव ही नही है, लेकिन सचाई और सादगी की गरिमा ही मुख्य है और ये साक्षी है उनके सरल और निष्कपट हृदय के। इसी हृदय के कारण वे सुभाषचन्द्र बोस को प्यार देने मे नही चूके, साम्यवाद की प्रशसा करने से भी नही झिझके—'पूज्य महात्माजी का जो मार्ग है, वह अपने लिये ज्यादा अनुकूल पडता है। पर करीब तीन वर्ष से अपना मन साम्यवाद के सिद्धान्त की ओर झुका हुआ है और

यह अपने को सब रोगो की एक दवा मालूम होता है। साम्यवाद के बिना मानव-समाज पूरा सुखी होगा, यह सम्भव नही मालूम होता।"

सेकसरियाजी वैश्य है—मारवाडी बनिया अर्थात् विशुद्ध व्यापारी। और व्यापारी क्या होता है, यह बताना नही होगा। महाभारतकार ने ऐसे व्यापारियो की भी चर्चा की है। और, सेकसरियाजी मे वह व्यापार-वुद्धि न हो, ऐसी बात नही, लेकिन पैसे के प्रति उनमे सचमुच ही मोह नही है। एक प्रकार की जुगुप्सा ही है। इसीलिए तो वे कह सके है, "धनियो के यहाँ बिना बुलाये जाना ठीक नही।"

वे गाँधीजी और अपने सहित उनके भक्तो की आलोचना करने मे भी नही झिझके। जो रुपये देते थे, उनसे गाँधीजी के पैर छुआ दिये जाते। वे स्वय भी ऐसा कर रहे थे, पर उन्हे लगा—"यह व्यवस्था तो धनवान को प्रश्रय देने वाली थी। धन की महिमा और शक्ति को सूचित करने वाली थी। इतने बडे महापुरुष के पास जाने मे धन का प्रभाव ही काम करे, यह क्या इस बात को सूचित नही करता कि मनुष्य धन को किसी प्रकार भी प्राप्त कर ले और फिर उसके द्वारा गाँधीजी जैसे पुरुष के नजदीक जा सकता है। यह बात खूब ही खटकने वाली है और इसके द्वारा लाभ नही होता।"

यह आत्म-मथन उनकी पारदर्शी सचाई ही का प्रमाण नही है, इस बात का प्रमाण भी है कि उनके पास एक निश्चित दृष्टि है। सचमुच ही उनमे मनुष्य को पहचानने और परखने की तीक्ष्ण बुद्धि है। 'बीता युग नई याद' मे सकलित उनके सस्मरण इस बात के प्रमाण है। उनमे वह प्रतिभा भी है जो विरोधी को अपना बना लेती है, क्योकि वे मात्र दोष ही नही देखते, गुणो को भी पहचानते है और उन पर मुग्ध हो उठते है। लेकिन इसके लिए यह आवश्यक नही है कि वे उसका समर्थन भी करे। उन्होने अपने आराध्य देव गाँधीजी को भी क्षमा नही किया, फिर औरो की तो बात ही क्या ? उन्होंने लिखा है

"उनकी (महामना मालवीयजी) दलीलो का अपने मन पर कोई असर नही होता था क्योकि वे दोतरफा बात करते है।"

"(वल्लभ भाई) जोरदार आदमी है। जनता की राय की कदर न कर अपनी चलाने वाले है।"

"सुभाष बाबू त्यागी देश-भक्त है, पर जो नेता मे होना चाहिए, वह उनमे नही है।"

गाधीजी के अतिरिक्त वे रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जवाहरलाल नेहरु पर भी मुग्ध है। सुभाष बाबू के भी वे बहुत बडे प्रशसक है। उनको प्यार भी करते है, पर पहाचानने मे गलती नही करते। मानते हैं, "वे हमेशा खुल कर बात करते है। उनकी देश-भक्ति, त्याग, वीरता अपने को प्यारी लगती है। पर उनकी कार्य-पद्धति अपने स्वभाव के साथ मेल नही खाती। इसलिए बडी मुश्किल रहती है। न उनके पूरे साथी हो सकते है और न विरोधी ही।"

यह द्वन्द्व उनको बहुत परेशान करता है। स्थान-स्थान पर डायरी इस द्वन्द्व से भरी पडी है। काग्रेस के आन्तरिक सघर्ष के बाद जब सुभाष बाबू उससे अलग हो गये, तब उन्होने बडे दर्दभरे हृदय से लिखा, "खास कर सुभाषबाबू का इस बार जो बर्ताव है तथा उसके कारण सारे बगाल मे जो प्रतिक्रिया हो रही है, यह अपन को बहुत बुरी, प्रान्तीयतापूर्ण, विवेकहीन तथा देश के लिए घातक मालूम होती है। आज अपने बगाल के लोगो का न तो पहले की तरह विश्वास कर सकते है और न आदर, न उनके साथ काम ही कर सकते हैं।"

उन्होने जन-जीवन को बहुत पास से देखा है। उसे सचमुच जीया है। इसीलिए वे कह सके, "पब्लिक इकट्ठा हुए बगैर नही रहती और पुलिस के डर से भागे बिना भी नही रहती।

—"मारवाडी दूसरी जगहो से आकर माल कमा रहे है और विलायती कपडे का कारबार भी उन्ही के हाथ मे है और उसको छोडने के लिए वे तैयार भी नही है, और गाली भी खाना नही चाहते। बडा बाजार मे पिकेटिंग क्यो होती है? दूसरी जगह क्यो नही होती? यह बात मित्रो के मन मे बहुत खलती है। पर यह नही सोचते कि जितना विलायती कपडा बडा बाजार का एक दूकानदार बेचता है, उतना कालेज स्ट्रीट के बीस दूकानदार मिल कर भी नही बेचते। इन लोगो के यह जँची हुई है कि बगाली लोग अपने ऊपर खास द्वेष निकालते हैं। यदि यह ठीक भी हो तो यह होना स्वाभाविक है क्योकि काम करने वाले तो बगाली हैं।"

दूसरो की आलोचना करना सब से सरल काम है, परन्तु यह डायरी मूलत अपने को ही समझने का प्रयत्न है। इसीलिए वे बार-बार अपने को भी कसौटी पर कसते हैं। वे बार-बार स्वीकार करते हैं, अन्तर्विरोधो मे सघर्ष करते है। यह कहने का साहस उनमे है कि उनमे ब्रह्मचर्य रखने की सामर्थ्य नही है। वे ढोंगी नही बनना चाहते। लेकिन उन्हें इस बात से भी पीडा होती है कि "भगवान देवी के फिर गर्भ रह गया। यह एक ऐसी बात है जो सारे मसूबो, विचारो को ढीला कर रही है तथा एक प्रकार का भयकर धक्का लगा रही है। इस बार तो काफी सयम से रहे तथा ज्यादा से ज्यादा बचने की कोशिश की और भगवान देवी ने भी बहुत बचने की कोशिश की पर तो भी साथ रहने के परिणाम स्वरूप गोल-माल होती ही थी। जब तक सर्वभाव से इस काम से छुटकारा न लें, तब तक इन सन्तानो के बखेडो से बचना मुश्किल है।"

इन स्वीकृतियो और सकल्पो से पूर्ण यह डायरी एक ऐसे साधक की आत्म-कथा है जो समाज-सुधार और समाज-कल्याण के लिए प्रतिश्रुत है। जो मुक्ति-आन्दोलन और बगाल के जीवन मे रमा है, जिसे भाषा और साहित्य से प्यार है, परन्तु सब से पहले जो अपने को समझने और परखने को आतुर है। इसीलिए तो उसने अपने मन की परते खोल कर रख दी है। अहम् को विसर्जित करने का इससे सुन्दर मार्ग और क्या हो सकता है? अहम् गलता है, तभी मन तरल होता है। यह तरलता सेकसरियाजी की पूजी है।

पश्चिम वगाल के राज्यपाल स्व० एच० मी० मुखर्जी एवं लोकमभा के अध्यक्ष स्व० अनन्त शायनम आयगर के साथ श्री सीतारामजी

उन्होने विश्वविद्यालय मे शिक्षा नही पाई, फिर भी बगाल की तेजस्विता के बीच अपने को प्रतिष्ठित किया है और मुक्ति-आन्दोलन के महान् कर्णधारो का अजस्र स्नेह पाया है। जिस समय राजनीति का अर्थ सेवा था, उस समय वे सब से आगे थे। आज राजनीति भोग-नीति है, इसलिए उनमे न पद के लिए होड है, न सम्मान के प्रति आसक्ति। अपनी जीवन-सध्या मे भी वे जन-कल्याण के लिए, साहित्य और कला के लिए समर्पित है। इस आयु मे भी श्री शिक्षायतन जैसी सस्थाए उनकी क्रियात्मक शक्तियो के केन्द्र है।

उन्होने अपनी गलतियो का बोझ कभी नही ढोया है। उनका प्रयोग ऊपर चढने के लिए सीढी के रूप मे ही किया है। गाधीवाद मे जो सर्वोत्तम है, उसका वे प्रतीक है। वे 'माँ' का रूप हैं, 'माँ', जो बस प्यार ही कर सकती है—जिसके लिए सार्थक होने का अर्थ ही समर्पित होना है। समर्पण की इसी चमत्कारी आभा से मण्डित है सौम्य-मूर्ति सेकसरियाजी का सम्पूर्ण जीवन।

— ० —

बगला के ख्याति-प्राप्त नाट्यकार,
कहानीकार और उपन्यास-लेखक

श्री तरुण राय

मरूद्यान का यह मानव !

मुझे मरुभूमि का कोई अनुभव नही है क्योकि वहाँ जाने का कभी मौका ही नही मिला। हाँ, मरुभूमि की तस्वीर देखी है, वर्णन पढा है। पच्चीस साल पहले जब कालेज से निकला ही था, रोजगार के लिये दलाली का जुआ कधे पर रख डलहौजी स्क्वायर मे जाने लगा था। यह क्षेत्र एक बडा फैला हुआ रेगिस्तान ही है—रस-रूप-हीन सूखा खखाड। मै साहित्य का विद्यार्थी था, नाटक करना मुझे अच्छा लगता था, लेकिन इन सब की बातें करने के लिये इन आफिसो के वातावरण मे कही कोई नही था। वहा तो फाटका-बाजार की चिल्लाहट, शेयर के ऊँचे-नीचे भाव, पाट के दाम, चट की दरें, जहाज का किराया,—इन्ही सब की कच-कच थी। सुना है कि ऊँट मरुस्थल मे काटेदार वृक्षो की डालियाँ चबाना पसन्द करता है। मुह से खून निकलता है, फिर भी उसी मे उसे आनन्द आता है। मै भी यदि डलहौजी स्क्वायर की मरुभूमि का ऊँट बन पाता तो, हो सकता है, औरो की तरह रुपये के कँटीले पौधे चबा कर आनन्द पाता किन्तु दुर्भाग्यवश वैसा मै नही बन पाया। इसलिये इस मरुभूमि मे एक स्निग्ध-शीतल मरुद्यान की खोज करता रहता था।

आखिर मरुद्यान मिल गया। मेरे परम मित्र श्री बी० एम० सिंघी के माध्यम से एक दिन मुझे मनचाहा मरुद्यान मिल गया। वह था 'नया समाज' नामक प्रगतिवादी हिन्दी मासिक पत्रिका का दफ्तर। जिस दफ्तर मे सिंघीजी काम करते थे, उसी के एक कोने मे उस पत्रिका का दफ्तर था और उन्ही की देखरेख मे उसका सचालन था। सम्पादक थे श्री मोहनसिंह सेंगर, जो दुर्भाग्य से आज जीवित नही हैं। वे समर्थ लेखक तो थे ही, किन्तु उससे भी बडे वे मानव थे। भारतीय सस्कृति का पूर्ण विकास मैंने उनमे पाया था। इसीलिये मरुभूमि की बालू की गर्मी मे तप्त होते ही भाग कर मै आश्रय लेता था "नया समाज" के इस मरुद्यान मे। मन खोल कर सेंगरजी से बाते करता—साहित्य, कला, नाटक आदि के बारे मे। हमारी इन बैठको मे और एक व्यक्ति प्राय उपस्थित रहता था—सौम्य-कान्ति, लम्बा, गोरा, खादी का सफेद कुर्त्ता-धोती पहने और माथे पर गाँधी टोपी लगाये। मुह पर अशेष हँसी। विनयी, नम्र, धीर, स्थिर। मुस्कराते हुए हमारी बातें सुनता,

अपनी राय देता। उसी का नाम है—सीताराम सेकसरिया। हम तीनो ने इस मरुद्यान के स्निग्ध परिवेश मे न जाने कितने आनन्द के क्षण बिताये हैं। वे आज भी मेरे स्मृति-भण्डार मे आलोकित है।

सीतारामजी समाज-सेवी है, जीवन भर उन्होने लोक-हितकारी काम किये है और भविष्य मे भी करेगे। वे सर्वजन-प्रिय महान् पुरुष है। सभी उन्हे जानते हैं, पहचानते हैं, श्रद्धा करते है। इस बारे मे मेरे पास नया कुछ कहने को नही है। किन्तु, अपने व्यक्तिगत जीवन के कुछ दुर्दिनो मे उन्हे जैसा, जिस रूप मे मैंने पाया, उसकी बात मुझे बार-बार याद आती है। लगभग आठ वर्ष पहले की बात है। अचानक एक रात भयावह अग्निकाण्ड मे बडे अरमानो से बनाया हुआ हमारा थियेटर सेंटर का छोटा-सा नाट्यमच जल कर राख हो गया। अखबारो मे यह दुसवाद छपा। प्रियजन-वियोग की तरह ही मै शोकाकुल था क्योकि थियेटर सेंटर ही मेरा स्वप्न था, मेरी साधना थी।

मन मे विचार उठा कि इस अग्निकाण्ड के विषय मे ही नया नाटक लिखू, जिसका नाम होगा 'जल कर भी जो नही जला'। किन्तु सवाल था—वह नाटक खेला कहाँ जायेगा? अनेक शुभ-चिन्तक सान्त्वना देने मेरे पास आते रहते थे। मै प्राय अपने नये नाटक की बात सब से किया करता था। एक दिन सीतारामजी भी आये। जब दूसरे सहयोगी चले गये, तब वे अत्यन्त विह्वल स्वर मे बोले—"तरुण बाबू, आप अपना यह नया नाटक 'जल कर भी, जो नही जला' श्री शिक्षायतन मे हमारे स्टेज पर खेलिये। चैरिटी शो कर के रुपया इकट्ठा कीजिये। फिर थियेटर सेन्टर बन जायेगा। हम सब आपके साथ हैं।" सीतारामजी की आन्तरिकता से ऐसा भीगा कि मै आसू नही रोक सका। उनकी राय के अनुसार श्री शिक्षायतन मे नाटक किया। कुछ दिनो बाद थियेटर सेन्टर फिर से बन गया।

जीवन के पथ मे चलते-चलते मनुष्य बहुत-सी बाते भूल जाता है। मै भी भूल जाऊँगा, भूल सकता हूँ, पर मरुद्यान के इस अद्भुत मानव को मै कैसे भुला सकता हूँ?

—— o ——

साहित्य-मर्मज्ञ,
तुलसी-ग्रथावली एव
अन्यान्य ग्रथो के यशस्वी सम्पादक

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

परम शीलवान् व्यक्तित्व

शीलवान् पुरुष का यह लक्षण बताया गया है कि वह दूसरो के प्रति जो उपकार करता है, उसे इतना तुच्छ और नगण्य समझता है कि उसकी चर्चा चलने पर उसे स्वाभाविक सकोच होता है और वह समझता है कि मैने कुछ भी नही किया, मुझे व्यर्थ महत्व दिया जा रहा है, दूसरी तरफ कोई उसके प्रति छोटा-सा भी उपकार कर देता है, तो उसे वह इतना बडा मान बैठता है कि निरतर वह कृतज्ञता के भाव से यह समझ कर दबा रहता है कि इसने न जाने मुझ पर कृपा का कितना भार लाद दिया कि न तो मै इससे उऋण हो सकता, न इसका प्रत्यु-पकार कर सकता। ऐसे उदार, सात्विक, शील से सम्पन्न पुरुष से प्रथम बार ही मिलने पर सहसा हृदय उत्फुल्ल हो उठता है, मन को विचित्र स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती है और आत्मा को सात्विक आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार के शीलवान् पुरुषो मे श्री सीतारामजी सेकसरिया का नाम अत्यत निश्छलता के साथ स्मरण किया जा सकता है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग और नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से सबध होने के कारण और उनके द्वारा प्रवर्तित प्रसिद्ध सेकसरिया पुरस्कार के कारण मै उनके नाम और यश से लगभग ४५ वर्ष से परिचित रहा हूँ। किन्तु मेरी और उनकी घनिष्ठता उस समय बढी, जब मै श्री मथुरादास बिनानी विद्यामदिर का प्राचार्य होकर कलकत्ता रहने लगा था। उस अवधि मे मुझे उनके साथ अनेक सामाजिक, साहित्यिक और सार्वजनिक उत्सवो तथा सभाओ मे जाने और भाषण देने के अवसर प्राप्त होते रहे। इन सभी अवसरो पर उनके शीलपूर्ण व्यवहार, सयत वाणी और अपूर्व निष्ठा से मै निरतर प्रभावित होता रहा।

पिछले साठ वर्षो मे उन्होने समाज के उन्नयन, शिक्षा के विस्तार तथा साहित्य और सस्कृति की सुरक्षा के निमित्त जो नि स्वार्थ, निरालस और तत्परतापूर्ण कार्य किया है, उसके प्रत्यक्षदर्शी साक्षियो का अभाव नही है, जो आज भी उनके गुणो और कार्यो की प्रशसा करते अघाते नही है।

एक बार पारस्परिक बातचीत के प्रसग मे उन्होंने बताया कि किस प्रकार घर का बँटवारा होते समय उन्हे जो छोटा भाग प्राप्त हुआ, उसीसे वे सतुष्ट और प्रसन्न होकर जीवन-निर्वाह करते रहे और उस सतोष-वृत्ति से उन्हे मानसिक शाति के साथ लौकिक साधन भी प्राप्त होते रहे। उसी प्रसग मे उन्होंने जीवन मे अनेक बार उन आर्थिक सकट की घडियो की भी चर्चा की जिन्होने गम्भीर तर्जन करके उनके मन को विचलित करने का पूर्ण प्रयास किया किन्तु उन्होने अपने अपरिमित धैर्य और अतुल सतोष से उन सब जटिल परिस्थितियो पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली।

श्री सेकसरियाजी का सारा जीवन कर्त्तव्य-निष्ठ, तपस्वी, अनवरत साधक और सात्विक त्यागी पुरुष का जीवन रहा है, जिसमे उन्होने सग्रह की अपेक्षा उत्सर्ग को, परिग्रह की अपेक्षा अपरिग्रह को और सचय की अपेक्षा दान को ही सदा अधिक महत्त्व दिया। यह कम आश्चर्य की बात नही है कि लोलुपता और स्वार्थ-परता के इस युग मे भी ऐसे कर्मठमनस्वी विद्यमान हैं, जिन्होंने 'पर' के लिए 'स्व' को पूर्णत समर्पित करने मे कभी कोई सकोच नही किया।

श्री सेकसरियाजी की सब से बडी श्लाघनीय विभूति उनकी सत्य-निष्ठा रही है, जिसकी झाकी उनकी लिखी हुई 'एक कार्यकर्त्ता की डायरी' के प्रत्येक पृष्ठ से मिलती चलती है। समाज मे कार्य करने वाले अधिकाश व्यक्ति प्राय सामाजिक शील और सयम का बहाना लेकर या मिथ्या शिष्टाचार की ओट मे या तो अपने सहयोगी और नेताओ की क्षुद्र चाटुकारी करते चलते है अथवा अपनी आत्मा के साथ प्रवचना कर के किसी भी व्यक्ति का अनावश्यक, अनुचित एव असगत छिद्रान्वेषण करने मे अपना गौरव समझते है। सेकसरियाजी ने अपनी दृष्टि से जो कुछ सत्य समझा अथवा जहाँ कही उन्होंने अपने सहयोगी या नेता के चरित्र, आचरण, वाणी या स्वभाव मे किसी प्रकार का कोई भी छिद्र देखा, उसे अपनी डायरी मे निश्छद्म भाव से सयत, शिष्ट और शालीनतापूर्ण शब्दो मे अभिव्यक्त करने मे न कोई कृपणता की, न सकोच किया। ऐसा प्रशस्त पुण्य-पथ वही पुरुष ग्रहण कर सकता है, जिसका चरित्र स्वय अवदात और उदात्त हो तथा जिसने स्वय सत्य को समझा, परखा और उसका व्यवहार किया हो। अपने इसी दैवी गुण के कारण श्री सेकसरियाजी इस युग के महापुरुष महात्मा गाधी के प्रिय पात्र और विश्वस्त अनुगामी होने का गौरव प्राप्त कर सके।

अपने कलकत्ता प्रवास मे मैं उनसे प्राय विक्टोरिया मेमोरियल के उद्यान मे भेट करता रहा हूँ और अनेक विषयो पर उनसे विचार-विमर्श भी करता रहा हूँ। मानस चतु शताब्दी समारोह की विश्व-व्यापी योजना के प्रसग मे जब तुलसी ग्रथा-वली प्रकाशित करने का प्रस्ताव किया गया और प्रसगवश जब सेकसरियाजी से उसकी चर्चा चली तो उन्होने तत्काल अपने मित्रो को प्रेरित कर के उसके प्रकाशन के निमित्त ऐसी सुदृढ व्यवस्था कर दी कि गोस्वामी तुलसीदासजी के सब ग्रथ सवत् २०३० के 'नवमी सोमवार मधुमासा' आरम्भ होने के पूर्व ही सटीक प्रकाशित कर दिए जा सके। अखिल भारतीय विक्रम परिषद् के व्यवस्थापक प० गयाप्रसादजी

ज्योतिषी ने तुलसी ग्रंथावली के 'कृतज्ञता-प्रकाश' में नितान्त सत्य ही लिखा है कि "इस ग्रंथावली के प्रकाशन का सारा श्रेय श्री सीतारामजी सेकसरिया को ही है।"

उस वर्ष काशी में श्री रामेश्वर टाँटिया के साथ बैठ कर यह विचार किया गया कि संवत् २०३५ में महाकवि सूरदास की पंचम जन्म-शताब्दी के पूर्व ही तुलसी ग्रंथावली के समान सूर ग्रंथावली भी प्रकाशित कर दी जाय। ज्योंही यह प्रस्ताव कलकत्ता में श्री सेकसरियाजी के सम्मुख प्रस्तुत किया गया, त्योंही उन्होंने अविलम्ब उस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने की सारी व्यवस्था पूर्ण कर दी।

ऐसे संकल्पशील और तत्परतापूर्ण सहयोग देने वाले पुरुष संसार में बहुत कम देखने को मिलते हैं जिन्होंने अपने सद्वृत्त तपोमय जीवन में राष्ट्र, समाज, साहित्य, शिक्षा तथा जन-कल्याण के इतने अधिक महत्त्वपूर्ण लोक-प्रशंसित कार्य किये हों।

मैं उनके सुदीर्घ जीवन की मंगल-कामना के साथ उनका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

— o —

जैन दर्शन के पडित
लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मदिर, अहमदाबाद के निर्देशक
श्री दलसुख मालवणिया

विनम्रता की मूर्ति

कलकत्ता जब भी जाना होता, भाई भवरमलजी सिंघी के यहाँ श्री सीतारामजी से प्राय मुलाकात हो ही जाती थी। प्रात काल घूमने निकलते समय वे रास्ते मे मिल जाते और फिर उनके घर भी जाना हो जाता था। उनका वाचन विविध है, ऐसी छाप उनकी बाते सुन कर मेरे मन पर पडी है। सादगी उनका श्रेय हैं, यह उनके व्यवहार से अनुभव किया हैं। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमो मे उनकी आस्था भी मैंने देखी है—केवल आस्था ही नही उन कामो में उनका विविध प्रकार से सहयोग भी रहा है।

कलकत्ता जैसे शहर मे रह कर भी जीवन मे सादगी को निभाना आसान नही है। समृद्धि प्राप्त करके भी विनम्र रहना, यह तो और भी कठिन है। उनकी मेरे मन पर जो गहरी छाप पडी है, वह है उनकी विनम्रता की। बोलने मे ही नही, सारे व्यवहार मे ही उनकी जो विनम्रता मैंने देखी है, उससे मैंने उनको विनम्रता की मूर्ति कहना उचित माना है। अभिमान उन्हे छू भी नही गया है, यह बात तो एकबार भी कोई उनसे मिले तो स्पष्ट हो जाती है। और, उनकी विनम्रता मे दम्भ जरा भी नही है। यह उनका स्वभाव ही हो गया है, ऐसी मेरे मन पर अमिट छाप है।

मैंने सुन रखा है कि वे दानी भी हैं। खास कर विद्या के क्षेत्र मे उनका पर्याप्त दान हैं। विद्या की ओर उनकी रुचि देखते हुए यह उनके लिए सहज ही था कि वे शिक्षण के क्षेत्र मे अपना आर्थिक ही नही, मानसिक भी सहयोग दे। प्रकट दान के साथ-साथ उनका गुप्त दान भी है।

चुटकले सुनाना भी उनकी खासियत मैंने देखी है। ऊपर मे अत्यत गभीर दीखने वाले श्री सीतारामजी जब अपने अनुभव सुनाते हैं तो हास्य भी हवा हो जाता है, ऐसा मुझे स्मरण है।

व्यापारी समाज की नई पीढी मे ये पुराने लक्षण दुर्लभ हो रहे हैं। ऐसी स्थिति मे श्री सीतारामजी के विषय मे अधिक जानकारी दी जाय तो वह अवश्य प्रेरक होगी। गाधी-युग के जमनालालजी आदि व्यापारी-समाज के जो व्यक्ति स्मरणीय है, उनमे श्री सीतारामजी भी एक हैं। वे सदैव प्रेरणा देते रहे, यही मेरी प्रार्थना है, मेरा विश्वास हैं।

भारतीय ज्ञानपीठ की अध्यक्षा

श्रीमती रमा जैन

धर्म एवं कर्म का समन्वय

सन् १९३१ की बात है। मैं उस समय १८ वर्ष की थी और जीवन में आदर्शों के अंकुर फूट रहे थे। श्रद्धेय जमनालालजी बजाज दानापुर आये और वहां से मैं भी उनके साथ कलकत्ता और बंगाल की यात्रा के लिए गई। हम लोग सेकसरियाजी के यहां ठहरे थे। अपरिचितों के बीच ठहरने की प्रतिक्रिया किशोर मन की बडी तटस्थ-सी होती है, विशेषकर तब जब कि आतिथ्य के केन्द्र में कोई ऐसा बडा व्यक्तित्व हो जिसके चारों ओर सब का ध्यान लगा रहता हो। मेरे लिए यात्रा की सार्थकता यही थी कि मैं श्री जमनालालजी के साथ हूँ और उनके कार्य-व्यवहार को देख कर नयी-नयी बातें समझ रही हूँ। किन्तु, मैं विशेष रूप से इस बात से प्रभावित हुई कि जिनके यहां हम ठहरे हैं, वे स्वयं और उनकी पत्नी इस भरे-पूरे व्यस्त वातावरण में सहज रूप से मेरा ध्यान रख रहे हैं और कुछ-न-कुछ ऐसा पूछते-बताते रहते हैं जैसे कि मैं उनके लिए नयी नहीं हूँ, परिवार की सदस्य हूँ।, उनका जो स्नेह और अपनत्व उस दिन प्राप्त हुआ, वह बराबर अक्षुण्ण है।

श्री सेकसरियाजी से सम्पर्क बढता ही गया और मुझे आज याद नहीं आ रहा है कि हमारे संबंधों की प्रक्रिया में कैसे-कैसे यह अनजाने घटित होता गया कि मैं उनके प्रति अधिक आस्थावान होती गई और वे मेरे प्रति वात्सल्य के साथ-साथ एक ऐसा भाव जोडते गये जो आश्वस्त करता गया कि उन्होंने मुझे अपनी दृष्टि में ऊँचा उठाया है, मेरे व्यक्तित्व के विकास को आदर दिया है। सेकसरियाजी का विशेष गुण ही यह है कि वे प्यार और आदर देकर व्यक्ति की महत्ता को उभारते हैं।

श्री सीतारामजी सेकसरिया मनसा, वाचा, कर्मणा जीवन के आदर्शों के साधक हैं। उनकी भगवद्-भक्ति समाज-सेवा है, उनकी कर्मठता ने जमाने की मांग को मूल से समझा है। वे उन कुछ इने-गिने व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने देश की व्यापक चेतना में, राष्ट्र-जागरण के क्षेत्र में बहुत शुरू में कदम रखा। सेकसरियाजी जब कार्य-क्षेत्र में आये तो उन्होंने अनुभव किया कि व्यापारी समाज को युग की मांग और युग की चेतना को समझ कर नये प्रकाश और नई ज्योति से उसे देखना होगा और उन्होंने अपना तमाम जीवन इस दिशा को दिखाने में लगा दिया।

जड की चीज थी शिक्षा। व्यापक रूप में उन्होंने इसको अपना क्षेत्र चुना और विशेषतया स्त्री-शिक्षा को। कोई शिक्षा-शास्त्री होता, विद्या के क्षेत्र में जाना-माना

होता, साधन-सम्पन्न होता, वह अगर ऐसे कठिन काम को उठाता तो स्वाभाविक हो सकता था, लेकिन सेकसरियाजी ने सीमित क्षमताओ के होते हुए भी ऐसे कठिन और व्यय-साध्य क्षेत्र को चुना, यह सोचते है तो आश्चर्य होता है। कितनी बडी मजिल थी, कितना लम्बा और बोहड रास्ता था। सघर्ष तो पग-पग पर था ही। किस बूते पर सेकसरियाजी ने इस अगम्य, गहन रास्ते पर पाव धरा ? जरूर अन्त प्रेरणा थी, भरपूर मनोबल था, अपनी क्षमता की पहचान थी, एक चुनौती को झेलने का अदम्य साहस था। सेकसरियाजी ने शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना की कल्पना की, उनके लिए साधन जुटाए, समाज मे जन-मत तैयार किया, बल्कि यह भी हुआ कि घर-घर जाकर घर के बडो को, स्त्रियो को आदरपूर्वक, प्रेमपूर्वक समझा-बुझाकर बालिकाओ को पाठशालाओ और सस्थाओ मे पढाने के लिए लाए। सेकसरियाजी ने जागरण और चेतना के यज्ञ के लिए ऐसा मत्र फूका कि समाज के समृद्ध वर्ग मे और सामान्य वर्ग से भी महिलाए शिक्षा के कार्य मे जुटने लगी। यह उन्ही की सामर्थ्य थी कि इस एक कार्यक्रम को केन्द्र मे रख कर उन्होने मारवाडी समाज की महिलाओ को देश के व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलनो से जोड दिया और समर्थ कार्यकर्त्रियाँ समाज को दी। शिक्षा, समाज-सुधार, राष्ट्रीय आन्दोलन, कार्यकर्त्ताओ का निर्माण, सभी क्षेत्रो मे सेकसरियाजी का अवदान मुखरित है।

सेकसरियाजी कहते है—"मुझ मे क्या था, भगवान की कृपा थी। उसने जैसा चाहा, कराया।" उनकी निष्ठा का मूल स्रोत यही है। उनकी आस्था अडिग है। यह आस्था धर्म है। इसी आस्था ने सेकसरियाजी के धर्म को कर्म के साथ जोडा है। यही कारण है कि सेकसरियाजी ने धर्म के क्रियाकाण्डी रूप को त्याग कर उसे 'कर्म' के साथ सहज भाव से जोड दिया है। धर्म और कर्म उनके लिए एक-रूप हो गये है।

मेरे मन मे सदा ही उनके प्रति एक सहज श्रद्धा-भाव रहा है। पूज्य जमनालालजी बजाज के अनुशासन मे रह कर मैंने जिन प्रभावो को ग्रहण किया था, उन प्रभावो की जीवन्तता की याद सेकसरियाजी के सम्पर्क से बनी रहती है। उन आदर्शो और प्रभावो से देश का जीवन आज बहुत दूर चला गया है। उन दिनो आत्म-त्याग के मार्ग से जो हम पाते थे, आज हम दूसरे मूल्यो को पा कर उनको रीतते चले जाते है। सेकसरियाजी ने उस युग के प्रभावो को अक्षुण्ण रखा है, उनसे सन्तुलन भी बिठाया है। आदर्शो की दीप-शिखा देश मे बुझ नही गई है, उन्हे देख कर यह भरोसा होता है।

सेकसरियाजी बहुत लम्बी अवधि से भारतीय ज्ञानपीठ के ट्रस्टी है। ज्ञानपीठ के विकास मे उनका सहयोग महत्वपूर्ण रहा है। उनसे सतत सम्पर्क का सूत्र इस कारण से भी विशेष रूप से रहा है। हमारे परिवार के कल्याण की भावना से व सदा ओत-प्रोत रहे है। वास्तव मे, हम उन्हे अपने परिवार के अग्रज के रूप मे ही मानते है और इससे गौरवान्वित होते है।

उनके अभिनन्दन-ग्रन्थ के लिए अपने श्रद्धा-सुमनो के रूप मे ये कुछ पक्तिया लिख कर मुझे सुख मिला है।

—— ० ——

हिन्दी और राजस्थानी के सुप्रसिद्ध कवि
राजस्थान साहित्य अकादमी के परामर्शदाता

श्री कन्हैयालाल सेठिया

प्रणाम !

जो है स्वयं प्रणाम उसे मैं
नमन करूँ तो कैसे ?
जो है स्वयं अकाम कामना
वपन करूँ तो कैसे ?

मूर्त नहीं "मैं" उसके "तू" को
फूल चढ़ाऊ कैसे ?
मौन मुखर है जिसका, उसके
सन्मुख गाऊ कैसे ?

शब्दों की अ-कला से जीवन-
कला बंधे तो कैसे ?
तू विराट, मेरे वामन से
भला सधे तो कैसे ?

—— ० ——

हिन्दी और राजस्थानी के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यालोचक
बिड़ला शिक्षा न्यास के मंत्री

डा० कन्हैयालाल सहल

सौम्य व्यक्तित्व

आज से ४५ वर्ष पहले की बात है। मैं प० हीरालालजी शास्त्री द्वारा सचालित 'राजस्थान छात्रावास' मे रहा करता था। मैं उन दिनो मॉनीटर था और जहाँ तक स्मरण है, कई वर्षो तक उसी पद पर काम करता रहा। समाचार-पत्र पढने का मुझे बचपन मे ही शौक था। छात्रावास मे अनेक अखबार आया करते थे। गाँधीजी के 'यग इण्डिया' का तो मैं प्रत्येक शब्द बडे ध्यान मे पढा करता था। उन दिनो मेरे मन मे यह इच्छा हुआ करती थी कि अपने युग के विशिष्ट व्यक्तियो के दर्शन करूँ और देश-भक्ति पूर्ण उनके व्याख्यान भी सुनू। मैं इण्टर-मीजियट (प्रथम वर्ष) का विद्यार्थी था और अवस्था लगभग १७ वष थी। प्रति-दिन प्रात काल मैं सभी छात्रो को ८ बजे ही जगा दिया करता था। उठने के बाद सबसे पहले सामूहिक प्रार्थना होती और फिर हम लोग अपने-अपने काम मे लग जाते थे।

सन् १९२८ के दिसम्बर मे हम लोग छुट्टियो मे अपने-अपने घर जाने की तैयारी कर रहे थे। मैंने भी घरवालो को सूचित कर दिया था कि मैं अमुक तिथि को नवलगढ पहुँच रहा हूँ। प्रार्थना के बाद कभी कोई आवश्यक बात कहनी होती तो मैं कह दिया करता था। उस दिन अकस्मात्, जहाँ तक मुझे याद है मैंने यही विचार दोहराया कि अपने युग के विशिष्ट व्यक्तियो के दर्शन करने चाहिए और इसका सबसे अच्छा मौका हाथ लग सकता है, यदि हम कलकत्ता कॉग्रेस मे सम्मिलित हो। यह विचार सब को अच्छा लगा किन्तु सभी तो अपने-अपने घर जाने की तैयारी मे लगे थे और कलकत्ता पहुँचने का 'जोगाड' भी तो किसी के पास नही था। तथापि यह विचार दृढ निश्चय मे बदल गया और हम लोगो मे से प्रत्येक ने कलकत्ता की यात्रा के लिए आवश्यक रुपये एकत्र कर लिए। अपने-अपने घरो को प्रस्थान करने के बजाय हम लोग कलकत्ता रवाना हो गये। यह सब अप्रत्याशित ढङ्ग से हुआ किन्तु दृढ विचार कार्य के रूप मे परिणत हो गया और कलकत्ता पहुचने पर श्री सीतारामजी सेकसरिया ने कांग्रेस-अधिवेशन के दिनो मे हम लोगो के आवास तथा भोजनादि की व्यवस्था कर दी। कलकत्ता

कांग्रेस के सभापति थे पं० मोतीलालजी नेहरू। उसी वर्ष महात्मा गांधी की अध्यक्षता मे राष्ट्र-भाषा सम्मेलन भी हुआ। हम लोगों ने मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, सुभाष बोस, पं० मदनमोहन मालवीय, सरदार पटेल, मणिलाल कोठारी आदि नेताओ को देखा और उनके भाषण सुने। श्री सीतारामजी सेकसरिया नवलगढ के ही निवासी होते हुए भी उनसे साक्षात्कार का इससे पहले कभी सुयोग नही मिला था। उसके बाद तो मैंने उनके भाषण भी सुने जो भावोद्रेक, तन्मयता, आदि अनेक दृष्टियो से उल्लेखनीय हैं। मुझे यह भी पता चला कि मेरे पिताजी के वे मित्र है और उन्हे बहुत मानते है। उस नाते मैं उनके और भी निकट आता चला गया। मेरी सब से पहली पुस्तक 'समीक्षाजलि' जब छपी, तब पिताजी ने सबसे पहले उसकी एक प्रति श्री सेकसरियाजी को भिजवाई। सन् १६३६ मे मै हिन्दी विभाग के अध्यक्ष के रूप मे पिलानी कालेज मे अध्यापन कार्य करने लगा। प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से मेरी एक-एक पुस्तक निकलती गई और शायद ही कोई ऐसा अवसर आया हो जब मैने सेकसरियाजी को पुस्तक न भिजवाई हो और उनका प्रशस्ति-सूचक पत्र मुझे न मिला हो। श्री सेकसरियाजी के अनेक पत्र मैं प्रकाशित भी करवा चुका हूँ।

मेरे पिताजी के स्वर्गवास के बाद जिन तीन-चार व्यक्तियो का पितृ तुल्य वात्सल्य मुझे प्राप्त हुआ है, उनमे श्री सेकसरियाजी अग्रगण्य हैं। मुझे जब वे पत्र लिखते तो पुस्तक की प्रशसा के साथ-साथ सारे परिवार का स्मरण करते। पूज्य पिताजी की मैत्री का स्मरण दिलाते, प्रत्येक भाई का नामश उल्लेख करके अपनी आत्मीयता का परिचय देते।

सितम्बर सन् १६६७ मे जब मैं बाबू घनश्यामदासजी बिडला के निमत्रण पर कलकत्ता गया तो श्री सेकसरियाजी से मिले बिना कैसे लौटता? उनके कलकत्ता स्थित आवास पर उनसे मिलने गया और मुझे देख कर उन्हें बेहद खुशी हुई। उन्होने इतनी बडी अवस्था मे भी अपनी सस्था 'श्री शिक्षायतन' को घूम-घूम कर, सीढियाँ चढ कर मुझे दिखलाया और अध्यापिकाओ आदि से मेरा परिचय करवाया। मानवीयता, दया, ममता, स्नेह, आत्मीयता, हृदय की कोमलता आदि अनेक स्पृहणीय गुण सेकसरियाजी के व्यक्तित्व के अपरिहार्य अग बन गये हैं। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध मे उन्होंने जो कुछ किया है, मेरी दृष्टि मे वह बेमिसाल है। नारी को उन्होने आदर-सत्कार और एक प्रकार की विशिष्ट आभा और गरिमा से मडित किया है।

अपने भावो को सरल और प्रभावक शब्दो मे प्रकट कर देने की उनमे आश्चर्य-जनक क्षमता है, जैसा कि उनके लेखो और व्याख्यानो से विदित है।

गाँधी और रवि बाबू दोनो का बडा प्रभाव उन पर देखा जा सकता है। सुरुचि, सौंदर्य-प्रियता और पर-हित-कातरता के वे ज्वलत निदर्शन हैं।

एक दिन मुझे सुनाने लगे—रवि बाबू के पास एक मेडिकल कालेज का छात्र गया और उनके समक्ष आँखो के रेटिना आदि की चर्चा करने लगा। गुरुदेव ने

कहा—बस, यह सब तुम रहने दो। मुझे तो आँखो का समग्र समन्वित रूप ही सुन्दर और आकर्षक लगता है। रवि बाबू जैसे साहित्यकार से इस प्रकार के उत्तर की आशा की जा सकती थी।

मैं भी सोचता हूँ, सेकसरियाजी के जीवन का खडश विश्लेषण करना मेरे लिए न सम्भव है, न उचित ही क्योकि मैं भी समन्वित समग्रता मे ही जीवन के सौंदर्य की अनुभूति कर पाता हूँ।

शरीर से सुन्दर, मन से निर्मल और सत्य-निष्ठा के प्रबल पृष्ठपोषक सौम्य तथा आकर्पक व्यक्तित्व वाले श्री सेकसरियाजी शताधिक वर्ष तक जीवित रह कर मानव-कल्याण करते रहें, यही मेरी अन्यतम कामना है।

—— o ——

स्वर्गीय जमनालाल बजाज के कनिष्ठ पुत्र,
प्रसिद्ध उद्योगपति

श्री रामकृष्ण बजाज

सौम्य एवं प्रेमल मूर्ति !

पूज्य पिताजी के अनेक मित्र रहे है। जब से पिताजी गांधीजी के सम्पर्क मे आये और उनके मार्ग-दर्शन मे विभिन्न रचनात्मक कार्यो मे हिस्सा लेना उन्होने शुरू किया, तभी से वे बराबर अच्छे-अच्छे व्यक्तियो की खोज मे लगे रहते थे। किस तरह से बापूजी का काम आगे बढाया जाय, उसमे किस-किस की मदद मिल सकती है, इसकी तरफ उनकी बराबर नजर रहती थी।

इसी तरह के सार्वजनिक कामो के लिए योग्य व्यक्तियो की खोज मे श्री सीतारामजी सेकसरिया से उनका सम्बन्ध आया। दरअसल पूज्य पिताजी गांधीजी के सम्पर्क मे आये, उसके पहले से ही वे सार्वजनिक कामो मे दिलचस्पी लेते थे और श्री सीतारामजी से उनका बहुत पहले ही सम्पर्क हो गया था। अग्रवाल महा-सभा के सिलसिले मे और कलकत्ता मे राष्ट्रीय कामो को सगठित करने के लिए पिताजी जब कलकत्ता गये, तब पहले जिन लोगो का सम्पर्क उनसे आया, उनमे सीतारामजी का होना स्वाभाविक ही था।

पूज्य पिताजी का सम्बन्ध अनेक तरह के सार्वजनिक लोगो से अनेक स्तरो पर रहा, लेकिन श्री सीतारामजी के साथ सिर्फ उनका ही नही बल्कि सारे परिवार के लोगो का जो सम्बन्ध बना और अब तक कायम है, वह एक विशेष स्थान रखता है। पिताजी के जमाने मे भी जब हम छोटे बच्चे थे, उनसे मिलना होता रहता था और अब भी मिलते है। हम लोगो के लिए उनके सच्चे प्रेम का वर्णन शब्दो मे करना सभव नही है। सार्वजनिक कार्यकर्ताओ मे परिवार के इतने निकट आ कर परिवार का ही व्यक्ति बन जाना जिस तरह से सीतारामजी के लिए सभव हुआ, अन्य दूसरे किसी व्यक्ति के लिए शायद ही हो पाया। हम लोगो ने शुरू से ही उन्हे परिवार का ही व्यक्ति माना है और उसमे कभी किसी तरह का फर्क नजर नही आया। पिताजी के भाई के रूप मे ही वे रहे और पूज्य माताजी के तो और भी निकट के भाई बन गये। हम सब बच्चो के तो वे चाचा के समान ही हमेशा रहे है। पूज्य पिताजी के जाने के बाद भी इस रिश्ते मे कोई फर्क नही पडा।

इतना प्रेम श्रौर हम सब लोगो की इतनी चिंता हमेशा रखते है कि सगे चाचा भी शायद ही रख सकें। हम लोगो की खुशी श्रौर वृद्धि से उनको हार्दिक खुशी होती है श्रौर हम लोगो की तकलीफ से तकलीफ। वे किसी तरह से भी हम लोगो की मदद कर सकें तो वहुत खुशी से करने को हमेशा तैयार रहते है। हम लोग जव भी कलकत्ता जाते है तो उनसे मिले बगैर मन नही मानता श्रौर यह वात सिर्फ मेरे लिए नही, परिवार के सभी लोगो पर लागू होती है। उनकी वही सौम्य एव प्रेमल मूर्ति हमेशा सहानुभूतिपूर्वक मदद करने को तैयार मिलेगी। इस तरह का सम्बन्ध उनका सैकडो परिवारो से है श्रौर यही श्रनुभव सव लोगो का है।

कलकत्ता मे जिन सस्थाश्रो से उनका सम्पर्क है, उनमे वे इतना समय लगाते है श्रौर एकाग्रता से ध्यान देते है, मानो वह सार्वजनिक काम न होकर परिवार का ही कोई काम हो। इन सस्थाश्रो मे कार्य करनेवालो की हर तरह की समस्याश्रो को सुलझाने का जिम्मा भी वे सहज ही श्रपने ऊपर ले लेते है। कोई श्रपने व्यापार मे जैसी दिलचस्पी लेता है, वैसी ही दिलचस्पी वे सस्थाश्रो मे लेते हैं। विना किसी राजनीतिक महत्वाकाक्षा के इतनी तन्मयता से सतत सार्वजनिक सेवा करने वाले श्राज के जमाने मे वहुत ही कम दिखाई देगे। उन्होने श्राज तक किसी पद की श्रपेक्षा नही की। जीवन भर सेवा ही सेवा की है श्रौर खुशी-खुशी की है। उनका सारा जीवन सतत सेवामय रहा है। गगा की पवित्र धारा के समान शुद्ध, निर-पेक्ष भाव से जो भी उनके पास श्राया, चाहे छोटा हो या वडा, उसने हमेशा उनसे कुछ पाया ही है।

मैं श्री सीतारामजी को हृदय से प्रणाम करता हूँ श्रौर ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हे श्रनेक वर्षो तक पूर्ण स्वस्थ श्रवस्था मे रखे, जिससे उनके द्वारा समाज की सतत सेवा होती रहे।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध समाज-सेविका

श्रीमती सौदामिनी मेहता

निर्मल और विनम्र !

कलकत्ता मे मैं बीम वर्ष रही हूँ। उस ममय मैं वहाँ कई स्त्री-पुरुषो के समागम मे आई। उनमे मे कितनो ही को तो भूल भी गई हूँ, कुछेक के सिर्फ नाम याद है, पर जिन थोडे से व्यक्तियो की मेरे मन पर गहरी छाप पडी, उनमे से एक श्री सीतारामजी सेकसरिया है। चालीम वर्षो मे मैं श्री सीतारामजी को जानती हूँ। आज भी जब कभी कलकत्ता जाती हूँ तो सीतारामजी मे अवश्य मिलती हूँ।

सन् १९२८ के दिसम्बर महीने मे कलकत्ता मे कांग्रेस का अधिवेशन था। उसके साथ ही समाज-सुधार परिषद् का सम्मेलन भी था। सब से पहले इस सम्मेलन मे ही मैं उनसे मिली, ऐसा याद आता है। उसके बाद तो उनसे मेरा परिचय और सम्बन्ध दिन-प्रति-दिन बढता ही गया और उनके साथ समाज-सेवा के कई कार्य करने के प्रसग भी आये। इसे मैं अपना सद्भाग्य मानती हूँ।

उन्ही के सहयोग से सन् १९३४ मे कलकत्ता मे हरिजन बाल मन्दिर की स्थापना हुई, जो आज भी चल रहा है। श्री सीतारामजी ने मुझे मारवाडी बालिका विद्यालय की कार्यकारिणी समिति का भी सदस्य बनाया। इस सस्था को सुधारने के लिये वे सतत प्रयास करते रहे हैं।

श्री सीतारामजी अपने सदा हसते चेहरे तथा निर्मल और विनम्र स्वभाव के कारण बहुत लोकप्रिय है। उन्होने कभी पैसा कमाने का लोभ नही रखा। समाज सेवा के कार्य मे ही उन्होंने अपना सारा जीवन अर्पित कर रखा है। शिक्षा, विशेष कर स्त्री-शिक्षा की प्रवृत्तियो मे उन्हें अत्यन्त रस आता है। यही कारण है कि उन्होंने अथक परिश्रम कर के श्री शिक्षायतन नाम की सस्था स्थापित की।

श्री सीतारामजी पूज्य गाँधीजी के अनुयायी रहे है और उनके सत्याग्रह आंदोलन मे एक से अधिक बार जेल भी गये हैं। इस प्रकार मे देश की आजादी प्राप्त करने की दिशा मे भी उन्होने अपना बहुमूल्य अश-दान किया है। हरिजन-सेवा के काम मे भी उनका महत्वपूर्ण अवदान है। जब मैं हरिजन सेवक सघ की बगाल शाखा की अध्यक्षा थी, तब श्री सीतारामजी भी सघ के एक सक्रिय सदस्य थे। वास्तव मे, गरीबो का हित ही हमेशा उनके हृदय मे सब से अधिक रहा है।

श्री सीतारामजी 'सादा जीवन और उच्च विचार' के जीवन्त उदाहरण है। वे दीर्घायु हो और सुखी एव स्वस्थ रहें, यही मेरी अतर-कामना है।

—— ० ——

समाज-सेवी और राष्ट्र-कर्मी,
मारवाडी समाज के वरिष्ठ नेता,
पश्चिम बगाल विधान सभा के भूतपूर्व अध्यक्ष
और तत्पश्चात् विधि मत्री

श्री ईश्वरदास जालान

पथ-प्रदर्शक !

श्री सीतारामजी की आयु ८० वर्ष पार कर गयी है। इस दीर्घ जीवन का अधिकाश भाग उन्होने जनता-जनार्दन की सेवा मे ही विताया है। बहुत थोडी उम्र से ही उन्होने व्यवसाय-धधा छोड कर सारा समय लोकोपकारी कार्यो मे व्यतीत किया है। ऐसे आदामी आज के युग मे बहुत कम मिलेंगे। इस दीर्घ सार्वजनिक जीवन मे उन्होने किसी पद की अभिलाषा नही की और अपने को निष्कलक रखा। इससे अधिक गौरव का विषय और क्या हो सकता है ? सरकार ने भी इन्ही गुणो से आकृष्ट होकर उन्हे पद्मभूषण की उपाधि से अलकृत किया है।

१९१४ मे मै कलकत्ता आया। उसके थोडे दिनो बाद ही उनके साथ परिचय हुआ। वे महात्मा गाधी के सत्याग्रह-आन्दोलन से प्रभावित हो कर उसमे कूद पडे और उसके कारण जेल यातना का कष्ट भी उन्हे भोगना पडा। राजनीतिक कार्यो के अतिरिक्त समाज-सुधार के आन्दोलनो मे भी उनका सदैव प्रमुख हाथ रहा। उस समय देश मे ऐसी हवा वह रही थी कि राजनीतिक आदोलन के साथ-साथ सामाजिक सुधारो का भी आन्दोलन आवश्यक हो गया था। सामाजिक आन्दोलनो मे सीतारामजी हमेशा अगुआ रहे।

वे निरतर सेठ जमनालालजी बजाज और महात्मा गाधी के सान्निध्य मे रहे, उनके जीवन से उन्हें बहुत शिक्षा मिली और उनके उपदेशो का प्रभाव उनके जीवन पर गहरा पडा। स्त्री-शिक्षा और मातृ-जाति के उत्थान के कार्यो मे उनकी हमेशा ही विशेष अभिरुचि रही है। मारवाडी बालिका विद्यालय और श्री शिक्षायतन के तो वे प्राण ही रहे। इन दोनो सस्थाओ की शायद कोई ही बालिका होगी जिसे वे अच्छी तरह नही जानते हो। और, इन शिक्षा-सस्थाओ मे पढनेवाली बालिकाओ का भविष्य उत्तम हो और वे देश की अच्छी नागरिक बन सके इसका वे सदा प्रयत्न करते रहे। आज भी उनका जीवन इसी कार्य मे व्यतीत हो रहा है।

मारवाडी समाज व्यापारी समाज है। इस समाज के लोग उद्योग ग्रौर व्यापार मे ही ग्रत्यधिक फसे रहते है। ऐसे समाज मे रह कर भी सीतारामजी ने त्याग का जो ग्रादर्श उपस्थित किया, वह नयी पीढी के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य करता रहेगा। मै अपनी श्रद्धाजलि इस पुनीत ग्रवसर पर उनके प्रति ग्रर्पण करता हूँ ग्रौर ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हे ग्रौर भी ग्रधिक जीवन प्रदान करे ग्रौर स्वस्थ रखे, ताकि वे देश ग्रौर समाज की सेवा करते हुए ग्रपना शेष जीवन व्यतीत कर सकें।

——— o ———

दैनिक 'नवभारत' के संचालक
अ० भा० माहेश्वरी महासभा के सभापति

श्री रामगोपाल माहेश्वरी

प्रेरणास्पद कर्मण्य जीवन

श्री सेकसरियाजी की सार्वजनिक सेवाएँ अति विख्यात है। उनके विषय मे कुछ लिखना आवश्यक नही है। उनका व्यक्तित्व त्यागमय, आदर्शवान एवं मोहक रहा है। उनके विचार सुस्पष्ट है और उनमे चिंतनशील, एव कर्मठ व्यक्तित्व की झलक मिलती है। उन्होने सेवा का जो उदाहरण रखा, वह स्वय मे उत्कृष्ट एव प्रेरणास्पद है। उनकी सेवाओ की सुदीर्घता स्वय मे एक रिकार्ड है। हमारे बीच के ऐसे उदारमना, तपोमय, कर्मण्य जीवन का अभिनन्दन नयी पीढी के लिये एक प्रेरणा है जिसे बहुत कुछ आज ग्रहण करने की आवश्यकता है। मैं भाई सीतारामजी का इस अवसर पर हृदय से शतश अभिवादनपूर्ण अभिनन्दन करता हूँ।

--- ० ---

प्रसिद्ध साहित्यकार,
'जीवन-साहित्य' मासिक के सम्पादक

श्री यशपाल जैन

यथा नाम, तथा गुण

सन् १९४० की बात है। कलकत्ता मे पर्यूषण पर्व के अवसर पर तरुण जैन सघ के मत्री श्री भँवरमल सिघी के द्वारा एक विशाल आयोजन किया गया था, जिसमे अनेक विद्वानो ने भाग लिया था। महात्मा भगवानदीनजी, दरबारीलालजी 'सत्यभक्त', जैनेन्द्र कुमारजी तथा मै उसमे सम्मिलित होने गये थे। समारोह मुख्यत जैन समाज का था, पर जैन समाज तक ही सीमित नही था। अन्य धर्मावलम्बी प्रतिष्ठित नागरिक भी बडी सख्या मे उपस्थित थे। हजारो की भीड थी। महात्मा भगवानदीनजी तथा सत्यभक्तजी ने अपने ओजस्वी भाषणो से लोगो को हिला दिया। उन्होने समाज की दूषित रूढियो तथा कर्मकाण्डो पर बडे जोर से प्रहार किया, लेकिन मजे की बात यह कि समाज की कट्टरपथी पुरानी पीढी ने भी उस कडई गोली को सहज ही निगल लिया।

कलकत्ता की वह मेरी पहली यात्रा थी। बहुत से विशिष्ट व्यक्तियो से परिचय हुआ। अधिकाश व्यक्ति मारवाडी समाज के थे, जिनका उस महानगरी मे प्राधान्य था। उस समय के परिचय के कुछेक नाम आज स्मृति से उतर गये हैं, लेकिन उनमे एक महानुभाव थे, जिनकी मेरे किशोर मन पर गहरी छाप पडी। उनकी कुछ विशेषताए थी, जिन्होंने मुझे उनकी ओर आकर्षित किया। पहली तो यह कि उनका बाह्य रूप बडा ही मनोरम था। भावना से भरी आखे, चिन्तन की रेखाओ से युक्त ललाट, सौम्य चेहरा, गौर वर्ण। इन सब के साथ उनकी भाव-भगिमा मे कुछ ऐसी तरलता थी, जो उन्हें अन्य व्यक्तियो से पृथक पक्ति मे खडा कर देती थी।

दूसरी बात यह कि वे मारवाडी समाज के होते हुए भी उस समाज से भिन्न थे। मारवाडी समाज की धनिकता उनमे नही दिखाई देती थी। लगता था, जैसे उनकी आस्था कुछ दूसरे ही मूल्यो मे है। समाज के हित-चिंतन तथा हित-साधन के लिए ही मानो वे समर्पित थे। यही कारण है कि उनसे मिलकर मुझे ऐसा नही लगा कि हम पहली बार मिल रहे हैं, बल्कि अनुभव हुआ, जैसे हम एक-दूसरे को बहुत समय से जानते हो।

श्री सीतारामजी सेकसरिया से यही मेरी सब से पहली भेट थी। उस समय स्वप्न मे भी नही सोचा था कि आगे चल कर उनके निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिलेगा और हम एक परिवार के सदस्य जैसे बन जायेगे। पिछले ३४ वर्षो मे बीसियो बार कलकत्ता गया हूँ, लेकिन एक भी ऐसा प्रसग याद नही आता, जब कि उनसे बिना मिले लौट आया होऊँ। कहावत है कि किसी व्यक्ति के बहुत निकट जाने पर उसके प्रति अवज्ञा होने लगती है। यह स्वाभाविक है, क्योकि पास जाने पर व्यक्ति के दोष ज्यादा दिखाई देने लगते है, लेकिन अतरात्मा की साक्षी मे मैं कह सकता हूँ कि सीतारामजी के साथ ज्यो-ज्यो मेरा सम्पर्क बढता गया, उनके प्रति मेरे अनुराग और आदर मे वृद्धि होती गई। उनमे कमिया नही है, यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी, लेकिन कुल मिला कर उनका जो चित्र उभरता है, वह बडा ही स्पृहणीय है। उनमे कुछ अपनी विशेषताएँ है। दुनिया मे रहते हुए भी वे दुनियादार नही हैं, उनमे सदाशयता कूट-कूट कर भरी है और सेवा के प्रति समर्पित उनका हृदय अत्यन्त स्पन्दशील है। हम लोग जब-जब मिलते है, वे सब से पहले परिवार तथा निकट के व्यक्तियो की कुशल-क्षेम पूछते हैं, आपसी दुख-सुख की बात करते है और तब अकस्मात उनकी स्मृति मे जाने किस-किस के चित्र तैर आते है। उस समय उनकी आकृति देखने योग्य होती है। आत्मीयता, प्रेम, श्रद्धा से उनका चेहरा दीप्त हो उठता है। उन्हे महात्मा गाधी से सेवा की, रवीन्द्रनाथ ठाकुर से सस्कृति की, लोकमान्य तिलक से देश-भक्ति की, श्री अरविन्द से अध्यात्म की प्रेरणा मिली। कहने का तात्पर्य यह कि जहा से जो भी अच्छा मिला, उन्होने उसे ग्रहण किया। वे बहुत मे राजनेताओ, चिन्तको और साहित्य-सेवियो के सम्पर्क मे आये है और समय-समय पर उनके विपय मे उन्होंने अपनी भावनाए लेखबद्ध की है। ये सस्मरण उनकी 'बीता युग नई याद' पुस्तक मे सकलित है। इन सस्मरणो मे उन्होने बडे सधे हाथ से ऐसे चित्र अकित किये है, जो पाठको को अनुप्राणित करते है।

श्री सीतारामजी पर सब से अधिक प्रभाव गाधीजी का है। गाधीजी की विशेषता यह थी कि वे सब के प्रति प्रेम रखते थे। जो उनके विरोधी थे, उन्हे तो वे और भी अधिक स्नेह देते थे। उनके प्रथम दर्शन का उल्लेख करते हुए सीतारामजी लिखते हैं--"गाँधीजी के सम्पर्क का जरा-सा स्पर्श जो भावना, जो सस्कार दे गया, वह आगे कभी नही मिटा।" एक अन्य स्थान पर वे कहते है--"बुद्ध और ईसा जैसे महापुरुषो ने अहिंसा पर काफी जोर दिया, पर अहिंसक प्रतिकार की बात गाधीजी ने बताई और उसको सामूहिक रूप दिया। उसका अनेक बार प्रयोग किया और सफलता प्राप्त की। सब से बडी बात यह है कि जिसका उन्होंने प्रतिकार किया, उसका भी वे प्रेम प्राप्त कर सके। यह उनके जीवन की महान् सफलता और चरम साधना है। राजनीतिक उपलब्धियो से भी बडा, बहुत सच्चा, बहुत निर्मल और बहुत उदार रूप उनकी जीवन-साधना का है।" सीतारामजी ने इस मत्र को अपने जीवन मे भरपूर अपनाया।

माता-पिता के स्नेह से अल्पायु मे ही वे वञ्चित हो गये थे। उसी कच्ची अवस्था मे उनका विवाह हो गया। कुछ समय पश्चात् वह पत्नी चल बसी। दूसरा विवाह किया। जन्म-भूमि को छोड कर जीविका के लिए नये क्षेत्र मे प्रवेश करना पडा। नौकरी की, वह छोडनी पडी, स्वतन्त्र धधे मे पडे। कमाई के साथ-साथ समाज-सुधार की लगन लगी। रूढि मे जकडे समाज मे उस समय नये विचारो का समावेश करना आसान न था, पर सीतारामजी आसानी से अपने रास्ते से हटने वाले नही थे। बाल-विवाह का निषेध, विधवा-विवाह का समर्थन छुआ-छूत का त्याग, कुरीतियो को तिलाजलि —ये तथा ऐसी ही कुछ अन्य चीजे थी, जिन्होने सीतारामजी के जीवन को घोर सघर्षमय बना दिया। विस्मय होता है कि इस सारे सघर्ष के बीच वे अपनी भावनाओ को किस प्रकार कोमल बनाये रख सके। उनमे व्यक्ति और समाज के प्रति कठोरता क्यो उत्पन्न नही हुई? इसका मुख्य कारण यह है कि सीतारामजी ने मातृ-हृदय पाया है। ऐसा हृदय स्वय कष्ट उठाता है, पर दूसरे को कष्ट नही पहुँचाता। वह अपने प्रति भले ही कठोर हो, लेकिन दूसरो के प्रति सदा सदय रहता है।

उन्होंने स्कूली शिक्षा नही पाई थी, लेकिन जीवन के विश्वविद्यालय की उच्चतम परीक्षा मे वे बहुत अच्छी तरह उत्तीर्ण हुए। उनकी अनुभूतिया उनकी डायरियो, जो 'एक कार्यकर्ता की डायरी' के नाम से दो भागो मे प्रकाशित हुई है, मे पढने ही बनता है। उन अनुभूतियो का पटल अत्यन्त व्यापक है। राजनीतिक, सामाजिक, औद्योगिक, सास्कृतिक, आध्यात्मिक आदि-आदि क्षेत्रों मे उन्हे जो कटु अथवा मधुर अनुभव हुए, उनकी झाकी बडी सचाई के साथ उन्होंने इन डायरियो मे प्रस्तुत की है।

सीतारामजी की करुणा सब के साथ होते हुए भी उनकी सहानुभूति उस वर्ग के साथ है, जो अभावग्रस्त है और विवशता का जीवन जीता है। बाए हाथ के सहारे कुदाली को पीठ पर लिये, फटी-मैली धोती पहने, चिथडे जैसी पगडी सिर पर लपेटे, झुर्रियो से भरे मुख, बुढापे के कारण अन्दर धसी आँखे और झुकी कमर वाले वृद्ध बटोही को जब वे यह कहते सुनते है,—"बाबू, पेट तो भरना ही पडेगा। इसीलिए इस गढे को भरने के लिए मान-अपमान, दुख-सुख सभी कुछ सहना पडता है," तो सीतारामजी की आत्मा चीत्कार कर उठती है। व्यथा-भरी आवाज उनके कानो मे गूजती है। एक कठोर सत्य उनकी आँखो के सामने साकार होकर खडा हो जाता है—"यह आदमी क्या हमारे देश की हालत का प्रतीक नही है? जिस देश मे स्त्रिया पेट के लिए तन बेचे, बच्चे बिलख-बिलख कर मर जायें और इस तरह का (बुढापे से अशक्त) आदमी कुदाली चलाने जैसा कठोर धधा करने पर बाध्य हो, वहाँ मानवता का विकास कैसे हो सकता है?"*

प्रेसीडेंसी जेल के यूरोपियन वार्ड मे अपनी कोठरी की निकटवर्ती हाजत के 'अधेरे के कैदी' की निस्वार्थ सेवा-वृत्ति को देखकर उनके ये उद्गार सहज ही

---

*'बीता युग नई याद'–पृष्ठ १६२

फूट उठते हैं,—"आदमी आदमी मे इतना फर्क क्यो ? क्या यह फर्क होना जरूरी है ? क्या यह स्वय-निर्मित है ? नही, यह फर्क जबरदस्त आदमी ने अपनी सुविधा के लिए बनाया है। अपने स्वार्थ के लिए उसने कमजोर आदमी पैदा किये है। यह फर्क एक लम्बे समय से चला आ रहा है। क्या यह बराबर इसी तरह चलता रहेगा ?"*

सत्ताधारी अथवा सम्पन्न वर्ग की अपेक्षा मानवता उन्हे निर्धन व्यक्तियो मे अधिक दिखाई देती है। अपनी ३१ जुलाई १६४० की डायरी मे वे लिखते है—"आज मानवता का एक सुन्दर दृश्य सामने आया। जब अपने खादी भण्डार से निकल कर मोटर मे बैठने लगे तो एक बुड्ढा अधा आदमी मागता हुआ जा रहा था। उसके स्वर मे करुणा थी। उसको सुन कर अपना मन उसकी ओर गया। इतने मे एक मोची, जो वही बैठा जूता बना रहा था, ने उसके पीछे जरा तेज चल कर उसके हाथ मे पैसा दिया। इस मोची के दिल मे कितनी दया है! कितना गरीब है वह, पर उसका दिल तो गरीब नही। उसमे मनुष्यता है और दुख को कम करने की उसमे इच्छा है। मानवता हर जगह हो सकती है, पर वह गरीबो के दिल मे ही ज्यादा रहती है, वही अपने को सुरक्षित समझती है। विद्वानो, धनियो, सत्ताधारियो द्वारा तो वह बराबर कुचली जा रही है।"**

समाज के निम्नतम छोर पर खडे, बेबसी के आँसू बहाते जन के प्रति गहरी सवेदनशीलता के कारण निम्न वर्ग के माने जाने वाले उन स्त्री-पुरुषो के चित्र अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन गये है, जो हमारे देश मे आज भी घोर निराशा का जीवन व्यतीत करते है और जिन्हे सम्पन्न वर्ग तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।

सीतारामजी की सेवाएँ बहुमुखी है। स्वाधीनता-सग्राम मे उन्होने सक्रिय भाग लिया और कई बार जेल गये, समाज-सुधार के लिए उन्होंने अनेक आदोलनो का सूत्रपात और सचालन किया, खादी तथा अन्य रचनात्मक कार्यों को प्रोत्साहन दिया, लेकिन उनकी जिस सेवा के कारण समाज चिर काल तक उनका ऋणी रहेगा, वह है स्त्री-शिक्षा। नारी-समाज की शक्ति तथा क्षमता मे उनका आरम्भ से ही अगाध विश्वास रहा है। उनकी मान्यता है कि पुरुष के निर्माण मे मा का, स्त्री का, बहन का, पत्नी का विशेष हाथ रहता है। यदि स्त्री सस्कारवान हो तो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसका प्रभाव पुरुष पर पडे बिना नही रह सकता। इसी मे उनका ध्यान स्त्री-शिक्षा की ओर बराबर रहा है। भारत के स्वतत्र होने के उपरान्त उनका जीवन मानो इसी महान् ध्येय के लिए समर्पित हो गया है। सामान्य शिक्षा-सस्था के रूप मे चलने वाला 'मारवाडी बालिका विद्यालय' आज 'श्री शिक्षायतन' के रूप मे विकसित होकर नारी-समाज की जो सेवा कर रहा है, वह किसी से छिपा नही है। उसके विकास का श्रेय मुख्यत सीतारामजी की लगन, निष्ठा तथा परिश्रमशीलता को है। प्रारभिक श्रेणी से लेकर शिक्षक-प्रशिक्षण

---

* वही, पृष्ठ १७८

**'एक कार्यकर्ता की डायरी' (भाग २), —पृष्ठ ६५२

वर्ग तक की शिक्षा में लाभ लेने वाली हजारों बहनें आज उनका कितना उपकार मानती होंगी, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

सीतारामजी प्रभावशाली वक्ता हैं। मैंने उन्हें बहुत बार बोलते सुना है। वे अपनी बात बड़ी प्रांजल भाषा में कहते हैं। चूंकि उनके विचारों में उलझन नहीं है, इसलिए उनकी भाषा साफ होती है। गूढ़-से-गूढ़ विषयों पर भी वे अपने विचार बहुत ही सरलता से व्यक्त कर देते हैं।

कुछ दिन पहले जब मैं कलकत्ता गया तो श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझे लिखा —"दीनबंधु एण्ड्रयूज की समाधि पर मेरी ओर से दो फूल चढ़ा आइये।' सवेरे विक्टोरिया मैदान में घूमते हुए सीतारामजी से उसकी चर्चा आ गई तो उन्होंने कहा—"मैं भी चलूंगा।" हम लोग समाधि की ओर बढ़े तो मैंने देखा कि सीतारामजी का मन दीनबंधु की स्मृतियों से भर उठा है। बोले,—"एण्ड्रयूज साहब बड़े ऊंचे पाये के आदमी थे। बापू और गुरुदेव के लिए तो वे हर घड़ी जान देने को तैयार रहते थे। सचमुच दीनबन्धु ही थे। चाहते थे, इस देश में कोई भी दीन-हीन न रहे। कितना काम किया उन्होंने। समाधि पर फूल चढ़ा कर जब हम लौटे तो देश की वर्तमान अवस्था के बारे में बात होने लगी। मैंने कहा—"बापू के रामराज्य का आज क्या हुआ? आज तो चारों ओर अनीति का बोलबाला है।" सीतारामजी बोले—"इसमें दोष देश का नहीं, हमारा है। इसे बनाने-बिगाड़ने की जिम्मेदारी किसी और की नहीं, हमारी है। फिर इतिहास में इस प्रकार के उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। यह चक्र है, जो चलता ही रहता है।' मैंने कहा—"लोग कहते हैं कि इस देश की मिट्टी में कुछ ऐसा है कि इसका स्थाई रूप से कभी बिगाड़ नहीं हो सकता। पर लगता है कि इस समय तो हम गिरा-वट की चरम सीमा पर पहुंच गये हैं।" उनकी आकृति गम्भीर हो उठी। बड़ी व्यग्रता से बोले—"देश की सब से अधिक क्षति इस प्रकार की मनोवृत्ति ने की है। आज चारों ओर मायूसी दिखाई देती है। लोगों के मन कुंठित हो गये हैं। बुराई है तो उसका मुकाबला करना चाहिए। हर घड़ी उसके गीत गाने से क्या फायदा है?"

बात लम्बी चली और मैंने देखा कि उनकी भूमिका उस सैनिक की भूमिका थी, जो पराजय को सामने देखते हुए भी पराभूत नहीं होता। इसी प्रसंग में उनकी विश्लेषण-शक्ति का मुझे एक बड़ा यथार्थ दृष्टान्त मिला। मैंने कहा— "आज तो कुछ ऐसी व्यवस्था बन गई है कि धनिक अधिक धनी और निर्धन अधिक निर्धन हो रहे हैं।" इस विषय में बात होते-होते धनिकों की दानशीलता की चर्चा चल पड़ी। वे बोले—"   को मैं दानी मानता हूं, क्योंकि उनका सारा व्यवहार बाइबिल की इस उक्ति के अनुसार है कि दान ऐसे दो कि तुम्हारा बाया हाथ भी यह न जान पाये कि दाए हाथ ने क्या किया है।' तभी एक दूसरे धनिक का नाम आ गया, जो अपनी दानशीलता के लिए विख्यात रहे हैं। सीतारामजी बोले— "मैं उन्हे दानी नही मानता। आदमी के नाखून बढ़ जाते हैं तो वह उन्हें कटवा देता है, बाल बढ़ जाते हैं तो उन्हें तरशवा देता है। यही बात है पैसे के साथ।

पैसा बढ जाता है तो वह टैक्स के रूप मे सरकार को चला जायगा। उसे बचाने के लिए दिया गया पैसा दान नही कहा जा सकता।" उनके शब्दो मे किसी के प्रति अवज्ञा नही थी, लेकिन एक ऐसी सच्चाई का निरूपण था, जिसकी ओर समाज का ध्यान कम जाता है।

नई पीढी के प्रति उनकी अटूट आस्था है। एक बार विद्यार्थियो के उपद्रवों का प्रसग आने पर कहने लगे—"हमारे युवको और युवतियो मे देश के लिए कितनी लगन है, कितनी तडप है, कितनी सद्भावना है, लेकिन उन्हे सही रास्ता दिखाने वाला कोई नही है। उचित मार्ग-दर्शन मिले तो वे कुछ-का-कुछ करके दिखा सकते हैं।"

सीतारामजी का कर्म-क्षेत्र मुख्यत कलकत्ता रहा है। वहा के सभी वर्गों मे उन्हे आदर की दृष्टि से देखा जाता है। स्वराज्य मिलने के बाद राजनीति मे उनका अधिक लगाव नही रहा, यद्यपि राजनीतिज्ञो के साथ उनके आत्मीयतापूर्ण सबध बराबर रहे है। उन्होंने अपनी पूरी क्षमता का उपयोग समाज को प्रबुद्ध बनाने मे किया है।

उनकी दीर्घकालीन सेवाओ के उपलक्ष्य मे भारत सरकार ने उन्हे 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलकृत किया, जो स्वाभाविक ही था। सीतारामजी को इस सम्मान की आवश्यकता नही थी। लोगो के दिलो मे उनका जो स्थान है, उससे बडा सम्मान और कोई हो नही सकता, लेकिन सरकार को भी तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना था। इस प्रसग मे एक निजी बात का स्मरण हो आया है। एक बार मैं राजेन्द्रबाबू से मिलने गया। उनसे अक्सर भेट होती रहती थी। वे प्राय ऐसा समय देते थे कि बाद मे कोई मुलाकाती न हो, जिससे देर तक बाते करने का मौका रहे। उस बार, पता नही, कैसे सीतारामजी की चर्चा आ गई। मैंने अनायास कहा—"बाबूजी, सरकार जाने किन-किन को पद्मश्री, पद्मभूषण आदि उपाधिया देती है, लेकिन सीतारामजी की इतनी सेवाए होते हुए भी अभी तक उन्हे कुछ नही दिया गया।" राजेन्द्रबाबू ने जैसे चकित भाव से कहा, "अच्छा! उन्हे अभी तक उपाधि नही मिली?" उनके चेहरे पर व्याकुलता की रेखा खिच गई, जैसे मन-ही-मन कह रहे हो कि आखिर ऐसी चूक उनसे क्यो और कैसे हुई। कहने की आवश्यकता नही कि उन्होने उसी साल अपनी चूक का परिमार्जन कर लिया।

इतने सारे गुण होने पर भी सीतारामजी की कुछ मर्यादाए है, जिन्होंने उनकी उपादेयता को एक क्षेत्र तक ही सीमित रखा है। उनमे उस महत्त्वाकाक्षा का अभाव है, जो अखिल भारत के मच पर प्रतिष्ठित होने के लिए आवश्यक है। उन्होंने अपना कोई दल नही बनाया, न किसी दल के साथ सक्रिय सबध जोडा है। वैसे उनका झुकाव काग्रेस की ओर रहा है, पर उससे उन्होंने कभी कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नही रखा। सच बात यह है कि सीतारामजी लोक-सग्रही नही हैं। लोक-सग्रह मे शायद उनका विश्वास भी नही है। अपने कर्त्तव्य के प्रति वे सजग है,

और यही उनके लिए पर्याप्त है। अपने अनुयायी व स्वयं है। ऐसे व्यक्ति की देश-व्यापी स्वीकृति नहीं हो सकती।

पर सीतारामजी की ये मर्यादाएं ही उनकी शक्ति है। किसी महापुरुष ने कहा है,—"मेरे लिए एक कदम काफी है।" स्पष्ट है कि सीमित क्षेत्र मे एकाग्रता से सेवा करने के कारण ही वे आज समाज के लिए वरेण्य बने है और उनका स्थान सदा अक्षुण्ण रहेगा।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक बडी उद्बोधक कविता लिखी है, जिसमे एक शिक्षाप्रद कहानी आती है। एक बार एक व्यक्ति को स्वप्न मे शंकर दिखाई देते है। वह कहता है—"जाओ, अमुक जगह पर एक साधु बैठा है। उसके पास एक हीरा है, उसे ले लो।" वह व्यक्ति बडा खुश होता है और सबेरा होते ही साधु की खोज मे, शकर की बताई जगह पर, जाता है। उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता जब वह देखता है कि वहाँ सचमुच एक साधु बैठा है। वह उसके पास जा कर स्वप्न की बात कहता है। साधु उत्तर देता है,—"हाँ, मेरे पास एक हीरा है। वह देखो, नदी के किनारे उस पेड के नीचे पडा है।' आदमी दौड कर वहाँ जाता है और देखता है कि वहाँ बडे आकार का एक हीरा धरती पर पडा चमचमा रहा है। वह उसे हाथ मे उठा लेता है। उसकी आँखें चमकने लगती है। कहता है—"वाह, कितना बढिया, कितना कीमती हीरा है!" पर जैसे ही वह घर की ओर चलने को होता है, एक विचार उसके मन मे उठ खडा होता है। वह सोचता है—"उस साधु के पास इस हीरे से भी मूल्यवान कोई वस्तु है, तभी तो उसने इसे यहाँ इस तरह डाल रखा है। इस हीरे का क्या भरोसा? कहीं खो जाय, कोई चुरा ले जाय। मुझे साधु से वह चीज प्राप्त करनी चाहिए, जो हीरे को भी मिट्टी के मोल बनाती है।" यह विचार आते ही उसने हीरे को नदी मे फेंक दिया और साधु के पास जाकर हीरे से भी मूल्यवान वस्तु त्याग की उपलब्धि की। सीतारामजी ने भी गाँधीजी और रवीन्द्रनाथ आदि राष्ट्र-पुरुषो से वह अनमोल वस्तु पाई है, जिसने भौतिक वस्तुओ के रस को फीका और सेवा के रस को अमृत बना दिया है। इसी उपलब्धि के कारण इस वय मे भी तरुणाई ने उनका साथ नही छोडा। जीवन के ८० वे वर्ष मे भी उनमे युवकोचित उत्साह है, उमग है और सेवा की लगन है।

प्रभु से कामना है कि वे कम-से-कम सौ वसत अवश्य देखे और उनके सेवा-निष्ठ यशस्वी जीवन की क्षमता उत्तरोत्तर बढती रहे।

—— o ——

सुप्रसिद्ध विधि-वेत्ता,
समाज-सेवी और शिक्षा-प्रेमी

श्री भगवतीप्रसाद खेतान

विनय और शील की साक्षात् मूर्ति

मेरे बचपन की बात है। सेठ जमनालालजी बजाज का हमारे पिताजी तथा परिवार के साथ मैत्री-भाव इतना प्रगाढ हो चुका था कि जब भी वे कलकत्ता पधारते थे, तो प्राय हमारे ही निवास-स्थान 'खेतान-हाउस', जिसे लदन-निवासिनी मिस म्यूरिल लीस्टर ने "दि हाऊस आफ सेवन ब्रदर्स' कह कर विख्यात कर दिया था, मे ठहरा करते थे। जमनालालजी बजाज राष्ट्रीय राजनीति के एक प्रधान लोक-पुरुष और नेता मान्य हो चुके थे और इस नाते वे प्राय ही कलकत्ता आया करते थे। कलकत्ता मे सामाजिक सुधारो की जागृति आगे बढाने मे उनका प्रभाव काफी काम कर रहा था। 'खेतान-हाउस' मे बडा बाजार के राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्त्ताओ का आना-जाना भी काफी था। उस समय तक श्री सीताराम जी सेकसरिया राष्ट्रीय राजनीति और समाज-सेवा दोनो क्षेत्रो मे समान भाव से अच्छा स्थान ग्रहण कर चुके थे। उनके समाज-सेवा सबधी कार्यों तथा सास्कृतिक क्रिया-कलापो ने हम दोनो को परस्पर सान्निध्य मे ला दिया।

ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, सीतारामजी के कार्यो की एक विशेष दिशा स्पष्ट से स्पष्टतर होने लगी। राष्ट्रीय और सामाजिक सेवा मे तो वे समाज के प्रधान कर्णधारो मे मान्य हो ही चुके थे, किन्तु स्त्री-शिक्षा के विकास और प्रसार के क्षेत्र मे मानो वे सर्व-प्रधान लोकनेता बन गये थे। व्यापार से सम्पर्क हटा कर वे अपना सम्पूर्ण जीवन लोक-सेवा को समर्पित कर चुके थे।

सार्वजनिक कार्यों मे, विशेषकर शिक्षण-सस्थाओ की समुन्नति के कार्यो मे मेरा भी सम्पर्क सीतारामजी के साथ काफी रहा। मुझ पर उनका प्रेम-भाव भी उत्त-रोत्तर बढता ही गया। कन्या-शिक्षा सबधी योजनाओ के विषय मे उनकी सेवाये केवल कलकत्ता या बगाल की ही नही, सारे देश की कन्या-शिक्षा के इतिहास मे अविस्मरणीय रहेगी। वे तपोमूर्ति है और सामाजिक विनय और शील की साक्षात् मूर्ति है।

सीतारामजी को हम सभी की बधाई है। उनकी ८२ वी वर्षगाँठ के अवसर पर हम सब की यह शुभकामना है कि वे सेवा-कार्यों का मार्ग प्रशस्त करते हुए अभी बहुत वर्षों तक हमारे बीच रहे।

— o —

समाज-सेवी और राष्ट्र-कर्मी,
कलकत्ता के शेरिफ

जनाब तैयब भाई एम० जरीफ

गांधी-निष्ठा

श्री सीतारामजी से मेरा परिचय सन् १९३० से है। स्वाधीनता-आन्दोलन के दिनों में मुझे कांग्रेस में उनके नेतृत्व में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मैं समझता हूँ कि पूरी सच्चाई और निष्ठा के साथ गांधीजी के सिद्धांतों पर चलने वाले बहुत थोड़े से लोगों में से वे एक हैं। आज भी वे उसी मार्ग पर चल रहे हैं।

मेरी मंगल-कामना है कि समाज और देश के कल्याण के लिए श्री सीतारामजी दीर्घकाल तक यह सेवा करते रहें।

— ० —

इतिहास, सस्कृति, कला आदि के
अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान्,
कलकत्ता विश्वविद्यालय के मानद प्राध्यापक

डॉ नीहाररजन रे

स्वच्छ और सात्विक आत्मा

सामाजिक पृष्ठभूमि, शिक्षा, स्वभाव, बौद्धिक और भावात्मक अनुशासन तथा सैद्धातिक लगाव—किसी मे भी मुझ मे और सीतारामजी मे बहुत समता नही रही, तथापि गाँधीजी के जादुई व्यक्तित्व के प्रभाव ने किन्ही विशिष्ट क्षणो मे हम दोनो को एक ही क्षेत्र मे ला खडा किया। वह भी जीवन के वास्तविक सघर्ष के क्षेत्र में नही, बल्कि आत्म-निरीक्षण और आत्म-विश्लेषण के एक अपेक्षाकृत शात क्षेत्र मे—कलकत्ता की प्रेसीडेसी जेल के अन्दर। १६४२-४३ के 'भारत छोडो' आन्दोलन के दौरान हम दोनो ने ही अपने को वहाँ पाया। श्री सीतारामजी किंचित सुविधा-जनक कोठरी मे थे और मैं उससे कुछ दूर, उन्चास अन्य वदियो के साथ, एक 'वैरक' मे था। हर दिन दोपहर ढले हमे जेल की चहारदीवारी के अन्दर ही एक वडे तालाब के किनारे खुले मैदान मे मुक्त विचरण करने दिया जाता था। वहाँ सभी वन्दी लोग एकत्र होकर खेल-कूद करते थे, गपशप करते थे, विचार-विमर्श करते थे, या अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कल्पना मे डूबे रहते थे। एक दिन तीसरे पहर की ऐसी ही वेला मे, जब मैं तालाब के किनारे टहल रहा था, श्री सीतारामजी से मिलना हो गया और कुछ ही क्षणो मे हम परस्पर उस आन्दोलन के सम्बन्ध मे अपने निजी अनुभवो का आदान-प्रदान करने लग गए जो हम दोनो को एक साथ कारागार मे ले आया था। उनके समर्पित व्यक्तित्व और निष्ठा, उनकी विनम्रता और निरभिमान, गाधीजी के आदर्शो के प्रति उनके पूर्ण आत्म-समर्पण से मैं प्रभावित हुआ। वैसे मैं सर्वथा भिन्न साचे मे ढला हुआ था, न तो पूरा-पूरा उनके उत्सर्ग और निष्ठा को स्वीकार कर सकता था और न ही गाधीजी के प्रति उनकी पूर्ण आस्था को या उनके विचारो और सिद्धातो को। तब भी यह बात थी और आज भी है कि मैंने उनमे एक स्वच्छ, सात्विक एव निष्कपट आत्मा के दर्शन किये थे। मैं स्वय इस सात्विकता और निश्छलता की प्राप्ति मे अपनी असमर्थता के प्रति पर्याप्त सजग था। मैंने जीवन का नग्न यथार्थ देखा था, इसलिए निश्छलता का लोप हो गया था। आज सीतारामजी वियासी

वर्ष के है और वे अब तक अपनी सात्विकता और निश्छलता पर दृढ है। मैं प्राय' मत्तर का हो चुका हूँ पर पीडित, सघर्परत, ससार द्वारा सतप्त एव मत्रस्त। सामारिक दृष्टि से वे अपनी आतरिक शाति मे प्रसन्न हैं, मैं प्रसन्न हूँ एक अपेक्षाकृत उत्तम समाज की प्राप्ति के लिये सघर्परत ससार के वीच।

मैं उनके प्रति पूर्ण प्रशसा और आदर का भाव रखता हूँ, यद्यपि हमारी पद्धति और हमारे सिद्धात भिन्न है, और हमारे रास्ते भिन्न दिशाओ मे जाते है। मैंने आज तक उनकी मित्रता को स्नेहपूर्वक उसी स्वच्छता और ईमानदारी के साथ निभाया है जैसे कि उस दिन, जव मैंने पहली वार उन्हे जाना था यह नही कि उन्हें यह ज्ञात नही था कि मैं उनसे अत्यत भिन्न प्रकृति का था और मेरा जीवन तथा मेरी विचारणा उनसे मर्वथा भिन्न थी। तव भी उन्होंने आजीवन मेरे प्रति स्नेह और प्रशसा का ही प्रमाण दिया है। एकाधिक वार उन्होंने मुझ मे अपने महाविद्यालय श्री शिक्षायतन आने और छात्राओ तथा प्राध्यापिकाओ के वीच भारतीय इतिहास, कला और मम्कृति पर व्याख्यान देने को कहा। उन्होंने निश्चय ही किसी विशेप कारण से मुझे राजस्थान विश्वविद्यालय मे उनके नाम से सम्वद्ध तथा उन्ही के द्वारा अर्पित धनराशि मे आयोजित व्याख्यान-माला के प्रथम वक्ता के रूप मे चुना होगा। परवर्ती जीवन मे हमारी भेंट वहुत कम तथा लम्वे अन्तराल से ही हो पाई, किन्तु जव भी हम मिले, उनका चिर मुस्कान-युक्त आनन, उनकी मृदु वाणी, उनका अनुग्रह और उनकी शात एव निराडम्वर जीवन-पद्धति कभी भी मुझ पर गहरा प्रभाव डाले विना न रही।

चिरन्तन गांधीवादी के रूप मे तन और मन मे परिवर्तित एक सफल मारवाडी व्यवसायी के साथ मेरा प्रथम साक्षात्कार श्री सीतारामजी के साथ ही था। भारतीय व्यवसायी समुदाय के इतिहास और आचरण सवधी कोई भी सूक्ष्मदर्शी तथा वोधयुक्त विद्यार्थी यह भली प्रकार जान सकता है कि इस कायाकल्प का क्या अर्थ है। उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण सार्वजनिक पद प्राप्त किये, किन्तु हमेशा ही आत्मप्रचार से दूर रह कर, सार्वजनिक जीवन की मोहकता तथा उसकी चमक-दमक से स्वय को सदा पृष्ठभूमि मे रख कर। वास्तव मे मुझे लगता है कि उन्होंने कभी भी सार्वजनिक जीवन का रस नही लिया। जिसे वे सव से अधिक चाहते हैं और जो उनकी प्रवृत्ति और मार्ग के अनुकूल है, वह है रचनात्मक कार्य। हरिजनो की सेवा, जाति-प्रथा के विरुद्ध सघर्प, वाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन, हिन्दी-प्रचार, नारी-शिक्षा आदि की प्राप्ति के लिए उन्होंने अपने जीवन का श्रेप्ठाश अर्पित कर दिया। एक सफल व्यवसायी के रूप मे उन्होंने जो कुछ अर्जित किया, उसका अधिकाश इन्ही कार्यो मे चला गया, किन्तु विना किसी आडम्वर के। मैं कभी ऐसे दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क मे नही आया, जिसने अपनी व्यावसायिक सफलता को ऐसे कायाकल्प के वीच गुजरते हुए वहा दिया हो, जैसा कि सीतारामजी ने किया।

यह जान कर वडी प्रसधता होती है कि सीतारामजी के शात, विनीत, आडम्वरहीन, आत्म-त्यागी, समाज-सुधारक व्यक्तित्व को उनकी वियासवी वर्षगाठ पर उनके

मित्रो एवं प्रशंसकों द्वारा अभिनन्दित किया जा रहा है। ऐसे समाज मे जहाँ शोरगुल की राजनीति और राजनीतिक पार्टियो ने मनुष्य की दृष्टि, कार्य और विचार पर एकाधिकार कर रखा है, ऐसे मौन सामाजिक और सास्कृतिक कार्य की स्वीकृति इस बात का प्रमाण है कि हमने अभी सामाजिक और मानवीय मूल्यो की चेतना पूर्णत नही खोई है। मुझे इसका भी सतोष अनुभव होता है कि उनके निकट मित्रो और प्रशसको से भी मेरा सम्बन्ध है।

— ० —

दैनिक बगला 'युगान्तर' के
यशस्वी सम्पादक

श्री सुकोमलकाति घोष

अत्यन्त दयार्द्र और विनीत

सुपरिचित स्वतन्त्रता-सेनानी, वरिष्ठ राजनीतिक कार्यकर्ता, विख्यात समाज-सुधारक, नारी-शिक्षा के समर्पित उन्नायक, हिन्दी-प्रचार में अग्रगण्य श्री सीताराम सेकसरिया का जन्म १ मई १८९२ को राजपूताना (अब राजस्थान) के शेखावाटी अचल के एक छोटे से ग्राम नवलगढ़ मे हुआ था। उनकी आयु तब मात्र १० वर्ष की रही होगी, जब उनके माता-पिता का देहावसान हो गया। उसके बाद छोटी उम्र मे ही वे जीविकोपार्जन के लिए कलकत्ता आ गये।

१९१५ मे जब गाधीजी कलकत्ता आए तो उन्हे उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसी वक्त स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज के निकट सम्पर्क मे आने का अवसर भी मिला। यही से उनके जीवन का परिवर्तन-क्रम प्रारम्भ हुआ। उन्होंने सार्वजनिक कार्य मे ही विशेष रुचि लेने तथा यथासभव सहयोग देने का निर्णय कर लिया और १९२९ मे अतिम रूप से अपनी समस्त व्यावसायिक गति-विधियो को छोड कर सम्पूर्ण समय राजनीतिक और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप मे लगाना शुरू कर दिया।

गाधीजी और उनके सत्याग्रह-आन्दोलन ने उन्हे महती प्रेरणा प्रदान की। वे उत्साहपूर्वक गाधीजी के दिखाए मार्ग पर रचनात्मक कार्यों मे लग गए। १९३० और १९३२ मे उन्होंने असहयोग आदोलन मे भाग लिया जिसके कारण बन्दी बना कर उनको जेल भेज दिया गया। १९४२ मे भी अखिल भारतीय काग्रेस-कमेटी के सदस्य के रूप मे वे कलकत्ता के प्रेसीडेसी जेल मे डेढ वर्ष तक बन्दी रहे।

समाज-सुधारक के रूप मे उन्होंने बाल-विवाह के प्रतिरोध, विधवा-विवाह के समर्थन, मृतक भोज और पर्दा-प्रथा के बहिष्कार के निमित्त कार्य किया। नारी की उन्नति के लिए उन्होंने कठिन परिश्रम किया। १९२० मे ही मारवाडी बालिका विद्यालय की स्थापना हो गई थी जो कि सपूर्ण हिन्दी-भाषी समाज मे नारी-शिक्षा के प्रारम्भ की भूमिका थी। इसी सस्था के विकास के रूप मे दूसरी महान् सस्था

राष्ट्रपति-भवन में राष्ट्र-कवि स्व० मैथिलीशरण गुप्त का अभिनन्दन करते हुए राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद
पीछे खड़े हैं श्री सीताराम सेकसरिया, जो अभिनन्दन योजना के प्रमुख निर्माताओं में थे ।

समाज-सुधार आन्दोलन के पाँच बड़े नेता

(वायें से) श्री मोतीलाल लाठ, श्री भागीरथ कानोडिया, श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका, श्री सीताराम सेकसरिया और श्री रामकुमार भुवालका

एक सांस्कृतिक कार्यक्रम के अवसर पर श्री रायकृष्णदासजी का सम्मान-स्वागत करते हुए श्री सीतारामजी

का आविर्भाव हुआ—श्री शिक्षायतन विद्यालय एवं महाविद्यालय, जो आज कलकत्ता मे नारी-शिक्षा की महत्त्वशालिनी एव अनुप्रेरक सस्था मानी जाती है।

यद्यपि वे ८२ वर्ष के हो चुके है, तथापि अब तक अनेक सामाजिक, सास्कृतिक एव शैक्षणिक गतिविधियो मे सक्रिय रूप से निबद्ध है तथा अनेक सभाओ और सस्थाओ मे महत्वपूर्ण पद सम्हाले हुए है। वे अत्यत दयार्द्र और विनीत, साथ ही परोपकारी एव समर्पित व्यक्ति है। इन गुणो ने उन्हे उन व्यक्तियो के बीच अत्यन्त लोकप्रिय एव स्नेह-भाजन बना दिया है, जिन्होने उनके दर्शन किए हैं और जो उनके सम्पर्क मे आए है।

—:०:—

पटना उच्च न्यायालय के
मुख्य न्यायपति

श्री नन्दलाल ऊटवालिया

स्नेह के फव्वारे !

दो वर्ष मै कलकत्ता मे पोद्दार छात्र निवास मे था, १९३७-३८ और १९३८-३९ मे। बाद मे छात्र-जीवन का एक वर्ष और वही बिताया। उसी समय मैने श्री सीतारामजी सेकसरिया को देखा-जाना। बहुधा छात्र-निवास मे उनके दर्शन होते। यदा-कदा जब मै उनको देखता, तो उनके व्यक्तित्व से बहुत ही प्रभावित होता था। सौम्य, धवल, स्वच्छ प्रतिमा मे बडा ही आकर्षण था। वे स्वतत्रता सग्राम के एक सच्चे योद्धा थे। दिन-रात देश और समाज की चिन्ता, अटूट लगन, निःस्वार्थ सेवा—ऐसे गुण रहे है सदा हमारे श्रद्धेय सीतारामजी मे। मै तो आश्चर्य-चकित ही रहता था। मैने कुछ देवताओ की कहानियो मे भी उनके स्वार्थ की चर्चा पाई है, किन्तु श्री सीतारामजी ने तो मानव-शरीर मे भी स्वार्थ को अपने पास फटकने नही दिया।

इन कुछ वर्षो मे तो आदरणीय सेकसरियाजी का स्नेह मुझे विशेष रूप से प्राप्त होता रहा है। कई बार उनको निकट से देखने और बातचीत करने का मुझे सौभाग्य मिला है। उनके त्याग, निष्ठा और कर्मठ जीवन के सामने मेरी क्या गिनती ? फिर भी मुझे देख कर जिस सहृदयता से वे मुझ पर स्नेह के फव्वारे छोडते हैं, मेरी प्रशसा करते हैं, उसे देख कर मै सिमट-सा जाता हूँ, उनकी महानता के सामने। कितनी कोमलता है उनके वृद्ध चाम मे, प्रौढ हृदय और सतुलित वाणी मे। धन्य है वे लोग जो उनके सम्पर्क मे सदा रहे, उनसे सबधित हुए, उनका स्नेह पाया। मै भी अपने को उनका एक विशेष कृपा-पात्र मानता हूँ।

श्री सीतारामजी ने सारा तन, मन, धन जन-कल्याण के कार्य मे लगाया है, राष्ट्र-सेवा, समाज-सेवा, साहित्य-सेवा, बस सेवा ही सेवा मे सब कुछ न्यौछावर किया है। नाम की सार्थकता का क्या ही ज्वलन्त उदाहरण है उनका पुरुषार्थ। स्त्री-शिक्षा को अपने कार्य मे मुख्य स्थान दे कर राम ने सीता की सेवा की है, वाल्मीकि के राम की भाँति सीता को त्यागा नही। ईश्वर उन्हें सदा स्वस्थ, सचेष्ट और विनयशील रखे। वे शतायु हो।

—— o ——

वयोवृद्धा समाज-सेविका,
गाधी-विनोबा पथानुगामिनी

श्रीमती जानकीदेवी बजाज

नवाब साहब !

जमनालालजी भगवानदेवी के प्रति छोटी बहिन कसा आकर्षण रखते थे। वडी अद्भुत लीला थी। जमनालालजी का प्रेम तो लोहे के चुम्बक की भाति था। सीतारामजी को मैने भाई माना तो उन्हे विशेष प्रसन्नता हुई थी। वे सीताराम जी को तो नवाब साहव कहा ही करते थे, पर चूकि मै भी नवावो के राज मे जनमी वेटी थी, इसलिये मै भी नवाव थी। वहन-भाई दोनो नवाब। हमारे दोनो के बीच विचारो मे एकता थी पर रहन-सहन और खान-पान मे एकदम भिन्नता। पग-पग पर तमाशे होते थे। सीतारामजी सतरो की कलियो का रस भी आधा चूसते और आधा फेक देते थे और मै सतरो का छिलका भी खा जाती थी। मै तो बरामदे मे जमीन पर ही चटाई बिछा कर सो जाती थी। एक बार विनोबाजी के साथ पद-यात्रा मे मेरी अगुली पक गई थी। नाखून निकलवाने की हालत हो गई थी। सीतारामजी और उनकी वडी वेटी पन्ना को डर लगा कि कही सेप्टिक न हो जाय। पन्ना बीनणी ने दिन मे तीन-चार बार सेक कर घाव को सुखा दिया, पर सीतारामजी हैरान हुए रहते थे।

भगवानदेवी जमनालालजी के विचारो की थी। भगवानदेवी के हाथ देख कर जमनालालजी कहा करते थे—"देखो, ये हाथ काम करने वाले है।" वे खुद चक्की से आटा पीसती थी। जमनालालजी और भगवानदेवी के बीच कभी लडाई होती तो वे भगवानदेवी की रसोई मे ज्यादा रोटी खा लेते और पीछे कहते "थारै कनै ज्यादा खायो जाय है। पन्ना कनै खावू तो पन्ना मेरो कह्योडो मान जावै। थारी मोटी रोटी मे अनाज ज्यादा चल्यो जाय है।" भगवानदेवी और जमनालालजी को जाट की सी रोटी खाने मे सुख मिलता था। वाद मे विमारी के कारण अन्न कम खाने लगे, तब से दोनो ही भूखे रह कर कमजोर बन गये थे।

पर्दा–निवारण और विलायती कपडो की होली के दिनो मे मै महीना भर कलकत्ता मे सीतारामजी के घर पर रही थी। भगवानदेवी के वच्चा होने वाला था। सीतारामजी वोले—"जानकी वहन, भगवानदेवी का 'जापा' अस्पताल मे कराना है।" भगवानदेवी का मन घर मे ही करने का था। जव भगवानदेवी के पेट मे दर्द होने लगा तो मै वोली—"चलो, अस्पताल चले।" भगवानदेवी

सीतारामजी से डरती थी सो चलने को रवाना तो हो गई पर रास्ते में यह कहते हुए रोती जाती थी—"वापस भी आऊँगी क्या ?" सीतारामजी तो थे ही, ऊपर से मैं मिल गई। बेचारी दोनो से डरती अस्पताल मे चली गई। शाम को छह बजे आपरेशन टेबल पर ले गये तो रात के १–२ बज गये। मेरे तो बुरे हाल हो गये। मैं अजवाइन और गुड का पानी उन्हे देना चाहती थी। भगवान-देवी 'ना' कह कर सिर हिला देती थी। आधी बेहोसी थी। नर्स बगाली थी। मेरी बोली वह नही समझती थी और उसकी बोली मैं नही समझती थी। नर्स बोली—"जब वह ना करती है, जबरदस्ती क्यो करती हो ?" मैं चाहती थी कि वह दो-चार चम्मच पानी पी लेती तो गला तो गीला हो जाता, पर नर्स ने मुझे डाट दिया—"यही करना था तो अस्पताल क्यो लाई ?" नर्स बेचारी मेरे रग-ढग देख कर मुझे नौकरानी समझ रही थी। सीतारामजी चाहे मुझे भगवान का अवतार ही मानते रहे हो लेकिन उन्होने अस्पताल मे मेरा परिचय नही कराया था। खुद घर जा कर सो गये। १२ वर्ष बाद बच्चा हो रहा था। भगवानदेवी बहुत डर रही थी। ७-८ घण्टे से वह टेबल पर सोई थी। कमर का, पता नही, क्या हाल था ? वह तो बेहोस थी। कभी-कभी बोलती—"जानकी बहन, पन्ना के बापू कहाँ है ?" मैं झूठ बोलती जाती—"पन्ना और पन्ना के बापू नीचे है, अभी आते है।" मैं नीचे जाती, फिर ऊपर आ जाती। टेलीफोन करने भी जाती तो कैसे ? मैं सोचती थी—"अब क्या करूँ ?" एक तो पराया देश, फिर मेरी पिंडलियो मे भी गोले बध गये थे। भगवानदेवी के सिरहाने खडी रहती, बैठने का तो कोई सवाल ही नही था। नर्स और डाक्टर आ कर घुसपुस करने लगे। मुझे नौकरानी समझ कर बोले—"बाहर जाओ।" अब क्या करूँ ? सीतारामजी पहले इन लोगो से मेरी ठीक-ठीक जान-पहचान कराना भूल गये थे। मुझे भी कोई ख्याल नही रहा। अब करती क्या ? मैं परदे के बाहर बैठी-बैठी यह कह कर रोती जाती थी—'हे भगवान, जो भी हो, पर सवेरे जब सीतारामजी आयें तो दोनो जीव बरकरार मिलें।" इसके लिए रु० १००) का प्रसाद भी बोला। बच्चा होते ही पन्ना की माँ को होस आ गया। मैं झट उनके पास पहुँच गई। धन्य है सीताराम को, जो सवेरे ८ बजे आये। रात को मजे मे सोये। मैं घर गई तो चप्पल से लेकर सिर तक नहाई। मिट्टी, गोबर, साबुन से नहाने के बाद ही पानी पिया।

ऐसा मेरा सीतारामजी के परिवार के साथ सबध रहा है। उसके बारे मे बहुत लिखा जा सकता है। उन्हे सारे लोग जानते है। मातृ-सेवा का कार्य उन्होने मन से किया। उनमे सच्चा त्याग, सेवा-भाव और देश-भक्ति अद्भुत भरी है। नाराज होना तो वे जानते ही नही। अजातशत्रु वाली बात है। घर-खर्च भी राम ने ही चलाया पर उदारता अद्भुत भरी है। भगवानदेवी ने भी खूब साथ दिया। सीतारामजी ने कमाई करना तो छोडा पर दान देने मे बडे उदार रहे। कभी-कभी वे मुझे कह देते हैं—"आप थोडा स्टेण्डर्ड ऊँचा बनाओ।" तब मैं कहती हूँ—"जब ऊँचा स्टेण्डर्ड नही रह पायेगा, तब गोता खाना पडेगा।" उनके साथ मजाक मे भी प्रेम, श्रद्धा और विश्वास भरा होता है।

—— ० ——

स्वातंत्र्य-संग्राम के वरिष्ठ सेनानी,
गाधी-मार्ग के अनुगामी,
लेखक और संपादक

श्री रामनारायण चौधरी

गांधीवाद के सजीव प्रतीक

भाई सीतारामजी सेकसरिया से मेरा परिचय शायद मारवाडी अग्रवाल महासभा के प्रथम अधिवेशन मे १९१८ के आसपास वर्धा मे हुआ था। फिर तो स्वातत्र्य-सग्राम और समाज-सुधार के साथी के रूप मे हमारे सबध उत्तरोत्तर घनिष्ठ होते गये। आज वे आत्मीयता को पहुँच गये है। उनकी और स्व० भाई बसतलालजी मुरारका की जोडी वर्षों तक प्रवासी राजस्थानियो का राष्ट्रीय नेतृत्व करती रही।

भाई सीतारामजी बहुत सहृदय, सुसस्कृत और स्वाधीन व्यक्तित्व के धनी है। नारी-शिक्षा उनका प्रिय सेवा-क्षेत्र रहा है। मारवाडी समाज मे वे गाँधीवाद के सजीव प्रतीक और खादी के सक्रिय भक्त रहे हैं। उनकी मधुर वाणी मे वे सब गुण पाये जाते हैं, जो बचपन मे पढे हुए इस उर्दू शेर मे व्यक्त हुए है

जो बात कहो, साफ हो, सुथरी हो, भली हो।
कड़वी न हो, खट्टी न हो, मिश्री की डली हो।।

उनका मोहक रूप, हसमुख चेहरा और वार्तालाप का स्निग्ध ढग इस बुढापे मे भी ऐसा सौंदर्य उपस्थित करता है कि उनकी सगति छोडने को जी नही चाहता।

मेरी भगवान् से यही प्रार्थना है कि वह इस विशुद्धात्मा की हजारी ऊमर करे।

--- ० ---

राष्ट्र-कर्मी, समाज-सेवी और लेखक,
प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के स्तम्भ

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार

"हारहिं आप, जितावहिं मोहीं"

चवालीस साल पहले की बात है। तब मैं कलकत्ता मे शुद्ध खादी भण्डार का काम करता था। उन दिनो शायद हिन्दू-मुस्लिम झगडो की बाढ आई हुई थी। लोग अपने-अपने ढग मे उसे रोकने की कोशिश कर रहे थे। गाधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम मेल के लिये जिदगी भर प्रयत्न किया। श्री सीतारामजी सेकसरिया का भी यह प्रिय विषय था। वास्तव मे वे गाँधीजी के सभी रचनात्मक कामो मे तन, मन, धन से भाग लेते रहे हैं। मुझे याद पडता है कि लाहौर के एक डाक्टर आलम उस समय कलकत्ता आये थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयत्न स्वरूप उन्होने कुछ चित्र छपवाये थे, चिकने कार्डो पर। उसमे उन्होने श्री सीतारामजी का सहयोग लिया था। फिर याद पडता है कि एक दिन श्री सीतारामजी मुझे वे चित्र दिखा रहे थे और डाक द्वारा वे चित्र खास-खास लोगो को भेजने की चर्चा कर रहे थे। शायद उन्होने ही वे चित्र छपवाये थे। मैने कहा—"कार्ड का साइज तो डाकखाने के नियम से बडा है, डाकखाने वाले इसके लिये डबल चार्ज लेगे।" उन्होने कहा—"बडा तो नही होना चाहिये।" मैने कहा—"बडा है ही, मैं कहता हूँ न!" फिर उन्होंने मेरी बात नही काटी, मान लिया कि बडा होगा। पर मेरे मन मे तो हुआ कि कार्ड को नाप कर मैं अपनी बात को पुष्ट करूँ। फुटे से नापा तो उनकी बात सही थी और मेरी गलत। मैं कहता तो क्या, मन मे जरूर शरमाया कि मैने झूठी जिद की और उन्होने गलत होते हुए भी मेरी बात ऊपर रहने दी। ऐसे ही प्रसग के लिये भरतजी कहते है,—"हारहिं आप जितावहिं मोही"। बडो का यह एक बडा गुण है।

—— o ——

कलकत्ता विश्वविद्यालय में
मनोविज्ञान की प्राध्यापिका

डॉ० (श्रीमती) मानसी दासगुप्ता

साधना-निमज्जित

कर्म ही जिनके लिये मुक्ति है,
कर्मठता ही जिनके लिये आनन्द है,
वे ही जानते हैं—
कर्म की महिमा से उज्ज्वल हो
साधना–निमज्जित रहना।

ऐसे ही साधक सीतारामजी का
अल्पकालीन आनन्दमय सान्निध्य पाया था।
उनके बियासीवे जन्म-दिन के पुण्य-क्षण मे
मन भावनिष्ठ हो रहा है—
उनका सुन्दर जीवन दीर्घतर हो, उज्ज्वलतर हो!

—— ० ——

कलकत्ता विश्वविद्यालय के
हिन्दी प्राध्यापक

श्री विष्णुकात शास्त्री

सेवाव्रती

सीतारामजी सेकसरिया के बारे मे सोचता हूँ तो विनय-पत्रिका की ये पक्तियाँ अनायास याद हो आती हैं

अखिल-जीव-वत्सल, निर्भत्सर, चरण-कमल अनुरागी।
ते तव प्रिय रघुवीर धीरमति अतिसय निज पर-त्यागी ।।

तुलसीदास ने भगवान को प्रिय लगने वालो के जो गुण इन पक्तियो मे गिनाए है, वे पूर्णत जिन पर घटित होते हो ऐसे व्यक्ति को तो मै नही जानता किन्तु अपने परिचितो मे इन गुणो का सर्वाधिक विकास जिनमे लक्षित कर पाया हूँ, वे सीतारामजी सेकसरिया ही है। अपने वचपन से ही उन्हे देखता—सुनता आया हूँ। मेरे पिताजी स्व० प० गागेय नरोत्तम शास्त्री उन्हे अपने वडे भाई की तरह मानते थे। वे कट्टर सनातनी थे और सेकसरियाजी सुधारक। अत कई प्रश्नो पर दोनो का मतभेद रहता किन्तु उससे पारस्परिक सम्मान-सौहार्द मे कमी नही आती। मुझे यह वात अद्भुत सी लगती और अच्छी भी। कुछ वडे होने पर सभा-समितियो मे मैने भी जाना शुरू किया। सेकसरियाजी के सम्पर्क मे आने का और कई क्षेत्रो मे उनके साथ काम करने का मौका मिला, किन्तु अति परिचय के वावजूद उनके प्रति अरुचि, अनादर का भाव मेरे मन मे कभी नही जागा, सदा श्रद्धा वढती चली गई। यह वडी असाधारण वात है, विशेपत आज के युग मे।

क्या रहस्य है इसके मूल मे? सिर्फ यही कि कोई रहस्य नही है। सीतारामजी को वढ-चढ कर वोलते मैने कभी नही देखा। वे वागाडम्वर से या अतिरजना से कभी किसी को प्रभावित करने की कोशिश नही करते। वे जो है, सो हैं। मृदु, हँसमुख, स्नेही, विनीत, किन्तु विचारो मे दृढ और धुन के पक्के, अनथक कर्मी। उनके सुन्दर सौम्य मुख को देख कर ही आत्मीयता का अनुभव होता है और व्यवहार को परख कर सम्मान और सहयोग का भाव जागता है। उनके लेखो और व्याख्यानो मे न शब्दो की फूलझडियाँ छूटती हैं, न चौका देने वाले नए विचारो की चिनगारियाँ ही फूटती है किन्तु उनमे कुछ ऐसी सच्चाई रहती है,

आचरण से समर्थित विश्वास की झलक रहती है कि पढने-सुनने वाला चाहे उनकी बात का कायल न हो, उनकी निष्ठा का कायल हो जाता है।

आज तो कलकत्ता के सार्वजनिक जीवन मे वे पितामहकल्प व्यक्ति है। भिन्न-भिन्न मतो के नौजवान कार्यकर्त्ताओ को उनका वात्सल्य सुलभ है। पुरानी पीढी के लोगो मे शायद वे अकेले व्यक्ति हैं, जो आज भी इतने सक्रिय है और जिनकी नौजवानो मे भी इज्जत है। किन्तु विरोधियो से भी स्नेह-समादर उन्हे आरम्भ से मिलता रहा है क्योकि जब करना पडा, तो विरोध उन्होने सिद्धात के स्तर पर किया, व्यक्ति के स्तर पर नही। बडो के प्रति श्रद्धा, समवयस्को के प्रति स्नेह और छोटो के प्रति प्यार उनके मन मे सदा रहा। इसीलिए वे कभी अप्रिय नही हुए। उनके मुह से मैने कई बार यह सुना है—"मुझे सबका सद्भाव मिला, यह मेरा बडा भाग्य है।"

इस पर तुर्रा यह है कि वे शुरू से ही अपने पैरो पर खडे हुए। बाप-दादा की बनी-बनाई जमीन या जमा-जमाया काम उन्हे नही मिला था। आज से तिरेसठ वर्ष पहले सन् १९११ ई० मे जब वे कलकत्ता आए थे, तब वे अठारह वर्ष के नौजवान थे। पढाई-लिखाई के नाम पर गुरु-पाठशाला मे कुछ प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा हुई थी, कुछ थोडी सी सस्कृत भी पढी थी, अग्रेजी केवल इतनी आती थी कि तार बॉच लेते थे। हॉ, रामचरित मानस के भक्त बन चुके थे और उसका नित्य पाठ किया करते थे। वह क्रम आज भी अखण्ड है। उनके नैतिक बोध को मानस की मर्यादा का ही प्रसाद मानना चाहिए। मानस के चरित्रो मे उन्हे सब से प्रिय थे और है हनुमानजी। उनकी राममयता, अनन्यता और जागरूक सेवा-परायणता की गहरी छाप उन पर पडी। उपास्य के गुण तो उपासक मे आते ही है। श्री राम द्वारा हनुमानजी को दिया हुआ उपदेश उन्होने भी गॉठ बॉध लिया है

सो अनन्य जाके अस मति न टरइ हनुमन्त।
मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त॥

यह सचराचर जगत् मेरे स्वामी का प्रत्यक्ष स्वरूप है। अत सेवक-सेव्य भाव से इसकी सेवा करना ही मेरा सहज कर्त्तव्य है। इस भाव का बीज मानस ने ही उनके हृदय मे बोया था जो गॉधीजी के साहचर्य के कारण विविध रचनात्मक कार्यो के माध्यम से पल्लवित, पुष्पित हुआ।

एक मारवाडी फर्म मे २५) रु० मासिक वेतन पर मुनीमी के द्वारा उन्होने अपना कर्म-जीवन शुरू किया। बाद मे हेशियन की दलाली की, शेयर बाजार का काम किया। यदि वे १९१७ मे जमनालाल बजाज और महात्मा गॉधी के सम्पर्क मे न आते तो हो सकता है कि अपने अध्यवसाय और कुशल एव मधुर व्यवहार के कारण करोडपति हो जाते (जैसे कि उनके कई सहयोगी हो गये) किन्तु कैसे वे देश-सेवको के सम्पर्क मे न आते? कलकत्ता के प्रगतिशील बगाली समाज के राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक विकास के साथ वे अपने दकियानूसी मारवाडी समाज या कि हिन्दी-भाषी समाज की तुलना करते हुए उसकी अशिक्षा तथा कुरीतियो को

दूर करने का स्वप्न देखने लगे। कलकत्ता आने के पहले ही अपने गाँव नवलगढ मे वे एक पुस्तकालय की स्थापना कर सार्वजनिक कार्य की दीक्षा ले चुके थे। व्यापार मे कुछ जम जाने के बाद १९१६ मे वे सामाजिक कार्यो मे थोडी-थोडी रुचि लेने लगे थे। तभी १९१७ मे कलकत्ता-कॉंग्रेस के अवसर पर जमनालालजी के माध्यम से उन्हे गाँधीजी का साहचर्य मिला और वे सदा के लिए गाँधीजी के हो गये। देखा तो गाँधीजी को इसके पहले भी उन्होने दो बार था किन्तु उनकी सेवा का अवसर इसी बार मिला। गाँधीजी की सरलता, निर्मलता, सादगी, मित-व्ययिता, रचनात्मक देश-सेवा तथा अहिंसक प्रतिकार की भावना मे उन्हे अपने जीवन का आदर्श दृष्टिगोचर हुआ। चुपचाप उन्होने अपना जीवन उस आदर्श पुरुष के बताये कार्यो के लिए समर्पित कर दिया। 'रामकाज कीन्हे बिना मोहि कहाँ विश्राम' हनुमानजी की इस मान्यता के अनुरूप ही वे अविश्रान्त रूप मे अपने 'राम' का काम करते रहे।

काम एक ही था—देश का काम। किन्तु 'एकोऽहं बहुस्याम"—एक ही तो बहु के रूप मे झलक उठता है, सो देश का काम भी बहुत से रूपो मे प्रकट हुआ। पराधीन देश की पहली और सब से बडी कामना राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त करने की होती है। सघर्ष के बिगुल बार-बार बजे और अनुशासित कार्यकर्त्ता की तरह प्रत्येक बार सीतारामजी आन्दोलनकारियो की पहली कतार मे नजर आए। मार भी खाई, जेल भी गये। गाँधी की आँधी जब-जब उठी, बीस मे, तीस मे, बयालीस मे तब बहुत से तिनके भी आकाश छूने लगे किन्तु निरन्तर आहुति देते हुए यज्ञ की ज्वाला को धधकाये रखने का काम बहुत थोडे लोग कर पाये। सीतारामजी उन्ही थोडे से लोगो मे से एक हैं।

स्वतत्रता क्या केवल नारे लगा कर, जुलूस निकाल कर, हडताले करवा कर, रेल-तार की पटरियाँ उखाड कर पाई जा सकती है? रूढि-जर्जर समाज, अशिक्षित समाज, नारियो और शूद्रो को बेडियो से जकड रखने वाला समाज, फूट और गरीबी के बोझ से पिसता समाज क्या स्वतत्र हो सकता है? इन्ही सवालो का सामना करने के लिए गाँधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने रखे। गाँधी-वादी राजनीति ही नही, समाज-नीति और अर्थ-नीति भी सीतारामजी को स्वीकृत हुई। विदेशी सरकार से सघर्ष करते समय एक नशा-सा चढता है, उत्तेजना छाई रहती है—विशाल जन-प्रदर्शनो का नेतृत्व, अखबारो मे नाम और चित्र, फूलो की मालाएँ और तूफानी दौरे, जब कि सामाजिक कार्यो मे पग-पग पर विरोध, अपनो से मन-मुटाव, अपमान और बहिष्कार पर सीतारामजी और उनके साथी झेल जाते हैं सब कुछ । क्रमश रूढियाँ टूटती है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, मृतक भोज, छुआछूत जैसी कुरीतियो के विरोध मे तरुणो के स्वर उठने लगते हैं—विधवा–विवाह, सामाजिक सहभोज आदि का सक्रिय समर्थन होने लगता है। समय के अनुरूप समाज-गठन की बात सिद्धान्तत मान ली जाती है उस दिशा मे कुछ प्रगति भी होती है। स्वदेशी के आन्दोलन को आगे बढाने के लिए ही खादी

भण्डार की स्थापना होती है, सीतारामजी चर्खे को पुनर्जीवित करने का प्रयास करते है, खादी केन्द्रो का सगठन करते है।

राष्ट्रभापा के विना सच्ची एकता कैसे हो सकती है? राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, तथा हिन्दी भाषा ग्रौर साहित्य की ग्रन्य ग्रनेक सस्थाग्रो के साथ सीताराम जी जुडते हैं। वगाल मे हिन्दी-प्रचार का काम ग्रागे वढे, इसके लिए वगाल प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन हो या वग प्रादेशिक राष्ट्रभाषा प्रचार सभा या विश्वभारती सव को सीतारामजी का तन, मन, धन से सहयोग प्राप्त है। नेताजी सुभाष को हिन्दी सिखाने के लिए प्राध्यापक की व्यवस्था करनी हो या विश्वभारती मे हिन्दी-भवन की स्थापना करनी हो, उसका प्रमुख उत्तरदायित्व सीतारामजी के कन्धो पर ही है।

पर जो काम उन्हे सब मे ग्रधिक प्रिय है, वह है नारी-शिक्षा का। उनका वडा गहरा विश्वास है कि पुरुप को शिक्षा देना व्यक्ति को शिक्षा देना है, जव कि नारी को शिक्षित करना एक पूरे परिवार को शिक्षित करना हे। मारवाडी वालिका विद्यालय, वडा बाजार (कलकत्ता) की हिन्दी-भाषी वालिकाग्रो की शिक्षा का मुख्य केन्द्र वन जाता है, सीतारामजी उसके प्रधान मत्री जो है। वर्षो तक वे उसके मत्री रहे। कलकत्ता मे कई ऐसे परिवार सहज ही मिल जायेगे जिनमे महि-लाग्रो की तीन पीढियाँ उस विद्यालय की छात्रा रह चुकी है। कार्य-क्षेत्र के विस्तार के कारण 'श्री शिक्षायतन' की स्थापना हुई, मुख्यत उन्ही की प्रेरणा ग्रौर लगन से। ग्राज नारी-शिक्षा के क्षेत्र मे श्री शिक्षायतन विद्यालय ग्रौर महाविद्यालय का ग्रपना विशिष्ट स्थान है।

देश स्वतत्र हुग्रा तो बहुतो ने देश-सेवा को भुनाना शुरू कर दिया। उँगली मे खून लगा कर शहीद वनने वालो मे वहुतेरे गुटबन्दी ग्रौर गन्दी राजनीति के जोर पर एम० एल० ए०, एम० पी० हो गये। सीतारामजी इन प्रपचो से दूर ही रहे। सेवा के बदले मेवा खाने का शौक उन्हे नही था, न सेवा-कार्य मे ही उन्होने ढील ग्राने दी। ग्राज ८२ वर्ष की ग्रवस्था मे भी वे श्री शिक्षायतन के मत्री है, ग्रौर प्रति दिन जा कर उसके छोटे-से-छोटे ग्रौर वडे-से-वडे व्यवस्था सम्बन्धी कार्य की देख-रेख करते है। कलकत्ता की बीसियो सामाजिक, सास्कृतिक सस्थाग्रो से वे ग्राज भी जुडे हुए हैं ग्रौर शायद ही कोई दिन ऐसा जाता होगा जिसमे किसी सस्था की कार्यसमिति की वैठक या उत्सव ग्रादि मे सम्मिलित न हो। जवानो को लजाने वाली निष्ठा से ग्रव भी वे काम करते है, किसी पुरस्कार की लालसा से नही, ग्रात्मिक तृप्ति के लिए। यह ठीक है कि सरकार ने उन्हे पद्म-भूषण की उपाधि प्रदान की है। किन्तु उनका वास्तविक सम्मान यह नही है। उनका वास्तविक सम्मान वह ग्रादर ग्रौर प्रेम-भाव है जो हजारो हृदयो मे उनके लिए विद्यमान है, वह ग्रात्मीयता हे जिससे सैकडो परिवार उन्हे ग्रपना समझते है।

सीतारामजी व्यावहारिक ग्रादर्शवादी है, कल्पना-विलासी नही। कोई नई योजना सामने ग्राते ही वे उसकी छानवीन करते है, उसके ग्रार्थिक पक्ष का पूरा

विचार करते है और सन्तुष्ट होने पर ही अपना सहयोग देते है। स्वय अपने कार्यो पर कडी नजर रखते है। सन् १६२६ से वे नियमित रूप से प्रतिदिन डायरी लिखते रहे है, साहित्यिक शब्द-क्रीडा या भावोच्छ्वास के लिए नही, अनावरत आत्म-निरीक्षण के लिए, अपने काम की, अपनी गलतियो की विवेचना के लिए। उन्ही के शब्दो मे 'भगवान को अपने दिन भर के काम-काज का हिसाब देने के लिए'। सफलता को भगवान की कृपा और गलतियो का अपनी कमजोरी मानने वाला व्यक्ति उत्तरोत्तर अहकार-रहित भी होता जाय और प्रमाद-रहित भी, यह स्वाभाविक ही है।

सीतारामजी न केवल सुन्दर है, बल्कि सौंदर्यप्रिय भी है। उनकी माँ बहुत सुन्दर थी। आज भी किसी सुन्दर स्त्री को देखते ही उन्हें अपनी माँ की याद आ जाती है। बचपन मे उनका सौंदर्य-बोध इस सीमा तक बढ चुका था कि माँ के खुले बाल उन्हे अच्छे नही लगते थे और जब तक वे जूडा नही कर लेती, वे उनके हाथ मे खाना नही चाहते थे। उनका यह सौंदर्य-बोध उनकी रुचि और दृष्टि की ही तरह उनके बनवाए भवनो मे भी झलकता है। उनका विश्वास है कि 'जीवन मे श्रद्धा से ही सौंदर्य-बोध और कलात्मक प्रवृत्ति बढती है।' जीवन को उपभोग-मूलक नही, उत्सर्ग-मूलक मानने के कारण उनका सौंदर्य-बोध उदात्तता की ओर उन्मुख रहा है। इस प्रसग मे उनकी कला सम्बन्धी मान्यता का उल्लेख सुसगत होगा। स्व० मैथिलीशरण गुप्त के सम्बन्ध मे लिखे उनके लेख का आरम्भिक वाक्य है—"कला निर्धूम यज्ञाग्नि की तरह उस सम्पूर्ण समिधा को ग्रहण कर लेती है, जो यज्ञ-काल मे सह-धर्मियो के हाथो होमी जाती है।" उनके कला एव सौंदर्य सम्बन्धी सस्कारो पर गाँधीजी के साथ-साथ रवीन्द्रनाथ की भी छाप है। सुन्दर काव्य के वे बडे प्रेमी श्रोता है। मुझ पर उनके स्नेह का एक कारण यह भी है कि मुझे बहुत-सी अच्छी कविताएं याद है। कई अवसरो पर वे आग्रहपूर्वक अपने प्रिय कवियो की कविताएँ सुनते रहे है। यहाँ तक कि एक बडे आपरेशन के बाद जब वे शैयाशायी थे, तब भी मुझ से उन्होने कविताएँ सुनाने का आग्रह किया था। समाज और देश के लिये तन-मन से जुटने वाला व्यक्ति सहृदय ही हो सकता है। शुष्क राजनीतिज्ञ वे कभी नही रहे। सौंदर्य-बोध का एक सहयोगी गुण है स्वच्छता-बोध। जैसा बेदाग उनका चरित्र है, वैसा ही बेदाग रहता है उनका परिधान भी। उनके आवास की ही तरह उनके द्वारा सचालित प्रतिष्ठानो के भवनो मे सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाता है।

मैं एक बार उनसे पूछ बैठा—"आपको अपने जीवन मे सन्तोष है?" उन्होंने सहज ही उत्तर दिया—"अपने जीवन से अर्थात् अपने कार्यो से मैं असन्तुष्ट नही हूँ किन्तु देश की वर्त्तमान परिस्थिति से बहुत असन्तुष्ट हूँ।" मेरे यह पूछने पर कि—"आपके असन्तोष के क्या कारण है" उन्होंने दुखपूर्वक कहा कि—"हम लोगो ने जो सपने देखे थे, वे पूरे नही हुए।" डा० लोहिया पर लिखे उनके लेख की कुछ पक्तियो मे भी उनकी वह व्यथा झलकी है—"देश मे आज भ्रष्टाचार, आदर्शहीनता, और मूल्यहीनता का जो बोलबाला है, उसमे राजनीति किसी दिशा मे नही चल

पा रही है। वह गडवडाती हुई चलती है और ऐसा लगता है कि वह हमे गर्त मे ले जायेगी। विदेशी सिद्धान्तो के कितावी आधार पर हमने इन वर्षो मे जो किया, उसका नतीजा आज सामने है।" (वीता युग नई याद, पृ० ७८) गाँधीजी को अर्थात् भारतीय जीवन-मूल्यो को भुला कर पूजीवाद और समाजवाद के नुस्खो का आयात करने के कारण देश की वीमारी घटने के स्थान पर वढती ही चली जा रही है। मेरे यह पूछने पर कि "सेवा-निवृत्त होने के पूर्व आप कौन-सा काम अवश्य कर जाना चाहते है?" उन्होने उत्तर दिया, "अव मेरे मन मे अधिक इच्छाएँ नही है, कलकत्ता मे हिन्दी-भवन की स्थापना मेरे जीवन-काल मे हो, यही इस समय मेरी सव से वडी अतृप्त कामना है। इसकी पूरी सम्भावना भी है किन्तु कलकत्ता की वर्त्तमान स्थिति के कारण ऐसा करने मे हिचकिचाहट पैदा हो रही है, फिर भी उस दिशा मे चेष्टा तो है ही।"

असन्तोष के वावजूद सेकसरियाजी निराश नही हुए है, कटु भी नही हुए है। अव भी नियमित रूप से स्वीकृत कार्यों को करते जाते हैं। भारत के गौरवपूर्ण भविष्य के प्रति उनकी अडिग श्रद्धा है। सामयिक विफलताएँ या विशृंखलताएँ सामयिक ही है। हाँ, उनको दूर कर सुनहरा भविष्य गढने के लिए निष्ठापूर्वक काम करते जाना ही एकमात्र उपाय है। कर्म ही है जो अपने हाथ मे है, फल तो देने वाला ही देगा कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन्।

—— ०——

'दैनिक सन्मार्ग' के भूतपूर्व सम्पादक

श्री अनन्त मिश्र

युग-निर्माता

सार्वजनिक जीवन मे लोक-कल्याण और परोपकार के लिये समर्पित व्यक्तित्व का सर्वाधिक महत्व होता है। श्री सीताराम सेकसरिया ऐसे ही व्यक्तियो मे से एक हैं। उनका जीवन राष्ट्र और समाज के लिए समर्पित रहा है। कलकत्ता महानगर मे निवास करते हुए उन्होने राजनीतिक और सामाजिक चेतना के प्रतीक प्रत्येक आन्दोलन का नेतृत्व किया है। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण लोक-कल्याण की साधना मे लगा रहा। उनकी साधना और निष्ठा आश्चर्यजनक है।

व्यक्तिगत रूप से वे विनयी, शीलवान और सौजन्य की मूर्ति हैं। कोमल, भावुक और विनयी होने के साथ-साथ वे अपने सिद्धातो के प्रति अत्यधिक कठोर भी हैं। शायद ही उन्होंने अपने जीवन मे सिद्धातो के खिलाफ कोई समझौता किया हो। साहित्यकारो, कवियो और लेखको को उन्होने जो प्रेरणा दी है, उसे भला कौन विस्मृत कर सकता है? हिन्दी के अधिकाश साहित्यकार, कवि, लेखक और पत्रकार अपनी समस्याये लेकर उनके पास जाते है और वे कोई-न-कोई समाधान उनके लिए प्रस्तुत कर देते है। हिन्दी का शायद ही कोई विशिष्ट साहित्यकार होगा, जिसे कभी-न-कभी सीतारामजी का सान्निध्य न मिला हो। वस्तुत वे सीताराम ही हैं। यथा नाम, तथा गुण के अनुसार वे दलितो और पीडितो को सरक्षण प्रदान करने मे गहरी रुचि लेते हैं। सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ को हर तरह से प्रोत्साहन देना तथा उनके दुख-सुख मे भाग लेना उनके जीवन का मुख्य व्रत है। वैभवशाली समाज के बीच रहते हुए भी वे वैभव से पद्म-पत्र की भाँति निर्लेप रहे। कभी उन्होने उद्योग-व्यापार और धन-प्राप्ति की ओर कोई ध्यान नही दिया।

श्वेत खादी के परिधान मे आवेष्ठित, मृदुभाषी और शालीनता की मूर्ति सेकसरियाजी से मिलते ही उनके प्रति श्रद्धा और अपनत्व का भाव उमड आता है। देश के महान् पुरुषो के सम्पर्क मे रहने का तो उन्हे अवसर मिला ही है किन्तु साधारण जन भी उनके निकट किसी प्रकार की लघुता का बोध नही करता। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डा० राजेन्द्र प्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज तथा देश की अन्यान्य महान् विभूतियो के सम्पर्क मे रहने और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के महान् आन्दोलन मे भाग लेने का उन्हे अवसर मिला है। कवि-गुरु

रवीन्द्रनाथ ठाकुर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस और बंगाल की अन्य महान् विभूतियो के निकट और घनिष्ठ सम्पर्क मे वे रहे है। देश मे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन के जो भी आन्दोलन हुए, उनमे श्री सेकसरियाजी अपनी स्वर्गीय पत्नी भगवान देवी के साथ हमेशा आगे ही रहे। उनके विचारो मे लोगो का मतभेद भी रहा, किन्तु किसी ने कभी उनकी शालीनता और विनम्रता का विरोध नही किया। श्री सीतारामजी के प्रशसको की सख्या इतनी अधिक है कि उनके विरोधियो को ढूढ निकालना आकाश-कुसुम तोड लाने के समान कठिन है। विरोधी भी उनके समक्ष श्रद्धा से नत हो जाते है। यह उनके व्यक्तित्व की ही विशेषता है।

लोक-सेवा की भावना उनमे प्रगाढ है। कलकत्ता की बहुत-सी सस्थाओ के निर्माण और विकास मे उनका प्रमुख हाथ रहा है। श्री शिक्षायतन तो उनकी सेवाओ का मूर्त रूप है। भारतीय ज्ञानपीठ से भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त अनेक शिक्षण-सस्थाओ के वे सस्थापक, सभापति और परामर्शदाता है। मारवाडी बालिका विद्यालय, लोहिया मातृ सेवा सदन आदि की स्थापना मे उनका बहुत बडा हाथ रहा है। खादी और ग्रामोद्योग के प्रसार के लिये भी उन्होने अथक प्रयास किया है। सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति उनकी आस्था अटूट है। हिन्दी के प्रचार और प्रसार मे उनका कितना योगदान है, इसका सही-सही मूल्याकन किया ही नही जा सकता। हिन्दी-भवन की स्थापना की लालसा कितने दीर्घकाल से उनके हृदय मे विद्यमान है। हिन्दी का छोटा-से-छोटा काम भी सीतारामजी के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है और उसे पूरा करने के लिये वे तन, मन, धन से लग जाते है। जिस निष्ठा और मनोयोग के साथ वे हिन्दी की सेवा करते रहे है, वह प्रशसनीय है। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति आदि अनेकानेक सस्थाओ से आपका किसी-न-किसी रूप मे सम्पर्क रहा है।

सीतारामजी के आचार-विचार, व्यवहार और कार्य-पद्धति पर गाँधीजी का पूरा प्रभाव है। वस्तुत वे आदर्श गाँधीवादी हैं। उनका लक्ष्य धनोपार्जन नही, जनताजनार्दन की सेवा रहा है। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यो को उन्होने निष्ठापूर्वक अपनाया और उनके प्रचार एव प्रसार के लिये सदैव प्रयत्नशील रहे। स्वाध्याय को उन्होंने जीवन मे सर्वाधिक महत्व दिया है और साहित्य की विभिन्न विधाओ का गहरा अध्ययन किया है। काव्य, नाटक, निबन्ध, सस्मरण तथा साहित्य-रचना की अन्यान्य विधाओ से आप भली भाँति अवगत है। उनकी डायरियो का प्रकाशन साहित्य जगत की एक घटना है, जिससे उनकी साहित्यिक गति का पता चलता है। भाषा सरल, सुबोध और हृदयग्राही होती है तथा सीधे हृदय को स्पर्श करती है। उनके विचार बडे ही उच्च है और मानवीय भावनाओ को स्पर्श करते हैं। अत्यधिक सवेदनशील और भावुक होने के साथ ही वे व्यावहारिक भी हैं। आदर्श और व्यवहार मे सामजस्य उनकी अपनी विशेषता है।

हो सकता है कि उनमे कुछ त्रुटियाँ भी हो क्योंकि कोई भी मानव सदा पूर्ण नही होता किन्तु, जहाँ तक मैंने उन्हे अध्ययन किया है और निकट से देखा है,

उसमे तो यही लगता है कि वे सहृदयता और शालीनता के मूर्त्त रूप है। कलकत्ता नगर और खास कर हिन्दी भाषी क्षेत्रो मे वे नारी-शिक्षा के प्रसार के अग्रदूत रहे है। बालिकाओ के लिये विद्यालयो की स्थापना करना उनके जीवन का एक व्रत रहा है। वास्तव मे, शिक्षा-प्रसार और समाज-सेवा के क्षेत्र मे उनका अवदान सर्वाधिक उल्लेखनीय है।

वस्तुत श्री सीताराम सेकसरिया एक युग के निर्माता है। उन्होने इतिहास को एक नयी दिशा दी है। वे महान् देश-भक्त और जन-सेवक के रूप मे सदैव स्मरण किये जायेगे। भारत सरकार ने उन्हे पद्मभूषण की उपाधि देकर सम्मानित किया है। उनका अभिनन्दन करते हुए हमे अपार प्रसन्नता का बोध हो रहा है। परमात्मा उन्हे दीर्घजीवन और स्वास्थ्य प्रदान करे।

—'०'—

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मंत्री

श्री रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री

हिन्दी पुरस्कर्ता

पद्मभूषण श्री सीतारामजी सेकसरिया हमारे राष्ट्र के एक ऐसे महान् सेवक और शुभैषी है, जिनकी प्रतिभा और कतृत्व से राष्ट्र-जीवन के अनेक क्षेत्र उपकृत और अलकृत हुए है। सेकसरियाजी वास्तव मे विशुद्ध गाधीवादी हैं। उनका शिक्षा-प्रेम और राष्ट्र-प्रेम उनके प्रत्येक कार्य मे मुखरित है। राष्ट्र-भारती हिन्दी के उत्थान, उन्नयन एव बहुविध विकास के लिए अपने यौवनकाल से ही उन्होने बहुत कार्य किया है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वे परम प्रेमी रहे हैं और उसकी विविध प्रवृत्तियो के प्रति सदैव जिज्ञासु रहते हैं। सम्मेलन का सेकसरिया महिला पारितोषिक इसका एक उज्ज्वल उदाहरण है, जिसकी स्थापना उन्होंने सन् १९३१ ई० मे की थी। इस पारितोषिक द्वारा अब तक हिन्दी की लगभग २० यशस्विनी लेखिकाओ को उनकी अनवद्य रचनाओ के लिए पुरस्कृत किया जा चुका है—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, साहित्य-वाचस्पति श्रीमती महादेवी वर्मा, श्रीमती दिनेशनन्दिनी डालमिया, श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल, श्रीमती रामकुमारी चौहान, श्रीमती सूर्यदेवी दीक्षित, श्रीमती तोरनदेवी 'लली', श्रीमती सुमित्रा कुमारी सिन्हा, श्रीमती तारादेवी पाण्डेय, श्रीमती चन्द्रावती ऋषभ जैन, श्रीमती चन्द्रकिरण सोनरिक्सा, श्रीमती शान्ति एम० ए०, श्रीमती उषादेवी मित्रा, श्रीमती कचनलता सब्बरवाल प्रभृति।

पाँच सौ रुपये का यह पारितोषिक हिन्दी की महिला लेखिका को उसके जीवन-काल मे उसके द्वारा रचित किसी मौलिक रचना के सम्मानार्थ दिया जाता है। पारितोषिक सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन मे कतिपय औपचारिकताओ की पूर्ति के अनन्तर प्रदान किया जाता है। यदि किसी कारणवश कोई लेखिका अधिवेशन के अवसर पर पारितोषिक लेने के लिए उपस्थित नही हो सकती तो पारितोषिक का प्रमाण-पत्र पारितोषिक की धनराशि सहित सम्मेलन की स्थायी समिति के किसी अधिवेशन मे उसे दिया जाता है, किन्तु प्रमाण-पत्र मे तिथि आदि वही रहती है जिस तिथि पर सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न होता है। सकलित, सग्रहीत अथवा अनूदित ग्रथ पर यह पुरस्कार नही दिया जाता, अपितु स्वतन्त्र रूप से सिद्धात स्थापित करनेवाली व्याख्याओ अथवा भाष्य के ग्रथ पर भी दिया जा सकता है। यह पारितोषिक केवल एक लेखिका को प्रदान किया जाता है, पुरस्कार की धनराशि बाटी नही जा सकती।

इस पारितोपिक के लिए एक सेकसरिया महिला पारितोपिक समिति का सगठन प्रति वर्ष स्थायी समिति द्वारा किया जाता है, जिसमे कुल पाच सदस्य होते हैं। इन पाच सदस्यो मे से एक श्री सीतारामजी सेकसरिया होते हैं अथवा उनके द्वारा नामाकित प्रतिनिधि होता है। यह समिति इस पारितोपिक से सम्वन्धित सभी कार्यों की व्यवस्था करती है। पारितोपिक के लिए हिन्दी साहित्य की किसी भी विधा की रचना हो सकती है।

यद्यपि नियमानुसार जीवित लेखिकाओ को ही यह पारितोपिक प्रदान किया जाता है किन्तु यदि किसी लेखिका की पुस्तक पुरस्कार-प्रतियोगिता मे भेजने के लिए पारितोपिक समिति द्वारा स्वीकृत हो चुकी हो और उसके बाद लेखिका का देहावसान हो जाय, तब जरूर उसकी रचना पर विचार किया जाता है। यदि समिति निश्चय करती है तो पारितोपिक लेखिका के उत्तराधिकारी को दिया जा सकता है।

प्रति वर्ष सौर वैशाख मास की ३१ वी तिथि तक इस पारितोपिक की प्रतियोगिता मे पुस्तके स्वीकार की जाती है और इस तिथि से १५ महीने से अधिक पहले की प्रकाशित रचनाओ पर विचार नही किया जाता। पारितोपिक के निर्णय के लिए पारितोपिक समिति ५ निर्णायको की नियवित करती है। नियुक्ति से पहले निर्णायक विद्वानो अथवा विदुपियो के नाम समाचार-पत्रो मे प्रकाशित सूचनाओ द्वारा मागे जाते हैं। उसके अनन्तर समाचार-पत्रो से अथवा अन्य रीति से आये हुए नामो पर विचार कर के पारितोपिक समिति पाँच निर्णायक तय करती है। पारितोपिक समिति का कोई सदस्य निर्णायक नही हो सकता और साथ ही निर्णायको मे कोई ऐसी लेखिका या प्रकाशक नही रह सकता, जिसके द्वारा लिखित या प्रकाशित रचना पारितोपिक की प्रतियोगिता मे विचारार्थ रखी जाती है। निर्णायक गण किस क्रम और ढग से रचना पर निर्णय दें, इसके लिए भी पारितोषिक की नियमावली मे सुस्पष्ट व्यवस्था है और ऐसा प्रयत्न किया गया है कि कोई भी उत्कृष्ट रचना उपेक्षित या अवहेलित न हो।

इधर वहुत दिनो से हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन नही हो सका है, अत सेकसरिया पारितोपिक की प्रगति भी अवरुद्ध है, किन्तु सेकसरियाजी वरावर इस पारितोपिक को जीवित-जागृत वनाये रखने के लिए सचेप्ट रहते है। यह उनके उत्कट हिन्दी-साहित्य-प्रेम का ही निदर्शन है।

सेकसरियाजी यद्यपि मारवाडी समाज के रत्न हैं तथापि वहुत कम लोग यह जानते है कि वे अपने समाज की श्री-सम्पन्नता के अपवाद हैं। उनका सारा जीवन मिशनरी की भाँति राष्ट्र-सेवा और शिक्षा के क्षेत्रो मे बीता है। जिसे भी कलकत्ता के श्री शिक्षायतन कालेज और उसकी सुव्यवस्था को देखने का सुयोग मिला है, वही जानता है कि सेकसरियाजी मे कितनी उत्कृष्ट कारयित्री प्रतिभा और उद्देश्यो के प्रति कैसी सच्ची निष्ठा है। प्राचीन काल के आश्रमो के कुलपतियो की भाँति श्री शिक्षायतन के वे आधुनिक ऋपि-तुल्य कुलपति हैं। उनके प्रति छोटे-वडे सव की समान श्रद्धा वनी हुई है। कलकत्ता ही नहीं, देश के सुपठित, शिक्षित समाज मे वे मूर्धन्य हैं।

सादगी एव स्वच्छता के प्रेमी सेकसरियाजी मे मानवीय गुणो का मनोहारी समवाय है जो आज के युग मे अत्यन्त दुर्लभ है। वे परदुख-कातर और सहज सहानुभूतिशील तो हैं ही, किन्तु उनकी नीर-क्षीर-विवेकिनी प्रज्ञा राष्ट्र की ज्वलन्त समस्याओ के प्रति सदैव सावधान रहती है। राजर्षि टण्डनजी तथा वियोगी हरि जी के साथ अनेक बार मुझे सेकसरियाजी के सान्निध्य के सुअवसर मिले हैं। उनका सदैव विहसता हुआ दैदीप्यमान मुखमण्डल और सहानुभूति-प्रवण तथा मर्म-भेदिनी आँखे अनायास ही आगन्तुको को अपना बना लेती हे। उनका स्वास्थ्य वहुत उत्तम कोटि का है जिसका रहस्य यह है कि उनके आचार, विचार और व्यवहार मे ऋषियो के समान अपार सयम है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वे चिरायु हो, जिससे राष्ट्र और राष्ट्र-भारती को उनके दुर्लभ गुणो का प्रसाद चिर काल तक मिलता रहे।

—— ० ——

प्रसिद्ध समाज-सेवी और राष्ट्र-कर्मी,
भूतपूर्व ससद् सदस्य

श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

समर्पित साधक

तिथि और घटना तो ठीक-ठीक याद नही पडती कि भाई सीतारामजी से सर्व प्रथम परिचय कब और कैसे हुआ। न तो बचपन उनके साथ बीता, न विद्यार्थी-जीवन। युवावस्था मे ही हम एक दूसरे के साथ हुए। हमारा सुप्तप्राय समाज एक मोड चाहता था, एक नई दिशा खोजता था, और देश की एक मात्र माग थी आजादी। उस सयम देश के लिये कुछ करने की तीव्र लालसा से प्रेरित होकर ही सम्भवत हम दोनो एक दूसरे के निकट सम्पर्क मे आये। सन् १९१२-१३ के पूर्व से ही मारवाडी युवको का एक सगठन चलता आ रहा था। उसका कोई नाम नही था, उसे "मित्रो की सभा" कहा जाता था। आरम्भ मे इस सगठन मे स्व० ज्वालाप्रसादजी कानोडिया, स्व० हनुमानप्रसादजी पोद्दार, स्व० फूलचन्दजी चौधरी, स्व० ओंकारमलजी सराफ, स्व० बैजनाथजी केडिया, घनश्यामदासजी बिडला आदि शामिल थे। मैं भी उस सगठन से सम्बन्धित था। सर्वश्री स्व० बसन्तलालजी मुरारका, मोतीलालजी लाठ, रामकुमारजी भुवालका, भागीरथजी कानोडिया, स्व० तुलसीरामजी सरावगी, स्व० पद्मराजजी जैन, स्व० नागरमलजी मोदी आदि भी कुछ काल बाद इस सगठन मे शामिल हुए और कुछ वर्ष बाद भाई सीतारामजी भी इसमे आ गये। इस सगठन के कुछ कार्यकर्त्ताओ का तत्कालीन क्रातिकारियो से भी सबध था। यद्यपि सभा का कोई लिखित विधान नही था, पर आत्मोन्नति के लिये स्वेच्छा से अपनाये हुए कुछ ऐसे सिद्धात अवश्य थे, जिनका हर सदस्य को पालन करना अनिवार्य था। ये नियम थे सूर्योदय से पहले उठना, निष्ठानुसार प्रार्थना करना, किसी-न-किसी प्रकार का व्यायाम करना, स्वाध्याय करना, स्वदेशी कपडे पहनना, एव अपनी आय का दसवा भाग किसी अच्छे कार्य मे लगाना।

चार साल दुमका-निर्वासन के बाद मै १९२० मे कलकत्ता लौटा और सैयद-साली लेन मे रहना शुरू किया। उस समय लोगो के पास जाने मे मुझे कुछ हिचक सी होती थी, केवल इसी भय से कि कही मेरा जाना अहितकर न समझा जाय। स्मरण आता है कि एक दिन स्व० हरिबक्सजी सावलका के यहा भोज था। इस भोज मे शामिल होने के लिये भाई सीतारामजी स्वय मुझे लिवाने आये। उनकी

वात मान कर मैं उसमे शामिल हुआ। सभवत यह मेरी उनसे पहली मुलाकात थी। उसी समय से हम एक दूसरे के अधिक सम्पर्क मे आते गये।

आरम्भ से ही उच्च आदर्शो को अपना कर, उन्हे अपने जीवन मे उतार कर एक ऐसे जीवन के गठन मे भाई सीतारामजी लग गये, जिसका परिपक्व रूप आज हमारे सामने है। जिस काम मे वे लग गये, उसे पूरी निष्ठा के साथ करते गये, न कभी डिगे और न कोई उन्हे डिगा सका। ५०-६० वर्ष पूर्व समाज की जो अवस्था थी, उसकी आज कल्पना नही की जा सकती। समाज-सुधार के जितने भी काम हुए, उनमे सीतारामजी सदा अगुआ थे। वाल-वृद्ध-अनमेल विवाह वन्द करना, मृतक विरादरी भोज बन्द करना, परदा प्रथा उठाना, विधवा-विवाह प्रचलित करना, महिलाओ मे शिक्षा-प्रचार और हिन्दी-प्रचार आदि कामो के लिये जो आन्दोलन हुए, उन सभी मे भाई सीतारामजी ने सक्रिय योग-दान किया। वे सदैव महात्मा गाँधी के पक्के अनुयायी और स्वतत्रता-सग्राम के अग्रिम सेनानी रहे है। कई वार जेल गये, वहाँ की यातनाए भोगी, पर वे अपने सकल्प से कभी दूर न हटे। वे चाहते तो व्यापार-व्यवसाय मे लग कर काफी अर्थोपार्जन कर सकते थे, पर उन्होने तो सर्वस्व त्याग कर अपना सारा जीवन देश और समाज की सेवा मे ही अर्पित कर दिया। उसी लगन के साथ आज भी करते आ रहे है।

सब से अधिक महत्वपूर्ण काम भाई सीतारामजी द्वारा स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे हुआ है। आरम्भ से ही अबला-जीवन की मर्म-भेदी वेदना उनके अन्तस्तल को क्षुब्ध किए हुए थी। महिलाओ के प्रति समाज की इतनी भारी उपेक्षा समाज के लिये एक विडम्वना थी, एक कलक था, और सीतारामजी ने सकल्प लिया उस कलक को धो डालने का। उस समय कन्याओ के लिये जितनी भी पाठशालाये आदि खुली, उन सब मे आपका पूरा सहयोग रहा है। कलकत्ता मे मारवाडी वालिका विद्यालय, श्री शिक्षायतन स्कूल एव कालेज आदि सभी भाई सीतारामजी के प्रयास का फल है। इन सस्थाओ मे शिक्षा पाई हुई बहुत-सी छात्राएँ आज दादियाँ वन गई है। जव कभी वे मिलती है, तो सीतारामजी को "मत्रीजी" के नाम से ही वे सम्वोधित करती है। एक जगह उन्होने अपनी डायरी मे लिखा है

> "अपने को लडकियो के काम मे आनन्द मिलता है। अगर लडकियाँ अच्छी तरह पढे-लिखे और ऐसे सस्कार लेकर जाये, जिससे समाज और देश की सेवा हो, तो अपना परिश्रम सफल है।"
>
> "लडकियो के पास जाकर अपने मन के सारे दु ख दूर हो जाते है और वडा अच्छा मालूम होता है। इस वार लडकियो को देख कर लगा कि उनके मन मे भी राष्ट्रीय भावना वढ रही है।"

अभिप्राय यह है कि भाई सीतारामजी ने अपना सारा सुख-दुख महिलाओ के सुख-दुख मे ही विलीन कर रखा है।

एक सच्चे समाज-सेवक के साथ-साथ भाई सीतारामजी वडे अध्ययनशील और श्रद्धावान व्यक्ति है। उन्होने धार्मिक पुस्तको का गहरा अध्ययन किया है। सूर

और तुलसी के साहित्य से आपको विशेष प्रेम है। उसमे वे पूर्णतया मगन हो जाते हैं। सूर की वाल-लीला पढते समय जो भाव उनके हृदय मे उठते है, उनका चित्रण वे स्वय करते हैं—

> "सूरदास ने वात्सल्य-रूप का जो खाका खीचा है, वह अपना ही है। यशोदा का कृष्ण के प्रति प्रेम वेजोड है। श्री कृष्ण की वाल-लीला प्रेम और आह्लाद-दायिनी है। उनका मचल-मचल कर माखन रोटी माँगना, रूठना आदि जैमा है, और सूरदासजी ने जिम भावपूर्ण भाषा मे वर्णन किया है, वह हृदय-सागर मे अपूव तरगे पैदा करता है। अपने तो उसमे वेहोश जैसे हो जाते है। यदि प्रभु अपने को प्रेम-सागर मे डुवो दे तो उस अथाह सागर मे ऐसे डूवें कि कहा जाय कि क्या हुआ, इमका पता भी न मिले, उसी मे लीन हो जाये। ऐमा तव ही हो मकता है, जव वह प्रभु कृपा करके अपने को प्रेम-सागर मे लेवे।"

इसी तरह से रामचरित मानस के विषय मे भी आपके उद्गार है—

"तुलसीदास ने रामायण की रचना कर हिन्दी भाषा का, सर्व साधारण का, मानव-समाज का कितना उपकार किया है! रामायण मे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, नीति, धर्म और सदाचार का उपदेश तो है ही, वह सुन्दर काव्य भी है।"

भाई सीतारामजी के जीवन की गहराई को समझने के लिये यह तो थोडा-सा सकेत मात्र है। उनके हर कार्य मे महानता ओत-प्रोत है। वे सभी से प्रेम से मिलते हैं सव के दुख-दर्द मे हाथ वँटाते हैं। उनके चेहरे पर वरावर मुस्कान खेलती रहती है। मालूम होता है कि अन्तर मे छिपे हुए आनन्द के खजाने की कुजी उन्होने पा ली है। जहाँ जाते है, आनन्द भर देते हैं।

पचास वर्षो से अधिक काल से हम एक साथ हैं। उनका सग वडा सुहावना और वल देने वाला लगता है। साथ काम करते समय आपस मे मतभेद भी हुए है, पर कभी मनमुटाव नही हुआ। ऐसे साथी वडे भाग्य से ही मिलते हैं। जिनके साथ इतना अपनापन महसूस होता है, इतनी निकटता लगती है, उनकी अच्छाइयो के विषय मे कुछ कहने मे सकोच भी लगता है। जैसे सहोदर भाई की विशेषता दिन-रात अधिक घुले-मिले रहने के कारण दृष्टिगोचर नही होती है, वैसी-सी ही वात भाई सीतारामजी के साथ लागू पडती है।

चुनापुर शद फिजाए, सीना अजदोस्त।
खयाले ख्वेश गुम शुद अज जमीरन।।

—मेरा हृदय-स्थल मेरे मित्र से इतना ओत-प्रोत है कि दिल से अपने अस्तित्व का ज्ञान ही नष्ट हो गया।

—— ० ——

समाज-सेवी और राष्ट्र-कर्मी,
भूतपूर्व ससद् सदस्य,
आयकर-विशेषज्ञ

श्री वेणीशकर शर्मा

'मुहुरहो रसिका: भुवि भावुका:'

मै एक सनातनी जीव होने के कारण श्राद्ध एव तर्पण मे ही विश्वास करता हूँ। किसी मनीषि का वास्तविक अभिनन्दन तथा उसके जीवन का वास्तविक मूल्याकन उसके जीवनोपरान्त ही सम्भव हो सकता है, उसके जीवन-काल मे नही। मैने अपने चालीस वर्षो के सार्वजनिक जीवन मे देखा है कि किसी समय लोगो ने जिन विशिष्ट राजनीतिक एव सामाजिक कार्यकर्त्ताओ का अभिनन्दन किया था, उन्ही अभिनदित महापुरुषो के उनके द्वार पर आने पर उन अभिनन्दनकर्त्ताओ का दरवाजा बन्द हो जाता था। अतएव आज तक जीवनोपरात श्राद्ध मे ही मेरी आस्था रही है।

तथापि जब भाई सीतारामजी सेकसरिया के अभिनन्दन-ग्रथ के लिये लिखने का भाई भवरमल सिंघी का साग्रह निमत्रण मिला तो अपनी पूर्वोक्त आस्था बदलने के लिये मै सहज ही प्रेरित हो उठा। भाई सीतारामजी की तुलना मै फलो के राजा आम्रफल से करता हूँ। सुपक्व आम्रफल की अनिर्वचनीय मिठास, अलौकिक सुगध एव प्राकृतिक स्निग्धता से कभी मन नही अघाता। इसी प्रकार सीतारामजी से मिलने पर उनकी स्मित-हास्य-पूर्ण मुद्रा, उनके अकपट अपनेपन एव निस्वार्थ प्रेमपूर्ण (प्रेमपूर्ण नही, प्रेम से छलकता हुआ) व्यवहार से कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। उनसे वार-वार मिलने की इच्छा वनी रहती हे। श्री मद्भागवत के शब्दो मे "मुहुरहो रसिका भुवि भावुका" भी उनके लिए कहा जा सकता है।

भाई सीतारामजी का जीवन एक खुली हुई पुस्तक के समान है। जव से मै कलकत्ता आया हूँ—प्राय पैंतालीस वर्ष तो हो ही गये है—मैने उन्हे सामाजिक हित के सार्वजनिक क्षेत्रो मे ही सतत सलग्न देखा है। जहाँ औरो के लिये अपना व्यवसाय प्रधान और सार्वजनिक कार्य गौण होता है, वहाँ भाई सीतारामजी के लिये सार्वजनिक कार्य प्रधान एव अपना व्यवसाय गौण या नगण्य रहा है। अपने योग-क्षेम के लिए वे अवश्य कुछ-न-कुछ थोडे समय के लिए करते रहे होगे किन्तु मैने

कभी उन्हें अपने किसी व्यवसाय मे लिप्त नही देखा। जब देखा—चाहे सुबह के आठ बजे हो या दिन के बारह या फिर सध्या के छह बजे—तभी उन्हे या तो मारवाडी बालिका विद्यालय (श्री शिक्षायतन जिसका वृहत रूप है) या किसी दूसरी सस्था के दफ्तर मे बैठे हुए देखा है। उनके मुह से कभी किसी प्रकार की व्यापारिक चर्चा कम-से-कम मुझे तो सुनी याद नही आती।

मारवाडी समाज के उत्थान एव सुधार के लिये किये गये प्रयासो मे वे बराबर आगे रहे है। पर्दा-प्रथा को दूर हटाने के लिये आन्दोलन हो या मृतक बिरादरी भोज के लिये सत्याग्रह हो सभी जगह भाई सीतारामजी आगे मिलेंगे। किन्तु उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य समाज मे स्त्री-शिक्षा का प्रचार एव प्रसार ही रहा है। यदि मैं यह कहूँ कि उन्होने सार्वजनिक कार्यो मे जो समय लगाया, उसका पचहत्तर प्रतिशत बालिकाओ मे शिक्षा-प्रसार एव स्त्रियो के सामाजिक स्तर को ऊपर उठाने के प्रयत्नो मे खर्च हुआ है, तो कोई अत्युक्ति नही होगी। इस सबध मे उनकी तुलना महाराष्ट्र के स्वनामधन्य ऋषि-तुल्य महामना कर्वेजी से की जा सकती है, हालाकि ऐसी तुलनाये न आवश्यक है, न उपयुक्त ही।

पर्दा-प्रथा के कारण स्त्री-शिक्षा के प्रसार मे बडी बाधा होती थी। इसलिये इस घातक प्रथा को समाज से निर्मूल करने के प्रयासो मे भी आपका अधिक समय लगा, जिसके फलस्वरूप वयस्क बालिकाओ को आगे पढने मे काफी सुविधा हुई और उसी का परिणाम है कि जहा तीस-पैंतीस वर्ष पहले किसी बालिका का मैट्रिक पास करना एक अभूतपूर्व घटना समझी जाती थी, वहा आज घर-घर मे बी० ए०, एम० ए० की तो बात ही क्या, पी-एच० डी० होना भी कोई बडी बात नही समझी जाती। आज समाज मे डाक्टरेट की हुई लडकियो की सख्या भी कम नही है। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जब १९३५-३६ मे मैं मारवाडी छात्र सघ द्वारा प्रकाशित "मारवाडी" नाम की पत्रिका का सम्पादन करता था, तो उस समय मैट्रिक पास करने वाली दो-तीन लडकियो (शायद स्व० कुन्ती जाजोदिया, शाति खेतान आदि) के फोटो बडे फख्र के साथ टिप्पणी सहित उसमे छापे थे। शायद मारवाडी छात्र सघ के द्वारा आयोजित उस वर्ष के वार्षिक समारोह मे उन्हे विशेष रूप से आमत्रित भी किया था।

भाई सीतारामजी की सेवाओ, जो अभी भी चालू है, का वास्तविक मूल्याकन तो भविष्य मे आने वाली पीढी ही करेगी। किन्तु उनकी आज तक की सेवाओ (मारवाडी बालिका विद्यालय से श्री शिक्षायतन तक) के उपलक्ष्य मे सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' की उपाधि से उन्हे विभूषित किया जाना सारे समाज के लिये गौरव का विषय है।

परमात्मा उन्हे स्वस्थ रखते हुए शतायु प्रदान करे, इसी कामना के साथ।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध उद्योगपति
और लेखक

श्री रामेश्वर टॉंटिया

सारे जहां का दर्द जिस जिगर में है !

जो व्यक्ति कर्मठता पूर्वक सामाजिक कार्य मे लगा हुआ होता है, उसके बारे मे कहा जाता है कि वह एक सस्था है। लेकिन जो व्यक्ति अपना सब कुछ भूल कर भिन्न-भिन्न सस्थाओ के माध्यम से तथा व्यक्तिगत रूप मे सामाजिक सेवा में लगा हुआ हो, उसके लिए किस शब्द या प्रतीक का प्रयोग किया जाय, यह तय करना सहज नही है। श्री सीतारामजी सेकसरिया ऐसे ही व्यक्ति हैं। उनके बारे मे इतना ही कहना कि वह व्यक्ति नही, सस्था है, न सिर्फ उनका पूरा रूप सामने रख पाता है और न उनके और उनके कार्यों के प्रति पूरा न्याय कर पाता है।

वे लगभग ८२ वर्ष पूर्व राजस्थान के एक गॉव मे पैदा हुए। बहुत अल्पायु मे कलकत्ता आ गये और नौकरी करने लगे। युवावस्था मे ही जब कि लोगो को धन कमाने की तीव्र रुचि रहती है, उन्होने व्यापार से सन्यास ले लिया और राजनीतिक और सामाजिक कामो मे जुट गये। असहयोग आन्दोलन मे जिस दिन वे सत्याग्रही जत्थे का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार होने के लिए गये थे, उस दिन बडा बाजार मे जैसी भीड थी, शायद ही किसी दूसरे अवसर पर देखी गई हो। वे कई बार जेल गये, चोटी के नेताओ से उनका निकट सम्पर्क रहा, परन्तु स्वराज्य के २७ वर्षो मे उन्होने राज्य और केन्द्रीय सरकार से किसी प्रकार लाभान्वित होने का नही सोचा। उनके सामने जो स्वयसेवक थे, वे बडे-बडे मत्री और पदाधिकारी बन गये, पर उन्होने कभी उस तरफ देखा भी नही।

एक बार हम धनबाद मे एक मित्र के यहा अतिथि थे। भीतर से एक १०-१२ वर्ष का बच्चा आया और कहने लगा—'दादीजी आपको अन्दर बुलाती हैं।' भीतर जा कर वे बडी प्रसन्न-मुद्रा मे वापस आये। ४० वर्ष पहले की एक सुखद स्मृति उनके चेहरे पर थी, करोडपति गृह-स्वामिनी की जगह उन्हे एक मारवाडी बालिका विद्यालय मे पढती हुई छोटी-सी बालिका की याद हो आई। सचमुच उनका सान्निध्य प्रेम और पवित्रता का सचार करता है। उनके निकट बैठने पर एसा प्रतीत होता है, जैसे हम किसी देवस्थान में बैठ हुए हैं। उनकी बातचीत और व्यवहार इतना स्नेहपूर्ण होता है कि मनुष्य को स्नेहसिक्त

कर देता है और एसी आत्मीयता और निकटता का अनुभव होने लगता है, जिसमे बीच के सारे व्यवधान और अन्तराल तिरोहित हो जाते हैं। सीतारामजी को अभिमान छू भी नही गया है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रो मे इतना काम करते हुए भी वे उसका श्रेय नही लेना चाहते। उनकी सरलता इतनी स्वाभाविक है कि छोटे से छोटा व्यक्ति भी उनको अपने निकट अनुभव करता है। उनका जीवन सदा दूसरो के लिए पूर्ण रूप से अर्पित है। कही भी, किसी को भी कष्ट या अभाव मे देख कर उनका हृदय द्रवित हो उठता है। उन पर उर्दू के प्रसिद्ध शायर अमीर मीनाई का यह शेर पूर्णत लागू होता है

खजर कहीं चले, पै तडपते हैं हम 'अमीर',
सारे जहां का दर्द हमारे जिगर मे है।

—— ० ——

हिन्दी प्राध्यापक
और कवि

श्री कमलधारी सिह 'कमलेश'

कीर्ति-पुरुष !

तुम्हे कहूँ मैं सूर्य प्रात का या सन्ध्या का तारा ?
पतझरो मे खिले फूल तुम, या ज्वलन्त अगारा ?
क्या हो तुम ? ढलती रजनी या अरुणोदय उज्ज्वल हो ?
वडवानल से तपे सरोवर मे, उत्फुल्ल कमल हो !

'पद्मभूपण' कहूँ तुम्हें या कहूँ तुम्हे सन्यासी ?
महलो के मेहमान या कि तुम कुटी-कुटी के वासी ?
गाँधी की आँधी की गति तुम, डोला पत्ता-पत्ता ।
स्वतन्त्रता के प्लावन मे वह गई अनय की सत्ता ।।

कर्म और तप आज हो गए है तुम मे साकार !
'शिक्षायतन' कहो या कहलो मातृ-जाति का प्यार !!
सस्कृति के प्रतिमान, विनय के उत्स, शील के मर्म !
जडताओ से ग्रस्त जाति के तुम नवजीवन-धर्म !!

छूत-अछूत, शूद्र-ब्राह्मण या अन्तर नर-नारी का,
मिटा तुम्हारे हृदय-सिंधु मे जनता दुखियारी का ।।
युगो-शोपिता 'सीताओ' के उद्धारक तुम 'राम' !
कीर्ति-पुरुष ! 'कमलेश' कर रहा तुमको आज प्रणाम !!

—— ० ——

समाज-सेवी और पत्रकार,
भूतपूर्व ससद् सदस्य

श्री ओकारलाल वोहरा

चिरयुवा

लम्बा और ऊँचा कद, सौम्यता की साकार मूर्त्ति, सरल भाव-मुद्रा और धवल चान्दनी-सा शुद्ध खादी-परिवेश—ये हैं सेकसरियाजी, जो अपने-आप मे एक सस्था हैं। स्वतत्रता-सग्राम के हजारो सस्मरणो से लवरेज वे एक पूरा इतिहास हैं। वडे-से-वडे और छोटे-से-छोटे के वीच उनके व्यक्तित्व का प्रभाव रहा है। आज वृद्धावस्था मे भी वे अपने विचारो एव आचरण मे चिरयुवा से लगते है। भारतीय सस्कृति के इस तप पूत साधक ने अपनी देश-भक्ति एव राष्ट्र-निष्ठा को मारवाडी होते हुए भी कभी तराजू पर तौलने की चेष्टा नही की। साहित्य और सस्कृति के परम सेवक श्री सेकसरिया भारतीय सस्कृति के हिन्दी और अ-हिन्दी दोनो क्षेत्रो मे सम्मानित एव विश्वस्त सहयोगी हैं। प्रचार एव प्रकाशन की परिधि से वाहर वे अपनी सेवा एव साधना मे मूक सेनानी की तरह रत है। स्वतत्रता-सग्राम का यह सेनानी आज अशिक्षा एव अज्ञान के विरुद्ध सतत सघर्ष कर ही रहा है।

मातृभूमि, मातृभाषा और मातृजाति की मुक्ति के लिये श्री सीताराम सेकसरिया पिछले साठ वर्षो से निरतर जो सेवा कार्य कर रहे है, वह मूक रहते हुए भी मुखर है, क्योकि उसकी सुगन्ध मे हजार-हजार परिवार सुवासित हैं। मातृ-पूजा उनके जीवन का मत्र रहा है। कलकत्ता मे और वाहर भी हजारो की सख्या मे वे मातायें और वहिनें है जो आज जो कुछ है, उनके सहज सहाय्य के कारण हैं। उनकी यह मान्यता रही है कि एक महिला का निर्माण पूरे कुटुम्ब का निर्माण है जो अन्ततोगत्वा समग्र राष्ट्र और जाति का निर्माण है। मूलाग्र निर्माण की इस कल्पना और इसकी सिद्धि के लिये सर्वांग साधना ने ही सीतारामजी को वह वनाया, जो वे हैं।

महात्मा गाँधी के रचनात्मक कार्य जैसे खादी, अछूतोद्धार, महिला-जागृति आदि मे वे शुरू से ही प्रमुख भाग लेने लगे और विभिन्न सत्याग्रह आन्दोलनो मे भाग लेकर जेल-यात्रायें भी की। उस समय के महान् नेताओ जैसे गाँधी, नेहरू, सुभाष, पटेल आदि के साथ काम करने का उन्हे सौभाग्य प्राप्त हुआ। वस्तुत मातृभूमि का मुक्ति-सग्राम उनके जीवन का अभिन्न अङ्ग रहा है।

उनकी सेवा-साधना का प्रारम्भ वास्तव मे मातृ-भूमि के मुक्ति-आन्दोलन से ही हुआ। महात्मा गाँधी द्वारा निर्देशित रचनात्मक कार्यों मे उन्होने अपने-आप को पूरा-पूरा लगाये रखा। रचनात्मक कार्यो के साथ सत्याग्रहो और आन्दोलनो मे सक्रिय भाग लेने के कारण आप को जेल-यात्राएँ भी करनी पडी है। शरीर और मन से बहुत नाजुक होने के बावजूद उन्होने मातृभूमि के स्वाधीनता-आन्दोलन मे कठिन-मे-कठिन जीवन का वरण सहज भाव से कर लिया। इस प्रकार के त्याग और तपस्या-मय जीवन के कारण बगाल के राजनीतिक क्षेत्र मे आपका विशेष स्थान बन गया। महात्मा गाँधी के अहिंसात्मक आन्दोलनो के समर्थक एव कार्यकर्त्ता होते हुए भी आपका सम्पर्क क्रान्तिकारियो तथा काग्रेस के उग्र दल वालो से भी बराबर बना रहा है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से आपने कभी हिसात्मक कार्यों मे भाग नही लिया, फिर भी उस समय के क्रातिकारी आप से महत्वपूर्ण परामर्श व अपरोक्ष समर्थन बराबर पाते रहे। काग्रेस के आन्दोलनो और बडे-बडे नेताओ के विषय मे जब उनसे सुनते है तो ईर्ष्या होने लगती है कि कितने महान् अवसरो पर, कितने महान् लोगो के साथ उन्हे काम करने का अवसर मिला।

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद वे राष्ट्र-निर्माण के कार्य मे सलग्न हो गये। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को सेकसरिया-पुरस्कार दिया, महिलाओ के लिये समाज-सुधार का *आन्दोलन किया और शिक्षा-प्रसार की वृहद योजनाए निर्मित की।* आज वृद्धावस्था मे भी वे प्रतिदिन श्री शिक्षायतन के कार्यों मे निमग्न रहते है, जो सत्य, शिवम्, सुन्दरम् के आदर्शों से अनुप्राणित शिक्षा, सस्कृति, साहित्य, कला, सगीत, सभी का सर्वोत्तम सगम है। उसके निर्माण मे सेकसरियाजी के जीवन की अमर साधना है। सार्वजनिक जीवन के इस अप्रतिम योद्धा की कीर्ति हमारे राष्ट्रीय सम्मान "पद्मभूषण" की उपाधि से कही ऊपर और महान् है।

राजस्थान की धरती को श्री जमनालाल बजाज की तरह ही अपने इस यशस्वी पुत्र पर भी महान् गर्व है। कलकत्ता, विशेषकर बडा बाजार मे समाज-सुधार आन्दोलन, नारी-जागरण एव अन्य गाधीवादी रचनात्मक कार्यों मे इस मूक साधक का योगदान अद्वितीय एव अनुकरणीय है और रहेगा।

— ० —

राष्ट्र-कर्मी और समाज-सेवक,
महिला ग्राम विद्यापीठ, प्रयाग के संस्थापक व संचालक

श्री सगमलाल अग्रवाल

'सयातो येन यातेन देश जाति समुन्नतिम्'

सीतारामजी सेकसरिया के साथ मेरा परिचय ३८ वर्ष पूर्व हुआ। कलकत्ता गया था। वहा मारवाडी बालिका विद्यालय की मुख्य अध्यापिका के द्वारा विद्यालय मे उनसे मुलाकात हुई। जब उन्हे ज्ञात हुआ कि प्रयाग मे मै भी स्त्री-शिक्षा का कुछ प्रयोग चलाता हूँ तो उन्होने मुझे एकदम अपना लिया। पहली मुलाकात के बाद से ही कुछ ऐसा स्नेह हो गया कि अब तक जब कभी कलकत्ता जाता हूँ तो उन्ही के घर पर ठहरता हूँ। उनका कार्य-क्षेत्र कलकत्ता और मेरा सुदूर प्रयाग है, किन्तु हम दोनो स्त्री-शिक्षा और नारी-जाति के उत्थान का कार्य करते है। अत एक मिशन के दो मिशनरियो की तरह मिले रहते हैं। वे कुछ ऐसे शीलवान और मधुर हैं कि एक बार मिल जाने के बाद फिर अलग नही होते।

वे ऊँचे आदर्शो से प्रेरित जीवन व्यतीत करने वाले पुरुष हैं। उनके बाहर-भीतर के जीवन मे कोई अन्तर नही है। घरेलू जीवन भी वैसा ही सादगी और स्नेह का है जैसा उनका सामाजिक जीवन। उनकी पत्नी भगवान देवी का स्नेह भुलाया नही जा सकता। स्थूल काय होते हुए भी वह घर का सब काम स्वय करती थी और सीतारामजी को सब प्रकार का सुख पहुँचाती थी। पति के विचारो की जीवन-शिल्पी बन कर घर को बनाती-सवारती रहती। समय-समय पर सामाजिक सुधार की प्रवृत्तियो मे भी पति का साथ दे जाती। उनके घर मे कभी परायेपन का अनुभव नही हुआ। कुछ दिन पूर्व सीतारामजी के कोमल हृदय को उनका वियोग सहना पडा।

कलकत्ता मे मैने कभी महिला विद्यापीठ, महिला सेवा सदन अथवा महिला ग्राम विद्यापीठ के लिए चन्दा नही किया। आवश्यकता की पूर्ति के लिए मित्रो से उधार अवश्य लिया, जिसे समयानुसार चुकाता रहा। एक बार मेरी आवश्यकता का स्वय अनुभव कर उन्होने अपने अनन्य मित्र श्री भागीरथ कानोडिया के सहयोग से २५ हजार का चन्दा करा दिया। मेरी सस्थाओ के लिए उधार तो उन लोगो से मैने जब मागा, तब दे दिया। मेरे शिक्षा सम्बन्धी काम को सदा अपना ही काम समझा।

मेरी तरह ही सीतारामजी केवल शिक्षा तक सीमित नही रहे। वे बहुमुखी राष्ट्रीय प्रवृत्तियो मे भाग लेने वाले देश-सेवक रहे, किन्तु नारी-जाति के उत्थान को उन्होने सर्वाधिक महत्व दिया, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व वे महात्मा गाधी के नेतृत्व मे चलने वाले राष्ट्रीय सघर्ष मे जूझते रहे। स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद पार्लियामेन्टरी राजनीति मे न पड अपने को पूर्ण रूप से नारी-जाति की सेवा और शिक्षा मे रमा दिया। यह उनके जीवन का एक अत्यन्त उज्ज्वल पक्ष है।

कलकत्ता के धनिक मारवाडी समाज के बीच वे एक ऐसे आदर्श पुरुष है जिन्होने अपने को धन कमाने के प्रलोभन से बचा कर देश और समाज की सेवा मे लगाया है। उनके उच्च विचार और सरल जीवन का चरित्र अनुकरणीय है।

वास्तव मे, सीतारामजी इस उक्ति की साकार प्रतिमा है—"स यातो येन यातेन देश जाति समुन्नतिम्"। ईश्वर उनको शतायु बनावे।

—— o ——

सुपरिचित कवि और साहित्यकार

श्री गुलाब खंडेलवाल

चेतना की पारदर्शी प्रियता

श्री सीतारामजी सेकसरिया का नाम तो पहले भी सुनता था परन्तु उनके सम्पर्क मे आने का सौभाग्य १९६०-६१ के बाद ही हुआ। विक्टोरिया मैदान की उष कालीन वायु का सेवन वे नियमित रूप से करते है और जब-तब कलकत्ता-निवास मे मैं भी उत्साही मित्रो के प्रेम वश वहाँ पहुँच जाता हूँ। वहाँ जो राजनीतिक, सामाजिक और व्यक्तिगत चर्चाये होती है, उनमे सेकसरियाजी की उपस्थिति से एक विशेष गरिमा आ जाती है। यो वे कम ही बोलते है परन्तु किसी बात को कहने का उनका ढग इतना मधुर, तलस्पर्शी और सौहार्द्रपूर्ण होता है कि लोग सास रोक कर सुनने लगते हैं। उन्होंने गाधीवाद को अपने जीवन मे उतार लिया है। इस प्रक्रिया मे उसे नई चमक भी दी है। सूरज की किरण जिस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानो पर पड कर भिन्न-भिन्न आभा उत्पन्न करती है, उसी प्रकार गाँधी-वाद के सिद्धात भी अलग-अलग व्यक्तियो मे प्रतिफलित होकर अलग-अलग चरित्रो की सृष्टि करते है। विनोबा का तप पूत सन्यासी जीवन, नेहरूजी का गुलाब के फूलो से सुवासित आभिजात्य, और सेकसरियाजी का समाज-साहित्य-शिक्षा को सम-र्पित निष्कलुष जीवन-प्रवाह, सभी मे उस गाँव के सत की विनम्र महत्ता का उज्ज्वल आलोक देखा जा सकता है। सभी ने उसे अपने-अपने ढग मे ग्रहण किया है और अपने स्वाभाविक रग मे मिला कर उसे और भी फबीला बना दिया है। उनमे विनम्रता, व्यावहारिकता, कर्मठता, सजगता, विश्लेषण-क्षमता जन्मजात है। इन्ही गुणो मे जब गाँधीवाद के सत्य और अहिंसा की ज्योति झिलमिलाती है, तो चरित्र की कैसी मधुर, मनमोहक शरदाभा उद्भासित होती है चेतना की कितनी प्रभावपूर्ण पारदर्शी प्रियता प्रकट होती है, यह सीतारामजी सेकसरिया को देख कर समझा जा सकता है।

किसी व्यक्ति का सच्चा स्वरूप उसके अनजाने क्षणो मे या आवेश के क्षणो मे देखा जा सकता है। सेकसरियाजी का विरोधी स्वरूप भी दूसरो के समर्थक रूप से अधिक प्रिय होता है। गाँधीजी की यह विशेषता जैसी सेकसरियाजी मे है, वैसी अन्यत्र नही देखी जा सकती। एक उदाहरण याद आता है। मेरी पुस्तक "उषा" के विमोचन-समारोह के सेकसरियाजी सभापति थे। एक विद्वान् वक्ता के छिद्रा-न्वेषणपूर्ण भाषण को अरुचिकर और अशोभन समझते हुए भी वे चुपचाप बैठे

सिर झुकाये सुनते रहे। भाषण समाप्त करते समय वक्ता महोदय ने, शायद यह समझ कर कि वे काफी विलब तक बोल चुके है, 'उषा' की विशेषताओ के सबध मे कुछ न कह कर केवल इन्ही शब्दो से अपना वक्तव्य समाप्त कर दिया कि "कुल जोड मिलाने पर "उषा" एक बडी सफल रचना कही जायेगी।" उनके पूरे भाषण से उनके अतिम निष्कर्ष का कोई तुक-ताल नही था। वे जब बैठ रहे थे तो सेकसरियाजी ने उन्हे आडे हाथो लेते हुए सहास्य कहा—"पडितजी, आपका जोड ठीक नही है।" इस मधुर चुटकी से पडितजी तो झेप ही गये, सभा की खिन्नता भी माधुर्य मे बदल गई।

सेकसरियाजी साधु स्वभाव के पुरुष है और रचनात्मक कार्यों मे ही उनकी विशेष रुचि रही है। राजनीति का उनका कार्य भी विशुद्ध देश-सेवा के नाते ही समझा जा सकता है। न पद की दौड, न सम्मान की होड। सेवा की राजनीति समाप्त होते ही भोग की राजनीति से वे इसीलिये तटस्थ हो गये। तटस्थ तो राजनीति से वे पहले भी थे परन्तु उस समय देश की मुक्ति की ललक ने उन्हे उलझा रखा था। वह काम पूरा होते ही, "नव गयद रघुवीर मन, राज अलान समान," की उक्ति को चरितार्थ करते हुए वे साफ निकल खडे हुए और एक बार मुड कर भी उन्होने उधर नही देखा। परन्तु इससे उनकी कर्मठता और सेवा-भावना मे कोई कमी नही आई बल्कि सत्ता की राजनीति के चक्कर मे पडने से समय और शक्ति का जो अपव्यय होता है, उससे वे बच गये और शिक्षा और समाज-सेवा के कार्यों को अधिक मनोनुकूल ढग से कर सके। स्त्री-शिक्षा तथा नारी-सुधार के कार्यों मे उनकी सदैव रुचि रही है। वनस्थली बालिका विद्यापीठ मे उनका आरम्भ से ही योगदान रहा है। श्री शिक्षायतन उनकी कल्पना का राज-महल कहा जा सकता है, यद्यपि कलकत्ता की प्रत्येक इस प्रकार की सेवा-सस्था से ही उनका निकट का सपर्क रहा है।

परतु, यहा मै उनकी जिस उपलब्धि की चर्चा कर रहा हूँ, वह एक दूसरे प्रकार की उपलब्धि है, जो उन्हे अनायास सिद्ध हो गई है। अनायास से मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि जिस रूप मे साहित्य के एक अपेक्षित अग के वे प्रथम होता बन गये है, उसकी उस रूप मे कल्पना कदाचित उन्होने भी नही की होगी यद्यपि उसमे उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निचोड उसी प्रकार समाहित है जिस प्रकार फूल के सौरभ मे फूल के समस्त जीवन का सार-तत्त्व आ जाता है। मेरा अभिप्राय सेकसरियाजी की डायरी से है जो 'एक कार्यकर्ता की डायरी' के नाम से भारतीय ज्ञानपीठ से दो भागो मे सद्य प्रकाशित हुई है। अग्रेजी मे बोसवेल लिखित जोनसन की जीवनी प्रसिद्ध है। 'पेपीजे डायरी' को डायरी के रूप मे अग्रेजी भाषा मे विशेष महत्व प्राप्त है। सेकसरियाजी की डायरी भी हिन्दी साहित्य मे ऐसा ही महत्वपूर्ण स्थान पाने की अधिकारिणी है।

अच्छी डायरी लिखना अच्छा जीवन जीने जैसा ही दुष्कर कार्य है। मेरे एक मित्र ने विनोवाजी से बडे आग्रह से अपने सबध मे कुछ निर्देश मागा। विनोवाजी ने कहा—"तुम अपने महीने भर के कार्यों को एक पक्ति मे लिख कर प्रतिमास

मेरे पास भेज दिया करो।" अब उन महोदय की यही मन में बड़ी समस्या हो गई है कि प्रत्येक महीने में कुछ-न-कुछ तो ऐसा करना ही चाहिये जो विनोबाजी को लिख कर भेजने लायक हो। इसी प्रकार डायरी-लेखक का प्रतिदिन अपने आराध्य के सम्मुख अपने दिन भर की कार्यवाही का लेखा-जोखा रखना होता है। इससे बढ़ कर आत्मालोचन का और आत्मशुद्धि का कौन-सा साधन हो सकता है? अपनी अतरात्मा को साक्षी रख कर की गई इस विशुद्ध प्रार्थना से बड़ी कौन-सी प्रार्थना हो सकती है? इस सभा में बाहरी परिधानों से आपके महत्व की रक्षा नही हो सकती। शरीर को तो हम प्रतिदिन मल-मल कर साफ कर लेते हैं परन्तु मन की सफाई कैसे हो, इस पर हमारा ध्यान नहीं जाता। सेकसरियाजी की डायरी यही कार्य करती है। परन्तु इसमें विशेषता यह है कि पढ़ते समय पाठक भी आत्मालोचन करने लगता है। काव्य की भाषा में यही साधारणीकरण है, जहाँ शब्दों की अनुभूति समाप्त हो जाती है और हृदय की भाषा हृदय-हृदय की भाषा बन जाती है।

कुछ बातें छपाने के लिये लिखी जाती है, कुछ छिपाने के लिये। छिपाने के लिये लिखी बातें यदि छपा दी जाय तो उनमें जैसी अकृत्रिमता, सादगी और अतरगता मिलती है, वह गढ़ कर नहीं लाई जा सकती। सेकसरियाजी की इन डायरियों में वही 'प्रेम लपेटे अटपटे बैन' का मिठास है। इनके शब्द-शब्द में उनका निर्मल व्यक्तित्व झांकता है।

परतु इस व्यक्तिगत सिद्धि के अतिरिक्त इन डायरियों का एक पक्ष और भी है। वह है लोक-सिद्धि का।

गुजराती में महादेव भाई लिखित "महादेव भाई की डायरी' डायरी-साहित्य की एक अभूतपूर्व उपलब्धि है जिसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष के तीस वर्षों के राजनीतिक, सामाजिक और सास्कृतिक इतिहास का आकलन महात्माजी के सान्निध्य में किया गया है, जो उस काल-विशेष में सम्पूर्ण युग-प्रवृत्तियो के सूत्रधार एव सचालक थे। हिन्दी में इतने मनोयोग, सातत्य और साधना से लिखे जाने वाले डायरी-साहित्य का प्रथम दर्शन सेकसरियाजी की इन डायरियों में ही होता है। इस दृष्टि से उनकी यह उपलब्धि ऐतिहासिक महत्व रखती है। इन डायरियों को पढ़ने से सेकसरियाजी के रूप में एक श्रद्धालु, आस्तिक, कर्मठ देश-सेवक का चित्र तो उभरता ही है, भारतीय मुक्ति-सग्राम के उस सर्वाधिक महत्वपूर्ण काल-खड का प्रतिबद्ध और समर्पित होते हुए भी तटस्थ और नीर-क्षीर-विवेकी दृष्टिकोण से देखा हुआ चित्र उपलब्ध होता है। ये डायरिया इस दृष्टि से महादेव भाई की डायरी की पूरक है। जब तक किसी सघर्ष को जन-साधारण के दृष्टिकोण से नही देखा जाय तब तक जन-मानस की सही तस्वीर नही मिल सकती। सेकसरियाजी ने यद्यपि अपने मन के समाधान के निमित्त ये डायरियाँ लिखी है, परन्तु इनमें सारे समाज का मन उसी प्रकार अनायास प्रतिबिंबित हो गया है, जिस प्रकार तुलसी ने 'मानस' की रचना तो अपने "स्वातस्तय शातये" लिखी परतु उसने सारे देश और समाज के अतर-तिमिर को शात कर दिया। कोई ऐसा सूत्र नही है जिससे ऐसा अघटित घट जाय। बुलबुल का चहकना बहुतो ने सुना परतु उसको सुन कर जब कीट्स ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की तो

वह सभी भावुक हृदयो की पुकार बन गई। सेकसरियाजी ने इन डायरियो को लिखते समय अपने मन को इस प्रकार उघाड कर रख दिया है, अपने अहम् को इस प्रकार विसर्जित कर दिया है कि उन्हे एक भक्त की सरलता और सहजता ही नही मिल गई है, एक सच्चे समाज-सेवी की सही मनोदशा का प्रतिनिधित्व भी प्राप्त हो गया है। एक सरल, श्रद्धालु किंतु सजग और विवेकपूर्ण मस्तिष्क महात्माजी के आदोलनो को, उनकी नीति को और जनता पर उसकी प्रतिक्रिया को किस प्रकार देखता और अनुभव करता था, यह जानने का इन डायरियो से उत्तम कोई दूसरा साधन देखने मे नही आया है।

सेकसरियाजी की डायरी पढने से जो प्रेरणा मिलती है, वह किसी महापुरुष की जीवनी से मिलने वाली प्रेरणा से कम नही है वरन् कई अशो मे अधिक ही है। जब हम महादेव भाई की डायरी पढते हैं तो प्रेरणादायक प्रसगो के बीच यह भावना तो रहती ही है कि यह महात्मा की बात है, अल्पात्मा की नही। सेकसरियाजी की डायरियो मे हम अपने मन की धडकन सुनते हैं। पग-पग पर नवीन सकल्प, पराभव, पश्चात्ताप, पाप-भावना, स्वीकारोक्तियाँ, श्रद्धा, प्रार्थना, शिशु की सी सहज सतुष्टि, उधेडबुन, आशका, अनिश्चितता-जनित अस्थिरता, दूसरो के गुण-दर्शन, अपने अवगुण तथा अल्पता का बोध, घटते हुए जल वाले तालाब की मछली की तरह अर्थ-विघटन की चिंता, आशा, आशका आदि जहाँ एक ओर डायरी को साधारण से साधारण व्यक्ति के मानस का दर्पण बना देती है, वहाँ जगह-जगह पर देश-भक्ति की उत्कट अभिव्यक्ति, पीडित एव शोषित मानवता के प्रति सहानुभूति, अपने को लोक-सेवा मे मिटा डालने की उत्कट लालसा, समाज के दुर्बल अग जैसे स्त्रियो, हरिजनो, विधवाओ की दशा को सुधारने की तीव्र अभिलाषा इन डायरियो को विकासमान मानव-आत्मा का दस्तावेज बना देती हैं। इन्ही दोनो प्रकार की भावना की मिश्रित अभिव्यक्ति मे सत्साहित्य का जन्म होता है। शेक्सपियर के सौनेट और तुलसी की कवितावली और विनय-पत्रिका ऐसे ही मिश्रित मनोभावो की उपज है। व्यक्तित्व की इस पारदर्शी झाँकी ने ही सेकसरियाजी की डायरियो को साहित्य बना दिया है अन्यथा मुमुक्षु लोगो और साधको की मानस-यात्राओ की गाथाये भक्तो को तो बटोर सकी है, साहित्य-रसिको को आकर्षित नही कर पाई है।

सेकसरियाजी की डायरियो द्वारा बीते हुए युग के महान् पुरुषो के अतरग जीवन के दुर्लभ चित्र भी उपलब्ध होते है। इस प्रकार भावी इतिहासकार के लिये भी इनमे यथेष्ट सामग्री है। जमनालालजी बजाज, सुभाषचन्द्र बोस, महात्मा गाँधी, मालवीयजी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि महापुरुषो के एक-से-एक पावन, प्रेरणादायक अतरग प्रसग इन डायरियो मे जगह-जगह पर बिखरे हुए मिलते है जो, यदि ये डायरियाँ प्रकाश मे नही आती, अज्ञात के गर्भ मे समा जाते और भावी पीढियाँ सदा के लिये उनसे वचित रह जाती। सेकसरियाजी द्वारा अपने महत्वपूर्ण जीवन को नियमित रूप से डायरियो के माध्यम से लिपिबद्ध करना समाज और साहित्य के लिये की गई उनकी बडी-से-बडी सेवाओ मे गिना जायगा।

— ० —

राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध कवि,
प्राध्यापक

श्री विश्वनाथ 'विमलेश'

इमरतभरी मुस्कान

२७ जून १९६० नै मैं कवि कै रूप मे साइत पैली वार ही कलकत्तै गयो। ईं तराय पैली बार बुलाणै को श्रेय भाई नदलाल शाह नै है, जो वो वखत पोद्दार छात्र निवास मे एक विद्यार्थी कै रूप मे थो। पोद्दार छात्र निवास मे ही मेरी काव्य-गोष्ठी को ग्रायोजन हुयो। भाई वजरगलालजी लाठ वठै एक इयाकै ग्रमाधारण व्यक्तित्व कै साथ पधार्या था, क सब श्रोता एक साथ खड्या होकै वारो स्वागत कर्यो थो, तालिया वजाई थी। सुफेद परिधान मे वानै कोई राजनीतिक नेता समझणै की मैं भूल करी, पण तुरत ही पिछाणगो—वै श्री सीतारामजी सेकसरिया ही था, जिनाका दरसण मैं श्री भागीरथजी कानोडिया कै सागै लगभग ८-१० बरस पैल्यां मुकुदगढ मे ही कर चुक्यो थो, जद मैं वैठे एक ग्रध्यापक थो। श्री सेकसरियाजी गोष्ठी मे पूरी देर वैठ्या रह्या ग्रौर गोष्ठी खतम हुयां पीछे वडी ग्रात्मीयता से पूछ्यो—"कद ग्राया था? देस रा के हालचाल है?" ८-१० वरस पैल्या को साधारण सो परिचै ग्रौर इतनी ग्रात्मीयता। मनै याद नही क मैं के उत्तर दियो पण वा इमरतभरी मुस्कान मेरे ऊपर बरसती ही चली गई—ग्रौर वो यात्रा मे जठे-जठे भी काव्य-गोष्ठियां हुयी वा मैं सव मे सीतारामजी ग्रगाऊ पधार कै मेरो इतनो मान बढायो क मैं कदे भी नहीं भूल सक्यो हूँ—न भूलूगा।

जद पीछै मैं कितनी ही वार कलकत्ता गयो ग्रौर काव्य-पाठ कर्यो ग्रौर हर वार वा की वा ही इमरत बाणी—

"कद ग्राया? स्वास्थ्य तो ठीक चालै? देश का के हालचाल है?" ग्रौर प्रश्नां कै साथ ही एक दिव्य मुस्कान जो कालजै की गहराई तक रस-ही-रस बरसाती चली जावै।

परमात्मा इना नै शतायु करै, सहस्रायु करै, चिरायु करै! त्याग ग्रौर सेवा तो चिरायु रैसी ही।

—— ० ——

राष्ट्र-कर्मी,
पश्चिम बगाल विधान परिषद् के भूतपूर्व सदस्य,
प्राध्यापक

श्री रामलगन सिह

अनुकरणीय व्यक्तित्व

पद्मभूषण भाई सीतारामजी सेकसरिया के वारे मे क्या लिखू, क्या न लिखू ? करीब एक अर्ध-शताब्दी से मै उन्हे देखता, उनके वारे मे सुनता और उनके साथ सार्वजनिक क्षेत्रो मे एक सहकर्मी की हैसियत से काम करता आ रहा हूँ। जब मै पहले-पहल सन् १९२४ मे कलकत्ता आया तो उस समय मेरे सामने सार्वजनिक क्षेत्रो मे, विशेपकर काग्रेस मे सर्वश्री सीताराम सेकसरिया, वसन्तलाल मुरारका, पद्मराज जैन, पुरुषोत्तम राय, मूलचद्र अग्रवाल, रामनगीना सिंह, मदनमोहन वर्मन और अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी आदि कुछ विशिष्ट व्यक्तियो के नाम थे। छात्र-जीवन से ही राष्ट्रीय कार्यक्रमो मे रुचि रखने के कारण इन नामो के प्रति उन दिनो मेरे लिए विशेष आकर्षण था। उन्हे ही मै बडा बाजार के राजनीतिक जीवन और सामयिक गतिविधियो के सचालको और पथ-प्रदर्शको के रूप मे जानता-पहचानता था। उन दिनो श्री सेकसरियाजी से मेरा किसी भी प्रकार का निकट सम्पर्क नही था और न ऐसा करने का मेरा साहस ही था, पर उनकी सौम्य मूर्ति और उनका आकर्षक, शान्त एव गभीर मुखमडल मेरे सामने घूम जाया करता था और मै उनके निश्छल स्वभाव, साधु व्यवहार, मृदुल भाषिता, लोकप्रियता और सब से वढ कर काग्रेस के प्रति उनकी अटूट भक्ति और निष्ठा से वहुत ही प्रभावित होने लगा था। दूर-दूर से ही उनके लिए मेरे मन मे एक श्रद्धा और आदर के भाव का उन्मेष और एक सार्वजनिक राष्ट्रकर्मी के प्रति उठने वाली सहज आत्मीयता का वीज भी अकुरित होने लग गया था, जो आगे चल कर, उनके कुछ निकट सम्पर्क मे आने पर, एक विश्वसनीय साथी, एक प्रेरक नेता, एक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता और एक क्रान्तिकारी सामाजिक-सुधार-वादी कर्मठ व्यक्ति के रूप मे परिणत हो गया। वाद मे ज्यो-ज्यो मैं राष्ट्रीय कार्यक्रम के दौरान सेकसरियाजी के अधिक नजदीक आने लगा, त्यो-त्यो उनके प्रति मेरे मन मे एक अगाध स्नेह और आदर-प्रशसा का भाव भी वढता ही गया।

सन् १९२४ के बाद १९३०-३१-३२-४२ के राष्ट्रीय आन्दोलन मे मुझे उनके साथ और उनके निर्देशन-नेतृत्व मे काम करने का अवसर मिला। उसी सिलसिले मे एक

लम्बी अवधि तक उनके साथ जेल-यात्रा करने का गौरव भी मिल चुका है। राजनीतिक क्षेत्र में काम करते हुए मैंने उन्हें सदैव राजनीतिक दाव-पेच, उखाड-पछाड, कपट-छल तथा स्वार्थपूर्ण सघर्षो-दगलो और चुनाव-चक्करो मे बराबर कतराते हुए, दूर रह कर एक प्रकृत सिपाही की भाति कार्य करते रहने मे ही सुख का अनुभव करते पाया है। यदि सयोगवश कही किसी समय उन्हे किसी साथी के साथ सघर्ष करना ही पडा तो उसमे भी उनके दिल मे उस प्रतिद्वन्द्वी साथी और उसके समर्थको के प्रति किसी भी प्रकार के द्वेष-विद्वेष, मन-मुटाव, दुख-तनाव का उद्रेक मैंने कभी भी नही देखा। सेकसरियाजी का हर परिस्थिति मे एक स्थितप्रज्ञ की भाति ही काम करने का अभ्यास है। जय-पराजय दोनो को वे समान भाव से ही ग्रहण करते हैं। राजनीतिक सघर्षों मे भी वे उद्देश्य की पवित्रता और साधन की असदिग्धता मे ही विश्वास रखते हैं। सघर्ष-जनित किसी भी प्रकार की पारस्परिक कटुता और मन-मुटाव का सर्वथा अभाव श्री सेकसरियाजी की उल्लेखनीय चारित्रिक विशेषता है। अपनी इस सात्विक मनोवृत्ति और निष्कपट सरल व्यवहार के कारण ही, सार्वजनिक जीवन मे जहाँ आये दिन वैर-विरोध और निन्दा-स्तुति का ही बाजार गर्म रहता है, श्री सेकसरियाजी का खोजने पर भी एक शत्रु नही मिल सकता और इसी कारण हम लोग उन्हे सार्वजनिक जीवन मे 'अजातशत्रु' की ही भाँति देखते और समझते आ रहे हैं। हम राष्ट्रवादी काग्रेस-कर्मियो के दिलो मे, चाहे हम किसी भी खेमे से सबधित क्यो न हो, जितना आदर, जितना विश्वास और जितना सम्मान सेकसरियाजी के लिये है, उतना आदर-भाव बडा बाजार के किसी भी अन्य व्यक्ति के लिये नही है।

श्री सेकसरियाजी केवल एक उदार और विशुद्ध राष्ट्रकर्मी ही नही है बल्कि एक कर्मठ सुधारवादी और क्रातिकारी सामाजिक नेता के साथ-साथ उच्च कोटि के साहित्य-सेवी, साहित्य-प्रेमी, सशक्त लेखक, पटु वक्ता तथा धार्मिक प्रवृति के एक विद्वान् और जागरूक व्यक्ति है, जिनकी अभिरुचि सार्वजनिक हित मे राष्ट्र की सर्वाधिक उन्नति करने वाले सभी क्षेत्रो मे समान रूप मे पायी जाती है। किसी प्रकार की साम्प्रदायिक, धार्मिक, जातीय तथा प्रातीय सकीर्णताओ से वे सर्वथा मुक्त और ऊपर हैं। इन सकीर्ण क्षुद्र भावनाओ को वे अपने विचारो और व्यवहार मे किसी प्रकार स्थान नही देते। सेकसरियाजी के इन्ही गुणो के कारण उनकी लोक-प्रियता है और सर्वत्र समान रूप मे आदर-प्रतिष्ठा उन्हे प्राप्त है।

भाई सेकसरियाजी का करीब ५० वर्ष का सार्वजनिक जीवन हमारे सामने है। इस अवधि मे होने वाले सभी आन्दोलनो मे उन्होने सक्रिय भाग लिया और अपने वैशिष्ट्य के द्वारा उनमे क्रियात्मक गति प्रदान कर उन्हे सफल बनाया है। सच कहा जाय तो श्री सेकसरियाजी के जीवन के गत पचास वर्षो का लेखा-जोखा हमारे राष्ट्रीय आन्दोलनो, सग्राम-सघर्षों का पचास वर्षो का सही इतिहास है।

सभा-सोसाइटियो मे काम करने का श्री सेकसरियाजी का अपना एक विशिष्ट तरीका है। उनकी सगठनात्मक एव अनोखी कार्य-प्रणाली है। बात करने तथा अपनी बात को रखने और समझाने का उनका अपना दिलचस्प अन्दाज है। वे जिस

सस्था के सचालन की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते है, उसे पुत्रीवत् स्नेह और सरक्षण दे कर बराबर अपनी स्नेह-छाया मे पल्लवित और पुष्पित करते हुए उसमे एक नये जीवन और एक नयी क्रियाशीलता का सचार कर देते है। वे अपनी सतत सजगता, सक्रियता, निष्ठा और प्रेरक नेतृत्व से उस सस्था का एक सुन्दर, आकर्षक और स्वस्थ स्वरूप निर्माण करने की अद्भुत क्षमता रखते है जो सस्थाओ से सश्लिष्ट कार्यकर्त्ताओ के लिए एक अनुप्रेरणा और कभी-कभी शुद्ध ईर्षा का विषय भी बन जाता है। वे दल-बदल तथा दल-सघर्ष से सर्वदा दूर रहते है। काम ही उनका धर्म है, काम ही उनका साध्य और काम ही उनकी सिद्धि है। वे विचारो और मान्यताओ मे रूढिवादिता के पक्षपाती नही है। युग की माग और आवश्यकता को परखने-समझने और तदनुसार अपने को उसी के अनुरूप ढालने की उनमे अपूर्व क्षमता है। उनके इन गुणो का परिचय उनके सम्पर्क मे आनेवाले किसी भी व्यक्ति को सहज मे ही हो जाता है। हम सभी राष्ट्र-सेवी उनके साथी इसके साक्षी हैं। साथ ही, सेकसरियाजी एक सिद्धान्तवादी व्यक्ति हैं। सिद्धान्त के मामले मे किसी प्रकार का समझौता उन्हे स्वीकार्य नही। वे विचारो मे गाँधी-वादी और सर्वोदयी विचारधारा के समर्थक हैं। राष्ट्रीय तथा सामाजिक क्राति के कार्यकलापो मे वे किसी भी प्रकार की हिंसा का सहारा न ले सद्भावना-पूर्ण अहिंसात्मक साधनो द्वारा परिवर्तन लाने के पक्षपाती है। नितान्त शात, मृदुल, एव आत्मीयतापूर्ण व्यवहार और तर्क-शक्ति द्वारा अपने प्रतिद्वन्दी को भी अपने पक्ष मे कर लेने की उनकी अपनी विशेषता है। वे अपने सकल्पो मे दृढ, निर्णयो मे अडिग है। किसी बात का निश्चय कर लेने पर सहसा उससे विरक्त होने का उनका स्वभाव नही है। उनका सैद्धातिक विरोध किसी व्यक्ति या सस्था से नही, बल्कि मान्यताओ, उद्देश्यो और कार्य-प्रणाली से ही हो सकता है। किसी प्रकार के व्यक्तिगत प्रलोभन, पद-लोलुपता और स्वार्थ-पूर्ण सिद्धि के वे भयकर विरोधी हैं। अनेको राष्ट्रीय, शैक्षणिक और सामाजिक सस्थाओ मे सबधित रह कर सफलता-पूर्वक शुद्धाचरण के साथ उनका सचालन सेकसरियाजी के समर्थ व्यक्तित्व और निष्ठापूर्ण कर्त्तव्य-बोध का ही परिचायक है।

देश के शीर्षस्थ नेताओ, साहित्यकारो, महात्माओ, युग-प्रवर्तको के निकट आ, उनसे मानसिक तथा आत्मिक सबध स्थापित कर सेकसरियाजी ने अपने साधनामय जीवन को सजोया, सजाया और निखारा है। उन्होने राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन मे निस्वार्थ सेवा का आदर्श उपस्थित किया है, सफल नेतृत्व दिया है, स्पष्ट पथ-प्रदर्शन तथा सही दिशा प्रदान की है। और यह सब दिया है उन्होंने नितान्त निस्पृहता और निस्वार्थ एव निर्लिप्त कर्त्तव्य-भावना से ही प्रेरित होकर। निरभि-मान, निरहकार, सरलता, साधुता, सजीवता, निष्कपट भावुकता तथा सवेदनशीलता ही सेकसरियाजी के जीवन के दैदीप्यमान अलकरण हैं।

हम भगवान से यही प्रार्थना करते है कि वे हमारे बीच अनेक वर्षो तक पूर्ण स्वस्थ और सकुशल रह कर जन-सेवा करते रहे और अपने आदर्शमय जीवन के आलोक मे नई पीढी को आलोकमय और अनुकरणीय पथ-प्रदर्शन दे।

लेखक, अनुवादक, सम्पादक

श्री पृथ्वीनाथ शास्त्री

'जे आचरहि, ते नर न घनेरे'

श्री सीतारामजी सेकसरिया से मेरा परिचय लगभग सतरह वर्ष पहले दिवगत श्री मोहनसिंह सेगर ने कराया था। उस समय से ही मैं उनसे प्राय सभाओं और गोष्ठियों में मिलता रहा हूँ। सदा ही मैंने उन्हें प्रसन्न मुद्रा में देखा। मुझे लगता है कि जाने-अनजाने वे उस शाश्वत स्रोत से शक्ति-संग्रह कर पाते हैं, जिसे बहुत से लोग अवरुद्ध ही रहने देते है। 'पर हित सरिस धर्म नही भाई' की उनकी अपनी परिभाषा है। वे भरसक कोशिश करते है कि उनके द्वारा किसी का भी कोई अहित न हो। यह कम बडी बात नही है। लोग तो 'जे बिनु काज दाहिनेहुँ बाँये' के पालन मे ही अपनी शान समझने लगे हैं, उन्हे 'नहि मानुषात्पर किंचित् श्रेष्ठतरमस्ति' का कोई ज्ञान ही नही रह गया। पता नही, सेकसरियाजी जैसे व्यक्तियो की सख्या कोई जान सकता है या नही? इतना सुनिश्चित है कि यह घट रही है। रोजमर्रा के अनुभव तो यही बताते है।

उनकी निरभिमान मनोवृत्ति से भी मैं प्रभावित हुआ हूँ। भारतीय ज्ञानपीठ के वे ट्रस्टी है, मैं कई वर्ष उसमे एक व्यवस्थापक था। बाद मे, जब मेरा उससे मत-भेद हुआ तो सेकसरियाजी निष्पक्ष रहे, अनशन अवस्था मे भी कई बार वे मेरे पास आ कर बैठे। कभी भी उनके बर्ताव मे कोई अन्तर नही आया। बहुत कम लोग अपने क्षुद्र स्वार्थो या सम्बन्धो से ऊपर उठ पाते हैं, सेकसरियाजी उनमे से एक हैं। राहुल साकृत्यायन भी ऐसे एक व्यक्ति थे। बर्ताव मे निरभिमान और सबधो मे नीरोप तीसरे ऐसे व्यक्ति की गिनती अभी शुरू नही की।

किसी का भी "आक्षरिक" ज्ञान मुझे बहुत कम प्रभावित कर पाता है, कारण, इस क्षेत्र मे बडे-से-बडे के सम्पर्क मे आने का अवसर मिला है। पर 'जे आचरहि, ते नर न घनेरे' का कोई भी श्रेष्ठ निदर्शन मुझे अभिभूत करता है। सेकसरियाजी की उपस्थिति मे प्राय मेरी यही स्थिति होती है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमे अभी उनका सान्निध्य किसी भी समय मिल सकता है।

—— ० ——

समाज-सेविका

श्रीमती कुसुम खेमानी

व्यष्टि में समष्टि

पूज्य वावूजी का एक अनोखा व्यक्तित्व है। जो व्यक्ति एक साथ व्यक्तिगत भी हो और पूर्णत सामाजिक भी, उसे क्या कहा जाये? व्यष्टि का समष्टि मे व्याप्त हो जाना या समष्टि का व्यष्टि मे सिमटना। पूज्य वावूजी से जो स्नेह सब को मिलता है, वह अकल्पनीय है। असख्य छात्राओ एव परिचितो मे प्रत्येक को लगता है, मानो उसे ही उनका अपरिमित स्नेह मिला है। रामचरित मानस की यह उक्ति "अमित रूप प्रकटे तेहि काला, जथा जोग मिले सव ही कृपाला" उनके लिए पूर्णतया सटीक है।

वचपन की एक स्मृति आज भी मन पर है। मारवाडी वालिका विद्यालय के एक आयोजन मे शुभ्र रूप, शुभ्र वस्त्र, स्नेहिल हृदय मन्त्रीजी आये। "मन्त्रीजी आये" की हुकार मानो नेपथ्य से ही सुनाई पडी। मेरा वाल-सुलभ मन अभिभूत हो उठा। मैने एक वडे नेता का नाम लेते हुए अपनी वहन से पूछा—"क्या ये ही वे हैं?" इस प्रागण के लिए वावूजी का व्यक्तित्व ही सर्वोपरि है, यह वात मेरी वुद्धि से परे थी। मेरी दीदी ने मुझे समझाते हुए कहा—"इनकी विनम्रता तो देख। इनमे नेताओ सरीखा अभिमान नही है।" उस दिन वह वात अन्तम को कही भीतर तक छू गई थी। फिर तो इस लम्बे अर्से मे मैने स्वय महसूस किया कि फलो से लदा वृक्ष हमेशा झुका ही रहता है।

स्वाधीनता-सग्राम एव सामाजिक जागरण मे वावूजी के अपूर्व योग-दान को सभी जानते हैं पर नारी-उत्थान के लिए किया गया उनका कार्य विशेषणातीत है। यह कहना अतिशयोक्ति नही है कि अगर उन्होने लडकियो के लिये विभिन्न शिक्षा-केन्द्रो की स्थापना न की होती, तो मुझ जैसी लडकियाँ अपढ ही रह जाती। एक जागरूक व्यक्ति का योग-दान सस्था की स्थापना तक ही सीमित कैसे रह सकता था? उनके निरतर प्रयास से सस्था का समयानुकल विस्तार और समृद्धि होती गई।

असाधारण व्यक्तियो के विषय मे वहुधा कहा जाता है कि एक दूरी पर से ही ऐसे व्यक्तियो का अधिक प्रभाव होता और रहता है, पर वावूजी के वारे मे मेरा अनुभव भिन्न है। ज्यो-ज्यो वावूजी से अधिक सम्पर्क वढा, वे पहले से अधिक अच्छे लगे। जीवन को निस्वार्थ सामाजिक कार्यों मे तो और भी वहुत से लोग

लगाते है, पर बाबूजी तो निस्वार्थता से भी परे है। व्यवसाय को पूर्णतया त्याग कर, असुविधाओ की परवाह न कर, अपने-आपको पूरी तरह उत्सर्ग कर देने वाले बाबूजी बेजोड है। पूरी सचाई, पूरी सार्थकता एव पूरी सादगी से जीवन जीने वाले बाबूजी स्वय मे एक इतिहास है। किसी श्लाघ्य व्यक्तित्व की प्रशसा मे हम कितनी ही कृपणता क्यो न बरते, उसका किया इतना विपुल होता है कि हमारे शब्द हमारा साथ छोड जाते है। व्यास के बाद अनुष्टुप छद मे, कालिदास के बाद उपमाओ मे, टैगोर के बाद बगला काव्य मे जो कुछ भी रचा गया, उन महान् आत्माओ के कारण उतना प्रशसनीय नही हो पाया। मुझे ऐसा ही कभी-कभी सामाजिक क्षेत्र मे भी लगता है एव इसके कारण है—बाबूजी।

--- ० ---

मारवाडी बालिका विद्यालय की
प्रधानाध्यापिका

श्रीमती इन्दू घोष

तुम जियो हजार बरस !

छात्राएँ हाल मे एकत्र हो चुकी है।

कार्यक्रम मे भाग लेने वाली बालिकाएँ मन-ही-मन, अपने-अपने अभिनय-पाठ की आवृत्ति कर रही है।

कार्यक्रम शुरू होने वाला है।

उत्सुक निगाहे सीढियो से सलग्न द्वार की ओर लगी है।

पूर्णत शान्त वातावरण मे अचानक एक गम्भीर हलचल, वस्त्रो की सरसराहट, छोटे-बडे हाथो का बध जाना और भोले-भाले चेहरो पर प्यारी-प्यारी मुस्कान का उभरना सब यही सूचित करता है कि छात्राओ के प्यारे और अध्यापिकाओ के आदरणीय 'मत्रीजी' की झलक उन्हे मिल गयी है।

आपकी उपस्थिति और वातावरण का उल्लासपूर्ण हो जाना—ये दोनो बाते एक साथ होती हैं। आपके सुन्दर व्यक्तित्व की भव्यता सब के अन्तस्तल का स्पर्श करने लगती है और उससे गौरवान्वित हो कर हम कुछ समय के लिए अपनी 'तुच्छता' से मुक्ति पा जाते है। आपके स्नेह-सौरभ मे मौन-मुग्ध होकर आपके साथ-साथ कार्यक्रमो का रसास्वादन करना, वास्तव मे एक अद्भुत आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है।

कार्यक्रम की समाप्ति और हर छात्रा का आग्रह—'आप कुछ कहे'। और जो कुछ आप कहते हैं, वह होता है जीवन का सार, किन्तु इतनी सरल भाषा और शैली मे कि नौ-दस साल की छात्रा भी उसे समझ जाती है, सिर हिलाती है इस भाव से कि वह सब कुछ समझ गयी है और जो कुछ उन्होने कहा है, उस पर वह आज से ही, अभी से ही चलने का प्रयत्न करेगी।

आपको अधिकाधिक सुनने की आकाक्षा छात्राओ को ही नही हम सब को भी समान रूप से रहती है क्योकि ये बाते एक ऐसे व्यक्ति के मुख से निकल रही होती है जिसने उन्हे पूर्ण रूप से कर्म की कसौटी पर कसा है।

फिर कार्यक्रम का समाप्त होना और छात्राओ का आपको घेर कर खडे हो जाना। क्षण भर का मौन रख, तब बोलती—"जाइये, हम आपसे नही बोलते।" फिर उलाहना—"आप आते क्यो नही, मत्रीजी ?"

उलहाने का उत्तर भोलेपन मे—"अरे, आते तो है, देखो आज भी आये है।" "नही"—छात्रा उन्हे समझाती है—"आप जल्दी-जल्दी क्यो नही आते ? मतलब रोज-रोज क्यो नही आते ?" स्पष्ट दिखाई देता है—आपकी आँखें भीग जाती हैं। छात्राओ के सिर पर हाथ रख कर आप केवल इतना ही कह पाते हैं—"हा, हा आयेंगे। अबमे अल्दी-जल्दी आयेगे। समय निकाल कर जरूर जायेंगे।"

आप आगे बढते है, लेकिन विवश भाव से। छात्राएँ पीछे छूट जाती है, लेकिन विवश भाव से। केवल समय है जो समान भाव मे आगे बढता जाता है। सोचती हूँ—क्या ऐसा नही हो सकता कि आप जैसे महापुरुषो का दिन चौबीस नही, अडतालीस घटो का हो और उसी हिसाब मे सप्ताह, महीने और वर्ष भी। जब ऐसा होना सम्भव नही लगता तो 'गालिब' के शब्दो मे इतना तो अवश्य कह सकती हूँ

'तुम जियो हजार बरस,
हर बरस के हो दिन पचास हजार।'

—— o ——

बगला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार

श्री विमल मित्र

मनुष्यत्वमय मनुष्य

विश्वेदेवासूक्त का एक अश है—"देवाना सख्यमुप सेदिमा वय देवा न आयु प्रतिरन्तु जीवसे।" ऐसे मनुष्य वहुत है, जिन्होने अस्सी, नव्वे, सौ अथवा उससे भी अधिक आयु प्राप्त की है, परन्तु उक्त सूक्त उन सव के लिये उद्दिष्ट नही है, जिन्होने मात्र जीवन-यापन किया है। मनुष्य के साधारण जीवन का अर्थ मात्र नियति की सृष्टि है। ऐसे मनुष्य बहुधा अपने और अपने परिवार के लिये भी भार स्वरूप हो कर ही रहते है। उनके जीवन-मरण का लेखा-जोखा कौन लेता है?

सेकसरियाजी एक असामान्य पुरुष है। सूक्त के अनुसार ही उन्होंने देवताओ की मैत्री उपलब्ध की है और देवताओ ने उनकी आयु को वर्द्धित किया है। सूक्त का प्रथमाश भी उनके लिए सार्थक है—"देवाना भद्रा सुमतिऋजूयता देवाना रातिरभि नो निवर्तनाम्।" सरल-हृदय सेकसरियाजी के प्रति देवताओ का आग्रह प्रतीत होता है। देवताओ ने उन्हें कल्याणकारिणी सुमति प्रदान की है और देवताओ का दान उनकी ओर प्रत्यावर्तित हुआ है। सूक्त की रटना उन्होंने नही की है, सभव है विश्व देवासूक्त से उनका परिचय भी नही हो। देवताओ की मौखिक प्रार्थना से कुछ होता होगा, यह भी मेरा विश्वास नही है। वस्तुत कर्म ही मनुष्य का अधिकार है। वह यदि सूक्त के अनुरूप वन सके तो 'मा फलेपु कदाचन्' का 'कदाचन्' पद अर्थ-विहीन हो जा सकता है।

श्री सीताराम सेकसरिया के सवध मे मै क्यो लिख रहा हूँ, इसका विशेप कारण है। घटनाचक्र-वश आज से तेरह-चौदह वर्ष पहले उनके साथ मेरी प्रथम भेंट-वार्ता हुई थी। मै एकान्त-पसन्द लेखक हूँ, कभी किसी जन-सभा आदि मे नही जाता। किन्तु मध्य प्रदेश के समादृत लेखक सेठ गोविन्ददासजी ने कलकत्ता मे आकर मुझ से मिलने की इच्छा व्यक्त की। वे मेरे श्रद्धेय अग्रज है। इसीलिये मै सद्प्रवृत होकर उनके एक आत्मीय के निवास पर उनसे मिलने गया। उन्होने अपनी समस्त रचनावली स्नेहोपहार के रूप मे मुझे भेट की। उस घर मे प्रवेश करते ही एक आजानुलम्बित, गौरवर्ण, सौम्य-दर्शन व्यक्ति से मेरी भेंट हुई। उस समय तक मै नही जानता था कि वे ही स्वनामधन्य सेकसरियाजी

है। वहाँ सेठजी ने मुझे उनका परिचय दिया। मैं विस्मित और हतवाक् हो कर देर तक उनकी ओर देखता रहा।

जिनके सम्बन्ध में मैं इतने दिनों से इतनी बातें सुनता आ रहा था, वे इतने निरहंकार, उदार, सरल कैसे हो सकते हैं, उन्हें देखे बिना इस सम्बन्ध में मैं कल्पना ही नहीं कर सकता था। मनुष्य जितना बड़ा होता है, उतना ही अहंकारी होता है, मेरी यही धारणा थी। किन्तु सेकसरियाजी को देखने के पश्चात् मुझे अपनी वह धारणा बदलनी पड़ी। यहीं से हुआ सूत्रपात। इसके पश्चात् मैंने उन्हें भारतीय ज्ञानपीठ में देखा, देखा श्री शिक्षायतन में, कीर्ति-सौध के अभ्यन्तर में। फिर देखा, जब श्रीमती महादेवी वर्मा कलकत्ता आई थीं। वे सेकसरियाजी के घर पर ही ठहरी थीं। देवीजी से मिलने के लिये मैं सेकसरियाजी के घर पर गया। इन सब विभिन्न अवस्थाओं-परिस्थितियों में घर और घर के बाहर इस कीर्तिमान् व्यक्ति को देख-समझ कर भी, जो अभिज्ञता प्रथम दिन हुई थी, वह बदली नहीं। तरु-लता अति सहज तरु-लता हो सकती है, पशु-पक्षी अति सहज पशु-पक्षी हो सकते हैं, परन्तु मनुष्य? मनुष्य अनेक कष्ट, अनेक यन्त्रणा, अनेक साधना-तपस्या से मनुष्य बनता है। सेकसरियाजी ऐसे ही मनुष्यत्वमय मनुष्य हैं।

मनुष्य के मन में आदर्श उद्भासित होता है, तथापि मनुष्य अपने आदर्शों की रक्षा नहीं कर पाता। सेकसरियाजी के साथ यह दुर्घटना नहीं हुई। वे कभी अपने आदर्शों से विचलित नहीं हुए। उनके अवदान महान् हैं, पर अवदानों में नाम की स्पृहा नहीं है। नाम की स्पृहा से सेकसरियाजी ने कुछ नहीं किया। तथापि वे भाग्यशाली हैं कि नाम का यश-स्तम्भ उनके साथ जुड़ गया है। दीर्घ परिपूर्ण जीवन का यश-स्तम्भ उनके साथ सदा जुड़ा रहे, यही मेरी कामना है।

--- o ---

फारसी और अरबी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्,
कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक

डॉ० हीरालाल चोपड़ा

भीतर और बाहर एक जैसे

पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया, जो १ मई १९७४ को ८२ वर्ष के हो जायेंगे, लगभग ५० वर्षों से कलकत्ता की विविध सामाजिक और राजनीतिक सस्थाओ के द्वारा बिना किसी प्रकार का भेद-भाव रखे प्राणी मात्र की सेवा कर रहे हैं।

मेरा उनसे पहला सम्पर्क सन् १९४८ मे हुआ, जब देश-विभाजन के पश्चात् मै पजाव से निकल कर कलकत्ता आया ही था। स्थानीय खिलाफत कमेटी ने एक तीन-दिवसीय आयोजन हज़रत मुहम्मद साहिव के जन्मोत्सव के उपलक्ष्य मे मुहम्मद अली पार्क मे किया था, जिसकी अध्यक्षता उस समय के बगाल के गवर्नर डा० कैलाशनाथ काटजू कर रहे थे। मै भी उस समारोह मे चला गया था। वहाँ गैर-मुसलमान वक्ताओ मे श्री सीतारामजी का भाषण सुनने का सौभाग्य हुआ। मुझ पर उसका बडा प्रभाव पडा। मैंने भी एक पुरज़ा लिख कर वोलने की आज्ञा मागी, जो सयोजको ने उदार हृदय से प्रदान की। मै उर्दू मे वोला था, चूकि उस समय मै हिन्दी से बिलकुल अनभिज्ञ था। मेरी श्रद्धाजलि को जनता और अध्यक्ष ने बडा सराहा। सभा-विसर्जन के पश्चात् मुझे सीतारामजी मिले और मेरे भाषण की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा करते हुए कहने लगे—मुझे भय था कि चूकि तुम पाकिस्तान मे मुसलमान आततताइयो से पिटे हुए हो और अपना सव कुछ खो कर यहाँ आये हो, तुम इस्लाम के पैगम्बर के विरोध मे कोई अपशब्द न कह वैठो, परन्तु तुम्हारे उद्‌गार सचमुच प्रशसनीय हैं। तुमने तो मनुष्य-मात्र के इस पथ-प्रदर्शक को मुसलमानो से भी बढ कर श्रद्धाजलि अर्पित की है।

इसके पश्चात् तो हिन्दुओ, मुसलमानो, सिखो, पजावियो, गुजरातियो, जैनियो और वौद्धो आदि के अनेक आयोजनो मे श्री सीतारामजी से मिलने का प्राय अवसर प्राप्त हुआ है। मै यह देख कर दग होता रहा हूँ कि एक व्यक्ति एक ही समय मे कितना सर्व-प्रिय है। मेरी समझ मे इसका केवल एक ही कारण है—दिल की सच्चाई और ईमानदारी। श्री सेकसरियाजी भीतर और वाहर एक जैसे हैं और प्रत्येक प्राणी के मन को सेवा और सहानुभूति से मोह लेते हैं।

समाज-सुधार की लगन उनमे प्रारम्भिक काल मे ही है। गांधीजी ने साध्य और साधन की समान पवित्रता का सदेश दिया है। जिन लोगो ने इसे जीवन का लक्ष्य बनाया, उनमे श्री सीतारामजी अग्रगन्य है। वे कांग्रेस मे रहे, खद्दर-भण्डार उन्होने स्थापित किये, नारी-शिक्षा के लिये स्कूल-कालेज चलाये, समाज के अन्दर प्रचलित बुरे रिवाजो को हटाने का प्रयास किया, हिन्दुओ और मुसलमानो मे मैत्री बढाने की सदा चेष्टा की। परन्तु अपनी नम्रता को उन्होंने कभी नही छोडा।

उनके जीवन की कुछ झांकिया उनकी डायरियों मे मिलती हैं, जो भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा दो खण्डो मे प्रकाशित हो चुकी हैं। उन डायरियों के अध्ययन से पता चलता है—किस प्रकार सीतारामजी अपनी लघु-से-लघु त्रुटि पर पश्चात्ताप करते है और भविष्य मे सावधान रहने का व्रत लेते है। एक-एक पृष्ठ पर आत्म-निरीक्षण के उदाहरण प्राप्त होते है, जो प्राय ऐसे बडे लोगो की ही विशेषता है।

हिन्दुओ मे आमतौर पर और मारवाडी समाज मे विशेषकर बहुत-सी ऐसी रस्मे प्रचलित है, जिनको हटाने के लिये बडे प्रयास की आवश्यकता है। श्री सीतारामजी ने श्री भागीरथजी कानोडिया और स्वर्गीय श्री बसन्तलालजी मुरारका आदि के साथ उस रुढिवादिता को समाप्त करने का बीडा उठाया, जिससे समाज का माथा कलकित था।

श्री सीतारामजी इसलिये अभिनन्दनीय नही है कि वे कोई धनी सेठ हैं, बल्कि इसलिये कि इस युग मे जब गाधीजी के नाम का लेबल लगा कर हर व्यक्ति स्वार्थ-पूर्ति के लिये आगे-आगे तो है पर गाधीजी के सच्चे विशुद्ध सदेश की अवहेलना ही कर रहा है, एक ८२ वर्षीय सकल्पधारी ज्योति-स्तम्भ आज भी सत्य, प्रेम और अहिंसा को जीवन का लक्ष्य बना कर देश को आगे, प्रगति की ओर ले जाने का इच्छुक है। भगवान् से मेरी यही प्रार्थना है कि वह सीतारामजी को जीवनमय दीर्घायु करे, ताकि वे और अधिक-से-अधिक जन-सेवा कर सकें।

—— ० ——

अभिनन्दन-ग्रथ के सम्पादक श्री भँवरमल सिंघी को अपने कतिपय संस्मरण बताते हुए श्री सीतारामजी

वनस्थली विद्यापीठ में शुभागमन के समय स्वर्गीय प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू का स्वागत करते हुए

भारतीय ज्ञानपीठ के एक आयोजन में बातें करते हुए श्री गंगाशरण सि
श्री शान्तिप्रसाद जैन और श्री सीताराम सेकसरिया आदि

श्री सीतारामजी के ८१वें जन्म-दिन
पहनाते हुए उनकी ज्येष्ठ पुत्री श्री

कलकत्ता विश्वविद्यालय में
हिन्दी विभाग के अध्यक्ष

श्री कल्याणमल लोढा

परम भाव-योगी

प्रिय भाई सिंघीजी,

आपने भी क्या सोचा होगा कि इतनी ताकीदो पर भी मैंने श्रद्धेय सीतारामजी के अभिनन्दन-ग्रथ के लिए अभी तक रचना नही भेजी। अपनी कठिनाई बताऊ? पहले एक रेखा-चित्र आका था, पर दुर्योग से वह आपको मिला नही। तदुपरान्त एक-दो बार और चेष्टा की पर मन नही भरा, उनके अनुकूल उनका चित्र बन नही पाया। सब कुछ लिखने के बाद लगता, जैसे बात अधूरी रह गई। मन इसी प्रतिक्रिया मे उलझा रहा और आज भी है। सच, जिस व्यक्ति को गत पच्चीस वर्षो से निकटता से देखा और समझा है, जिसके साथ विभिन्न सामाजिक, सास्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रो मे कार्य करने का सुयोग और सौभाग्य मिला है, जिसके जीवन और व्यक्तित्व से अभिप्रेरित हुआ हूँ, उसके विषय मे तटस्थता से मन की बात कहना कितना कठिन और दुष्कर हो जाता है!

बहुत पहले। कालेज के विद्यार्थी-जीवन के समय सेकसरिया-पुरस्कार की चर्चा चलाते हुए मेरे गुरु डा० सोमनाथ गुप्त ने कहा था—"सेकसरिया-पुरस्कार के अधिष्ठाता श्री सीताराम सेकसरिया है—हिन्दी के अनन्य सेवी, स्वाधीनता-सग्राम के सेनानी और महात्मा गाँधी के परम अनुयायी। कभी कलकत्ता जाने का अवसर मिले, तो उनके दर्शन अवश्य करना।" तब से ही मेरे किशोर जीवन मे सीतारामजी और उनके आदर्श जीवन और व्यक्तित्व के प्रति चेतन-अचेतन मन मे गहरी श्रद्धा और आस्था जम गयी। प्रयाग विश्वविद्यालय के विद्यार्थी-जीवन मे आदरणीय महादेवीजी, रामकुमारजी, मिश्रबधु श्यामबिहारी मिश्र आदि मनीषियो ने उस श्रद्धा को उत्कट अभिलाषा और उत्कठा बना दिया।

फिर कलकत्ता। सन् १६४५ की उस शारदीय सध्या का आज भी स्मरण है, जब भाई मोहनसिंहजी सेंगर के साथ सहज सकोच और शका से भरा मन लेकर श्री सीतारामजी के निवास-स्थान पर गया था। मैंने देखा एक उदारचेता, सरल, सौम्य और गहरी आत्मीयता से पूर्ण, अयस्कात मणि के आकर्षण से युक्त एक प्रेरक व्यक्तित्व, जिसके समक्ष मै न नया था और न अपरिचित। पहली भेंट मे ही

लगा जैसे मैं उनके विशाल और व्यापक परिवार का ही एक स्वजन हूँ। सारा सकोच मिट गया। कलकत्ता की जन्मजात कठिनाइयों और असुविधाओं की ओर ध्यान खींचते हुए उन्होंने स्वत अयाचित सहायता करने की केवल औपचारिकता नहीं, दृढता और अतरगता बताई। मैं अभिभूत हो गया। जीवन में उनके गहरे और आकस्मिक प्रभाव का मैंने बहुत कम अनुभव किया है। अपरिचित होकर गया था, परिजन बन कर लौटा—अतरग आत्मीयता से सराबोर।

भाई, मैंने बहुधा अपने से पूछा है कि मनुष्य की सारी मानसिकता देश और काल के व्यवधान को चीर कर क्यों, कहा और कैसे अपना सामजस्य और आश्रय खोज लेती है और अनजाना-अनदेखा क्षितिज सारी दूरी समाप्त कर अपने सतरगी स्वरूप में जीवन को श्रीमडित कर देता है। जान स्ट्रैची ने प्रसिद्ध दार्शनिक ह्यूम पर लिखते समय अपने से ही एक प्रश्न पूछा। उसने जानना चाहा कि वह ह्यूम का जीवन-चरित्र क्यो लिख रहा है? मानवीय महानता के उपादान और उपकरण क्या हैं? ह्यूम किन अर्थों में महान् थे? इस स्व-स्फूर्त प्रश्न का उत्तर देते हुए स्ट्रैची कहता है कि मनुष्य की दो ही विशेषताए उसे महान् बनाती हैं और उसके व्यक्तित्व और कर्तृत्व की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करती हैं। वे हैं—जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम समर्पण और गहरी लोकोत्तर मानवीय सवेदना। सभवत इन दोनो गुणो से ही नि स्पृहता, त्याग, सकल्प और प्रेम उद्भूत होते हैं, जो अनासक्त और निष्काम कर्म का सपादन कर मनुष्य को वास्तविक उच्चता, महनीयता और श्रेष्ठता से विभूषित करते हैं। ऐसे व्यक्ति अखबारो मे नही छपते और न उनकी महानता का ढोल पीटा जाता है। उनका जीवन ही इसका प्रमाण बन जाता है और सदेश। उन पर महानता थोपी नही जाती और न फूल-मालाओं के अबार उसकी घोषणा करते है। इमरसन ने ऐसी थोथी और कृत्रिम महानता पर व्यग्य करते हुए एक बार अमेरिका के राष्ट्रपति से कहा था कि उनके अस्तित्व और प्रभुत्व के ऊहापोह की चकाचौध मे न वे पहचाने और न समझे जाते हैं। इसके विपरीत जिनका जीवन साहस और सहिष्णुता से कर्तव्य और त्याग की कसौटी पर कसा जाकर खरा उतरता है, प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक ताओ के शब्दो मे जिनका मौन अस्तित्व और कर्तृत्व ही महानता की उज्ज्वल आभा से स्वत युक्त होकर आलोक-रेखा बन जाता है, वे ही वस्तुत सारस्वत और महान् हैं। उनका व्यक्तित्व न खडित होता है और न विभक्त। सर्वोत्तम समर्पण और लक्ष्य पर लगी उनकी निर्निमेष दृष्टि उन आदर्शो का सूत्रपात करती है, जिनसे समाज अपना मार्ग निर्धारित कर आगे बढता है। ईसामसीह ने कहा था कि धन और उपाधियो के द्वारा जीवन सच्ची सफलता से मडित नही होता, उसकी सघटना कर्म की समग्रता और मानव-सेवा की अदम्य आकाक्षा मे सन्निहित है, जो सामाजिक परिवेश और पर्यावरण को निरन्तर शुद्ध और पवित्र करती रहती है। अनुमति दें, बिना किसी अतिशयोक्ति के नि सकोच कहूँ कि सीतारामजी मे मैंने यही महनीयता व मानवीय श्रेष्ठता और उच्चता पायी है। एक बार मुझ से किसी ने जानना चाहा कि मैं उन्हे 'बाबूजी' क्यो कहता हूँ। आपको बताऊँ? इसी उच्चता के कारण मैं उन्हे

पितृतुल्य समझता हूँ और यह चेष्टा करता हूँ कि उनके गरिमामय औदात्य का, लोक-व्यापक सवेद्य शक्ति का, लक्ष्य-सिद्ध नि स्पृह, तप पूत जीवन और लोकार्पित व्यक्तित्व के कर्तृत्व का कुछ अश विरासत मे पा सकू ।

कोई अस्वस्थ है, वे बेचैन हो जाते है, कोई पीडित है, वे उसके भागीदार, किसी को कुछ चिन्ता है, वह सीतारामजी की भी, कोई कठिनाई मे है, बाबूजी भी विकल-विचल है। ऐसी सदाशयता, ऐसा स्नेह, ऐसा सौमनस्य और सौजन्य, जिसे शेक्सपियर ने 'कन्ज्यूमिंग सिन्स्यरिटी' कहा है, आज के यान्त्रिक जीवन मे विरल है। व्यक्ति-चेतना की यही तो समष्टि-चेतना मे परिणति है। वे सचमुच भाव-योगी है। कितनी विशाल परिधि है उनके कर्तृत्व की। सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध वे अनवरत लडते गए, नारी की शिक्षा और उसके अभ्युदय के तो वे भगीरथ है ही। राजस्थानी समाज की सडी-गली मध्ययुगीन चेतना और परम्परा के विरुद्ध पहला अभियान उन्होने किया और सफल हुए। आज तो सब कुछ है, पर उस समय कितना कठिन था यह सब। नि शस्त्र और निरस्त्र रह कर परम्परा के कठोर और अभेद्य दुर्ग पर आक्रमण!! भारतीयता इनकी सहज प्रकृति है, पर उसका अर्थ अधानुराग न होकर स्वस्थ सास्कृतिक निष्ठा और नैतिकता है। धर्म इनके लिए कर्त्तव्य और परोपकार का ही दूसरा नाम है। महात्मा गाधी के उद्‌बोधन पर उन्होने राष्ट्र-सेवा का व्रत लिया और उसे आज भी निभाते है--वह व्रत, जिसका कोई प्रतिदान या प्रतिभोग नही है। हिन्दी के लिए उन्होने जितना किया, क्या उसे मापा जा सकता है? सचमुच, वे आधुनिक समाज के भगीरथ है और यही कारण है बगाल के हिन्दी भाषियो मे उन्हे हिन्दीतर समाज से सर्वाधिक श्रद्धा, सम्मान और श्रेय मिला। हाँ, भाई, सत्सकल्प कभी मिथ्या नही होते।

उनकी मानवीय सवेदनशीलता का तो कोई अन्त ही नही। न जाने कितने प्रमाण और उदाहरण इस समय मुझे याद आ रहे है। आपको एक बात बताऊँ। बहुत पहले किसी स्थानीय विद्यालय के एक शिक्षक क्षय रोग से पीडित हुए। मैं उन्हे 'बाबूजी' के पास ले गया, उनकी दु ख और दर्दभरी कहानी सुनने के बाद लगा कि बाबूजी अब रोए, तब रोए। कोई नही जानता कि उस विपन्न परिवार की उन्होने कितनी सहायता की, उसे डूबते हुए से बचाया। वे चाहते भी नही कि उनका उपकार कोई जाने। एक ओर कुछ भी नही या बहुत कम करके 'वाह-वाह' लूटने के इच्छुको की अपार भीड चारो ओर लगी है, तो वही दूसरी ओर आत्म-प्रचार और विज्ञापन से दूर सीतारामजी है। कितना वैपम्य है, कितना अतर। यही तो परम शील है, जिसके लिए कहा गया है—'सर्वेपामपि मर्व कारणामिद शील पर भूषणम्'। पूर्ण स्वस्थ होकर एक दिन वह अध्यापक पुन मेरे पास आए और सीतारामजी का चित्र मागते हुए कहने लगे कि तलिस्मान के रूप मे वे उसे रखना चाहते है। भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' से अलकृत किये जाने पर उनके अभिनन्दनार्थ श्री शिक्षायतन मे एक सभा हुई। वक्ताओ को अपने विषय मे बोलते हुए सुन कर, मैने देखा, सीतारामजी लज्जा और सकोच मे गडे जा रहे थे। मुझे लगा कि कही ये उठ कर ही न चले जाय। मुझ से बार-बार कह रहे

थे—"यह सब अच्छा नही लगता है, यह मेरी प्रकृति के अनुकूल नही है।" वे सदैव आत्मश्लाघा से दूर और आत्मप्रचार के विरोधी रहे है। यह शील, यह परोपकार, यह मानवीय सवेदना ही तो मनुष्यत्व है, जिसके लिए महर्षि व्यास को भी कहना पडा—'परोपकार पुण्याय, पापाय पर पीडनम्'। सचमुच, सीतारामजी पुण्यव्रती है, अजातशत्रु! अजातशत्रु की परम्परा के स्वत प्रमाण।

मैं बराबर सोचता हूँ कि समाज के विभिन्न क्षेत्रो मे उन्होने जितना किया, क्या उसकी गणना सभव है। साहित्य, सस्कृति, लोकोपकारी सस्थान, शिक्षा, चिकित्सा, सभी क्षेत्रो मे उनका योगदान अपूर्व है। अभी कुछ दिनो पहले मैंने उनकी 'डायरी' पढी थी। इसके पूर्व 'स्मृतिकण' और 'बीता युग नई याद'। पढते समय लगा कि उनका जीवन जैसे एक युग का इतिहास है। मन मे न जाने इस युग के कितने चित्र उभर रहे है, न जाने कितनी घटनाएँ, कितने प्रसग याद आ रहे हैं। फाँसी पर लटकाए जाने वाले कल्लू खाँ की, बिहार के भूकम्प के सवग्राही विनाश पर खडे हरिजन परिवार की, सत्याग्रह से लेकर महादेवी के रेखाचित्र की—बापू की, बजाज की। न जाने कितने अद्भुत सस्मरण! कितनी विशालता और व्यापकता है इनके जीवन मे।

० ०

अभी-अभी मैंने अपना यह पत्र पुन पढा। सच, अभी भी मन नही भरा। लगता है, बात अब भी अधूरी है और सभवत वह पूरी होगी भी नही। अभिव्यक्ति कब अनुभूति से पूर्णत तादात्म्य कर पायी है? कुछ चित्र ऐसे है, जो रगो मे नही बधते, कुछ अर्थ शब्दातीत है, कुछ भाव है, जिनका कोई अनुभाव नही। भाई, बात अधूरी है पर दूसरा चारा भी तो नही। आप इसे ही स्वीकारे।

सस्नेह,

आपका,
कल्याणमल लोढा

—— ० ——

लब्धप्रतिष्ठ लेखक और सपादक
भारतीय ज्ञानपीठ के मंत्री

श्री लक्ष्मीचद्र जैन

जीवन्त समीकरण

बारबार खोजते है हम कोई एक ऐसा विशेषण
जो प्रतिबिम्बित कर दे मन मे बसा वह सपूर्ण व्यक्तित्व,
जिसके एक आयाम मे समाहित है
प्राजल लालित्य, आभा, शोभा, सुरुचि-श्री,
और दूसरा आयाम है, वाहक
आदर्शो की अवधारणा का, कल्याण का, जन-हित का ।
सूझता नही है कोई विशेषण एकाकी,
उभर कर आती है हृदय-पटल पर प्रतिच्छवि,
जिसे हमने जाना है साक्षात्, माना है अविचल श्रद्धा से
नाम-रूप-गुण का जीवन्त समीकरण
श्री सीताराम ।
समान-धर्मा ध्वनि-तरगो पर, प्रसारित रहा है हमारा सहचिन्तन,
उनके मानस-सरोवर मे खिले हैं जो लोकोत्तर भावनाओ के गन्धवाही कमल
उनकी सुरभि ने आप्लावित किया है हमे—हमारे अन्तस्तल को, हमारे मन को,
उनकी जयन्ती के वृन्द-वाद्य की निनादित धुनो मे
सयोजित हो सका एक मृदु तार के लघु कम्पन-सा हमारा स्वर ।
वरणीय है यह अवसर, धन्य है हम ।
दशको का यह अष्टदल
विकसित हो वर्षो के शतदल मे बार-बार
अपनी कमनीय शुभेच्छाओ का दीप
धरते है हम भविष्य के मन्दिर की देहरी पर—
कि आलोकित रहे हमारा मग उनके नेतृत्व मे,
कि चिरन्तन वितानित रहे हम पर, उनके वरद हस्तो की छाया
आशीर्वादो के अमरत्व-सी ।।।

—— o ——

लेखक और पत्रकार
'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के उप-सपादक

श्री गोविन्दप्रसाद केजरीवाल

सौन्दर्यान्वेषी !

मानव के मूल मे सौदर्य है। मानव को जो सर्वप्रथम वोध हुआ, वह सौदर्य का ही। उसने जव सुन्दर प्रकृति, सुन्दर जीव और सुदर्शन मानवाकृति देखी, तव आनन्द की प्रथम अनुभूति हुई। इसी सौंदर्य-वृत्ति ने उसे आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख किया। इसी पिपासा ने उसे काव्य, शिल्प और समाज-रचना की ओर प्रेरित किया। उसकी सौदर्य-यात्रा सदा ही असामजस्य के विरुद्ध रही। सामजस्य और समदर्शन के मूल मे सौदर्य ही मूल तत्त्व है। यही आनन्द है, यही जीवन है, यही मुक्ति है। वौद्धयुग से मध्ययुग तक के शिल्पियो ने भौतिक सौदर्य को आध्यात्मिक धरातल पर रखने का जो दुस्साहस किया, उसके मूल मे उसका वह आदिम सौन्दर्य-वोध ही है। मानव की यह सुन्दर-यात्रा ही चिरकाल से उसका ससार रहा है। अरूप के विरुद्ध सुरूप की स्थापना ही समाज-सघर्ष का इतिहास रहा है।

और, यदि इस आदिम सौदर्य-वोध की छाया उसकी काया पर भी पड जाए तो क्या कहने। तन-मन के सौन्दर्यधारी सीतारामजी सेकसरिया का जीवन सौदर्यान्वेपण मे ही वीता है। उनके दुग्ध-धवल केसरिया तन को देखिए। उनके मन्द हास्य को देखिए। उनकी सुरुचिपूर्ण वेशभूपा देखिए। उनका शिष्ट अभिजात्य देखिए। नारी के प्रति उनकी सुष्ठु आस्था देखिए। अन्त मे उनकी कोमल भावनाओ को एक साचे मे ढाल कर देखिए तो एक जीवन्त सुकृति आपके सामने खडी हो जाएगी—नारी। मा। जननी।

सौन्दर्य शास्त्रियो मे जिन महाभागो ने नारी-सौष्ठव को समाज मे प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया, उनका सौदर्य-वोध निश्चय ही विशिष्ट है। इस आधुनिक परम्परा मे इस सौदर्य-पीर ने जिन्हे प्रेरित किया है, उनमे राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द, महर्षि कर्वे आदि महापुरुष है। सेकसरियाजी उस परम्परा की एक जीवन्त कडी है। उनके ८२ वर्ष का जीवन गुलावो की महक की तरह सुगन्धमय और प्यारा है। मै उनके चरणो मे अपने जीवन के अर्जित श्रेष्ठ सुमनो को श्रद्धा से विखेर रहा हूँ।

—— o ——

फिल्म-जगत के ख्याति-प्राप्त गीतकार,
साहित्य-सेवी

श्री भरत व्यास

राष्ट्र-रथी !

राजस्थान धरा रत्नो की खान रही है
महा मानवो की जननी अम्लान रही है।

सीता की "सौम्यता", राम का "शौर्य" समाया
ऐसा मानव एक "सेकसरिया-कुल" आया।

राष्ट्र-रथी, कर्तव्य-व्रती जीवन पर्यंत तपस्वी
पुनि, समाज सेवारत हो जन-जन हित बने यशस्वी।

सेवा और साधना आपकी इस युग मे अनुपम है
युग-नारी-उत्थान क्षेत्र मे कार्य किये उत्तम है।

विनय-शील, कर्त्तव्य-निष्ठ, ज्योतिर्मय मुख दर्पण है
मानव सद्गुण से आभूषित, आप "पद्मभूषण" है।

कर्म-योगी योगेश्वर-साधक, विरद दिशाये गाती
ऐसे पुरुषो को लख, धरती फूली नही समाती।

श्रद्धा के अक्षत कर मे ले, सद्भावो का चन्दन
महापुरुष हम आज आपका करते है अभिनन्दन।

— ० —

ठलुश्रा क्लब, वाराणसी के मंत्री

श्री विश्वनाथ मुखर्जी

रजतकेशी नरश्रेष्ठ

क्रिया के दो भेद हैं, एक सकर्मक और दूसरा अकर्मक। ठीक उसी प्रकार विधाता की सृष्टि मे प्रत्येक प्राणी अपने-आप मे अकर्मण्यता और कर्मण्यता का गुण लिए आता है। ससार मे नित्य अगणित मानव जन्म लेते है, पर सभी न तो नेता बनते है और न चिरस्मरणीय। महादेवी वर्मा के शब्दो मे 'असाधारण ही नरश्रेष्ठ होते हैं।' ऐसे लोगो मे हमारे श्रद्धेय सेकसरियाजी है।

वास्तववादी होने के कारण मै राम, कृष्ण, बुद्ध या परमहस को भगवान नही मानता, इसलिए कि ये सभी साधारण मानव की भाति जन्म लेकर उन्ही कर्मो को करते रहे जिन्हे साधारण मानव करता आया है। किन्तु ये सभी पुरुष असाधारण थे। अज्ञान के अधकार से त्राण देने वाले मसीहा हमारे निकट देवता वन गये। रोग, शोक से पीडित मानव की सेवा करना भारत की चिरन्तन साधना रही है। इस परम्परा का पालन करने वाले पुरुप सन्त एव ऋषि की कोटि मे आ गये। हम अकृतज्ञ नही है, आज भी हम उनकी पूजा करते है, स्मरण करते हैं और ऐसे महापुरुपो के अवतार की प्रतीक्षा करते है।

सव से वडे आश्चर्य की वात तो यह है कि भारत मे ऐसे सन्तो का हमेशा विरोध होता रहा और कुछ असामाजिक तत्त्व तो ऐसे सन्तो के पीछे हाथ धोकर पड जाते थे। इस परम्परा का पालन भी अनादि काल से होता आया है। यह सत्य इसलिए लिखना पडा कि श्री सेकसरियाजी को भी ऐसे सकटो से सामना करना पडा है और वे अन्त मे विजयी हुए है।

आज का, यानी २५ जुलाई का, अखवार मेरे सामने है जिसमे एक समाचार छापते हुए पत्र ने आश्चर्य प्रकट किया है कि मारवाडी समाज काफी प्रगतिशील हो गया है। कोई युवक अमेरिकी युवती से विवाह करके आया है, उसे मारवाडी समाज ने स्वीकार कर लिया है और पार्टी मे न केवल परिवार के लोग थे, वल्कि समाज के मूर्धन्य लोग शामिल थे। एक कट्टरपथी समाज के लिए यह मुख्य समाचार है और उससे यह आशा वधती है कि आज के युग मे मारवाडी समाज तेजी से आगे वढ रहा है। किन्तु सवाल यहाँ यह पैदा होता है कि आखिर इतना क्रातिकारी परिवर्तन कैसे हो गया? इसकी जड मे कौन से तत्त्व थे जिनके कारण यह सभव हुआ? सेकसरियाजी की जीवन-कहानी का अध्ययन करने के वाद मै पाता हूँ कि इसकी जड मे उन्ही के पुण्य का फल कार्य कर रहा है। यह

एक दिन का चमत्कार नही है, यह तो सघर्षों की कहानी है जिसके लिए सेक-सरियाजी अपनी जवानी समाज को भेंट कर चुके थे। कितनी फटकार, मार, दुत्कार खाते हुए वे समाज-सेवा करते रहे, इसका लेखा-जोखा तो उनके मित्र ही वता सकते है, परन्तु मै यह मानता हूँ कि उन दिनो की तपस्या ने आज सेकसरियाजी को नरश्रेष्ठ के रूप मे हमारे सामने ला खडा किया है। भले ही वे मारवाडी समाज के लिए सुधारक और नेता हो, परन्तु सम्पूर्ण देशवासियो के निकट अपनी देन के कारण निश्चय ही प्रणम्य है।

आज से ८-१० वर्ष पूर्व की वात है। श्री गुलाब खण्डेलवाल के अभिनन्दन के अवसर पर मैंने सेकसरियाजी को पत्र लिखा, पर जवाब नही आया। आता कैसे ? ठलुआ क्लब भी भला कोई क्लब है। वे सक्रियता पर विश्वास करते थे और यहाँ नाम ही आलसी से सम्बन्ध जोडे हुए है। दूसरी ओर मुझ मे एक खरावी है। अगर मेरे पत्र का कोई उत्तर नही देता तो मन ही मन झुझला जाता हूँ। ज्ञातव्य रहे कि उन दिनो कलकत्ता मे ठलुआ क्लब की स्थापना नही हुई थी। जव सेकसरियाजी का जवाब नही आया तो उनकी ओर से एक नकली पत्र तैयार करके समारोह मे पाठ कर दिया गया। बाद मे गुलावजी ने कहा कि सेकसरियाजी जैसे वुजुर्ग व्यक्ति ने कैसे इस तरह का पत्र लिखा ? मै चौका। हम-उम्र होने के कारण हम गुलाबजी से मजाक कर लेते थे और उस समारोह मे अधिकतर पत्र ऐसे ही आये थे। मन-ही-मन सोचा—बहुत वडी गलती हो गयी है। तिकडम अगर पकड मे आ जाती है तो उसे मै सफल नही मानता। फलस्वरूप प्रकाशन-काल मे उस नकली पत्र को नही छापा।

इस घटना के कुछ दिनो बाद श्रद्धेय रायकृष्णदासजी ने भारत कला भवन मे मैथिलीशरण गुप्त के सम्वन्ध मे एक समारोह का आयोजन किया जिसके मुख्य अतिथि थे—श्रद्धेय सीताराम सेकसरिया। केवल उनका दर्शन करने के लिए मै गया। समारोह मे वे एक चौकी पर बोधीसत्त्व की तरह पालथी मारे बैठे थे। रजत केश, सौम्य मूर्त्ति। एक ही झलक मे श्रद्धा अनायास उमड आती है। गोरा बदन, वीणा के कोमल तार की तरह आवाज। लहमे भर मे मै इस कदर अभि-भूत हो गया कि उस अपराध की क्षमा मागने के लिए उतावला हो उठा, पर हमारे मित्र डाक्टर भानुशकर मेहता ने ऐसा करने से रोका। वात आयी-गयी।

इस घटना के बाद एक दिन कलकत्ता मे ठलुआ क्लव की स्थापना हुई और वहाँ के अध्यक्ष सेकसरियाजी चुने गये। उस समारोह मे हिन्दी-जगत के प्रसिद्ध कथा-कार राधाकृष्ण का अभिनन्दन होने वाला था। वाराणसी से हम लोग ३० व्यक्ति पहुँचे। उक्त समारोह मे तथा अपने घर मे आयोजित भोज मे सेकसरियाजी ने जिस सादगी और सौम्यता का परिचय दिया, उससे मै वहुत प्रभावित हुआ। मुझ मे एक कमी है कि मैं सहज ही किसी के प्रति आकृष्ट नही होता। दूर से अथवा निकट से व्यक्ति के हर काम का अध्ययन करता रहता हूँ। यहाँ यह कहने मे सकोच नही है कि उनकी उस ऊँचाई को तब नही जान पाया था, जिसे मैंने उनके अभिनन्दन के अवसर पर या उसके बाद जान पाया।

हम श्रीमती महादेवी वर्मा का अभिनन्दन करने की तैयारी कर रहे थे। उस समारोह मे हमने स्वागताध्यक्ष डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी को चुन लिया था। उनके पास जब अपने निश्चय की सूचना देने के लिए गये तो वे पूना मे होने वाले हिन्दी सम्मेलन मे चले गये थे। अब हम परेशान। आखिर किसे स्वागताध्यक्ष बनायें! कुछ लोग श्री अमृतलाल नागर पर जोर देने लगे और अन्त मे डा० भानुशकर मेहता ने बताया कि श्रीमती महादेवीजी सेकसरियाजी को ज्यादा पसद करेगी, क्योकि उन्हे 'राखी भाई' मानती हैं। डा० मेहता ने ऐसा पत्राचार किया कि सेकसरियाजी आ गये। सेकसरियाजी का इस उम्र मे चले आना—और वह भी हमारे जैसे अदने व्यक्ति के अनुरोध पर—एक ऐतिहासिक घटना थी। बनारस मे और भी दिग्गज विद्वान् थे, पर हमारी दृष्टि मे सेकसरियाजी की कीमत अधिक थी।

विद्वान् व्यक्तियो मे एक बहुत बडी कमजोरी यह रहती है कि वे हर किसी से व्यस्त काल मे सम्मान पाने की चाह रखते है। ऊँचा पीढा पाना अपना अधिकार समझते हैं। सेकसरियाजी को जब मच पर बैठाया गया तो कुछ फालतू व्यक्तियो ने उन्हे इस कदर पीछे ढकेल दिया कि वे समारोह मे छिप गये। यह दृश्य देख कर मुझे क्रोध आ गया। मुझे अत्यधिक उत्तेजित देख कर मेरे एक मित्र ने बताया कि "वे श्री कालूलाल श्रीमाली (हिन्दू विश्वविद्यालय के उपकुलपति) है। शान्त रहो। बदतमीजी मत करो।" गो कि न तो वे कालूलाल श्रीमाली थे, और न मैं तब तक उनकी शक्ल से परिचित था। बाद मे पता चला कि मुझे शान्त करने के लिए लोगो ने पट्टी पढा दी।

वे वाराणसी मे रायकृष्णदासजी के यहाँ ठहरे हुए थे। हम आभार प्रकट करने और सहभोज मे शामिल होने के लिए गये। वही मुझे उन्होने कृपापूर्वक 'बीता युग नयी याद' नामक पुस्तक भेंट की। किसी लेखक की कृति किस श्रद्धा से लेनी चाहिए, यह कला मैंने आदरणीय जयप्रकाशनारायण से ग्रहण की है। भले ही वह रचना अपने पसन्द की न हो, पर लेखक होने के नाते दूसरे लेखक को सम्मान देना आवश्यक है। घर आकर जब उस पुस्तक का पाठ किया तो लगा कि यह रजतकेशी पुरुष तो महान् गाधीवादी है। महादेवी वर्मा के समारोह मे जैसा भाषण दिया उन्होने, वह अपने-आप मे अनमोल साहित्य था। न भाषा की जटिलता और न पाण्डित्य की चरमता का प्रदर्शन। इस पुस्तक मे उसी शैली को अपनाया गया हैं।

अगर मैं यह कहूँ कि सस्मरणो की कडी मे प्रस्तुत पुस्तक मील-पत्थर के बराबर है तो कोई अत्युक्ति न होगी। सस्मरण लिखने वालो मे सर्वश्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', महावीर त्यागी, उपेन्द्रनाथ अश्क, प० बनारसीदास चतुर्वेदी को अखिल भारतीय ख्याति मिली है। चतुर्वेदीजी को छोड कर बाकी लेखक अपनी शैली के लिए विशेष प्रसिद्ध हुए। प० बनारसीदास चतुर्वेदी बराबर सीधे-सादे शब्दो मे अपना सस्मरण प्रस्तुत करते है। वही ढग श्रद्धेय सेकसरियाजी ने अपनाया है और यही वजह है कि महान् नेताओ के अलावा साधारण पात्रो को लेकर जो सस्मरण लिखे गये है, वे भी प्रभावशाली बन गये हैं।

और, एक दिन मैंने निश्चय किया कि हम कलकत्ता शाखा के अध्यक्ष श्री सीताराम सेकसरिया का अभिनन्दन करेगे। सेकसरियाजी काशी आने को राजी नही हुए तो हमने निश्चय किया कि हम कलकत्ता जा कर करेगे। है तो हम ठलुए, पर जिद्दी भयानक रूप से। सेकसरियाजी बहुत जोरदार शब्दो मे विरोध करते रहे, पर यहाँ कौन सुनता है? इसी बीच मै कारबकल से पीडित हो गया। भयानक तेज बुखार और दर्द, फिर भी अपने निश्चय पर अटल रहा। रात भर गाडी पर जागता रहा। सो नही पाया। प० सीतारामजी चतुर्वेदी मेरे घाव को हर दो घण्टे के बाद साफ करते रहे। ऐसी हालत मे मैं कलकत्ता पहुँचा था। जिस समय उनके अभिनन्दन का कार्य प्रारम्भ हुआ, ठीक उसी समय पता चला कि याहिया खाँ ने वार डिक्लेयर कर दी है और कलकत्ता अधकार मे डूब गया है।

इस अभिनन्दन के दौरान मुझे सेकसरियाजी के चरित्र, व्यवहार और कार्य के बारे मे अनेक बाते ज्ञात हुई। खासकर, इनके साथ कार्य करने वाले अनेक काँग्रेसी काशी मे हैं, जो इनके बारे मे मुझे बता चुके थे। अभिनन्दन के अवसर पर कलकत्ता के अनेक महारथियो ने उनके चरित्र पर प्रकाश डाला। उन समस्त तथ्यो से स्वत स्पष्ट हो गया कि कलकत्ता जैसी नगरी मे ऐसे चरित्र का विकास अस्वाभाविक नही है, क्योकि इसी नगरी मे राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, भूदेव मुखोपाध्याय जैसे नर-रत्न हुए जिनकी देन से बगाल ही नही, सपूर्ण भारतवर्ष कभी उऋण नही हो सकता। उनके बताये मार्ग पर हमारे सेकसरियाजी चलते आये है। बगाल अनादि काल से माताओ का देश रहा है जहाँ पुरुष हमेशा से महिलाओ पर अत्याचार ढाते रहे है। उनकी पीडा ने बडे-बडे मनीषियो की आत्मा को दर्याद्र बनाया। नतीजा यह हुआ कि समाज-सुधारको ने अपने कार्य से और साहित्यकारो ने साहित्य के माध्यम से इस अनाचार के विरुद्ध आन्दोलन करना प्रारम्भ किया।

मेरा निजी विश्वास है कि इस परपरा का प्रभाव सेकसरियाजी के जीवन पर पडा और वे स्त्री-जाति की सेवा के लिए तत्पर हुए। उन्होंने माताओ और बहनो मे अजेय शक्ति प्रदान कर उन्हे जाग्रत किया। शनै शनै जब उनमे जागृति आयी, तब महिलाओ ने अपनी शक्ति को पहचाना। यही कारण है कि आज बगाल भारत के अन्य प्रातो से कही आगे है। यहाँ एक बात स्मरण रखना होगा कि दिल्ली और बम्बई की तरह बगाल की माताओ ने पश्चिम की नकल नही की। भारतीय सस्कृति की मर्यादा की रक्षा करते हुए उन्होने प्रगतिशील मार्ग को अपनाया। आज भी बगाल की महिलाओ को माँ-मौसी कहने से आसानी से उनसे स्नेह प्राप्त किया जा सकता है और वे अपनी दयालुता तथा सौहार्द को लुटा सकती हैं। यह बात अन्य प्रान्त की महिलाओ मे नही है।

आधुनिक राजनीतिज्ञो की मनोवृत्ति देख कर सेकसरियाजी के राजनीतिक जीवन की चर्चा करने की इच्छा नही होती। पहले लोग देश-सेवा समाज और राष्ट्र की भलाई के लिए करते रहे, आदर्श के लिए जान देते रहे। इसी मनोवृत्ति के

कारण वे जनता के निकट पूज्य और आदरणीय बने। किन्तु आज की स्थिति ऐसी है कि हम महात्मा गाँधी के नाम पर वोट माँगने वालों से इस कदर चिढ़ गये हैं कि देश-सेवा करने वाले समस्त नेताओं के चित्र को अपने मन से मिटा दे रहे हैं। कोई आश्चर्य नहीं यदि हमारी सन्तति गाँधी, लोकमान्य, नेहरू का नाम लेना पसन्द न करे। यही वजह है कि आधुनिक नेताओं के कलक सच्चे और आदर्श-वादी नेताओं के पुण्य-फल को समाप्त कर दे रहे हैं। सभवत इसीलिए सेक-सरियाजी को अपनी डायरी में यह स्वीकार करना पड़ा—"वर्तमान प्रणाली जड-मूल से बदलनी होगी। तभी स्वतत्रता आयेगी, सच्चा सुख मिलेगा और देश की दुखी जनता को लाभ होगा। नहीं तो आज जो लूट रहे हैं, वे चले जायगे तो उनके स्थान पर कोई दूसरा लुटेरा आयेगा। इसका सब से अच्छा उपाय है साम्यवाद। साम्यवाद कल्पना की चीज नहीं है, पर वर्तमान समाज का जो रूप है, वह साम्यवाद से ही बदला जा सकता है।"

ये विचार हैं एक मारवाडी सज्जन के, जिन्हें जनता पूजीपति समझती है। क्या इन विचारों ने वर्तमान उद्योगपतियों को प्रभावित नहीं किया है? सेकसरियाजी के तप और त्याग ने रग दिखाना प्रारम्भ कर दिया है। वह दिन दूर नहीं कि जब आज के युवक उनके मौलिक विचारों का मनन करेंगे। तब वे स्वय इस मसीहा को याद करेंगे। मानव-समाज में हर पीढ़ी में कुछ ऐसे लोग पैदा होते हैं जो क्रांति का मार्ग अपना कर एक नया मार्ग दे या बना जाते हैं। नवलगढ से आये एक अदने व्यक्ति ने अपनी जन्मभूमि से कहीं अधिक बगाल के निर्माण में भाग लिया, यह हमारे लिए गर्व की बात है। अगर आज की पीढी सेकसरियाजी की जीवन-पद्धति से कुछ सीख सके तो सपूर्ण राष्ट्र का मगल होगा। यह इसलिए लिखना पडा कि आज का बगाल बराबर विध्वस के मार्ग की ओर बढ रहा है जो कल्याणकारी नहीं है। यकीनन गाँधीवादी मार्ग को अपना कर हम आज नहीं तो कल समस्त भौतिक कष्टों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

सेकसरियाजी का जो रूप मेरे सामने अधिक स्पष्ट हुआ है, वह है—सामाजिक नेता के रूप में। मैंने देखा कि हर मगलमय कार्य के लिए वे आगे रहते हैं। स्वय तन, मन, धन से सेवा करते हैं और अपने मित्रों से ऐसा करने को कहते हैं। मेरे जैसे विद्रोही प्रकृति वाले व्यक्ति को उन्होंने अपने मृदुल व्यवहार, उदार सौजन्यसे जीत लिया है जब कि मैं उनके द्वारा कभी उपकृत नहीं हुआ हूँ। मेरे कारबकल को देख कर वे बोले—"आपकी यह हालत है, अगर मैं यह जानता तो यह कार्यक्रम कभी नहीं होने देता। कदापि आने की अनुमति न देता।" उस समारोह में और भी लोग थे। सभी ने पूछा कि क्या हुआ है और फिर आहा या च् च् च् कर रह गये। किन्तु सेकसरियाजी की वाणी ने मलहम का कार्य किया।

मैं उस व्यक्ति को आदर की दृष्टि से देखना पसन्द करता हूँ जो आदर के साथ अपनाये और एक साथ एक मेज पर मेरे साथ भोजन करे। आजीवन मैंने हर मेहमान के साथ यही किया है और जब कोई ऐसा करता है तो उसे अपना

पिता, भाई और मित्र मानता हूँ। कलकत्ता में यह सम्मान केवल सेकसरियाजी से मिला। और यही वजह है कि मैं उन्हे रजतकेशी नरश्रेष्ठ समझता हूँ।

अभिनन्दन के अलावा भी कई बार उनसे मिला और हर बार मैंने पाया कि वे भीतर-बाहर दोनो क्षेत्र मे समान रूप से सरलता की प्रतिमूर्त्ति है। अगर वे चाहते तो करोडपति बन सकते थे, पर आवश्यकता से अधिक उन्होने कभी अपने पास कुछ नही रखा। जो व्यक्ति अपने प्रथम दर्शन मे ही बनारसियो का मन मोह ले, वह साधारण नही, असाधारण पुरुष है। वह इसलिए कि हम बनारसियो मे एक कमजोरी यह है कि हम अपने आगे किसी को कुछ नही समझते, भले ही वह करोडपति क्यो न हो। हम सत परपरा के कायल है। किन्तु यह देख कर आश्चर्य हुआ कि कलकत्ता जैसे कीचड वाले देश मे कमल खिलते है और वे अपनी प्रतिभा से वातावरण को आलोकित करते हैं। मुझ मे एक आदत है। वह यह कि दूर से रह कर मैं पहले व्यक्ति का अध्ययन करता हूँ और जब व्यक्ति मेरे मन की कसौटी पर खरा उतरता हे, तब उसकी पूजा करता हूँ। इस दृष्टि से मेरे निकट सेकसरियाजी पूज्य हैं, प्रणम्य है।

अन्त मे, उनकी मगल कामना को स्वय अपने मे उतारते हुए उनके शब्दो को दुहराना चाहता हूँ—'जो कुछ करता है प्रभु करता है। प्रभु सत्य का मार्ग बताओ। झूठे मोह से पिंड छुडा कर सत्य का स्वरूप दिखाओ। मेरे मन मे किसी के प्रति द्वेष न रहे, मेरे द्वारा किसी का नुकसान न हो, ऐसी बुद्धि देने की कृपा करो।' यही है भारतीय सस्कृति की चिरन्तन साधना जिसकी आज आवश्यकता है। अगर इस सत्य को हम अपने जीवन मे उतारे तो सेकसरियाजी का वास्तविक अभिनन्दन कर सकेंगे।

——'o ——

सुपरिचित महिला-नेतृ,
समाज-सेविका,

श्रीमती सुभद्रा हक्सर

भाईजी !

श्रद्धेय भाई सीतारामजी से प्रथम भेंट होने का सौभाग्य मुझे, जहाँ तक याद पडता है, १९४९ मे कलकत्ता के राजभवन मे मिला था। उस दिन दूर से ही उन्हे देखा था, विशेष बात करने का अवसर नही मिला था। उनकी शुभ्र, हसमुख तथा विनम्र आकृति किस को आकृष्ट नही करती ? जब से उनको देखा है, तब से ही भाईजी को सदा सहास्य, सौम्य, विनयशील देखती आई हूँ। कैसी भी परिस्थिति हो, कैसा भी अवसर हो, उनकी मुद्रा मे कभी किसी प्रकार का अन्तर नही देखा।

समाज-सुधार, शिक्षा, सस्कृति आदि के विभिन्न क्षेत्रो मे पिछले ५० वर्षों से उन्होंने अपने-आप को अर्पण कर रखा है और निरतर सेवा मे लगे रहते हैं। सास्कृतिक क्षेत्र हो या सामाजिक और सार्वजनिक, सभी जगह वे हमारे अग्रणी हैं। असल मे, गाँधीजी के आदर्श सेवाव्रत को अपने जीवन मे जिन थोडे से भाई-बहिनो ने पूर्णरूपेण अपनाया है, उन्ही मे से भाईजी भी एक हैं, यदि ऐसा कहूँ तो अतिशयोक्ति नही होगी। इस महान् सेवाव्रत को अपनाने के कारण ही शायद उन्होंने अपने व्यक्तित्व को ऐसा विनम्र बना रखा है कि देखनेवाला चकित रह जाता है। छोटे-से-छोटा काम भी उनके लिये महान् गौरव का काम बन जाता है। किसी प्रकार का भेद-भाव उनके मन मे आता ही नही।

स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे भाईजी की सेवा अत्यन्त सराहनीय, बल्कि अतुलनीय है। हिन्दी-भाषी स्त्री-समाज तो उनका जितना भी कृतज्ञ हो, थोडा है। उनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन और उचित परामर्श तथा सामयिक सहायता से हमारी कितनी ही बहिनो ने न केवल शिक्षा-लाभ ही किया है, वरन् समाज-सेवा के व्रत मे भी अग्रसर हुई है और अपने को पूर्ण रूप मे इसमे अर्पण कर दिया है। हम लोगो का उत्साहवर्धन करने के लिए भाईजी हर समय तत्पर रहते है, उनका दरवाजा खुला रहता है। बिना किसी सकोच के हम उनको अपनी नाना प्रकार की समस्याओ के समाधान के लिये परेशान करते रहते हैं। मुझे जब कभी परामर्श और सहायता की जरूरत पडी है, उन्ही के पास दौडी गई हूँ। सदा बडे भाई के समान उन्होने पथ-प्रदर्शन किया है।

कलकत्ता नगरी मे श्री शिक्षायतन के रूप मे उनकी अक्लान्त, सुदीर्घ और निस्वार्थ सेवा-साधना पूर्ण रूपेण सफलीभूत हुई है। अपने ढग का इतना सुन्दर स्त्री-शिक्षा का सस्थान शायद ही कोई दूसरा इस समय नगरी मे है। देश के हर भाग की छात्राएँ यहाँ पर शिक्षा-लाभ करती हैं—आदर्श-जीवन व्यतीत करती हुई धन्य होती है।

अपने इस महान् सेवा-प्राण भाई का किन शब्दो मे अभिनन्दन करू? उनके गौरव से हम सभी गौरवान्वित है। यही आशीर्वाद उनसे मागती हूँ कि उनके दिखाये हुए मार्ग पर हम दृढतापूर्वक साहस के साथ चल सके। ईश्वर उनको हमारे बीच मे अनेक वर्षों तक बनाये रखे और हमे सदा उनसे प्रेरणा मिलती रहे।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी और राष्ट्र-कर्मी
भूतपूर्व राज्यसभा-सदस्य

श्री रामकुमार भुवालका

संन्यासी और वीतरागी

मेरा सम्पर्क श्रद्धेय श्री सीतारामजी के साथ पचास वर्षों से भी अधिक का है। समाज एव देश के लिये उन्होंने अपना जीवन अर्पित कर दिया। आरम्भ मे हमारे समाज मे मारवाडी एसोसिएशन का बड़ा रौब था। उस संस्था की ओर से एक व्यक्ति उस समय दिल्ली की कौंसिल मे लिया जाता था। उसमे एसोसिएशन के मंत्री-पद को लेकर बराबर खीचातानी रहती थी। जब स्वर्गीय श्री देवीप्रसादजी खेतान को मंत्री न बनाने का निश्चय हुआ, तब मारवाडी ट्रेडर्स एसोसिएशन की स्थापना हुई। उसमे अलग-अलग विभाग थे। एक विभाग सेवा का था, एक ज्ञान-वर्धन का था और एक प्रकाशन का था। ज्ञान-वर्धन विभाग मे कुछ मित्र हर सप्ताह एक बार किसी अच्छे विषय को लेकर वाद-विवाद करते थे, जिससे वक्तृता का अच्छा अभ्यास हो जाये। उसमे भाई सीतारामजी विशेष रुचि लेते थे।

मारवाडी अग्रवाल सभा का पहला अधिवेशन वर्धा मे सन् १६१६ मे हुआ। इसके बाद जब तक अग्रवाल सभा का काम होता रहा, भाई सीतारामजी उसमे अग्रणी रहे। विधवा-विवाह, हरिजन-उत्थान, दहेज-निवारण आदि अनेक मसलो पर समझदारी एव हिम्मत के साथ निर्णय लिये जाते थे। सन् १६२६ मे हम लोगो ने झरिया के श्री नागरमलजी लील्हा का विवाह एक सभ्रान्त एव कुलीन विधवा से करवाया। इस पर हम लोग १२ व्यक्ति जाति-बहिष्कृत कर दिये गये। गोविन्द भवन मे एक सभा बुलाई गई। स्वर्गीय सूरजमलजी जालान तथा स्वर्गीय जमनाधरजी गोयनका कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न कर रहे थे, जिससे समाज का यह विग्रह समाप्त हो जाये। स्वर्गीय केशोरामजी पोद्दार से बात कर के मामला तय होना था। उनका सुझाव था कि हम लोग वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह और विधवा-विवाह तीनो के ही विरोध मे रहे। इस समय श्री सीतारामजी एव स्वर्गीय श्री बसन्तलालजी ने एकदम आवाज उठाई कि वृद्ध-विवाह और बाल-विवाह को तो हम कुरीति समझते हैं पर विधवा-विवाह को हम धर्म समझते हैं। सभी उपस्थित लोगो पर इस दृढता का गहरा असर पडा।

सन् १६२८ मे देश की पुकार पर सीतारामजी ने सारा काम छोड कर स्व० जमनालालजी बजाज का साथ दिया और तब से लेकर आज तक कोई भी सामा-

जिक कार्य ऐसा नही, जिसमें उनका सक्रिय सहयोग न रहा हो। उनका सारा समय और सारा जीवन ही मानो समर्पित है। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे तो कलकत्ता महानगरी मे उनके जैसा उदाहरण ही नही मिलेगा। मारवाडी वालिका विद्यालय और श्री शिक्षायतन उनके अथक परिश्रम के ही परिणाम हैं। वनस्थली विद्यापीठ को भी उनका सहयोग मिलता रहा है।

श्री सीतारामजी का व्यक्तित्व उनके कर्तृत्व से कही अधिक महिमामय है। सौम्य, शान्त, हसमुख चेहरा, गौर वर्ण, निर्विकार, निर्लिप्त व्यक्तित्व। घर मे रह कर भी एकदम सन्यासी एव वीतरागी। विनयी व हसमुख स्वभाव और सब से वडी विशेषता सब की वातो को शान्ति से सुनना। ४५ वर्ष हो गये उनको अपना काम छोडे, पर मैंने कभी नही देखा कि कभी भी वे अपने मन मे किसी वात का, किसी चीज का अभाव समझते हो। निर्लेप सेवा करना, हसते रहना और रोज अपना काम करते रहना—यही उनका स्वभाव है। अपने पास कुछ है या नही, इसको सोचे विना ही आने वालो को कुछ-न-कुछ देते रहना उनका स्वभाव है।

भाई सीतारामजी मे गुणो का भण्डार भरा हुआ है। उन्हे पूरा-पूरा प्रकाश मे लाना यहाँ सम्भव नही। उनके रोज-रोज के कामो से हम सब कुछ-न-कुछ सीख सकते है। आज उनके ८२ वर्ष पूरे हुए हैं। इस लम्वे समय मे मैंने कभी यह नही देखा कि अच्छे कामो को करने मे उन्हे कभी भी थकावट का अनुभव हुआ हो। मै अपने मित्रो मे सव से छोटा हूँ और छोटा होने के कारण वच्चो की तरह कभी-कभी मचल जाता हूँ। पर मेरे मित्र अपने उदार स्वभाव के कारण क्षमा करते आ रहे है। उन्होने अपना सन्तुलन कभी नही कम किया। उन्हे वार-वार स्मरण रखने वाला उनसे वहुत कुछ पा सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

श्री सीतारामजी की ८२ वी वर्षगाँठ के अवसर पर उनकी धर्मपत्नी स्व० भगवानदेवीजी का स्मरण मुझे अनायास ही हो आया है। भाई सीतारामजी की जीवन-चर्चा मे उन्हे भूलना सम्भव नही। सभी कार्यो मे उनका अनन्य सहयोग रहता था और मेरा यह विश्वास है कि उनकी ही शक्ति का सहारा लेकर भाई सीतारामजी बहुत गभीर कामो मे हाथ लगा देते थे। घर मे तो उनकी सेवाये भाई सीतारामजी एव उनके सहयोगियो को मिली ही, वाहर भी सभी कार्यो मे स्व० भगवानदेवी का सक्रिय सहयोग रहा। घर आये हुए अतिथि तो उनके लिये देव स्वरूप थे ही, सामाजिक आदोलनो मे भाग लेने मे भी वे पीछे न रही। घर-घर जा कर खादी वेचने जैसा परिश्रम का काम भी उन्होंने सहर्ष किया। स्त्रियो के हर आन्दोलन मे वे अग्रणी रही और भाई सीतारामजी को पूरा सहयोग दिया। घर की सभी समस्याओ और दायित्वो से उन्होने भाई श्री सीतारामजी को मुक्त रखा और यही कारण है कि वे अपना अधिक-से-अधिक समय सामाजिक व शिक्षा सम्बन्धी कार्यो मे दे सके। आज वे हमारे वीच नही हैं, यही दुःख का विषय है। इस अवसर पर भाई सीतारामजी के साथ-साथ मैं उन्हें भी श्रद्धा ज्ञापित करता हूँ।

मैं अपनी ओर से तथा अपने परिवार की तरफ से उन्हें प्रणाम करता हूँ और ईश्वर से वार-वार प्रार्थना करता हूँ कि उन्हे कम-से-कम १०० वर्ष की आयु दे— और भी ज्यादा दें।

सुलेखक और ग्रंथागार-विशेषज्ञ,
राष्ट्रीय ग्रंथालय, कलकत्ता के
सहायक व्यवस्थाधिकारी

श्री कृष्णाचार्य

सम्पूर्ण जीवन

श्री सीतारामजी से कब प्रथम परिचय हुआ, याद नही। मैं नवम्बर १९५४ मे राष्ट्रीय ग्रथालय की सेवा मे कलकत्ता आया। बडा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय का परिचय स्व० श्री मोहनसिंह सेंगर और भारतीय सस्कृति ससद का परिचय श्री रामनिवास ढढारिया के माध्यम मे हुआ था। जहाँ तक याद है, ससद मे ही श्री सेकसरियाजी से परिचय हुआ। यह जानने मे जरा भी देर नही हुई कि कलकत्ता मे किसी सस्था—विशेषकर, हिन्दी-भाषी सस्था—मे सेकसरियाजी का होना गौरव की बात होती है। विभिन्न उत्सवो आदि मे उनसे भेंट-वार्ता होती रही और निकटता बढती गई। अतरग झाकी मिली उनकी "एक कार्यकर्ता की डायरी (दो भाग)" मे। दृढतापूर्वक कह सकता हूँ कि डायरी पढने से पूर्व उन्हे जितना जाना-समझा था, डायरी पढ कर उसकी पुष्टि तो हुई ही बल्कि आरभिक जीवन का नवीन परिचय भी मिला। किसी भी वयप्राप्त व्यक्ति को समझने के लिए उसकी युवावस्था का परिचय आवश्यक है।

आत्मीयता मनुष्य का प्रथम मानवीय गुण है। उनके इसी गुण ने शायद मुझे सब से पहले प्रभावित किया। वे जिस सहजता से बाते करते हैं, अपने को प्रकट करते हैं, और छोटे-बडे, निर्धन-धनी सब से अपने को जोडते हैं, उसमे उनकी उच्चाशयता अखण्ड रूप मे प्रकट होती है। कोई भी व्यक्ति उनसे समय ले सकता है, उत्सवो, बैठको और सार्वजनिक सभाओ मे उनको निमत्रित कर सकता है। नियमित रूप से चलने पर बहुत से कार्यो के लिए समय निकाला जा सकता है। साथ मे, यह भी सत्य है कि सीतारामजी को सभा-सोसाइटियो के कार्यो का इतना अधिक और प्रत्यक्ष परिचय है कि वे यथा-समय सटीक सलाह दे सकते हैं। सहजता का पता इस तथ्य से भी लगता है कि उनके बातचीत करने, भाषण देने और लिखने की भाषा एक ही है—सहज और आत्मीयता के पुट से ओत-प्रोत।

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्या का समाधान तलाशने की प्रवृत्ति सीतारामजी को निरतर व्यस्त रखती है—जैसे उनकी निजी और पारिवारिक कही कोई समस्या

है ही नही, सम्पूर्ण जीवन मानो दूसरो के लिए ही है। इसीसे उन्होने १९२० के आस-पास निजी व्यापार का सिलसिला भी छोड दिया। पचीसो छोटे-बडे सामाजिक उपयोग के कार्यों मे आज उनके मन को उद्विग्न करनेवाली मुख्य समस्या है—कलकत्ता मे हिन्दी-भवन के निर्माण की। एक दिन विक्टोरिया मैदान मे टहलते हुए मैंने उनसे हिन्दी-भवन की बात छेड दी। बडे खेदभरे स्वर मे वे कहने लगे—"कई अवसर आये और हाथ से निकल गये। अब कठिन समय आ गया है।" मैंने कहा—"आपके लिए अभी भी कठिन समय नही है"। "नही, बडी कठिनाई है, कुछ हो तो बम्बई के भारतीय विद्या भवन जैसा कुछ हो। छिट-पुट प्रयासो से आजकल कुछ नही होता।"—इस बात से उनकी कल्पना की विशालता का तो पता लगता ही है, साथ ही साथ यह भी पता लगता है कि वे अपने लक्ष्यो मे बडे स्पष्ट, सूक्ष्म और अर्थपूर्ण हैं। वे जैसे-तैसे प्रयासो मे विश्वास नही करते। ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते है जो किसी भी समस्या के समाधान के लिए दूर तक सोचते हो और साथ ही भव्य कल्पना के साथ उसमे विराटता का तत्त्व भी रहता हो। महामना मालवीयजी मे यह गुण चरम सीमा तक पहुँचा हुआ था। मैं यहाँ दोनो व्यक्तियो की तुलना नही करना चाहता, मात्र प्रवृत्ति या दृष्टि के साम्य की ओर सकेत है।

श्री सेकसरियाजी सन्ध्या समय किसी-न-किसी उत्सव, सभा आदि मे सम्मिलित होने के अभ्यस्त है। कलकत्ता के व्यस्त जीवन मे नियम-पालन की यह प्रक्रिया सरल नही है। वे प्राय सक्रिय रूप से हर सस्था के कार्य मे सलग्न होते है, छोटे-बडे अवसर के अनुकूल भाषण भी देते हैं और प्राय उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस प्रकार सेकसरियाजी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समय देकर, परामर्श द्वारा या किसी समिति के सक्रिय सदस्य की हैसियत से अनेक रूपो मे कलकत्ता के सार्वजनिक जीवन के अभिन्न अग बन गये हैं। मारवाडी बालिका विद्यालय और श्री शिक्षायतन जैसी सक्रिय और लोकप्रिय सस्थायें तो उनकी ही निरतर साधनापूर्ण वृत्ति का फल है। उन्होने काशी विश्वविद्यालय स्थित विश्व-ख्याति प्राप्त 'भारत कला भवन' को न जाने कितनी बार पुष्ट करने की चेष्टा की। हाल ही मे विक्रम परिषद् काशी से प्रकाशित और आचार्य श्री सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सपादित तुलसी ग्रथावली का प्रकाशन श्री सेकसरियाजी की सहयोग-भावना का ही फल है। सच, ऊपर से नितान्त औपचारिक और मधुर दीखनेवाले इस व्यक्ति मे सक्रिय सहयोग की या रचनात्मक कार्यों मे रुचि लेने की कितनी महती शक्ति छिपी है!

यह जानने की जिज्ञासा होती है कि सेकसरियाजी के नियमित और क्षमा-शील जीवन का क्या रहस्य है। लगता है कि काग्रेस के आदोलन के समय १९२८-३० से ही आपका जीवन-क्रम नियमित और कर्मठ हो चला था। स्वतत्रता के बाद देश के अनेक बलिदानी सेवक अब स्वामी हो गये हैं, पर इस व्यक्ति ने इन प्रलोभनो से अपने को दूर ही रखा है। गाँधीवादी छाप ने ही उनको यह प्रेरणा दी होगी कि अपने ढग से अकेले चलते चलो—वैयक्तिक स्वतत्रता और अपनी आन्तरिक प्रेरणा के बल पर जितना हो सके, किये चलो। एक कारण मेरी समझ से और भी है। वसुधा ही कुटुम्ब है, यह जीवन-सूत्र श्री सेकसरियाजी को विराट कलकत्ता

नगरी के जन-जीवन से बाधे हुए है। संभवत यही कारण है कि आप जहा एक ओर सस्थाओ, नियमो और आदर्शों से बँधे हैं, वहाँ दूसरी ओर मन की एकात तरगो का रस लेने मे भी उनका मन रमता है। भारतीय सस्कृति ससद का सगीत या नृत्य का आयोजन हो या विचार-चर्चा की सभा हो या कवि-सम्मेलन हो, उनको हरेक मे रस लेते हुए देखा जा सकता है। कई बार मैंने स्व० श्री मोहनसिह सेंगर के साथ पार्क स्ट्रीट के किसी रैस्टराँ मे चाय का आनन्द भी उनके साथ लिया है। 'विनोदिनी', जिसका कोई अध्यक्ष नही, कोई मत्री नही, की बैठको मे मात्र एक मास मे एक बार प्रात ७ से ६ बजे के बीच नील आगन तले और हरी घास की दरी पर कुछ सामाजिक प्राणी एकत्रित हुआ करते थे, केवल मुक्त हास्य, अहेतुक परिहास और विनोद के लिए। श्री सेकसरियाजी प्राय इस विनोद-सभा मे आते थे और खुल कर रमते थे।

यह मेरी ही कामना नही है, श्री सीतारामजी सेकसरिया से नैकट्य अनुभव करनेवाले प्रत्येक कलकत्ता-निवासी की कामना है कि वे इस नगर के जीवन को सम्पन्नतर बनाने और नवयुवको को सपूर्ण जीवन की समझ देने के लिए सौ वर्ष जीयें।

—·०·—

सुप्रसिद्ध चित्रकार

श्री इन्द्र दूगड

महान् जीवन-दर्शी

श्रद्धेय सीतारामजी को मैने सब से पहले कब देखा था, ठीक याद नही आता। १९३७ मे मै जियागज से मैट्रिक पास कर के कालेज मे पढने के लिये कलकत्ता आया था। मारवाडी छात्र निवास मे मेरे रहने की व्यवस्था हुई थी। उसी छात्र-कालीन अवधि मे समाज के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियो से मेरी घनिष्ठता हुई थी। एक बार छात्र-निवास मे देश-विदेश के प्रख्यात व्यक्ति—साहित्यिक, चित्रकार आदि—अतिथि रूप मे उपस्थित हुए थे, और उनके साथ हिन्दुस्तान के कई गण्यमान्य राज-नीतिक नेतागण भी। हो सकता है कि उसी समावेश मे मैने सीतारामजी का प्रथम दर्शन प्राप्त किया हो, और उस समय उनसे मेरा परिचय भी हुआ हो। जैसे भी हुआ हो, उनके साथ घनिष्ठता का सूत्रपात हो गया। उसके बाद तो मै उनके पास कई बार गया। उस समय मैने चित्रकारी भी शुरू कर दी थी। एक कलाकार के रूप मे मै जब भी उनके घर गया, मुझे कभी यह अनुभव नही हुआ कि मै एक अपरिचित स्थान मे आया हूँ। सर्वदा मुझे यही लगा कि वे तो मेरे अपने ही कोई है—इतना आकर्षक व्यक्तित्त्व था उनका। उनके सदा हास्यपूर्ण, गौरवपूर्ण, मृदुभाषी, और सौम्य चेहरे मे एक ऐसी दीप्त आभा थी, जिसने मुझे हमेशा सम्मोहित किया। दीर्घ पैंतीस वर्ष बीत गये, किन्तु परिचय के प्रथम दिनो मे मेरे ऊपर उनका जो प्रभाव पडा था, वह आज भी ज्यो-का-त्यो कायम है। उन दिनो मेरे अन्दर उनके प्रति जो भाव विस्मय का था, वह आज श्रद्धा मे परिणत हो चुका है।

शिक्षा के विस्तार मे, समाज के कल्याण मे और विभिन्न उन्नयन-मूलक कार्यो मे उनका जो अपरिमित योगदान रहा है, उससे कोई अनभिज्ञ नही है। इतनी कार्य-व्यस्तता के बीच भी सास्कृतिक अनुष्ठानो मे सदा उपस्थित रह सकना उनकी एक लक्षणीय विशेषता है। जब-जब मैने अपने चित्रो की प्रदर्शनी की, निमत्रण-पत्र मिलते ही वे सर्वदा उपस्थित हुए है। घूम-घूम कर उन्होंने मेरे चित्रो को देखा है, सच्ची जिज्ञासा और आग्रह के साथ मुझ से नाना प्रकार के प्रश्न पूछे है।

सामाजिक सौजन्य को निभाने के लिये अनेक व्यक्ति चित्र-प्रदर्शनी देखने आया करते है, किन्तु जो अर्न्तदृष्टि और सवेदना मैने सीतारामजी के व्यवहार मे

पाई है, उससे उनके प्रति मेरा मन वार-वार श्रद्धा से झुक जाता है। वहुविध कार्यक्रमो के बावजूद उन्होने कई सास्कृतिक अनुष्ठानो मे जा कर अपना सहज स्नेह दे उन्हे धन्य किया है।

आज समग्र देशवासियो के साथ सम्मिलित होकर मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि उन्हे दीर्घायु प्राप्त हो और वे हमारे बीच रह कर अपने महान् जीवनादर्श द्वारा हमे सदा प्रेरित करते रहे।

—— ० ——

साहित्यकार एवं कलाविद

श्री कमलाकात वर्मा

सच्चा वैष्णवजन

'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता' —कर्म क्या है और अकर्म क्या है, इस प्रश्न पर विद्वद् गण भी मोहग्रस्त हो जाया करते है। गीता मे भगवान् कृष्ण ने यह कह कर मानो शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित धर्म और नीति के आचार-विचार के प्रत्येक नियम के सामने ही एक चिरन्तन प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। किन्तु यह मानते हुए भी कि कर्माकर्म के विषय मे किसी का कोई भी आदेश कभी अन्तिम रूप से ग्राह्य नही हो सकता—'नैको ऋषिर्यस्य वच प्रमाणम्'—प्रत्येक देश और युग मे अनेको महापुरुषो ने अपने सहवर्तियो को दिक्कालानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के विधि-निषेधात्मक आदेश दिये हैं, जिनसे नाना धर्मो, सम्प्रदायो, मतो और वादो का जन्म हुआ है। ऐसी स्थिति मे, जब कि किसी का कोई भी आदेश सदा-सर्वत्र सम्पूर्णत निर्विरोध और अखण्डनीय रह ही नही सकता, आचार-विचार की मर्यादाएँ अन्तत, चाहे एक सीमित परिवेश मे ही, स्थापित की कैसे जायँ, इस समस्या का श्रेष्ठ समाधान ससार को गाँधीजी से ही मिला। अहिंसात्मक सत्य के एक आदर्श-निष्ठ और साथ ही व्यवहार-कुशल प्रयोक्ता होने के नाते गाँधीजी ने औचित्यानौचित्य की सारी मर्यादाओ को दूसरो के लिए उसी रूप और मात्रा मे आदेशबद्ध किया, जिसमे वे उन्हे स्वयम् अभ्यास-सिद्ध कर पाये, और अपने इसी आग्रह के वश उन्होने कहा—'मेरा जीवन ही मेरी वाणी है'।

अपनी वाणी और अपने जीवन मे एकरसता और एकरूपता की यह साधना ही गाँधीजी के जीवन का क्लिष्टतम, और फलत श्रेष्ठतम सत्य-प्रयोग था। अपने इस प्रयोग के चलते भारतीय स्वातत्र्य-सग्राम के अपने आधारभूत नेतृत्व मे हुई और हो रही अनेक भूलो और चूको को बार-बार 'हिमालयाकार' घोषित करते रहने की उनकी अकुण्ठित अपराधोक्तियाँ ही, गीता-धर्म की दृष्टि से, उनका चरम अनासक्ति-योग थी। और, इस 'प्रयोग' और 'योग' के पथ पर चलते हुए जब उन्होने मृत्यु का वरण किया, तब 'हे राम' कह कर मानो यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि वाणी और जीवन की एकाकारता ही सत्य की चूडान्त साधना है—सत्य ही है ईश्वर।

गाँधीजी की इस साधना का, जो एक दृष्टि से सभी के लिए सुगम और दूसरी दृष्टि से किसी के लिए भी दुर्गम है, प्रशसात्मक वर्णन तो यथेष्ट किया गया है

किन्तु निष्ठापूर्ण अनुकरण बहुत ही कम। वास्तव मे शक्ति और समृद्धि के प्रलोभनो से बचे और लोक-साफल्य-निरपेक्ष रह कर जिन्होंने इस साधना को अपनाया है और जो आज भी जीवित—जीवित ही नही जागरूक भी—है, उन उँगलियो पर ही गिने जाने योग्य थोडे-से व्यक्तियो मे एक है—सीतारामजी सेकसरिया।

बाह्य पर्यवेक्षण के अनुसार सेकसरियाजी राजस्थानी समाज मे उत्पन्न कलकत्ता के एक सुप्रतिष्ठित स्वातन्त्र्य-योद्धा और वयोवृद्ध समाज-सेवी है, जिन्हे भारत सरकार ने भी 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलकृत किया है। किन्तु आभ्यतर समीक्षा बताती है कि वे अपनी निष्ठाओ के चलते समस्त भारतीय समाज के और सेवाओ के चलते सारे भारतीय राष्ट्र के है, जिन्होंने युद्ध-धर्म और सेवा-धर्म दोनो को मानव-धर्म के ही दो पहलू मान कर अपने जीवन के पूर्वार्द्ध मे सेवक-वृत्ति से स्वातन्त्र्य-सग्राम मे भाग लिया था और जो अब उसके उत्तरार्द्ध मे योद्धा-वृत्ति से सेवा-कार्य कर रहे है। उनकी इन वृत्तियो के फलस्वरूप सैद्धातिक दृढता और व्यावहारिक विनम्रता के सहज समन्वय के कारण और वाणी मे व्यक्त हुए किसी भी विचार के पीछे अपने जीवन मे आचरित किसी-न-किसी आदर्श का निरपवाद समर्थन होने के नाते वे अपनी भाषा और भावो मे अपने निकटवर्तियो को प्राय गाँधीजी का स्मरण दिला दिया करते है, और गाँधी-दर्शन के क्रमिक तिरोभाव के इस युग मे उन्हे 'गाँधीजी का एक सजीव स्मारक' कह कर अभिनन्दित करना ही उन्हे उनकी वास्तविक उपाधि से विभूषित करना-सा जान पडता है।

मै इसे अपना घोर दुर्भाग्य मानता हूँ कि कलकत्ता मे अपने दीर्घ प्रवास के बावजूद सेकसरियाजी के निकट सम्पर्क मे मै केवल पिछले कुछ वर्षो मे ही आ पाया हूँ। इन वर्षो मे उनसे मेरा यह स्वल्प सम्पर्क अधिकाशत सास्कृतिक कार्यक्रमो मे सहोपस्थिति के कारण ही हो पाया है। इन सभी कार्यक्रमो मे, जिनके विषय सगीत, नृत्य, नाटक, दार्शनिक एवम् साहित्यिक चर्चा आदि रहे है, मैने सेकसरियाजी को रस-ग्राहिता और विषय-मर्मज्ञता मे किसी की भी अपेक्षा कम नही पाया है। सस्कृति के प्रत्येक सत्य, शिव और सुन्दर पक्ष के प्रति उनके सतत जागरूक अनुराग को मै विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर का, जिनके सम्पर्क मे वे अपने प्रारम्भिक जीवन मे ही आये होगे, प्रसाद मानता हूँ। किन्तु इस प्रसाद की रमणीयताएँ सेकसरियाजी की तपस्विता मे कभी बाधक नही बल्कि सदा साधक ही बनी है। इस विशेषता को उन पर गाँधीजी की ही प्रतिच्छाया मानना पडता है।

मुझे स्मरण है कि कुछ वर्षो पहले जब सेकसरियाजी की पत्नी मृत्यु-शैया पर पडी थी, तब मुझे गम्भीर आशका हो आई थी कि इस आयु का यह विच्छेद कही उनके जीवन की सारी जिज्ञासा और रसैषा को ही न सोख ले। किन्तु मेरी आशका निर्मूल सिद्ध हुई। उस अवस्था मे जब तक वे जीवित रही, उनकी यथासाध्य सेवा-सुश्रूषा कर और जब वे चल बसी, तब 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु' का स्मरण कर सेकसरियाजी शीघ्र ही सभी प्रकार के कार्यक्रमो मे पूर्ववत् योगदान देने और रस ग्रहण करने लग गये। वृद्धावस्था के वैधुर्य को हृदय मे जितना रस और होठो पर जैसी मुसकान रखे रह कर सेकसरियाजी ने सहन और वहन किया

है, उससे पूना के आगा खाँ पैलेस के सत के सन्देश का स्मरण आये विना नही रहता।

यदि इससे यह समझा जाय कि सेकसरियाजी के हृदय मे अपनो के प्रति स्नेह और सवेदनशीलता का अभाव है या जो नही रहे, उनके प्रति विस्मरण का भाव, तो यह एक बडी-से-बडी भूल होगी। पिछले वर्ष जव श्री जयप्रकाशनारायण की पत्नी श्रीमती प्रभावतीदेवी के उदर के कैन्सर से पीडित होने का समाचार सेकसरियाजी को मिला तो मैंने ध्यानपूर्वक लक्ष्य किया कि उन्हे उतनी ही चिन्ता और उतना ही विपाद हुआ था जितना रोगिणी के किसी भी निकटतम आत्मीय को हो सकता था। रोग भीतर-ही-भीतर अपनी जडे फैला चुका था और, यद्यपि डाक्टरो ने अपना नैराश्य स्पष्टत घोपित नही किया था, उनकी आसन्न मृत्यु के घातक लक्षण स्पष्ट होते जा रहे थे। उस समय उन्हे जितना स्नेह और जयप्रकाश-जी को जितनी सहानुभूति सेकसरियाजी से मिली थी, उतनी किसी को भी अपने परिवार के बाहर से कदाचित् ही मिला करती हो। वात यही समाप्त नही हुई। अपनी उसी अवस्था मे प्रभावतीदेवी ने अपनी प्रिय सस्था, जिसका सचालन उन्ही की शिक्षा-दीक्षा मे सयानी हुई उनकी एक स्नेह-पात्रा कर रही थी, के लिये थोडा आर्थिक सहाय्य करने और करते रहने का अनुरोध सेकसरियाजी से कर डाला। यद्यपि वह सस्था कलकत्ता से बाहर की थी और यहाँ से उसे अर्थ-सहाय्य देना या देते रहना बहुत आसान नही था, फिर भी सेकसरियाजी ने उनके उस अनुरोध को सहर्ष स्वीकार कर लिया। और, प्रभावतीदेवी की मृत्यु के वाद उन्होने उनके उस अनुरोध का अक्षरश पालन किया है और जहाँ तक सम्भव हो, उसे पालन करते जाने की इच्छा व्यक्त की है। सेकसरियाजी के सुदीर्घ सेवा-परायण जीवन मे यह शायद एक बहुत ही छोटी घटना हो, किन्तु ऐसी-ऐसी असख्य छोटी घटनाओ ने ही तो गाँधीजी को, जिनसे सेकसरियाजी ने सेवा-धर्म का मर्म समझा है, अगणित मनुष्यो का 'बापू' बना डाला था।

गाँधीजी वैश्य थे, सेकसरियाजी भी वैश्य हैं। वैश्य वन कर जन्म लेने की चरम सार्थकता 'वैष्णवजन' बन कर जीने और मरने मे ही है, यह गाँधीजी ने सुझाया था और सेकसरियाजी ने समझा है। और, जब भी मै देखता हूँ 'पीर पराई जाने रे' की आर्द्रता लिये हुए सेकसरियाजी की आँखे, 'मन अभिमान न आने रे' की मधुरता से सिक्त सभी के लिए सदा स्वागत भरी उनकी मुसकान, 'सकल लोक माँ सहुने वन्दे' की विनम्रता से सदा थोडी झुकी हुई उनकी गरदन, और निरन्तर जुडते रहने वाले उनके दोनो हाथ, तव अपने जीवन को ही अपनी वाणी वना डालनेवाले गाँधीजी के चारित्र्य-सौरभ के ऐसे अथक परिवाहक को मैं अपनी कृतज्ञतापूर्ण श्रद्धा अर्पित करता हुआ मन-ही-मन गुनगुना उठता हूँ—'धन-धन जननी तेनी रे।'

—— o ——

गाँधीवादी विचारक और लेखक,
राजस्थान हरिजन सेवक सघ के मत्री

श्री जवाहिरलाल जैन

सेवक, साधक और भक्त

लम्बा कद, भरा हुआ सुन्दर शरीर, गौर वर्ण, सार्वजनिक सेवा की कामना तथा राष्ट्रीयता के विचार से ओत-प्रोत, अपरिग्रह की दिशा मे व्यवहारशील, अत्यन्त शुभ्र तथा महगी खादी से आवृत्त देखा था मैंने सीतारामजी सेकसरिया को, जब लगभग तीस-पैंतीस वर्ष पहले मै पहले-पहल उनसे कलकत्ता के शुद्ध खादी भडार मे मिला था। उन दिनो मेरे छोटे भाई पदमचन्द कलकत्ता मे जवाहरात का धन्धा करते थे और सिद्धराजजी ढड्ढा तथा भवरमलजी सिंघी भी वही थे—एक इडियन चैम्बर आफ कामर्स मे और दूसरे जूट डीलर्स एसोसिएशन मे। जयपुर के मित्रो का बडा जमघट वहाँ था उन दिनो। जहाँ एक ओर सामाजिक कार्यक्रमो और मासिक 'तरुण जैन' के प्रति उत्साह था, वहाँ गिल्ली-डडा क्लब का मौजमज़ा भी कुछ कम नही था।

सीतारामजी की एक त्रिमूर्ति थी। उनके एक ओर भागीरथजी कानोडिया और दूसरी ओर बसतलालजी मुरारका। तीनो कलकत्ता के, खासकर वहाँ के मारवाडियो के सामाजिक तथा सार्वजनिक जीवन मे विशेष सक्रिय थे तथा प्रदेश के राष्ट्रीय कार्यक्रमो मे भी उनका उल्लेखनीय सहयोग रहता था। इसके अतिरिक्त राजस्थान की सामाजिक और सार्वजनिक प्रवृत्तियो तथा आदोलनो की सहायता करने और करवाने मे भी उनका बडा हाथ रहता था। बसतलालजी मुरारका तो अब नही रहे, पर भागीरथजी और सीतारामजी आज अस्सी वर्ष की अवस्था पार कर जाने के बाद भी उसी हार्दिकता और तत्परता से सार्वजनिक और सामाजिक जीवन की समृद्धि मे तल्लीन है, यद्यपि उनकी शारीरिक शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो चली है।

सीतारामजी की सेवा-प्रवृत्ति मुख्यत हरिजन-उत्थान, हिन्दी-प्रचार, खादी तथा महिलाओ के शिक्षण की ओर रही है। मारवाडी बालिका विद्यालय, शुद्ध खादी भण्डार, श्री शिक्षायतन रचनात्मक सेवा-कार्यों मे उनकी उत्कट लगन के उदाहरण है। वनस्थली विद्यापीठ से भी प्रारम्भ से ही उनका अत्यत निकट का सम्बन्ध रहा है।

सीतारामजी राष्ट्रीय आन्दोलन मे गाँधीजी के आगमन के बाद से अधिक सक्रिय हुए। गाँधीजी के प्रति उनकी निष्ठा अटूट रही है और राष्ट्रीय आदोलन मे उन्होंने

सक्रिय भाग लिया, पर गाँधीजी के बाद विनोबाजी के कार्यक्रम और आदोलनो के साथ वे उतने नही जुड सके। साथ ही, सीतारामजी की निकटता गाँधीजी और कॉंग्रेस के साथ होते हुए भी वे कॉंग्रेस दल के आदमी नही बन सके, सत्ता और कूटनीति, पार्टी-बदी और गुट-बदी उन्हे कभी नही भाई। साध्य-शुद्धि के साथ-साथ साधन-शुद्धि की अनिवार्यता उन्हे बराबर प्रभावित करती रही। इसलिए गाँधीजी के बाद की कॉंग्रेस मे—त्याग के फलो के भोग मे—उनका कोई हिस्सा नही रहा। वे सत्ता मे नही पैठे। आजादी के पच्चीस वर्ष पहले भी और आजादी के बाद के पच्चीस वर्षो मे भी वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता ही रहे हैं, नेता नही बने। यह उनका भी सद्भाग्य है और देश का भी। फल की आसक्ति मे उनकी नैतिकता नही डगमगा पाई।

सीतारामजी जिदगी भर गाधीजी के अपरिग्रहवाद और ट्रस्टीशिप की भावना का प्रयोग अपने ऊपर करते रहे है। गये पैतालीस वर्षो से निजी व्यापार छोड चुके हैं, सीमित आर्थिक साधनो से जीवन चला रहे है और उसी मे से सार्वजनिक कार्यो को आर्थिक मदद भी पहुँचाते रहे है। अपनी कमजोरियो और प्रलोभनो से सतत लडते भी रहे है। सीतारामजी का जीवन एक कर्मयोगी का जीवन है, जिसमे ईश्वर के प्रति अटूट आस्था तथा समर्पण की भावना जुडी है।

मै सीतारामजी को बरसो से देखता रहा हूँ, गौर से देखता रहा हूँ। बहुत दूर से नही, तो बहुत पास से भी नही। इन दोनो परिस्थितियो मे दृष्टि-दोष आये बिना नही रहता। वे बहुत निष्ठावान तथा सचेतन सेवक हैं, अपने आध्यात्मिक विकास मे प्रयत्नशील साधक हैं और समर्पित ईश्वर-भक्त हैं। कमजोरियाँ हर इन्सान मे होती हैं, उनमे भी होगी। यह इन्सान होने की पहली शर्त है, पर उन्हे पहचानने और दूर करने का सतत प्रयत्न भी इन्सानियत की पहली शर्त है। सीतारामजी इन्सान भी है और उनमे इन्सानियत भी भरपूर है। यही उनकी महत्ता है।

— ० —

समाज-सेवी और साहित्य-प्रेमी,
भारतीय सस्कृति संसद के सस्थापक

श्री माधोदास मूधड़ा

विनम्रता की साक्षात् मूर्ति

आदरणीय सेकसरियाजी के व्यक्तित्व के अनेक पहलू है। वे तपे हुए देश-सेवक, सुयोग्य समाज-नेता, शिक्षा के प्रसारक, साहित्य एव सस्कृति के प्रेमी हैं। समाज और राष्ट्र की सेवा के लिए एक समर्पित व्यक्तित्व। मै उनके इन विविध रूपो से कम परिचित हूँ। स्वतन्त्रता के पहले के सेकसरियाजी से मेरा कभी व्यक्तिगत सम्पर्क नही रहा।

भारतीय सस्कृति ससद के कारण मै सेकसरियाजी के सम्पर्क मे आया, उन्हे निकट से देखने-समझने का मौका मिला। मैने उनको कभी क्रोध मे, उत्तेजना मे, खीझ मे, आवेश मे नही देखा। एक सामाजिक और राष्ट्रीय सेवक के लिए यह कितना कठिन काम है? कोई अवसर हो, विचार के लिए कोई विषय हो, सभी समय, सभी स्थानो पर आप सेकसरियाजी को एक-सा शान्त, गम्भीर, मधुर, सौम्य, निश्छल एव स्पष्ट पायेगे।

वे जिनसे मिलेंगे, उनसे आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करते जायेगे, धीरे-धीरे उनमे सभी लोग अपने आत्मीय-जन का अनुभव करने लगते हैं। वाद मे उनके लिए सस्था का कार्य महत्व नही रखता। सभी के प्रति वे पारिवारिक आत्मीय भाव रखते हैं। सभी से मिलना, खुल कर वात करना, घर के समाचार पूछना, वडो व छोटो के दु ख-सुख मे शामिल होना सेकसरियाजी की ऐसी चारित्रिक विशेपताए हैं जिनके कारण वे सर्वत्र लोक-प्रिय है। मिलने वाले सभी समझते हैं कि सेकसरियाजी उनके अपने हैं, जव कि वे सभी के हैं और अनासक्त भाव से केवल यदि किसी के है तो अपने कार्य के, अपने व्रत के और अपने लक्ष्य के।

सेकसरियाजी मे अदम्य कार्य-शक्ति है। उन्होने श्री शिक्षायतन का गुरुतर कार्य-भार अपने कन्धो पर उठाया और उसे आगे से आगे वढाया। तरुणो की तरह उत्साह, वच्चो की तरह निश्छल सहज भाव और वृद्धो की प्रौढता आदि सेकसरियाजी के ऐसे गुण है जिनके कारण वे अलग, विशिष्ट और एकाकी से मालूम होते है।

विनम्रता की तो वे साक्षात् मूर्ति है। कभी भी आप उनमे गर्व एव अहभाव नही पायेंगे। सभी वर्ग के लोगो के साथ सेकसरियाजी एकभाव से मिलते हैं। कलकत्ता

की अनेक संस्थाओ से आप सम्बद्ध है, बहुतो की कार्यकारिणी मे है, कही अध्यक्ष है, कही परामर्श-दाता है पर ऐसा कभी नही होता कि वे अपने कर्त्तव्य का, दायित्व का या कार्य का सम्यक् प्रकार से निर्वाह न करते हो।

मेरे मन मे अपने पूज्यपाद पिताजी के बाद यदि किसी व्यक्ति के प्रति सब से अधिक श्रद्धा है तो वह श्री सेकसरियाजी के प्रति। वे सब तरह से अभिनन्दनीय है एव श्रद्धेय है।

—— ० ——

साहित्य और शिक्षा प्रेमी

श्रीमती सरस्वती कपूर

'यो जागार तमु ऋच: कामयन्ते'

पद्मभूपण श्री सीताराम सेकसरिया—एक सौम्य आकर्षक व्यक्तित्व, आयु के साथ क्रमश बढती हुई सी सौजन्य-जन्य स्पृहणीय मधुरता, आगन्तुक से कुशल-क्षेम पूछती-सी चितवन, परिचय-सूत्र को खोजती-सी आत्मीयता, सब मिला कर एक भव्य आकृति से युक्त ओजस्वी मानव।

मेरा उनसे प्रथम साक्षात् सन १९३० के फरवरी मास के प्रथम सप्ताह मे बिहार-भूकम्प के दिनो मे मुजफ्फरपुर मे अकस्मात् ही हो गया था। उन दिनो वहा समस्त उत्तर भारत से आई हुई सेवा-समितियो का जाल-सा बिछा हुआ था। कई पुराने परिचित बन्धु-जन वहाँ परस्पर मिले। शायद वह कलकत्ता सेवा समिति का कैम्प था। तभी स्वर्गीय सत्यदेव विद्यालकार महोदय, जो उस समय वही पर आये हुए थे, ने श्री सेकसरियाजी को मेरे विपय मे कुछ बताया था। स्वर्गीय जमनालाल बजाज ने भी सेकसरियाजी को इसी विषय मे एक पत्र लिखा था जो कि उन्हे मुजफ्फरपुर मे उसी दिन मिला था। बात करते समय वह पत्र उनके हाथ मे ही था। साधारण शिष्टाचार-वार्तालाप के अतिरिक्त कलकत्ता आ कर मिलने का निमत्रण मिला। फरवरी बिहार मे ही बीती। मार्च की किसी तारीख को मै उनसे कलकत्ता मे उनके निवास-स्थान पर मिली। वही स्वर्गीया माता भगवानदेवी सेकसरिया के भी दर्शन हुए। उन्होने मुझे बहुत ही प्रेम से बिठाया, लगा कि उनसे बातचीत की जा सकती है।

सेकसरियाजी मारवाडी बालिका विद्यालय के हिन्दी विभाग के लिये योग्य शिक्षिका प्राप्त करने को उत्सुक थे, मै भी परिस्थिति-जन्य आर्थिक सकट से उबरना चाहती थी। अप्रैल से अपना कार्य आरम्भ कर दिया। विद्यालय मे किसी से भी विशेप परिचय नही था। मै अपने शिक्षण कार्य के साथ धीरे-धीरे अग्रसर हो रही थी। बालिका समाज के साप्ताहिक अधिवेशनो और वाद-विवाद प्रतियोगिताओ मे मेरी बाते कुछ प्रभावोत्पादक हो जाती थी। किसी को नीचा दिखाना या स्वय हावी हो जाने का तो कोई प्रसग ही नही था। पर विडम्बना यह कि ऐसा समझ लिया जाता और प्राय ऐसा हो ही जाता। मै अकारण ही अपमान, तिरस्कार एव लाछनाओ से घिर जाती। प्रातीयता का विप भी आडे आ जाता। कारण मेरा

स्वयं का अदृष्ट ही ऐसा था। नेपथ्य मे जब वातावरण ठीक मे कलुषित हो जाता, तभी मुझे होश आता। उस समय भी मुझे ही उन सब विषमताओ की सूत्रधार मान लिया जाता। ऐसे अवसरो पर विद्यालय के मत्री होने के नाते सारा चिट्ठा ब्यौरेवार सेकसरियाजी के सामने आ जाता। उनकी पैनी दृष्टि को न्याय-तुला पर सत्य के दर्शन होने मे देर न लगती और अनायास ही 'नीर-क्षीर विवेक' हो जाता। कथ्य इतना ही है कि इन सारी परिस्थितियो मे वे मुझे स्वभावत ही पितृतुल्य लगते। स्वर्गीया भगवानदेवीजी भी मुझे आजीवन पुत्री ही मानती रही। वे मुझे 'सुरूम्नी' कह कर पुकारती, 'तू' करके बात करती, प्यार से बिठाकर आग्रह से खिलाती। उनके उस वात्सल्य भाव को मैं कभी भुला नही सकती।

सेकसरियाजी मे एक मौलिक विशेषता है—उनका मानस-पटल किन्ही ऐसे तंतुओ से बना है कि उस पर उनके मन चाहे विषयो का प्रतिबिम्ब सुचारु रूप से गहराई मे अकित हो जाता है। वे इस विषय मे बहुत ही भाग्यशाली हैं। जिन-जिन विलक्षण प्रतिभाओ के सम्पर्क मे वे आये, उन सब से बार-बार मिलने, परिचय बढाने, उपासना करने, शिक्षा ग्रहण करने की सभी घटनाए सेकसरियाजी को ब्योरेवार तारीखो सहित उल्लेखनीय विशेषताओ के साथ इस तरह याद है, मानो वे कल की घटनाएँ हो। ऐसी अद्भुत स्मरण-शक्ति पाई है सेकसरियाजी ने। उनकी लिखी 'स्मृति-कण' और 'बीता युग नयी याद' मे उन्होने राजनेताओ, साहित्यकारो, समाजसेवियो का इतना सजीव चित्रण सरस, सुगम और सुन्दर भाषा मे किया है कि उनसे प्रेरणा मिलती है, शिक्षा मिलती है, आगे बढने का उत्साह मिलता है। उन्होने कई स्वनामधन्य व्यक्तियो के समीप बैठ कर जो कुछ 'सूत्र' रूप मे पाया, जीवन मे उसी का विस्तार किया। ऋषिजनो की वाणी का श्रवण तो कोई भी कर सकता है, पर उसकी व्याख्या या विस्तार मत्र-द्रष्टा ही कर सकता है।

अपनी लिखी 'बीता युग नई याद' पुस्तक की विषय-सामग्री को उन्होने छह खण्डो मे विभक्त किया है। उन-उन विषयो के आचार्यो की चुनी हुई बाते इस तरह प्रस्तुत की है कि सारा ग्रथ ही प्रेरणाप्रद हो गया है। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उन्होने भाव-विभोर हो आन्तरिक श्रद्धा के साथ 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' के अनुरूप ही श्रद्धाजलि समर्पित की है। विश्व-कवि के वे विश्वास-भाजन थे, यह सौभाग्य भी उन्हे प्राप्त है। समय-समय पर गुरुदेव ने अपनी आन्तरिक व्यथाओ की गुत्थी को उनके सामने खोला, यह अपने-आप मे बहुत बडी बात है।

असख्य बाते है, लम्बी कहानिया हैं। भ्रमर की तरह एक-एक सुगन्धित पुष्प पर मडरा कर श्री सेकसरियाजी ने मधु-सचय किया है। जहा जो भी विशेषता पाई, वही से उसका सार ग्रहण कर लिया। बीसवी शताब्दी के मूर्धन्य मनीषियो मे महात्मा गाधी का दरबार हो या गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का उत्तरायण, स्वर्गीय जमनालाल बजाज का सेवाग्राम हो अथवा साबरमती-आश्रम हो या हो अधेरे का कैदी, गुण-ग्राहकता मे सेकसरियाजी सदा अग्रणी रहे। सामाजिक विषमताओ मे भी उनका स्वरूप देखने को मिला है। दो-एक घटनाएँ लिख देने से ही उसका दिग्दर्शन हो जायगा।

एक साधारण अध्यापक थे। कई बच्चो के पिता। घर मे विदुषी पत्नी कहीं शिक्षिका का काम कर के गृहस्थी चलाने मे सहयोग देती थी। उन्हे क्या सूझी! जहाँ पढाते थे, वही विश्वासघात कर बैठे। कन्या के पिता एक सम्भ्रान्त सज्जन किंकर्त्तव्यविमूढ। घर मे अबोध कन्या अपने आपको समर्पित कर देने को वचनबद्ध। पिता ने सेकसरियाजी से आत्म-निवेदन किया, शरण मागी। उधर अध्यापक महोदय पीछे क्यो हटते। वे अपनी मूर्खतावश सफलता प्राप्त करने को पूर्णतया आश्वस्त थे। उस दुर्योग को किस प्रकार छिन्न-भिन्न किया गया, कैसे उस निरीह महिला को जीवन-नरक मे मुक्ति मिली, यह कल्पना नही, सच्चाई है।

एक अन्य अपूर्व सुन्दरी कन्या तो भयकर गर्त्त मे गिर ही गई थी। कन्या के पिता को आत्म-हत्या के सिवाय उद्धार का मार्ग नही मिल रहा था। उसमे भी स्वय उन्होंने आगे आ कर रास्ता बनाया। कन्या को पुन सामाजिक स्थिति प्राप्त करवाई, उसे सम्मानित ससार बसाने मे सहायता दी। ऐसी बहुतेरी कन्याए, महि-महिलाए, विधवाए अब भी जब-तब मिल जाती है, जिन्हे अपार अन्धकार मे उबार कर सेकसरियाजी ने प्रकाश के दर्शन कराए है।

जीवन मे आगे बढने के अवसर प्रत्येक को कभी-न-कभी अवश्य मिल जाते है। पर कोई विरले ही सौभाग्यशाली उन अवसरो को उपयोग मे ला पाते है। अवसर को न चूकने वाला ही सफलताओ से सम्मानित होता है। ऋग्वेद मे एक उद्‌बोधक सूक्ति है—"यो जागार तमु ऋच कामयन्ते"। जो अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रहता है, ऋच —मत्र सिद्धियाँ सफलताएँ—'तम कामयन्ते'—उसकी कामना करती हैं, उसे वरती हैं, उसकी बाट जोहती हैं, उसका मार्ग प्रशस्त करती है। समय किसी के साथ समझौता नही करता, न किसी का लिहाज ही करता है। श्री सीतारामजी ने इस सूक्ति को पढा भले ही न हो, पर इसका सार उन्होंने हृदयगम कर लिया है। अपने लक्ष्य के प्रति जागरूक रह कर ही उन्होने देश-भ्रमण किया है। महिला-शिक्षा के विषय मे भी उन्हे एक धुन थी। इसी सिलसिले मे वे शिक्षाविदो, आचार्यो से जा-जाकर मिले, कर्वे-दम्पति से मिलन का प्रसग उन्होंने अपनी पुस्तिका मे भी अकित किया है, जालन्धर मे लाला देवराजजी की सेवा मे भी प्रस्तुत हुए थे। वहाँ उन्होंने जीवन की ज्ञातव्य बातो के बारे मे उनसे पूछा। लालाजी बोले—"मुझसे मेरे बारे मे क्या पूछते हो? मेरी माँ के बारे मे पूछो, जिनकी चरण-सेवा करते हुए आशीर्वादो के साथ घर-घर जाकर मातृ-जाति का उद्धार करने की मुझे प्रेरणा मिली थी।" बस, इसी सूत्र के सहारे सेकसरियाजी ने घर-घर से कन्याओ की भिक्षा मागी। मारवाडी बालिका विद्यालय की स्थापना तो श्री घनश्यामदास बिडला द्वारा १९२० मे ही हो चुकी थी। पर उसमे पढने को कन्याए कहा मिलती थी? १९२७ मे सेकसरियाजी उल्लिखित विद्यालय के मत्री बने। दिन-रात धुन यही थी—"कन्याएँ आवे, शिक्षा प्राप्त करे। कुछ काम करने का, सेवा करने का अवसर मिले।" वे सब बाते पुरानी हो चुकी हैं। मारवाडी बालिका विद्यालय मे सालो से हायर सेकेण्डरी परीक्षाएँ दी जाती हैं, हिन्दी की विद्या विनोदिनी, सरस्वती, प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा आदि परीक्षाएँ भी सफलता के साथ दी जाती हैं। दक्षिण

श्री शिक्षायतन के एक आयोजन में स्व० जगन्नाथ बेरीवाल, श्री जयप्रकाश नारायण, श्री सीताराम सेकसरिया, श्री भँवरमल सिंघी और, श्री रामकुमार भुवालका

श्री शिक्षायतन कॉलेज की प्राध्यापिकाओं और छात्राओं को सम्बोधन करते हुए श्री सीतारामजी

सुविख्यात चित्रकार स्व० श्री यामिनी राय
अभिनन्दन करते हुए श्री सीतारामजी

श्री भँवरमल सिंघी के निवास-स्थान पर एक विशिष्ट समागम

सामने बैठे हैं—(१) कु० सुस्मिता सिंघी (२) श्री सीताराम सेकसरिया (३) श्री काका कालेलकर (४) कु० सुषमा सिंघी (५) स्व० मामा वरेरकर (६) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी और (७) श्री शम्भू मित्र

पीछे खडे हैं—(१) काका साहब की पोत्री (२) श्रीमती तृप्ति मित्रा (३) श्री भँवरमल सिंघी और (४) श्रीमती सुशीला सिंघी

कलकत्ता मे श्री शिक्षायतन अपने ढंग की अद्वितीय संस्था है। शिशु-वर्ग से ले कर बी० ए०, बी० एड० तक की पढाई होती है। कन्याएँ इतनी आती है कि स्थानाभाव से ली नही जा सकती। इस समय इसमे ३,००० लडकिया शिक्षा प्राप्त कर रही है। १५० वोर्डिंग हाउस मे रहती हैं। सुन्दर भवन है, देवताओ के काव्य-सा निर्मल, सुन्दर, स्वच्छ। सेकसरियाजी अपनी कृतियो से परम सन्तुष्ट हैं, धन्य-धन्य और कृत्य-कृत्य हैं। ईश्वर उन्हे चिरायु करे। वैसे अपनी निर्माण-प्रतिभा से वे अमर तो हैं ही —"कीर्त्तिर्यस्य स जीवति"।

"पश्य देवस्य काव्य न ममार न जीर्यति"—देवो का काव्य कभी मरता नही है, फिर जीर्ण होने की तो बात ही क्या है?

— o —

समाज-सेवी और साहित्य-प्रेमी

श्री नथमल केडिया

ज्योति-शिखा

सन् १९४७ की बात है। हम लोगों ने बड़ा बाजार कुमार सभा पुस्तकालय के अंतर्गत तुलसी जयंती मनायी थी। संयोगवश उसका निमंत्रण श्री सीतारामजी सेकसरिया तथा श्री भागीरथजी कानोडिया को नहीं जा सका। आयोजन के पहले दिन पुस्तकालय-भवन में बैठा हुआ जब मैं अगले दिन के आयोजन की तैयारियों में लगा था, तो देखता हूँ कि सेकसरियाजी तथा कानोडियाजी दोनों एकाएक वहाँ आ पहुँचे हैं। जब मैंने बताया कि आयोजन तो कल का है तो उन्होंने कहा कि—"हम लोग तो 'विश्वमित्र' में छपी सूचना के आधार पर दूसरे आयोजनों को छोड़ कर कुमार सभा के नाम पर यहाँ चले आये। तारीख देखने में गड़बड़ी हो गई, ऐसा लगता है।" मैं संकोच में गड़ा जा रहा था तथा मन-ही-मन उनकी महत्ता और अपनी असावधानी पर खीज रहा था। मैंने क्षमा-याचना करते हुए उन्हें दूसरे दिन आने का आग्रहपूर्ण आमंत्रण दिया। दूसरे दिन तुलसी-जयंती में सेकसरियाजी आये ही नहीं, उन्होंने तुलसी पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषण दिया। आज इतने दिनों के बाद भी उनके भाषण में कही गई बातें मुझे बखूबी याद हैं। उस दिन उन्होंने "अगद करिए बतकही सोई, काज हमार तासु हित होई" इस अर्धाली की जितनी विशद व्याख्या की, उसमें उनके सुदीर्घ चिंतन, विश्लेषण-क्षमता एवं तुलसी-साहित्य के अध्ययन का भली-भाँति परिचय मिलता था। यही नहीं, राम के चरित्र की यह विशेषता कि वे पत्नी का अपहरण करने वाले शत्रु का भी हित ही सोचते हैं, सेकसरियाजी को क्यों इतना रुचिकर लगा, इसके मूल में उनके अजातशत्रु व्यक्तित्व की झलक भी मिलती थी।

इस प्रथम भेंट में ही सेकसरियाजी ने अपने सौजन्य, सरलता और सौहार्द्य से मुझे जीत लिया। साथ ही, मारवाड़ी समाज के प्रति मेरे मन में बनी यह मिथ्या धारणा भी कि हमारे नेताओं में अध्ययनशीलता कम रहती है, चूर-चूर हो गई। पास बैठे हुए सज्जनों से उस दिन मुझे यह भी मालूम हुआ कि सेकसरियाजी पिछले ३५ वर्षों से नियमित मानस का पाठ करते हैं और उस पर गम्भीर मनन और चिंतन करते हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि उनके विश्लेषण में अध्यापकीय या पुस्तकीय ज्ञान कम रहता है, अनुभव और सहज बुद्धि का चमत्कार अधिक देखा जा सकता है।

उपर्युक्त घटना से एक बात और स्पष्ट हो जाती है। सेकसरियाजी के मन मे किसी भी नवोदित साहित्य-सेवी को आगे बढाने का इतना आग्रह रहता है कि उसके आयोजन मे केवल अखबारी सूचना के आधार पर पहुच जाने मे भी उन्हें कोई हिचक नही होती। उनकी इस प्रवृत्ति ने कितनो को सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र मे आगे बढाया है, कितनो को अपने जीवन-विकास का अवसर दिया है, इसे कौन नही जानता? यह तो उनके स्वभाव का अङ्ग बन गया है। और, वे बिना किसी दिखावे के सहज भाव से दूसरो के सुख-दुख मे हिस्सेदार बन जाते है। सार्वजनिक सेवा का उत्साह कही उपेक्षा या सघर्षों की चट्टानो से टकरा कर चूर-चूर न हो जाय, इसका उन्हे सदैव ध्यान रहता है। जो बात इधर उनकी डायरी पढ कर पद-पद पर मैंने अनुभव की, उसका सहज बोध मुझे उस दिन कुमार सभा वाली घटना मे ही हो गया था।

एक और घटना याद आती है। भाई भँवरमलजी सिंधी को जैन समाज का कुछ उद्दण्ड व्यक्तियो द्वारा शारीरिक चोट पहुँचाये जाने के विरोध मे टाटिया हाई स्कूल मे एक सभा हुई थी। सभापति-पद से दिये गये सेकसरियाजी के उक्त सभा के भाषण को कभी भुलाया नही जा सकता। उन्होने प्राय १।। घण्टे तक सार्वजनिक सेवा का महत्व, समाज-सुधार के आदोलनो का विस्तृत इतिहास तथा उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि बताते हुए जितनी मार्मिकता से इस प्रकार के कुकृत्य के विरोध मे अपनी दर्दभरी वाणी प्रकट की, वह सुननेवालो के मन पर स्थायी छाप छोडे बिना नही रह सकती। उस भाषण के बाद समाज मे इस प्रकार की घटनाओ की पुनरावृत्ति करने का साहस किसी को नही हो सका।

इसी प्रकार एक बार मारवाडी रिलीफ सोसाइटी की सभा मे एक प्रस्ताव पर गर्मागर्म बहस के बाद मत-विभाजन के परिणाम-स्वरूप जब हम लोगो के पक्ष मे १८ तथा विरोध मे १०-१२ मत आये तो सभापति पद से सेकसरियाजी ने प्रस्ताव को यह कह कर स्थगित करने का सुझाव दिया कि सेवा के महत्वपूर्ण मुद्दो पर सर्वसम्मति मे ही निर्णय लिया जाना चाहिये और सोसाइटी जैसी सेवा-सस्थाओ मे तो ऐसा मत-विभाजन भरसक नही ही होना चाहिये। लिखने की आवश्यकता नही कि सेकसरियाजी के सुझाव को सब ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और उस प्रस्ताव को स्थगित करते ही सारा तनाव और विरोध समाप्त हो गया। इस घटना से सार्वजनिक जीवन मे विरोधियो को साथ ले कर चलने की अद्भुत सीख सेकसरियाजी से हम लोगो को मिली थी जो महात्मा गाँधी के सान्निध्य मे उन्होने अपने अन्दर सहज रूप से विकसित कर ली है। विरोधी के हृदय में प्रवेश कर सकने की इसी क्षमता के कारण वे इतने सुदीर्घ काल तक सार्वजनिक जीवन मे अजातशत्रु बने रह सके है। इस गुण के ह्रास के कारण ही आज सार्वजनिक जीवन मे इतनी कटुता, इतना मनोमालिन्य दिखाई पडता है, सेवा-कार्यो का रस-स्रोत सूखने लगा है और लोग एकमात्र सत्ता की होड मे एक दूसरे को गिराने की प्रतिस्पर्द्धा मे लगे हुए है।

एक बार मैंने एक साहित्यिक कार्य की योजना बनाई और कुछ मित्रो से उसकी चर्चा की। अपने एक सफल व्यवसायी मित्र से उसकी चर्चा करने पर उन्होने

उस योजना की सफलता मे सन्देह प्रकट किया और मैंने उनकी बातो से सहमत हो कर उस बात को वही छोड दिया। करीब ७-८ महीनो बाद जब मैंने सेकसरियाजी से इसकी चर्चा की तो उन्होंने मुझे उलाहना देते हुए कहा कि—"आपने उक्त योजना के सबध मे मुझ से चर्चा क्यो नही की? इन सब कामो मे सफलता-विफलता कोई व्यापारिक तराजू से थोडे ही तौली जाती है। इस एक वाक्य ने आगे की मेरी साहित्यिक योजनाओ मे हर समय दिशा-निर्देश किया है। अनुभव से मैंने भलीभाति जान लिया है कि ऐसे कार्य विशुद्ध व्यावसायिक तुला पर कभी सौ फी सदी सही नही उतरते हैं। न पहले, न बाद मे।

अभी पिछले दिनो सेकसरियाजी गम्भीर रूप मे बीमार हो गये थे। एक बार जब मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने मुझे बताया कि बीमारी मे उनका मन अशात हो गया था और जब अपने मित्रो को बुला कर उन्होंने अपने मन मे छिपी योजना की पूर्ति के सबध मे पचास हजार का ट्रस्ट बनाने का सकल्प उनके सन्मुख व्यक्त कर दिया, तभी उनके मन को शाति मिल सकी।

सेकसरियाजी अत्यत भावनाशील प्रकृति के है। सेवा-कार्यों मे भावना ही मनुष्य को आगे बढा सकती है। सेकसरियाजी के हृदय मे उपेक्षित नारी-जाति के प्रति जो दर्द था, वही उन्हे स्त्री-शिक्षा के कार्यो मे खीच कर ले आया। आज मारवाडी परिवारो के लोग कल्पना भी नही कर सकते कि ४०-५० वर्ष पूर्व मारवाडी समाज मे स्त्रियो की कितनी पराधीन दशा थी। इस क्षेत्र मे सेकसरियाजी के महान् कार्यो को कभी भुलाया नही जा सकेगा।

सेकसरियाजी की अत्यधिक भाव-प्रवणता ने ही उन्हे साहित्य से जोडा है। उनका मन इतना निर्मल, निष्पक्ष, परिष्कृत और भाव-प्रवण है कि सत्साहित्य की उससे अच्छी कसौटी शायद ही कही मिल सके। बिना किसी सैद्धातिक आग्रह या तार्किक मतवाद के वे अच्छी-बुरी रचना की परख तुरत अपनी सहज बुद्धि और रुचि के आधार पर कर सकते हैं। उनके सन्मुख हीन साहित्य या अनुदात्त चरित्रो की चर्चा भी कठिनता से हो सकती है। देश की महानतम विभूतियों—श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा महात्माजी—का सान्निध्य उन्हे मिला है और अपने जीवन मे उनसे श्रेष्ठतम सस्कार उन्होने ग्रहण किये हैं। इसी प्रकार हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारो से उनका घनिष्ठतम सौहार्द्रय रहा है। साहित्यिक कार्यो मे तो उनकी अत्यत तीव्र रुचि थी ही, उनकी डायरी के प्रकाशन ने उन्हे साहित्य-निर्माण के इतिहास मे भी सुप्रतिष्ठित कर दिया है। हिन्दी के प्रथम डायरी-लेखक के रूप मे वे सदैव स्मरण किये जायेंगे।

मुझे पिछले २५ वर्षो से उनके सान्निध्य मे आने का सुअवसर मिलता रहा है। कोई व्यक्ति कब परिचय की सीमाओ को लाघते हुए, "श्री", "आदरणीय" और "श्रद्धेय" की सीढियो पर चढ कर हृदय के उच्चतम आसन पर आ बैठता है, यह कहना कठिन है। सेकसरियाजी के सबध मे मैं यह नही बता सकता। जब भी मैं उनसे मिला हूँ, एक प्रकार की उदात्त अनुभूति लेकर लौटा हूँ। उन्हें

निरतर देश और समाज की चिंता रहती है। नि स्वार्थ सेवा की किसी भी योजना के सदर्भ मे उनका उत्साह हम लोगो के लिये अनुकरणीय है।

श्रद्धेय सेकसरियाजी का वाह्य व्यक्तित्व भी उनके अतर्जगत के समान ही निर्मल, स्वच्छ, अमल, धवल है। गौर वर्ण, कोमल भाव-पूर्ण आँखे। शुभ्र खादी के परिधान मे जो भी उनका मुस्कराता हुआ स्नेहसिक्त मुखमडल देखता है, वह पहले ही परिचय मे उनकी आत्मीयता की परिधि मे आ जाता है। मै जब भी उन्हे देखता हूँ तो मुझे यही लगता है कि गाँधी-युग की एक ज्योति-शिखा आधी के झझावातो मे आज भी अकप भाव से जल रही है। तिल-तिल कर मोम की तरह गलते जाने पर भी उनके मुख पर जरा भी मलिनता नही है। और, जब स्नेह से ओतप्रोत अतरगता के साथ वे मुस्कराते हुए किसी की ओर देखते है तो उसे ऐसा ही अनुभव होता होगा, जैसे उस ज्योति-शिखा के स्वर्णिम आलोक से हृदय का निभृततम प्रदेश आलोकित हो उठा है। मुझे तो सदैव ऐसा ही अनुभव होता है।

—— ० ——
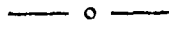
साहित्य-प्रेमी,
चिकित्सक

डॉ० भानुशकर मेहता

'हृदय हर्ष न विषाद कछु'

चिकित्सक की जीवन मे नाना प्रकार के लोगो से मुलाकात होती है और वह भी ऐसी परिस्थिति मे जब सामाजिकता के मुखौटे पीडा के प्रहार से उतरे हुए होते है। रोगी दो प्रकार के होते हैं—एक तो वे जो निरतर अपनी दुख-व्यथा की गाथा कहते नही अघाते, जिनके पास शिकायतो का ऐसा टोकरा होता है, जो कभी शेष ही नही होता, दूसरे शात, धीर, गम्भीर रोगी होते हैं जो बहुत आग्रह करने पर बडी कृपणता से अपनी पीडा की बात बताते है, अधिकतर समय वे पर-हित की, दूसरो के कष्टो, कठिनाइयो और असुविधाओ की ही चिन्ता करते रहते हैं। स्पष्ट है कि इस दूसरे प्रकार के रोगी विरल होते है और यदाकदा ही उनके दर्शन का सौभाग्य मिलता है।

आदरणीय सीतारामजी सेकसरिया से मेरी पहली मुलाकात ऐसी ही है। कुछ वर्षो पूर्व जब वे अस्थि-भग से पीडित हो अपने घर पर शय्याबद्ध थे, मुझे ठलुआ क्लब के सदस्य के नाते उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। पेशे से चिकित्सक हूँ, अत सहज ही अपेक्षा करता था कि वे अपनी रोग-पीडा की चर्चा करेगे। परन्तु वहाँ तो अधिकाश समय औरो का सुख-दुख जानने मे ही बीत गया। उस कष्ट की स्थिति मे भी उनकी यही चिंता थी कि हमारा ठीक से सत्कार हुआ या नही। उस दिन काफी देर तक बात हुई और विषय था—कैसे लेखको की सहायता की जाय, कैसे उत्तम रचनाओ का प्रकाशन हो। ऐसे ही महान् पुरुषो का दर्शन कर के जीवन मे धन्यता का अनुभव होता है।

मुझे याद आता है, पहली बार हम ठलुआ क्लब के स्थापना-उत्सव मे कलकत्ता गये थे। वही सीतारामजी के दर्शन हुए। अपूर्व सयोग कि ठलुआ क्लब के दो गणपति और दोनो ही सीताराम। उस अपूर्व उत्सव के समय अपने प्रथम गणपति स्व० बेढब बनारसी की याद बेतरह सता रही थी। परन्तु जब सेकसरियाजी के दर्शन हुए तो लगा जैसे मास्टर साहब पुन मिल गये। वैसा ही गौर वर्ण, सौम्य रूप, दूसरो की बात धैर्यपूर्वक सुनने की प्रणम्य क्षमता, सहायता की उदार तत्परता, विनम्र वाणी, शाति-प्रदायक सहज स्वभाव।

पुन निकट से उनका दर्शन हुआ काशी मे महादेवीजी के अभिनन्दन-समारोह मे। उनका अपनत्व भरा, स्नेहपगा वह अपूर्व स्वागत-भापण ही सभवत उस समारोह की अनूठी सफलता का मूल कारण था। उस अवसर पर सेकसरियाजी को निकट से जानने का, उनके सत्स्वभाव, विश्व-वधुत्व, और गहरी सूझ-बूझ का परिचय मिला। अग्रेजी मे 'जेन्टलमैन' की परिभापा पर एक लेख पढा था, आज उससे मुलाकात भी हो गयी।

फिर हमने उनका अभिनन्दन किया। सयोग देखिये कि कैसा विचित्र अवसर था। उसी दिन भारत-पाक युद्ध छिड गया था, वाहर ब्लैक आउट था निविड अन्धकार। कुछ लोग चिन्तित थे—क्या समारोह स्थगित कर दिया जाय ! पर सयोजक, समारोह के विद्वान् अध्यक्ष न्यायमूर्ति रमा प्रसाद मुखर्जी और सेकसरियाजी सहज सामान्य थे। एक कर्त्तव्य है, एक कार्य है। उसे अविचलित भाव से पूरा करना है। मैंने देखा कि सेकसरियाजी के मन की स्थिति थी,—'हृदय हर्प, न विपाद कछु '। वाहर अधकार था, अन्दर सभा-कक्ष मे स्नेह-दीपो का स्निग्ध प्रकाश था, वाहर युद्ध का आतक था, अदर प्रेम का साम्राज्य। समारोह हुआ—शानदार हुआ और उसकी गम्भीर दृढता भारतीय विजय की पूर्व सूचना थी। ऐसे महान् पुरुप का, विपत्तियो मे अडिग रहने वाले कर्मठ कार्यकर्त्ता का अभिनन्दन ऐसे ही वातावरण मे हो सकता था।

जितनी वार भी सेकसरियाजी से भेट हुई, वार्ता हुई, हर वार पारस-स्पर्श का अनुभव हुआ, सदा ही कुछ पाया—ज्ञान, उत्साह, निर्मलता, दृष्टि और प्रेरणा।

आज उनके अभिनन्दन के अवसर पर इस अकिंचन का शत-शत वार नमन, अभिनन्दन, अभिवदन। अविमुक्तेश्वर से यही प्रार्थना है कि यह विभूति और वर्पों तक हमारे बीच वर्तमान रह कर हमे पावन करती रहे। प्रणाम।

—— ० ——

स्वतंत्रता-सग्रामी, क्रातिकारी समाज-सुधारक,
विचारक, लेखक और वक्ता,
शिक्षाविद और कला-प्रेमी,
जनसख्या और परिवार-नियोजन के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान् कर्मी,
अखिल भारतवर्षीय मारवाडी सम्मेलन के अध्यक्ष

श्री भँवरमल सिघी

नाम-रूप-गुण !

एक नाम, जो मैंने छात्रावस्था मे समाज-सुधार की
दिशा मे चरण धरते ही सुना,
एक रूप, जो मैंने कलकत्ता-वास का प्रारम्भ करते ही देखा—सत्य, शिव, सुन्दर !
एक प्रेरणा, जो मैंने सामाजिक-राजनीतिक आदोलन
मे प्रवेश करते ही अनुभव की,
एक निष्ठा, जो मैंने आदर्श के प्रति सदा जागृत-जीवित देखी,
एक भावना, जो मैंने उनके साथ हर सस्पर्श मे पाई,
एक सवेदना, जो मैंने सरलता की प्राजल भाव-भूमि
मे चिर–मुखरित देखी,
एक व्रत, जो मैंने वन्दी-जीवन के सह-समय मे मुक्ति–छदो मे देखा,
एक परिवर्तन, जो अपनी अविराम गति से मुझे प्रभावित करता रहा,
एक सघर्ष, जो मैंने अन्तर्वेदना के पुण्य-बल मे जीवन के
दिगतो पर धावमान देखा,
एक साधना, जो मैंने मातृभूमि, मातृभाषा, मातृजाति के मदिर
की वेदि पर सतत सजग देखी,
एक सस्था, जिसकी सदस्यता पाकर मैं गौरवान्वित हुआ,
एक हस्ताक्षर, जो मैंने समाज-सुधार के इतिहास पर अमिट देखा,
एक यात्रा, जो आठ दशाब्द पूरे कर शताब्दी की ओर
उन्मुख है—चरैवेति, चरैवेति !
एक कामना—'न त्वह कामये राज्य, न स्वर्ग,
कामये दुख-तप्ताना प्राणीनामार्तिनाशनम्',
एक लक्ष्य—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' !

—— o ——

समाज-शास्त्री,
वनस्थली विद्यापीठ के प्राचार्य

श्री प्रेमनारायण माथुर

प्रेरणादायक !

मेरा और श्री सीतारामजी का सपर्क बहुत पुराना है। हम मे व्यक्तिगत स्नेह का सम्बन्ध रहा है। मै उनको सदा ही एक भावना-प्रधान और स्नेह-पूर्ण व्यक्ति के नाते देखता आया हूँ। उनके विचार कई मामलो मे मुझे सर्वथा आधुनिक लगते है। आधुनिकता का क्रम एक ऐतिहासिक क्रम है और उसको लागू करने के लिए ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और परिस्थितियो का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यह ठीक है कि ऐतिहासिक पुरुष इस ऐतिहासिक प्रक्रिया और परिस्थिति को दूर तक देख सकता है। इसलिए मै इस निष्कर्ष पर पहुचा हूँ कि आधुनिकता को परिभाषित करना और उसके बारे मे किसी विशेष बात को ले कर पक्ष-विपक्ष लेना एक विशेप प्रकार की दृष्टि चाहता हे । श्री सीतारामजी के सम्बन्ध मे जो बात मुझे विशेषत अच्छी लगती है, वह यह हे कि पुरानी-से-पुरानी मान्यता को वे तर्क के आधार पर ही नही तौलते है। सच भी है कि विशुद्ध तर्क के आधार पर ही कोई निर्णय सही या गलत नही ठहराया जा सकता। मानव-तर्क अपने-आप मे सर्वथा वस्तुगत प्रक्रिया नही होती। जब-जब सीतारामजी से मिलना हुआ—और सामान्यत वनस्थली मे ही अधिकतर मिलना हुआ—तब-तब उनके स्नेहमय व्यक्तित्व का, सार्वजनिक प्रश्नो मे उनकी अभिरुचि का और देश की वर्तमान स्थिति से होनेवाली उनकी पीडा का मैने स्पष्ट अनुभव किया है। उनके व्यक्तित्व की ये बाते सदा ही मेरे मन मे ताजा रहती हैं।

श्री सीतारामजी अत्यन्त सहृदय और सेवा-भावी व्यक्ति है, जो देश के विभिन्न प्रश्नो के प्रति सदा जागरूक रहते है, जागरूक ही नही, चिन्तित और व्यग्र भी रहते है। अपने विचारो मे वे सर्वथा स्वतत्र और प्रगतिशील है। कई वार उनसे चर्चा करने पर यह अनुभव हुआ कि विभिन्न प्रश्नो पर उनके विचार वडे निर्भीक है। स्वतत्रता के वाद देश मे तेजी के साथ ऐसे निष्ठावान लोगो की कमी होती जा रही है।

उनका भावुक मन, मधुर स्वभाव, मित्र-भाव, स्नेह और उदारता अनुकरणीय है। वे सच्चे अर्थ मे साहित्य-प्रेमी हैं। उनका जीवन एक सच्चे सार्वजनिक कार्यकर्ता का जीवन है। उनका व्यक्तित्व सचमुच वहुत प्रेरणादायक है।

—— ० ——

साहित्य और कला के अनन्य प्रेमी,
समाज-सेवी

श्री दामोदरदास खन्ना

स्वनामधन्य !

प्राय पचास वर्ष से मैं भाई सीतारामजी की गुण-गरिमा से परिचित हूँ। अंग्रेजी शासनकाल मे जब मारवाडी समाज के बडे-बडे धनिक लोग विलायती वस्त्र धारण कर विदेशी प्रभुओ की खुशामद मे अपने को धन्य समझते थे और स्वाधीनता के आन्दोलन से अपने को सावधानी पूर्वक पृथक रखते थे, उस समय सेकसरियाजी ने देश-सेवा का कठोर व्रत धारण किया था। भारत माता की पराधीनता की बेडी को काटने के लिये तथा स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए निर्भीक सेनानी के रूप मे वे प्रसन्न-चित्त से दृढ सकल्प ले कर स्वाधीनता-सग्राम मे अवतरित हुए। उस समय अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कार्य करना व्यवसायी समाज मे तो एक आश्चर्य की ही बात थी। ऐसे समय मे स्वदेशी आन्दोलन मे योगदान देकर उन्होने कठोर तथा अनुकरणीय सेवाव्रत धारण किया।

भाई सीतारामजी के जीवन की सब से बडी विशेपता यह है कि उन्होंने अपने जीवन मे भगवान् कृष्ण की उक्ति "कर्मण्येवा धिकारस्तेऽमा फलेपु कदाचन्" के अनुसार जीवन-व्यापी कठोर साधना का पालन निष्काम भाव से किया है। गाधीजी ने खादी-प्रचार, हरिजनोद्धार तथा नारी-जागरण को बहुत ऊँचा स्थान दिया। सेकसरियाजी ने खादी-प्रचार तथा नारी-जागरण के लिये अपना जीवन लगा दिया। नारी-जागरण के क्षेत्र मे आपका अवदान सदैव श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता रहेगा। दूसरी ओर मानवता के सौंदर्य, शील तथा सौजन्य के वे एकनिष्ठ प्रतीक ही है। उनसे मिलनेवाले सज्जन उनकी हास्यमयी एव आनन्दमयी मुखाकृति को देखते ही उनके सद्व्यवहारो के द्वारा मन्त्र-मुग्ध हो जाते हैं।

देश-सेवा के महान् कार्य मे योगदान देने के फलस्वरूप तथा अंग्रेजी शासन के विरुद्ध खडे होकर आन्दोलन मे भाग लेने के कारण समय-समय पर उनको बडी-बडी कठिनाइयो का सामना भी करना पडा। विपत्ति, सकट या प्रतिरोध के क्षणो मे उन्होने साहस का कभी भी परित्याग नही किया, और इसी के लिए स्वनाम-धन्यता प्राप्त कर देश-वासियो के हृदय मे स्थान अर्जन कर लिया है। भारत सरकार ने उनको 'पद्मभूषण' की उपाधि प्रदान कर अपने कर्त्तव्य का ही किंचिन् पालन

किया है। परन्तु मेरी समझ मे 'पद्मभूषण' की उपाधि से भाई सीतारामजी सेकसरिया का स्थान अधिक ऊँचा है।

सेकसरियाजी के द्वारा स्थापित तथा निर्मित कई सस्थाएँ उनके यश का विस्तार कर रही हैं। उनसे प्रेरणा पा कर असख्य नर-नारियो ने अपने जीवन-सग्राम मे जय-लाभ किया है। नेताओ तथा साहित्यकारो की कठिनाइयो को दूर करने मे सेकसरियाजी सदैव तत्पर रहते आये हैं। मैं भगवान् से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हे दीर्घ जीवन और सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करे, जिससे समाज और देश का अधिकाधिक कल्याण हो।

—— ० ——

स्वतत्रता-सेनानी,
राष्ट्र-कर्मी एव समाज-सेविका,
शिक्षाविद

श्रीमती शन्नो देवी

कलकत्ता के लाला देवराजजी

सम्पदे यस्य न हर्षो, विपदि विषादो, रणे च धीरत्व,
तम् भुवन त्रय तिलकु, जनयति जननि सुतम् विरलम् ।।

श्रद्धेय भाई सीतारामजी सेकसरिया देश के उन महान् सपूतो मे से है जिन्होंने भारतमाता की गुलामी की वेडियो को काटने के लिए सर्वतोमुखी क्राति का विगुल वजाया। मारवाडी समाज मे धनीमानी पुरुषो की तो कमी नही, पर समाज-सुधारक के रूप मे स्वनामधन्य पूज्य परमादरणीय भाई जमनालालजी वजाज के वाद उन्ही का नाम इतिहासकार लिखेगे। प्रभु-भक्ति मे विश्वास रखने वाले भाईजी का दैनिक क्रम प्रार्थना तथा रामायण के स्वाध्याय से आरम्भ होता है। कभी-कभी उनसे रामायण सुनने का अवसर मुझे भी मिला है।

हर रोज के उनके मिलने वालो मे सभी वर्गो और मजहवो के लोग होते हैं। उनका समान व्यवहार अनूठा ही है। उन्होने उच्चकोटि की कई पुस्तके लिखी है लेखिकाओ को सेकसरिया पुरस्कार देने की योजना उन्ही की है। मातृ-शक्ति मे उनकी अपार श्रद्धा है। स्त्री-शिक्षा के प्रेमियो मे मैं हमेशा उन्हे कलकत्ता के लाला देवराजजी कहा करती हूँ जिन्होंने जालधर मे कन्या महाविद्यालय जैसी महान् सस्था वनाई। भाईजी के द्वारा स्थापित मारवाडी वालिका विद्यालय तथा श्री शिक्षायतन उनके कठोर परिश्रम तथा अटूट श्रद्धा का परिणाम है।

स्वतत्रता-सग्राम के सेनानियो मे हर कुर्वानी के लिहाज से तथा जेल-यात्री के नाते अग्रणी रहते हुए भी एसेम्वली या पार्लियामेन्ट मे जाने का उन्होने कभी विचार तक नही किया। निष्काम सेवा-व्रती भाईजी चाहते तो कम-से-कम वगाल मे तो मत्री पद तक पहुँच सकते थे। वे 'किंग' कभी नही वने, 'किंग मेकर' रहे। यह भी उनकी सात्विक प्रवृत्ति का प्रमाण है।

मैं तो व्यक्तिगत तौर पर भी उनकी कृतज्ञ हूँ। मुझे उन्होने हर काम मे सहायता ही नही दी, अपितु वहन की तरह सन्मान और सत्कार दिया। पूज्य भाईजी को मैं अपनी मगल कामनाए भेजती हूँ।

गाँधीवादी-सर्वोदयी विचारधारा
के वरिष्ठ कार्यकर्त्ता

श्री राधाकृष्ण बजाज

सेवामय व्यक्तित्व

पूज्य सीतारामजी का नाम लेते ही एक प्रेमल, स्नेहमयी, सरल, सहृदय मूर्त्ति अनायास ही दिल और दिमाग के सामने उपस्थित हो जाती है।

सीतारामजी का सारा जीवन सेवामय बना रहा और आज उम्र और स्वास्थ्य का साथ न मिलते हुए भी वे सेवा-कार्यो मे उसी तरह से लगे हुए हैं, जैसे आज से ३०-४० वर्ष पहले लगे हुए थे। मजे की बात यह है कि वे सेवा कर रहे है, इसका उन्हे भान तक नही है। तब अभिमान की तो सभावना ही नही रह जाती। सेवा करने का गरूर न आया हो, ऐसे विरले ही व्यक्ति मिलेगे। उन विरले व्यक्तियो की सूची मे सीतारामजी का नाम बहुत ऊँचे स्तर पर पाया जायगा। जिन्होने सेवा की, वे अब बदले मे मेवा भी चाहने लगे हैं। कुछ ओहदा, कुछ अधिकार पाने की आकाक्षा चारो तरफ ही हो गई है। पर सीतारामजी को तो लगा ही नही कि उन्होने सेवा की है। तब बदले मे कुछ अपेक्षा रखने का खयाल उनके सामने उठता ही कैसे?

एक बात और बडे महत्व की लगती है। इतने वर्षों से लगातार सेवा करने के बावजूद भी उनके स्वभाव की मिठास मे जरा भी कमी नही हुई है। उसी तरह मृदु मुस्कान से हर किसी आनेवाले का स्वागत करना एव जहाँ तक बने, उसकी सहायता करने की कोशिश करते रहना, यह उनका रोज का कार्यक्रम है।

कलकत्ता का श्री शिक्षायतन तो मानो उनका जीता-जागता स्मारक ही बन गया है। उसमे से हजारो कन्याये अच्छी शिक्षा पा कर निकल रही है। सीतारामजी का खास खयाल रहता है कि लडकियो को राष्ट्रीयता की सही तालीम मिले ताकि उनके विचार प्रगतिशील बनें, और वे अपने परिवार, समाज तथा देश की सेवा कर सकें। सीतारामजी इन लडकियो को ही नही, पर उनके परिवार वालो को भी व्यक्तिगत रूप से जानते है, उनकी किसी भी दिक्कत को हल करने मे पूरी दिल-चस्पी रखते हैं।

पू० काकाजी (स्व० जमनालालजी बजाज) एव मा से उनका बिलकुल घर का सम्बन्ध रहा है। पू० गाँधीजी के हर रचनात्मक कार्य मे काकाजी की भाँति ही वे

भी बराबर हिस्सा लेते रहे है। हमारे लिए तो कलकत्ता का अर्थ ही है सीतारामजी। वहाँ जा कर उनसे न मिलें, यह हो ही नही सकता। उनका वात्सल्य-प्रेम इतना दृढ और गहरा है कि उनके पास जा कर मन गद्‌गद् हो जाता है। बापूजी और काकाजी के बाद अब उन्ही के पास जा कर मन को सही मानो मे सुख, समाधान और शाति मिलती है। चारो तरफ नज़र दौडाने पर भी मेरी तो और किसी पर भी नज़र नही ठहरती कि जिसके पास जा कर इतना निर्लिप्त प्रेम सहज ही प्राप्त होता है। ऐसे सेवामय इस व्यक्तित्व को मेरे अनेक प्रणाम।

—— ० ——

पश्चिम बंगीय महिला-संस्था-संघ की उप-समानेत्री,
मारवाडी बालिका विद्यालय की मत्रिणी,
पश्चिम बंगाल की प्रथम महिला जे० पी०

श्रीमती सुशीला सिघी

मंत्रीजी से ताऊजी !

३७-३८ वर्ष पहले की बात है। मै मारवाडी बालिका विद्यालय मे पढती थी। उन दिनो लडकियो को काफी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था, लडको की तरह उनको भी कही ले जाना या घुमाना-फिराना माता-पिता तक को भी फिजूलखर्ची ही लगता था। एक दिन हमे स्कूल से चिडियाखाना ले जाया गया, जहाँ हम केवल लडकियाँ ही महत्वपूर्ण थी। वहा स्कूल के मत्रीजी के साथ जलेबी-कचौडी खाने का और उनके हाथो का सहारा पा हाथी की सवारी का आनन्द भुलाये नही भूलता। मत्रीजी के उस सौम्य चेहरे की याद आज भी वैसी ही बनी हुई है। वह बात जीवन मे, कितनी बडी प्रेरणा दे गई थी यह उस दिन तो नही समझ पायी थी पर आज खूब समझ मे आता है।

उन्ही दिनो से मत्रीजी मेरे शिशु-मन मे "हीरो" बन गये थे और उनके सान्निध्य के लिये मन मे सदा एक ललक-सी रहती थी। कभी-कभी मत्रीजी स्कूल मे रामायण पढाने आते थे। किष्किन्धा काण्ड के वे दोहे, जो मत्रीजी ने पढाये थे, आज भी याद है। लगता था, रामायण के धीर-वीर राम सब हमारे मत्रीजी ही है।

पता नही, यह लेख—यदि इसे लेख कहूँ—क्यो सिलसिलेवार उन सारे चित्रो की तसवीर बन रहा है, जो उस समय आँखो के सामने मे गुजरे थे, या कि जिनमे होकर मै गुजरी थी।

श्रीमती कमला नेहरू की मृत्यु पर विद्यालय मे शोक-सभा आयोजित हुई। मत्रीजी अग्रेजो के विरुद्ध आक्रोशपूर्ण शब्दो मे एक घटे तक कितना कुछ कह गये! और, अत मे जवाहरलाल नेहरू और इदिरा के वियोग-कष्ट की बात कहते-कहते रो पडे। पूरा कमरा आसुओ से नम हो उठा। अन्य लडकियो की बात तो मालूम नही, पर मेरे मन मे एक अकुर उठा—"देश, समाज, स्वाधीनता आदि के लिये कुछ करूगी ही प्राणपण से।" दृढता और अचलता, जिसे लोगो ने जिद्द का नाम दिया, जग पडी। अन्याय, झूठ, ढोग आदि के खिलाफ एक विद्रोह उसी वक्त जड पकड गया। शासन और समाज की बात तो समझती नही थी, समझ मे एक ही बात आई—सत्य के

लिये लडना और लडते जाना। इस प्रकार शिशु-मन की नरम मिट्टी पर जीवन के चित्र लिखे जा रहे थे। अपने आराध्य मन्त्रीजी जैसा बनने की कल्पना बढती गई।

एक और चित्र याद आता है। शायद १६३६ की बात है। एलगिन रोड मे महात्मा गाधी आये थे। स्कूल की बालिकायें वापू को हरिजनोत्थान और अन्य कामो के लिए एक थैली देगी, यह तय हुआ। चन्दा इकट्ठा किया गया—शायद रु० ५०१)। उन दिनो रु० ५०१) का बडा मूल्य था। बार-बार कहने और मागने पर भी मुझे घर से एक रुपया भी नही मिला। सरकारी अफसर की बेटी या मातृहीन बालिका होना, मालूम नही, कारण क्या था? सभी बालिकाओ के साथ वापू को देखने मै भी गई। क्लास मे पढने मे तेज थी। शायद सब मे छोटी और सुन्दर भी थी। जो भी कारण रहा हो, जो पाच-सात लडकियाँ वापू के पास जाकर थैली देने के लिये चुनी गई, उनमे मै भी थी। वापू के हाथो में थैली देते हुए मै जीवन धन्य मान रही थी, आनन्द-विभोर हो रही थी। अचानक वापू ने मुझ से ही प्रश्न पूछ लिया—"तुमने इसमे क्या दिया है?" आकाश से गिर कर जिस तरह चकनाचूर हो जाते है, ठीक उसी तरह का एक बडा धक्का मुझे लगा और मेरी आँखे डबडबा आई। मैने कहा—"कुछ नही।" वापू ने कहा—"फिर दूसरो का रुपया देते वक्त तुम्हे इतनी खुशी क्यो? तुम खुद क्यो नही दे पाई?" जीवन मे पहली बार और शायद अतिम बार ही मैने कहा—"पिता सरकारी अफसर है और मा सौतेली है।" यह कहते-कहते ही ध्यान मे आया कि कुछ तो दे ही सकती हूँ। कान मे जो मोती की बालियाँ पहने थी, उन्ही मे से एक खोल कर वापू के हाथ पर रख दी। वापू ने पूछा—"अपने पिता से क्या कहोगी?" मैने झट कह दिया—"कहूँगी—खो गई, इसीलिये तो एक बाली दी है।" वापू मेरे साहस पर अवाक् रह गये। सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"तुम तो बडी साहसी लडकी हो। झूठ बोलोगी? और, मुझ से कहती भी हो कि मै झूठ बोलूगी। ईश्वर करे, तुम्हारा साहस अडिग रहे पर क्या तुम सच नही बोल सकोगी?" मै कुछ बोल न पाई। वापू का हाथ सिर पर पा गद्गद् हो गई थी। घर आकर झूठ नही बोल पाई। हा, जितनी डर रही थी, उतनी मार भी नही पडी। इस घटना के दौरान मुझे जो प्रेरणा मिली, जो साहस आया, उसी के सहारे आज जहाँ हूँ, वहा तक पहुँची हूँ। तदनन्तर मन्त्रीजी को जब कभी किसी भी उत्सव और मीटिंग मे देखती तो लगता—कितना दर्द है इनके मन मे? कितने महान् है ये? बस, इतना ही परिचय रह गया था उनसे।

फिर घटना-क्रम ने उनसे मिलाया सात-आठ साल बाद। वे सात-आठ वर्ष मेरे जीवन के उथल-पुथल के दिन थे। परम्परानुसार १३ वर्ष की उम्र मे विवाह हो गया। एक वर्ष के अन्दर ही विधवा कहलाई जाने लगी। पढाई विवाह के कारण छूट गई थी। आदर्शों और भावनाओ को दबाये मै समाज से लड रही थी। नाना सघर्षों मे जूझते और अत्याचार सहते फिर से पढना शुरू किया। मैट्रिक पास किया और कालेज मे भी नाम लिखाया। कालेज मे हिन्दी समिति की स्थापना हुई। समिति के पदाधिकारियो का चुनाव हुआ। मुझे शायद कोषाध्यक्ष बनाया

गया था। समिति के एक उत्सव का आयोजन करने का निश्चय होते ही सभापति के रूप मे अपने आराध्य मन्त्रीजी यानी सीतारामजी का ही नाम सामने आया। उत्सव मनाया गया, मन्त्रीजी आये, उनकी दृष्टि मुझ पर पडी। एक हल्की-सी पहचानी-पहचानी शक्ल मन्त्रीजी को याद आ गई। उन्होने मुझ से बात शुरू की और मै खुल पडी। बडी हो गई थी, साहस भी कुछ आ गया था, पर टूटी हुई थी। अपने उस बाल-वैधव्य की मूर्ति और अवस्था को कैसे छिपा पाती? नारी के प्रति ममता-भरा मन मन्त्रीजी को व्यथित कर गया। व्यथाभरी मेरी एक झलक उन पर अकित हो गई।

१९४४ मे ही पिताजी के एक मित्र श्री छोटेलालजी जैन ने कलकत्ता मे जैन समाज के एक बडे उत्सव की योजना की थी—वीर-शासन-जयन्ती महोत्सव। एक ही मकान मे हम लोग रहते थे। वे पिताजी के परम मित्र थे, बाल्यकाल से ही मै उनके हाथो पली थी। अत एक सहायक के रूप मे मैने उस आयोजन का काफी भार सभाला था। एक कार्यक्रम किया था, जिसमे विभिन्न जातियो और धर्मों वाली लडकिया महावीर की स्तुति का गान कर रही थी। एक महिला सम्मेलन भी आयोजित किया गया था। मन्त्रीजी उसमे आये थे और बडे प्यार से मेरी आयोजन-शक्ति और प्रतिभा को उन्होने अपने भाषण मे सराहा था। मुझे लगा था—मै धन्य हो गई। और, फिर दूने उत्साह से काम करने की इच्छा जग गई। छोटेलालजी ताऊजी ने ही मुझसे कहा—"अरे, ये तो मुझ से भी बडे है। इन्हे मन्त्रीजी, मन्त्रीजी क्यो कहती हो? ताऊजी कहो।" बस, फिर वे ताऊजी ही बन गये। मन्त्रीजी दूर थे, मै उन्हे पूजती थी, ताऊजी मेरे थे, जो मुझे जानते थे, प्यार करने लगे थे। और ताऊजी को फिर तो बेटी की चिन्ता होनी ही थी। उन्होने अपने सुधार-क्रम मे एक कडी और जोडी और अपने मित्र सिघीजी, जो उस वक्त तक जेल मे ही थे, को लिखा—"एक लडकी देखी है, जो आपके अनुरूप ही है। लगता है वह आपके निमित्त ही निर्मित हुई है।" और, वह लडकी जिस दिन श्रीमती सिघी बनी, ताऊजी के प्रति उसकी कृतज्ञता और आभार आँखो मे छलछला आया। शब्द नही है मेरे पास उसे आज ठीक तरह से व्यक्त करने के लिए। शब्दो मे वह भाव व्यक्त हो भी कैसे सकता है?

फिर तो ताऊजी की बेटी सिर चढ गई। पर्दा, दहेज और अन्य सामाजिक कुरीतियो के लिये आन्दोलनो मे ताऊजी की अनुगामिनी होने के साथ-साथ मै उनसे झगडा भी करने लगी। अपनापन मिलने पर कभी-कभी मै ज्यादा लाड मे आ ही जाती हूँ। ताऊजी कभी आनन्द से, कभी परेशान होकर मुझे देखते रहते हैं। उन्हे लगता है कि एक छोटी-सी निरीह लडकी कैसी बन गई है? कितना दुस्साहस आ गया है उसमे? पर उन्हे शायद ही मालूम है कि यह लाडली बेटी कितनी गर्वित है उन पर—अपने मन के अकेले कोने मे। अब तो स्थिति यह है कि जरा-सा प्यार कम व्यक्त करे तो बडी व्यथित हो जाती हूँ, गुस्सा आ जाता है।

आज मै उसी मारवाडी बालिका विद्यालय की मन्त्रिणी हूँ। और, भी न जाने क्या-क्या हूँ। पर आज भी सब से पहले उन मन्त्रीजी की आराधिका हूँ जिनकी देश-सेवा

ग्रौर समाज-सुधार की ग्रनगिनत घटनाये न जाने मुझ जैसी कितनी लडकियो को प्रभावित कर गई है। मैं जैसी भी ग्राज हूँ, ताऊजी की लाडली बेटी हूँ।

यही कहूगी कि ताऊजी का यह प्यार मेरे जीवन का ग्रन्यतम पाथेय है जिसने मुझे जीवन-दिशा दी ग्रौर यह जिद्द सिखाई कि मैं ग्रड जाऊँ सत्य के लिये। एक वार फिर ग्रपने प्रेरणा-श्रोत उन मन्त्रीजी को प्रणाम, जो ताऊजी बन कर ग्राज भी प्रेरणा ग्रौर प्रोत्साहन का प्रवाह मेरी ग्रोर, सब की ग्रोर बहाये जा रहे है।

— o —

समाज-सेविका और लेखिका

श्रीमती कुंथा जैन

वट-वृक्ष की भांति वरद

कलकत्ता नगर मे नया होना अन्य नगरो के नयेपन से कई गुना अधिक है। दिल्ली और उत्तर प्रदेश की खुश्क पर खुशगवार आबोहवा, खडी पर, सुथरे अदाज की जबान और चुस्त जिन्दादिली से नितान्त भिन्न है बगाल की नम, नरम और नशीली मिट्टी की सोधी तहक! मीठे-मीठे दहकते अगारो के आतप मे तपे चमकदार कुन्दन की सी कोमल भाषा! लय-सिक्त जीवन के स्वरो की झकार मे झझा का आभास! जब हमारे लिये कलकत्ता मे रहने की बात आई तो "बगाल का जादू सर पर चढ कर न बोलने लगे" यह भय था पर आकर्षण भी था।

हम सन् १६५५ मे वहाँ पहुँचे। अप्रैल था। छोटी शीना ८ महीने की थी। सब मे बडी इन्दु की शादी हुई थी उसी वर्ष। वह दिल्ली थी। रवीन्द्र और अशोक अपनी एम ए और एम०एस-सी० की पढाई लखनऊ विश्वविद्यालय मे कर रहे थे। बीच वाली बिटिया चम्पक को स्कूल की छठी क्लास मे प्रवेश लेना था। अब तक वह अग्रेजी माध्यम के स्कूल मे ही पढती आई थी और कलकत्ता मे भी उसके लिये वैसा ही स्कूल तलाश करना था। उन नई बोध—सवेदनाओ मे वैसा ही स्कूल खोजना एक समस्या सी लग रही थी। एक दिन, जैसे समस्या का हल कराने और नयी नगरी को आत्मीय बनाने के ही हेतु, हमारे घर पधारे श्री सीतारामजी सेकसरिया। परिचय उनसे था या नही, यह प्रश्न न तब मन मे आया, न अब आता है। सेकसरियाजी सब के परिचित है और सब उनके हैं, ऐसा भाव सदा उनके मुख पर रहता है। अपरिचय को व्यक्त करती रेखाए और अनात्मीयता का नेत्रो मे झाकता भाव, जो महत्वपूर्ण व्यक्तियो के चेहरो पर बहुधा देखने मे आता है, आज तक सेकसरियाजी मे क्षण भर को भी उभरा नही देखा। ऐसे चिर-आत्मीय ने जब उसी प्रेम भरे अधिकार से चम्पक को श्री शिक्षायतन स्कूल मे भेजने को कहा, जहाँ शिक्षा का माध्यम हिन्दी है, तो मुझे लगा कि मेरे बधे-लगे विचारों के प्रस्तर मे स्पन्दन हुआ। एक ऐसा व्यक्तित्व समक्ष था, जिसकी बात मै बिना किसी हील-हुज्जत के मान गई। उस दिन के बाद से कलकत्ता मे गुजरी १५-१६ वर्षो की अवधि मे और उसके बाद आज तक भी सेकसरियाजी का व्यक्तित्व एक शीतल वरद तरु की भाति हमारे जीवन पर छाया किये रहा है।

सेकसरियाजी को देखने से लगता है कि उन पर भारत के इस युग की दो महान् विभूतियो का समन्वित प्रतिविम्व पडा है। गाधीजी और जवाहरलाल की झलक उनके चेहरे पर, वोलचाल मे, चाल-ढाल और रहन-सहन मे है। तुलसीदास के भक्ति-काव्य और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के कोमल कविता-रस को भी उनके व्यक्तित्व ने खूव ग्रहण किया है। वगाल की कला-सचेतना से वे अभिभूत है। सवेदनशील हृदय के धनी होने के कारण जीवन के विविध क्षेत्रो से उनका अतरग नाता है। राष्ट्र, समाज और साहित्य की सेवा करने की जो प्रणाली उन्होने गाँधीजी के निकट सम्पर्क से अपनायी थी, उसे उसी सयम, दक्षता और समर्पण-भावना से जीवन मे उतारते आ रहे हैं। जव कि गाधीजी के हजारो अनुयायी केवल खद्दर पहनने तक ही उन सिद्धातो का पालन कर, देश की वागडोर को हाथ मे थाम अपने पैरो के नीचे की जमीन छोड चुके है, सेकसरियाजी शान्त चरणो से उस धरातल पर अडिग रह कर चारो दिशाओ और विविध मार्गों पर अपना पथ वनाते, हजारो वालक-वालिकाओ और स्त्री-पुरुषो का हाथ पकडे, मजिलो पर मजिले पार कराते चल रहे हैं। कोई भी समस्या हो, वे उसका सुलझाव-समाधान पूरी पैठ, सच्ची हार्दिकता, सरल मानवीयता और व्यावहारिक दक्षता से करते है। मित्र-वन्धुओ की वीमारी, कारोवार, वाल-वच्चो की शिक्षा-दीक्षा, विवाह-शादी हर वात से उनका लगाव है।

सामर्थ्यवान व्यक्तित्व मे विनम्रता, सौम्य, मधुरता, सयत विवेक-वुद्धि, कर्त्तव्य-परायणता और सक्रियता—सारे गुण एक ही साथ विद्यमान हो, यह आदर्श की वाते हैं जो गिनने मे सुलभ है पर इनकी साकारता अति दुर्लभ। कलकत्ता के समाज का यह गौरव है कि उसे सेकसरियाजी के व्यक्तित्व मे चरितार्थ इन सव गुणो का सान्निध्य उपलब्ध है। वह क्षीण-देही, किन्तु सुन्दर और तेजवान व्यक्तित्व कितनो के लिये प्रेरणा, कितनो का सहारा, कितनो का लक्ष्य और कितनो के लिये अनुकरणीय है, यह वे स्वयम् भी नही जानते। स्वय से इस प्रकार का अलगाव उनके व्यक्तित्व को और अधिक आभा प्रदान किये हुए है।

उनका कर्मठ रूप 'गीता' के उपदेशो को प्रत्यक्ष करता उदाहरण है। काम जो भी हो, उसमे केवल कर्त्तव्य निवाहने वाली वात नही है, पूर्ण सलग्नता है। और, उस पूर्ण सलग्नता मे हर्ष की अनुभूति मुखरित है। थकान या अकुलाहट का चिन्ह नही और न ही आत्म-प्रशसा का। श्री शिक्षायतन स्कूल और कालेज की नई इमारत खडी हो रही थी, तीन मजिली। सेकसरियाजी पूरे दिन उसके निर्माण को, एक-एक ईंट के चुने जाने को कितने आल्हाद से देखते रहते और मुस्कान खेलती रहती उनके मुख पर। कहने को श्री शिक्षायतन शिक्षा-केन्द्र है, पर यहाँ का सभागार और वातावरण सारी समाज का सास्कृतिक मध्य-विन्दु और आत्मीयता से भरा स्थल है, जहाँ किसी भी कारण से पहुँच जाना एक निजी भूमि पर पैर रखने की सी अनुभूति कराता है। इस आत्मीयता की अनुभूति का वितरण-स्रोत सेकसरियाजी की उपस्थिति होती है वरना सास्कृतिक कार्यक्रमो के लिये वातानुकूलित भवन और शिक्षा-सस्थान तो कलकत्ता मे और भी वहुतेरे हैं।

एक सध्या हम किसी कार्यक्रम मे सम्मिलित होने शिक्षायतन पहुचे और वहा भेट हुई सेकसरियाजी से। वे बोले—"आज आप लोग जल्दी कैसे आ गये?" (हम बदनाम हैं न, समय से न पहुँचने के लिये) अभी कार्यक्रम प्रारम्भ होने मे आधा घण्टा है। चलिये, आपको नये होस्टल के कमरे दिखा लाऊँ।" वे उसी समय तीन मजिल ऊपर से कारीगरो और ठेकेदार के साथ उतरे थे। तथापि एक क्षण रुके बिना फिर तैयार हो गये हमे साथ ले जा कर कमरे दिखाने को। हमने बहुत कहा—"आप थकान न करे, या तो हम स्वय कमरे देख लेगे या किसी और के साथ चले जायेगे।" पर वे कहा मानने वाले? उल्टे पैर, जीने पर आगे-आगे चढने लगे, और उतनी ही तत्परता और फुर्ती से, जैसे पहली बार वहाँ जा रहे हो। फिर कितने उत्साह और चाव भरे मन से एक-एक कमरा, एक-एक अलमारी और एक-एक मेज-कुर्सी उन्होने इस तरह दिखाई, जैसे हर वस्तु मे उनका निजी कुछ बैठा है। जी चाहा कि वैसे हार्दिक उछाह से स्पर्शित लकडी और पत्थर मे कुछ दिन बसेरा करूँ। सचमुच हैरानी हुई सेकसरियाजी की कार्य-सलग्नता पर, यह आयु यह शरीर और यह शक्ति-क्षमता!

१५ अगस्त को प्रात राष्ट्र-पताका का अभिवादन करने हम सदैव शिक्षायतन ही पहुँचते थे। एक बार झण्डाभिवादन के बाद नवनिर्मित होस्टल के डाइनिग रूम मे नाश्ते का आयोजन रखा गया, जिससे डाइनिंग रूम का प्रथम प्रवेश-समारोह होस्टल की लडकियो के साथ मन जाये। नाश्ते मे खीर भी थी जिसका स्वाद बहुत बढिया था। मुह से अनायास निकला, "बहुत बढिया दूध की खीर है। इतना बढिया दूध होस्टल मे उपलब्ध होना तो बडे आश्चर्य की बात है।" सेकसरियाजी बोले, "क्यो? अगर घर मे अच्छा दूध हो सकता है तो होस्टल मे क्यो नही?" पता लगा कि हर प्रात सेकसरियाजी स्वय खडे होकर अपने सामने गाय-भैंस का दूध दुहवाते, नपवाते और उबलवाते है, जब कि आजकल के मा-बाप अपने बच्चो तक के लिए इस प्रकार की जिम्मेदारी लेना असाध्य समझते है।

श्री शिक्षायतन स्कूल की प्रबन्ध-समिति मे उन्होने मुझे अभिभावको के प्रतिनिधि-सदस्य के रूप मे रखा था। एक बार समिति के सामने एक पुरानी शिक्षिका की पढाने की पद्धति और कठोर व्यवहार के विषय मे विचार-विनिमय प्रस्तुत हुआ। किसी की आलोचना या निन्दा दस जनो के बीच मे हो और वह भी एक महिला-शिक्षिका की, इस प्रकार की परिस्थिति का आ जाना, जैसे उनके स्वभाव के लिये अरुचिकर और सकोच का विषय था। बात टाल-सी दी गयी और अगले कार्यक्रम पर बात होने लगी। पर बात को उस समय टाल देने का अर्थ यह नही था कि वे इस विषय की उपेक्षा कर गये। उन्होंने अगले दिन उस विषय पर सस्था एव विद्यार्थियो के हित के प्रत्येक कोण से दृष्टि डाली। प्रधानाध्यापिका और शिक्षिका-प्रतिनिधि तथा एक महिला होने के नाते मुझ से भी सलाह ली और उस सदर्भ मे उचित कार्यवाही की। शिक्षिका के प्रति सहानुभूति और मानवीयता का पक्ष जरा भी हल्का न होने दिया। स्पष्ट वक्तव्यता, सत्य, अनुशासन, नियम-बद्धता और न्याय-दृष्टि कही रूखी-सूखी कठोरता

से मानवीय संवेदना और हार्दिक उष्मा को भस्म न कर दे, यह भावना उनकी जन्मजात विशेषता है। क्षमा और करुणा उनके स्वभाव के सहज अंग हैं जो किसी ऊँचे मानवीय उद्देश्य के लिए असाधारण परिस्थितियों में बुद्धि-रचित नियमों का उल्लंघन सरलता से और बिना असमंजस के करने की सामर्थ्य देते हैं। सामान्य लोकाचारी भाषा में यही उनकी एक मोहक कमजोरी भी कही जाती है।

पर, जब कि वे अन्य सब के लिये उदार-हृदय हैं, अपने प्रति अत्यंत अनुशासित और नियम-बद्ध हैं, सच्चे अर्थों में प्रगतिशील भी। वे एक स्वच्छ, निर्मल मानस के व्यक्ति हैं जो प्रत्येक उस नवीन को ग्रहण करने की ओर उन्मुख हैं जो युगानुकूल वास्तविकता के हित का है। उनके प्रेम और आदर के पात्र अधिक संख्या में वे प्रतिभाशाली युवक-युवतियाँ, बालक-बालिकाएँ हैं जो राष्ट्र-सेवा, समाजोन्नति, शिक्षा, कला और साहित्य के रचनात्मक कार्यों और अध्ययन में लगे हुए हैं। उनमें वे भी सम्मिलित हैं, जो समय के बहाव में आधुनिक वेष-भूषा और रंग-ढंग अपनाने के कारण विदेशी सभ्यता के अनुगामी या भारतीय संस्कृति से विलग होने का आभास देते हैं। सेकसरियाजी की पारखी संवेदनशील दृष्टि इस नई पीढ़ी के ऊपरी परिधानों पर न टिक कर उनके अंतर के चरित्र को पहचानती है। इसलिए अत्याधुनिक पीढ़ी को भी उनके स्नेह में वंचित होने का भय नहीं है। ऐसे युग में जहाँ भय और रौब ही सफल कार्यकर्त्ता के अस्त्र-शस्त्र हैं, मृदुलता और विनयशीलता के बल पर प्रभावशाली संस्थानों को खड़ा कर देना, उनका सफल संचालन आयोजित कर देना और हजारों-हजारों व्यक्तियों को अपनी कोमल, सहज और सारगर्भित वाणी में वशीभूत कर लेना असाधारण मानवीयता के लक्षण हैं।

श्री सेकसरियाजी नारी-जीवन की परम्परागत पीड़ा से आकुल रहे हैं। पर्दा, अशिक्षा और घरेलू चहारदीवारी की घुटन से नारी-संसार को मुक्त करने की दिशा में उन्होंने बड़ा संघर्ष किया है। सम-सामयिक बोध में अग्रणी बंगाल की प्रेरणा-दायिनी आत्मा से एकात्म हो, कलकत्ता में बसे राजस्थानी एवं हिन्दी-भाषी समाज की नारियों और बालिकाओं के लिये शिक्षा-संस्थान, सांस्कृतिक संगम-स्थल और वे सब अन्य साधन संजोये जो परम्परा के सत्य और शिव रूप की भूमि पर उनके युगानुकूल निर्माण में सहायक हों। सेकसरियाजी के संरक्षण में शिक्षित, प्रगतिशील, कर्मठ और भारतीय संस्कृति के सुन्दर समन्वय से निर्मित महिलाएँ, कलकत्ता में, कलकत्ता से बाहर भी, गृहस्थी में, समाज में, विदेश में विशेष व्यक्तित्व लिये अपने-अपने क्षेत्रों में सफल हैं।

नारी-जागरण के पहले कदम सेकसरियाजी की अपनी पत्नी के सहयोग से ही उठे। उन्होंने अपने घर से ही उस आलोक की किरण को रंध्र-मुक्त किया, जिसकी चमक ने और परिवारों में उजाला कर अपने वातायन खोलने को आकर्षित किया। अब तो धीरे-धीरे उठता यह प्रकाश-पुंज वह स्तम्भ बन गया है जो देश और समाज के हितानुसार उसी दिशा में अपना आलोक-संपात करने में समर्थ है, जहाँ उसकी आवश्यकता हो। कलकत्ता के नारी-समाज की सामर्थ्य-शक्ति के शीश पर सदा सेकसरियाजी का वरद हस्त है प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में। यह वरद छाया सदा बनी रहे, मैं यही कामना करती हूँ।

समाज-सेवी ग्रौर शिक्षा-प्रेमी

श्री नथमल भुवालका

समाधान-साधक

१६२८ के जमाने की बात है। हमारे यहा विदेशी कपडे का काम था। पिताजी ने १८६१ की साल मे दूकान की थी। मैंने ११-१२ वर्ष की उम्र से ही दूकान पर काम करना ग्रारम्भ कर दिया था। उस समय स्वराज्य का ग्रान्दोलन जोरो पर था। विलायती कपडो के बहिष्कार के लिए दूकानो पर पिकेटिंग होती थी। उस समय सीतारामजी ग्रपने साथियो सहित ग्रक्सर पिकेटिंग का निरीक्षण करने ग्राते थे। तभी उनसे मेरा परिचय हुग्रा था। १६५२ मे मैं मारवाडी रिलीफ सोसायटी की कार्यकारिणी समिति का सदस्य हुग्रा। सेकसरियाजी के निकट ग्राने का सौभाग्य तब से ही प्राप्त हुग्रा।

प्रात कालीन भ्रमण के समय रोज डेढ घटा उनके साथ ग्रत्यन्त ग्रानन्द का समय रहता है। पुराने जमाने की बाते होती रहती है। ६५-७० वर्षो का इतिहास तारीखो सहित उनसे सुनने को मिलता है। हिन्दुस्तान के जितने भी खास-खास राज-नीतिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा सामाजिक व्यक्ति हुए है, उनमे से शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिससे उनका ग्रत्यन्त निकट का सबध न रहा हो। बहुत-सी बाते ऐसी सुनने को मिलती हैं जो इतिहास मे नही लिखी गयी है।

देश के स्वाधीनता-सग्राम मे उन्होने जितना बडा काम किया, स्त्री-समाज के उत्थान एव शिक्षा के लिये तथा सामाजिक कुरीतियो को हटाने के लिए उन्होंने ग्रपने जीवन-काल मे जो ग्रौर जितना काम किया ग्रौर ग्रब भी कर रहे है, उसके लिए सारे हिन्दुस्तानियो को उन पर बहुत बडा गर्व है। समाज की ग्रनेक कुरीतियो को हटाने के लिए उन्होने जितने साहस के साथ कठिनाइयो का सामना किया, वह चिर स्मरणीय रहेगा। सैकडो परिवारो की लडकियो ने ग्रपनी जटिल समस्याएँ ग्रपने माता-पिता के सामने नही रख कर श्री सेकसरियाजी के सामने नि सकोच भाव से रखी। उन्होने उनका समाधान किया ग्रौर ग्राज उन लडकियो का जीवन ग्रानन्द पूर्वक व्यतीत हो रहा है।

लोगो की ग्राम धारणा है कि सेकसरियाजी एक उच्च श्रेणी के सुधारक ही है। लेकिन उनके नजदीक जाने से प्रतीत हुग्रा कि इतना बडा धार्मिक व्यक्ति होना भी बडा कठिन है। उन्होंने १०, १२ वर्ष की उम्र से ही धार्मिक जीवन व्यतीत किया

है, यहाँ तक कि कभी एक मच्छर को भी नही मारा। मुझे तो यह बात जान कर बडा आश्चर्य ही हुआ, जब कि स्वतत्रता-सग्राम के समय जेलो मे मच्छर भी उनके साथी रहे होगे। बात छोटी लगती है पर है बडी प्रभावकारी। ६०-६५ वर्षो से वे नियम पूर्वक प्रतिदिन रामायण, गीता तथा अन्य धार्मिक पुस्तको का पाठ किया करते हैं। यहाँ तक कि बीमारी की अवस्था मे भी उस नियम को निभाते है। नियम-पालन की बातो का कहा तक उल्लेख किया जाय? चि० दिलीप के विवाह के दिन भी वे श्री शिक्षायतन गये क्योकि जिसको मदिर समझ रखा है, उसका दर्शन किये बिना उनको कैसे चैन पड सकता था?

'वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीर पराई जाने रे' वाला भजन उनके जीवन मे पूरा-पूरा उतर गया है।

ईश्वर से प्रार्थना है कि वे उनको स्वस्थ एव प्रसन्न रखे।

— ० —

क्रातिकारी समाज-सेवी

श्री दामोदरदास तालूका

वरेण्य !

स्वतत्रता-सग्राम के उत्सर्ग-सिद्ध सुनायक पूज्यपाद सेकसरियाजी का अभिनन्दन उनका नही, हमारा ही गौरव एव उन्नयन है। तारुण्य-काल मे समाज-सेवा के क्षेत्र मे पुण्य-स्मरणीय स्वर्गीय देवडाजी, खेतानजी आदि के नाम तथा राजनीति के कर्म-यज्ञ मे सेकसरियाजी, जालानजी तथा हिमम्मतसिंहकाजी के नाम सुनता था। 'विश्वमित्र' से अनवरत उनकी चर्चाओ का, विचारो का, भाषणो का, सिद्धातो का, साधना का एव भावना का परिचय प्राप्त होता रहता था।

चिर-ज्वलन्त सी अनुभूति आज भी बनी हुई है कि युग-युग के ही नही, युगान्तरो के, सदियो के नही, सहस्राब्दियो के मानवेतर महामानव महात्मा गाधीके चरण-चिह्नो द्वारा निर्मित अहिंसा, क्षमा, सेवा, स्नेह एव साधना के जागरूक पुण्य-पथ पर कष्ट-साध्य महायात्रा करने वाले गिने-चुने वरेण्य महापुरुषो मे श्री सेकसरियाजी रहे है। उनकी साधना मानवता की वह उपासना है, जिसमे मानव के मानव होने और बने रहने के तात्विक उपकरण ज्योतित एव जागृत हैं।

उन्होंने मानवता की सेवा के लिए जो कुछ किया है, उसे मुझ जंसे अकिंचन का शत-सहस्र नमन है।

—— ० ——

विद्या-प्रेमी ,समाज-सेवी
सुप्रसिद्ध हिसाब-निरीक्षक

श्री रामेश्वर ठाकुर

'पर हित सम सुख नाहीं'

आज से २८ वर्ष पूर्व एक छात्र के रूप मे मैं कलकत्ता गया तथा वहाँ राजेन्द्र छात्र भवन के कार्यवश श्री सीतारामजी के निकट सम्पर्क मे आने तथा उनके मार्गदर्शन मे वर्षों कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमेशा ही उनसे प्रेरणा मिलती रही।

उच्च पढाई के लिए कलकत्ता आए हुए विहार के कई छात्र वहुत कष्ट मे हैं, उन्हे रहने की जगह नही है, खाने-पीने की दिक्कत है, कालेज की फीस और किताबो के लिये पैसे नही हैं, उन्हे ट्यूसन या नौकरी चाहिये, छात्रवृत्ति और आर्थिक सहायता की जरूरत है—इस प्रकार के अनेको प्रसग सामने आये जिनमे श्री सेकसरियाजी का कोमल हृदय मैंने व्यग्र और द्रवित होते देखा है। आज के युग मे इतने उदार, सज्जन, कर्त्तव्य-परायण तथा दूसरे के दुख को अपना समझ कर उसके निवारण के लिये सतत प्रयत्न करने वाले श्री सेकसरियाजी जैसी विभूतियाँ ढूढने पर भी कम ही मिलती हैं। उनकी वहुमुखी प्रतिभा तथा महान् सेवाओ का उल्लेख कुछ पक्तियो मे करना सम्भव नही है। शुद्ध खादी भडार, मारवाडी वालिका विद्यालय, श्री शिक्षायतन स्कूल एव कालेज तथा राजेन्द्र छात्र भवन आदि सस्थाओ की स्थापना एव उनका सफल सचालन उनके ही दीर्घकालीन प्रयासो से हो पाया है।

आज वियासी वर्ष की अवस्था मे भी आपके हृदय मे सेवा की भावना निरतर सतेज है, किन्तु, जहाँ तक मैंने समझा है, श्री सेकसरियाजी के हृदय मे एक मार्मिक वेदना भी है और वह होती है क्रमश मानव-मूल्यो का ह्रास होते देख कर। उनसे प्रेरणा प्राप्त करने वाले कार्यकर्त्ताओ तथा समाज के लोगो का कर्त्तव्य है कि उनकी इस वेदना को समझ कर वे यथासम्भव अपने जीवन मे उन मूल्यो को स्थान दें, जिनकी जीती-जागती मूर्ति श्री सेकसरियाजी है। यही उनके लिये सच्चा अभिनन्दन होगा।

—— ० ——

समाज-सेवी और साहित्य-प्रेमी

कविराज रामाधीन शर्मा 'वशिष्ठ'

मौन तपस्वी

गोस्वामी तुलसीदास ने मानस मे साधु-महिमा के प्रसग मे लिखा है

पर उपकार वचन मन काया।
सत सहज स्वभाव खगराया ॥

परोपकार मे निरतर निरपेक्ष भाव से रत रहना साधु पुरुषो का अपना स्वभाव सा बन जाता है। भगवत्भक्ति परिषद् द्वारा आयोजित मानस चतुश्शती की भाषण-माला के अन्तर्गत 'मानस मे आदर्श व्यक्ति' की कल्पना पर मुझे बोलना था। मैं उसी प्रसग का मनन कर रहा था कि मुझे कलकत्ता महानगरी के एक वरेण्य एव पूज्य व्यक्तित्व का अनायास ही स्मरण हो आया। वह पूर्ण एव निष्कलक व्यक्तित्व है पद्मभूषण श्री सीताराम सेकसरिया का। मुझे आनन्द भी मिला एव आश्चर्य भी, कारण कि इस घोर भौतिकवादी नगरी के कलुष-कर्दम के मध्य यह कमलवत व्यक्तित्व किस प्रकार विकसित एव निरभ्र रह सका। बात साधारण होते हुए भी साधारण नही थी। फिर मुझे एक अरबी कहावत याद हो आई। दूर देश मे एक बार अकाल पडा। वहाँ के लोग स्वाभिमानी थे। किसी की सहायता नही लेना चाहते थे। पर अन्य देश मे एक साधुजन ने उनकी दुरवस्था सुनी। वह नित्य प्रति रोटियो व खाद्यान्नो के पैकेट बना कर छोटी-छोटी लकडियो के सहारे नदी मे डाल देता था। नदी उसी अकाल-पीडित देश की ओर वह कर जाती थी। पीडितो ने राहत ले ली और इस अहेतुक कृपा के लिये उन्होने उस अनाम साधु को कोटिश धन्यवाद दिया। "नेकी कर, दरिया मे डाल" की कहावत चल पडी।

इस स्थल पर मुझे श्री सेकसरियाजी से सम्बन्धित एक घटना का स्मरण बार-बार हो आता है। उत्तर प्रदेश की हरिजन एव समाज-कल्याण मत्री श्रीमती विद्यापति राठौड कलकत्ता पधारी थो। उनके साथ श्री चिरजीलाल जैन, श्री बनवारीलाल तिवारी आदि सज्जन भी भदावर डिग्री कालेज, वाह (आगरा) की आर्थिक सहायतार्थ आये थे। उन लोगो की इच्छा श्री सेकसरियाजी से मिलने की हुई। मैंने उनसे फोन द्वारा मिलने का समय निर्धारित किया। श्री सेकसरियाजी के

साथ श्री शिक्षायतन के कक्ष मे उक्त कार्य से सम्बन्धित चर्चा हुई। श्री सेकसरिया जी ने कहा—"कुछ लाचारी ऐसी है कि इस पुण्य कार्य मे भी मैं साथ चलने के लिये असमर्थ हूँ, कारण कि मैं तो स्वय लोगो से मागा करता हूँ। और, मागने वाले का साथ रहना ठीक नही है। आप एक अपील लिखे और मैं उस पर सर्व-प्रथम हस्ताक्षर करने को तैयार हूँ। ऐसा करने से सुविधा होगी। साथ-ही-साथ, कुछ धन-राशि दे कर मैं पहल भी कर रहा हूँ।" इस प्रकार उक्त कार्य मे आशा-नुकूल सफलता मिली। यह था उस महामनीषि कर्मठ युग-चेता मार्ग-दर्शक का क्रियात्मक स्वरूप। ऐसे कई उदाहरण है। गोस्वामी जी के शब्दो मे वन्दनीय वही है जो—

जो सहि दुख, पर छिद्र दुरावा।
वन्दनीय जेहि जग जस पावा॥

चित्रमयी गीता के प्रकाशन के सम्बन्ध मे भी मेरी उनसे भेट हुई। हम लोग उस कार्य मे एकदम निराश हो चुके थे पर अजस्र प्रेरणा के स्रोत श्री सेकसरियाजी की सूझ-बूझ से हमे पर्याप्त सफलता मिली।

उनकी साधना का जीवन्त स्मारक, उनकी पुण्य जीवन-सलिला का अक्षयवट श्री शिक्षायतन उनकी कर्मठता, साधना एव लोक-हितैषणा की विजय-वैजयन्ती फहरा रहा है। यही उनकी जीवन-त्रिवेणी का पावन प्रयागराज है। श्री सेकसरिया-जी सच्चे अर्थो मे गाँधी-मत्रो से दीक्षित आदर्श लोक-नेता है जिनका एक ही मूल मत्र है—चरैवेति—चरैवेति।

मैं सतत सामाजिक चेतना के उस अग्रदूत, समाजोत्थान के स्वर्णमडित सोपान एव आदर्श लोक-नेता के निरभ्र रजत-चन्द्रिका-स्नात व्यक्तित्व को नमन करता हूँ तथा सर्वशक्तिमान से प्रार्थना करता हूँ कि श्री सेकसरियाजी "जीवेम् शरद शतम्" ही नही, "जीवेम् शरद सहस्रम्" से मडित हो कर भविष्य की पीढियो को प्रकाश देते रहें। उनका तो जीवन-मत्र ही है—

दर्द का पी कर हलाहल, मुसकराना जिंदगी है।
मिट सके यदि गम किसी का, चोट खाना जिंदगी है॥

—— o ——

साहित्य और संस्कृति-प्रेमी,
समाज-सेवी
श्री गोविन्द प्रसाद फतेहपुरिया
तथा
मनं.विज्ञानं-विशेषज्ञा
डॉ० (श्रीमती) शारदा फतेहपुरिया

अजस्र त्याग

गत ५० वर्षों से बदलते जा रहे आयामो को परिप्रेक्ष्य मे रख कर आज आपकी तिरासिवी वर्षगाँठ पर अभिनन्दन करते हुए अकवर का एक वहुत खूबसूरत शेर रह-रह कर हमारी स्मृति पर उभर रहा है—

'हुजूम ए बुलबुल हुआ चमन मे किया जो गुल ने जमाल पैदा
कभी नहीं कद्रदा की अकबर करे तो कोई कमाल पैदा।'

मारवाडी समाज के चिन्तनशील पक्ष को आपके व्यक्तित्व ने सजाया सवारा और एक दिशा दी। हमे फख्र है कि हमारे समाज ने आप जैसा भी एक सपूत पैदा किया जिसने अपने अथक परिश्रम और न भूलने वाली कुर्वानियो से मारवाडी स्त्री-वर्ग को शिक्षा और साक्षरता का प्रथम और निरन्तर आशीर्वाद दिया। मारवाडी स्त्रियो के पर्दा-बहिष्कार आन्दोलनो की स्मृतियाँ अब भी ताजा हैं और कल भी रहेगी। सूरदास के अपने प्रभु की अभ्यर्थना के शब्द मारवाडी समाज की ओर से एक माने मे आप पर भी लागू होते है—

'जाकी कृपा पगु गिरि लघे, अन्धे को सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुने मूक पुनि बोले, रक चले सिर छत्र धराई॥

ताऊजी, यह सत्य है कि आज के शिक्षित मारवाडी लडके और विशेपकर लडकियाँ आपके अनुदानो के आभारो से अपने-आपको कभी भी ऋण-मुक्त न पा सकेगी और यही उनके लिये गौरव का विषय है क्योकि आपका इन्कलाव नारो की गज मे खो जाने वाला इन्कलाव न हो कर एक सच्चे कर्मयोगी के अजस्र त्याग का ताना-वाना है, जिसके एक-एक तार से मारवाडी समाज का अभिन्न एकाकार स्थापित हो चुका है।

मीलो चले आये हम और फिर भी मजिल कितनी दूर है? जजीरे तो तोड दी हमने पर निर्माण अभी शेष है। आज आप की तिरासिवी वर्षगाँठ पर भी समाज आप से फिर कुछ माँगने आ गया है। उसे आपके वीस वर्ष और चाहिये उसे अब भी दहेज और अनेक समस्याओ से जूझना है। उसे आपका धैर्य, आपका मजा हुआ चिन्तन, आपका निष्काम कर्मयोग, आपका सौम्य व्यक्तित्व और मधा हुआ मार्ग-दर्शन सब कुछ आज भी चाहिये। क्या आप इतना-सा अनुदान और न देंगे?

साहित्य और संस्कृति-प्रेमी,
समाज-सेवी

श्री परमानन्द चूडीवाल

श्रम, सेवा और स्नेह की त्रिवेणी

भारतीय सस्कृति मघ की मासिक रजन-गोष्ठी मे एक वार श्रद्धेय मीतारामजी मेकसरिया को अपने प्रेरक सम्मरण सुनाने के लिये आमत्रित किया गया था। रजन-गोष्ठी के नाम को ही परिलक्षित करते हुए उनकी वाणी से यह उद्गार फूट निकला—"मेरे जीवन मे रजन के लिये अवकाश नही रहा"। वात कितनी गहरी, कितनी मार्मिक है। वास्तव मे इस कर्मयोगी के जीवन मे अनवरत श्रम-साधना एव कर्म ने "रजन" के लिये कोई अवकाश छोडा ही नही। कर्म ही मभवत उनका एकमात्र रजन हो गया।

मिलता भी कैसे रजन के लिये अवकाश ? कितनी व्यापक और विविध प्रवृत्तिया, कितना विस्तृत कार्य-क्षेत्र। शिक्षा, साहित्य, सम्कृति, सामाजिक सुधार, सर्जनात्मक प्रवृत्तियो के लिये सतत प्रेरणा और सामूहिक प्रयास, साहित्यिक एव सेवा-सस्थानो मे आर्थिक कठिनाइयो से जूझते समर्पित व्यक्तियो को सामयिक सहायता देने के प्रयास—श्री सेकसरियाजी की इस प्रकार की वहुमुखी प्रवृत्तियो और गति-विधियो को शव्दो मे समेटना दुष्कर प्रयास है।

कितने प्रसग आँखो के सामने तैर जाते है। कलकत्ता के वहु-चर्चित 'कथा-समारोह' मे श्री सेकसरियाजी ने आयोजको से आग्रह किया कि इस अवसर पर 'साहित्यकार-सेवानिधि' के नाम से एक निधि की व्यवस्था की जाये, तथा इस निधि मे रुग्ण, अस्वस्थ साहित्यकारो की चिकित्सा का प्रवध किया जाये, अर्थाभाव से जिन साहित्यिको का लेखन-कार्य रुक गया हो, उनकी सामयिक सहायता की जाये। श्री सेकमरियाजी के सामयिक सुझाव को तत्काल कार्यान्वित किया गया।

समस्तीपुर के समीपवर्ती वैनी मे कस्तूरवा ट्रस्ट का केन्द्र। केन्द्र की सचालिका का समग्र जीवन केन्द्र की कार्य-विविधा के प्रति समग्र रूप से समर्पित, पर अर्था-भाव से कतिपय गति-विधियो की प्रगति मे अवरोध के कारण असहाय एव त्रस्त। श्री सेकसरियाजी से मात्र एक वार सकेत और तत्काल समाधान।

गाँधी शताव्दी के वर्प मे उत्सव और समारोह भारत के विभिन्न स्थानो मे वडी श्रद्धा और आस्था के साथ आयोजित हुए। कलकत्ता ने भी पूरे वर्ष वक्तृता, लेख-माला, सगोष्ठी के द्वारा अपना योगदान दिया। काका कालेलकर, जयप्रकाश

नारायण, दादा धर्माधिकारी प्रभृति गांधीवादी चिंतक आये। श्री सेकसरियाजी सभी विशिष्ट आयोजनो मे सक्रिय रूप से योगदान करते। गांधीजी की बात करते ही सीतारामजी गद्‌गद्‌ और भाव-विभोर। धाराप्रवाह अजस्र वाणी गाधीजी के जीवन-प्रसगो के वर्णन मे फूट पडती। ऐसा लगता कि मन मे जितने भाव हैं जितनी बात वे कहना चाहते है, वाणी उतनी बात के सम्प्रेषण मे अपने को अक्षम पाती है।

शरीर, मन, वाणी, कर्म—चारो सर्वथा एक से दुग्ध-धवल। कितना स्नेह, कितनी ममता, कितना अपनत्व। सेकसरियाजी के सम्पर्क में जो भी आये, सब की एक ही प्रतिक्रिया है—सेकसरियाजी का मुझ पर तो विशेष स्नेह है, मेरे प्रति तो उनकी अत्यधिक ममता है।

बडी विचित्र बात है। सामान्यत कर्मठ जीवन के साथ एक व्यावहारिक शुष्कता रहती है। सेवा और कर्मठता के साथ स्नेह की त्रिवेणी प्राय दुर्लभ है, पर सेकसरियाजी के व्यक्तित्व मे नारिकेल के सदृश अत बाह्य दोनो समान सजल एव सुमधुर है।

ऐसा पुण्य-प्रेरक व्यक्तित्व शतायु हो भावी पीढी का मार्ग-दर्शन करता रहे, यही प्रभु से प्रार्थना है।

—o—

सुपरिचित समाज-सेवी,
विहार चैम्बर ग्राफ कामर्स के सभापति

श्री खेमचद्र चौधरी

मानवता के उज्ज्वल प्रतीक

पद्मभूषण श्री सीतारामजी सेकसरिया किसी समाज विशेप के नही, ग्रपितु समग्र भारतीय राष्ट्र ग्रौर मानवता के एक कर्मठ ग्रौर निस्पृह सेवक हैं। वैसे यह दिव्य विभूति जिम समाज की देन है, वह समाज निश्चय ही उन पर गर्व करने का ग्रधिकारी है। वे वोलते कम है, करते वहुत ग्रधिक है, जो वर्तमान युग की प्रचलित पद्धति के विल्कुल विपरीत है।

राष्ट्र-प्रेम के साथ-साथ वे एक उच्च कोटि के समाज-सुधारक ग्रौर शिक्षा-प्रेमी हैं। वालिकाग्रो की शिक्षा मे उनकी रुचि ग्रधिक है। कलकत्ता की श्री शिक्षायतन नामक सुप्रसिद्ध शिक्षण–सस्था उनकी ग्रमर कीर्ति है ग्रौर रहेगी। वे इतने सरल, हसमुख, मिलनसार ग्रौर निरभिमानी है कि प्रथम भेंट मे ही मिलने-वाला मन ग्रौर वचन से उनका भक्त ग्रौर प्रशसक हो जाता है।

किसी भी वात को समझाने का उनका एक ग्रनोखा तरीका है, जिससे साधारण व्यक्ति भी उसे ग्रासानी से समझ जाता है। वहुत पुरानी वात है। एक वार मैंने उनसे पूछा—"गाय ग्रौर भैंस के दूध मे क्या ग्रन्तर है? ग्राप लोग गो-दुग्ध को ही इतना महत्व क्यो देते है?" हसते हुए वडे विनोद के साथ उन्होने वताया—"ग्राप गाय के वच्चे को देखे। वह ग्रपनी मा का दूध पी कर किस तरह मस्ती से उछल-कूद करता है, उसकी नस-नस फडकती रहती है, जब कि भैंस का वच्चा मा के दूध के प्रभाव से प्राय सुस्त पडा रहता है। उसी प्रकार का ग्रसर हम लोगों पर भी पडना स्वाभाविक है।" किसी को समझाने के इस प्रकार के उनके तरीके को मैं ग्राज तक भूल नही पाया हूँ। इसमे मात्र तर्क नही है, एक प्रत्यक्ष उदाहरण है।

देश ग्रौर समाज के लिए भगवान् उन्हे शतायु करे।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक,
कवि एवं साहित्यिक,

डॉ० गोपालकृष्ण सराफ

'वसुधैव कुटुम्बकम्'

आप एक ऐसे व्यक्ति का नाम बताइये, जिसे आप कभी भी पहले नमस्कार न कर सके। आप कितनी ही शीघ्रता करे, पहले उनके ही हाथ ऊपर उठेगे। एक सकेत देता हूँ। वे वयोवृद्ध है, देश-सेवी है, समाज-सेवी है, लब्ध-प्रतिष्ठ है और समाज मे उनका विशेष स्थान है। नमन उनका आभूषण है और अहकार उनसे उसी प्रकार दूर भागता है, जैसे शकर बाबा से कामदेव। अब तो आप नाम समझ ही गये होगे। हैं न वे श्री सीतारामजी सेकसरिया ?

मैंने श्री सेकसरियाजी का प्रथम दर्शन सन् १९४५ मे किया, जब मैं प्रथम बार कलकत्ता आया था। उस समय मेरी अवस्था २० वर्ष की थी। मैं आगरा मेडीकल कालेज का छात्र था और उस विवाह मे आया था, जिसमे श्री सीतारामजी की लडकी विजया और मेरे भाई श्री परमानन्द पोद्दार दामपत्य-सूत्र मे अनुबधित हो रहे थे। वह मेरे जीवन का एक विचित्र अनुभव था। ३० वर्ष पहले के युग मे कुल ग्यारह व्यक्तियो की बारात थी और मेरे फूफा श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार की आज्ञानुसार मैं भी उसमे सम्मिलित हुआ था। विवाह जिस सादगी से हुआ था, उसकी कल्पना आज भी कठिन है। उसी समय मैंने पहली बार पूज्य महात्मा गाँधीजी के भी दर्शन किये। वर-वधू आशीर्वाद के लिए सोदपुर आश्रम गये, मैं भी साथ गया। मैंने भी बापू की चरण-धूल ली और उनका हस्ताक्षर भी। मैंने बापू को सदेश लिखने को कहा और उनके सचिव श्री प्यारेलाल ने तत्काल कहा—"उसके पाँच रुपये लगेगे।" मैंने स्वीकारा और बापू से प्रार्थना की कि वे हस्ताक्षर के साथ कुछ आदेश भी लिख दे। वही पूज्य फूफाजी श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार खडे थे। उन्होने तुरन्त बापू से कहा—"यह भला आदमी खादी नही पहनता।" झट बापू ने लिख दिया—"खादी पहनो"। मैंने उनकी तस्वीर पर हस्ताक्षर भी कराये। बापू का यह दर्शन जीवन मे पहली एव अतिम बार हुआ और इसके लिए मैं पूज्य फूफाजी और श्री सेकसरियाजी का सदा आभार मानता हूँ। उनके कारण ही मैंने वह अवसर प्राप्त किया।

इतना ही नही, विवाह के समय अनेकानेक महान् व्यक्तियो के दर्शन और हस्ताक्षर प्राप्त हुए, जिनमे विशेष उल्लेखनीय हैं सर्वश्री गोविन्दवल्लभ पत, सरदार

वल्लभभाई पटेल, आचार्य नरेन्द्रदेव, खान अब्दुल गफ्फार खाँ, पट्टाभि सीतारमैय्या, ठक्कर बापा, घनश्यामदास बिड़ला आदि। हमारे साथ उसी मकान मे ठहरे हुए इन महान् आत्माओ के साथ बाते भी हुई, जो अभी तक कानो मे गूंज रही है।

मै दुबारा कलकत्ता आया सन् १९६० मे और आते ही श्री सीतारामजी सेकसरिया के दर्शन करने गया और उनका आशीर्वाद ले कर कलकत्ता को मैने अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। उसी वक्त से मैने नि शुल्क नेत्र-शिविर लगाना आरम्भ किया। अब तक मै प्रत्येक वर्ष नेत्र-शिविर लगाता आ रहा हूँ। मेरे अनेक नेत्र-शिविरो का उद्घाटन भी सीतारामजी ने किया है। यह उनकी रुचि-विस्तृतता का प्रमाण है।

कई बार लायन्स क्लब की मीटिंगो मे वे गये और वहाँ सदा उन्होने हिन्दी मे भाषण देने पर जोर दिया। उनके कहने का यह असर हुआ कि अब कलकत्ता के बहुत से लायन्स क्लबो मे कार्यवाही हिन्दी मे होने लग गयी है और हिन्दी मे बोलने का सकोच निकल सा गया है। हिन्दी भाषा के प्रति उनका प्रेम सराह-नीय है। स्वाधीनता-सग्राम की उनकी आप-बीती बाते उनके मुख से सुनने से बहुत आनन्द आता है। लोगो की व्यक्तिगत समस्याओ मे भी वे रुचि लेते है। अपनी गहरी सूझ-बूझ और पैनी दृष्टि से वे उलझनो को सहज और अनायास सुलझा देते हैं।

कला के प्रति उनका प्रेम देखना हो तो किसी कलात्मक कार्यक्रम के बाद उनसे बात करिये। वे बच्चो की भाँति गद्गद् और विभोर हो जाते है। भारतीय सस्कृति ससद् मे एक बार वर्षा-वन्दना के कार्यक्रम के बाद के उनके उद्गार सग्रह-णीय थे। इस वृद्धावस्था मे भी उनका स्वभाव बच्चो की भाँति सरल, निश्छल और मधुर है। वे सचमुच वैदेही है, योगी है। उनके विचार ऐसे है, जैसे कभी उलझे ही नही। "वसुधैव कुटुम्बकम्" उनका धर्म है। उनको सब प्रिय है, सब को वे प्रिय है। ऐसे पुरुष धरती पर युगो-युगो के बाद अवतरित होते है। मुझे कलकत्ता मे रहने का सब से बडा लाभ यही हुआ कि श्री सीतारामजी से मिलने का सौभाग्य बार-बार मिलता रहता है—कभी भारतीय सस्कृत ससद् मे, कभी सगीत कला मन्दिर मे, कभी लायन्स क्लब मे और कभी नेत्र-चिकित्सा शिविर मे। उनके दर्शन मात्र से जो प्रेरणा मिलती है, वह बतायी नही जा सकती, उसका केवल अनुभव किया जा सकता है। भगवान् से प्रार्थना है कि वह उन्हे दीर्घायु करे जिससे समाज अधिकाधिक लाभान्वित हो सके।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध समाज-सेवी और राष्ट्र-कर्मी,
प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञ

श्री राधाकृष्ण नेवटिया

प्रदीप-पुरुष

आज मे पचास साल पहले की बात है, जब श्री सीतारामजी से मेरा प्रथम परिचय हुआ था। मैं अनेक कार्यक्रमो मे उनके साथ रहा हूँ, उनके माथ काम किया है। उस समय रूढियो मे फसे समाज मे सुधार की चर्चा को भी बहुत बडा अपराध ममझा जाता था। एक विवेकहीन समूह के हाथ मे समाज की बाग-डोर थी, उसी के इशारो पर समाज नाचता था। किन्तु परिवर्तनशील प्रकृति का तकाजा कुछ तरुण-मन अनुभव कर रहे थे। कितनी ही रूढिया उन्हे असह्य हो रही थी। इस आन्तरिक प्रेरणा से धीरे-धीरे नये विचारो की भूमिका बनी। युवको का एक मगठन बना। समाज-सुधार करने की भावना पैदा हुई। युवक सेकसरियाजी उस मगठन मे एक विशेप व्यक्ति थे। दुखी और निराश बाल-विधवाओ की करुणाजनक स्थिति, बिरादरी के प्रत्येक कार्य मे होने वाला अपव्यय, बेमेल विवाह और ऐसी ही दूसरी कुप्रथाएँ समाज पर हावी थी। उनके विरुद्ध खडे होने और साहसपूर्वक सभी बुराइयो को हटा कर समाज की नवीन रचना का सकल्प युवको ने किया। योजना बनी। कार्य शुरू हुआ। नये और पुराने के नाम पर सघर्ष छिडा। सब मे बडा कार्य बाल-विधवाओ के पुनर्विवाह का था। विधवा को पुन सधवा के सारे अधिकार देने वाले दृढ सकल्पी पात्रो को खोजना था। इसमे बडी कठिनाई थी। रूढियाँ समाज को इतने व्यापक रूप से आतकित किए हुए थी कि सहृदय युवक भी उनके विरुद्ध बोलने का साहस नही कर पाते थे। समाज और परिवार का विरोध स्वीकार करके ही आगे बढने का हौसला करना पडता था। यह बहुत बडे सघर्ष का कार्य था। यह गुरु भार उस समय के विशिष्ट युवक कर्मी स्वर्गीय बालकृष्ण जी मोहता को सौपा गया। उन्होने समझा-बुझा कर झरिया के लील्हा परिवार के एक युवक को एक विधवा के साथ पुनर्विवाह करने को तैयार किया। यह ऐतिहासिक विवाह स्व० छाजूराम चौधरी के मकान पर करना तय किया गया। विवाह के दिन चौधरी भवन के सामने हजारो रूढिवादियो ने विरोध-प्रदर्शन किया, नारे लगाये, धर्म का भय दिखाया, जातिच्युत करने की धमकी भी दी, पर युवको ने इन सब की कोई परवाह नही की। विवाह ठाट-बाट से सम्पन्न हो गया। मुझे स्मरण है कि विवाह के दूसरे ही दिन विशुद्धानन्द विद्यालय

के हाल मे इन रूढ़िवादियो की एक विराट सभा ने निश्चय किया कि ऐसे विवाहो को रोकने का पूरा प्रयत्न किया जाय। इस प्रयत्न को प्रभावशाली बनाने के लिए इस सभा ने समाज के बारह व्यक्तियो के जाति-बहिष्कार की घोषणा भी की, जिनमे श्री सेकसरियाजी भी थे। इन बारह व्यक्तियो को निमन्त्रण करना समाज ने बन्द कर दिया। यहां तक कि इन व्यक्तियो की धर्मपत्नियो को उनके पीहर-वालो ने भी अपने घर बुलाना बन्द कर दिया। इस प्रकार परिवारो का प्रेम-सबध भी एक प्रकार से भग हो गया।

प्रारम्भ मे ऐसे साहसी युवक सौ-सवासौ ही थे। तथापि साहस से साहस बढ़ता गया और एक के बाद एक विधवा-विवाह होते ही गये। पुराना समाज डगमगाने लगा, नये आदर्श के अनुयायी बढ़ने लगे। इस सफलता से उत्साहित होकर इन युवको ने सुधार के दूसरे कार्य जैसे 'पर्दा हटाओ' को भी रूप देने का निश्चय किया। इस विचार का प्रचार शुरू किया कि पर्दा-प्रथा सभ्यता, संस्कृति और स्वास्थ्य के लिए निश्चय ही हानिकर है। इसके साथ ही रूढ़िगत अपव्यय, जैसे मृतक बिरादरी भोजादि को रोकने का प्रयत्न भी हुआ और सफल हुआ। विदेश-यात्रा के विरुद्ध जबरन लदी थोथी धारणा भी हटायी गई क्योंकि शिक्षा एव व्यापार की उन्नति मे इसके कारण भयानक रुकावटे थी। इस समय के उच्च-शिक्षित युवक स्वर्गीय कालीप्रसादजी खेतान को विदेश जा कर बैरिस्टरी पढ़ने के कारण ही बहिष्कार का कुफल भोगने को विवश होना पडा था। तरुण सगठन ने उन्हे अपना कर इस दिशा मे भी सुधार का तीव्र आदोलन आगे बढ़ाया।

इन कार्यों मे समाज-सुधार की जो प्रवृत्ति जगी, उसी ने स्वाधीनता-सग्राम के कार्यो मे भाग लेने की प्रवृति भी युवको मे जगाई। जब महात्मा गाधी के नेतृत्व मे विदेशी वस्त्र के बहिष्कार का आदोलन शुरू हुआ तो उसमे भी यह नवयुवक-दल साहसपूर्वक आगे आया। जब गाधीजी कलकत्ता आये तो उन्होने स्वर्गीय सी० आर० दास के निवास-स्थान पर बडा बाजार के प्रमुख कार्यकर्त्ताओ की एक परामर्श-सभा की। उसमे भी श्री सीतारामजी प्रमुख थे। उस वक्त ब्रिटिश सरकार का दमन-चक्र चल रहा था। इसलिए कार्य को सफल बनाने के लिए साहसी, बुद्धि-मान और कुशल युवको की जरूरत थी। योजना बनी। झुण्ड बने। पहले झुड का नेतृत्व सेकसरियाजी ने ही किया और वे जेल मे बन्द हो गये। इसका समाज पर गहरा प्रभाव पडा। फिर तो झुण्ड-के-झुण्ड नर-नारी इस कार्य मे आगे बढे और जेल गये।

उनका समाज और राष्ट्र-प्रेम बडा सराहनीय है। नारी-शिक्षा तो उनके जीवन का मूल मत्र है ही, उन्होने छात्राओ की उच्च शिक्षा के लिए श्री शिक्षायतन जैसी आदर्श सस्था की स्थापना की। ऐसे ही उदात्त गुणो एव कार्यो के लिए भारत सरकार ने उनको 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया है।

पारब्रह्म परमात्मा से हमारी आतरिक प्रार्थना है कि हमारे ऐसे महान् नेता को स्वस्थ एव दीर्घ जीवन प्रदान करे ताकि हम उनके कार्यों से अधिकाधिक प्रेरणा ले कर सदा ही उनका अभिनन्दन करते रहे।

सुप्रसिद्ध लेखक और पत्रकार,
मासिक 'नया जीवन' के संपादक

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

जीवन की शोधशाला

श्री सीतारामजी सेकसरिया 'आल इडिया सेकसरिया' हैं। देश भर के सामाजिक वातावरण मे कही भी कोई 'सेकसरियाजी' कहे, उससे सब को श्री सीतारामजी का ही बोध होगा। व्यक्तित्व की यह असाधारणता उनके लिए परम्परा-प्राप्त उपलब्धि नही, साधना-साध्य उपार्जन है। वे अणु से विराट हुए है, नगण्य से अग्रगण्य बने है। उनकी इस सफलता का रहस्य यह है कि उन्होने अपने जीवन को शोधशाला बना लिया, इससे भी आगे वे स्वय जीवन की शोधशाला—रिफाइनरी—बन गए।

वे जीवन भर दूसरो के लिए नर्स रहे, पर अपने लिए तो जेलर ही रहे। क्षण-क्षण अपने कर्म पर ही नही, अपने विचार पर भी उन्होंने कड़ी-क्रूर निगाह रखी। अपने प्रति दुर्व्यवहार करने वालो को उन्होंने सदा सहा, पर अपने को कभी माफ नही किया।

किसी सत्कर्म के लिए रुपयो की आवश्यकता थी। सेकसरियाजी ने किसी सत्पुरुष से कहा। उन्होने एक हजार रुपये तुरन्त दे दिये। जिसके लिए आये थे, रुपये उसके पास पहुच गये। इस दान मे सेकसरियाजी को क्या मिलता था, उल्टे प्रभाव, समय और सम्पर्क साधने मे कुछ-न-कुछ व्यय के रूप मे उनका भी इसमे अशदान था ही। इसमे कल्मप का दाग तो कही नही है, पर एक्सरे मे तो दाग-धब्बा ही नही, नन्ही बूद भी उभर आती है। उनकी शोधशाला मे भी वह उभर आई। रुपया किसी से लिया, किसी को दिया। समाज मे प्रभाव पडा कि उनके कारण यह कार्य हुआ। इसे भी छोडे, पर जिसे रुपया दिया, उस रुपये से जिसके कष्ट का निवारण हुआ, वह प्रशसा करता है और उसे सुन कर जो सुख मिलता है, वह भी तो पाप है। इससे मुक्ति के लिये चिंतन की चेतावनी है कि मन की वृत्ति उस प्रशसा को सुन कर गौरव अनुभव करने की न हो, हो यह कि यह प्रशसा अपनी नही, उनकी है जिन्होने धन दिया। अपने तो निमित्त है और यह मान कर झुके रहे कि प्रभु की बडी कृपा है, जो उन्होने मुझे निमित्त बनाया इस सत्कर्म का, क्योकि लेने वाले को लेना ही था और देने वाले को यह देना ही था। सोचता हूँ, जो अपने प्रति इतना निर्दय है, वही तो सब के प्रति सदय हो सकता है

सुपरिचित हिन्दी अनुवादिका और नाट्याभिनेत्री एव निर्देशिका
हिन्दी मुहावरो की विशेष अध्येता

डॉ० (श्रीमती) प्रतिभा अग्रवाल

सदा-सजग जीवन

सन् १९४५ मे कलकत्ता आने पर पहला परिचय हुआ पूज्य बाबूजी से। वह परिचय कैसे दृढ से दृढतर स्नेह मे परिवर्तित होता गया, यह आनन्दपूर्ण अनुभूति का विषय है। और, उसका श्रेय बाबूजी को ही है। वे सहज ही अपने सम्पर्क मे आने वाले व्यक्ति को अपना बना लेते है।

इस लम्बे अरसे मे उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलुओ को निकट से देखा है। दूसरो का भला करने की उनकी आकुलता मुझे सब से अधिक छू सकी है। श्री शिक्षायतन कालेज मे अध्यापन के दौरान उनसे छोटे-बडे मसलो पर बहस हो जाना मामूली बात थी। वे बराबर यही कहा करते थे—"तुम लोग तब भी नियम कानून को पकड कर रखती हो, जब कि उसका खण्डन ही व्यक्ति के हित मे हो।" जरूरतमन्द के प्रति उनकी उदारता, कर्म के प्रति उनकी निष्ठा, अपने चारो ओर के जीवन के प्रति उनकी सजगता, नारी-उत्थान एव नारी-शिक्षा के प्रति उनका सहृदयतापूर्ण दृष्टिकोण और छोटेपन के प्रति क्षोभ व्यक्तिगत रूप से मुझे बहुत प्रिय है।

आज उनकी ८२ वी वर्षगाठ पर बाबूजी को मेरा आतरिक नमन और श्रद्धा-ज्ञापन। वे और बहुत बरसो हमारे बीच रहे, स्वस्थ एव प्रसन्न रहे, यही ईश्वर से प्रार्थना है और मैं उनका प्रिय काम कुछ कर सकू, यही कामना है।

—— ० ——

सुप्रसिद्ध उद्योगपति,
दानशील समाज-सेवी

श्री राधाकृष्ण कानोड़िया

असाधारण !

पूज्य सीतारामजी, जो १ मई, ७४ को ८२ वर्ष पूरे कर रहे हैं, साधारण व्यक्ति होते हुए भी इतने बडे कैसे बने, इसके मेरे विचार मे निम्न कारण है

सीतारामजी अत्यन्त परिश्रमी है। जिस कार्य को वे हाथ मे लेते है, उसे पूरा कर के ही रहते हैं, चाहे उसमे कितना ही श्रम या समय क्यो न लगे। उदाहरण के लिये महात्मा गाधी द्वारा सचालित आदोलनो के दौरान वे कब रात को घर आते थे और कब भोजन करते थे, इसका कोई पता नही रहता था।

सीतारामजी महात्मा गाधी और सेठ जमनालालजी बजाज के बहुत निकट रहे हे। अन्य बडे नेताओ से भी उनका काफी सम्पर्क था। वे अत्यन्त निर्लोभी स्वभाव के हैं। वे चाहते तो कभी भी मिनिस्टर बन सकते थे, पर पद के प्रलोभन से वे हमेशा दूर ही रहे। सीतारामजी को 'पद्मभूषण' की उपाधि मिली। यद्यपि उनकी इच्छा इसे ग्रहण करने की नही थी, लेकिन डा० राजेन्द्रप्रसाद के साथ उनका बहुत निकट का सम्बन्ध था और उनका कहना वे नही टाल सके।

सीतारामजी बडे ईमानदार है। वे पहले शेयरो की दलाली का काम किया करते थे और उनकी आय भी काफी थी। एक बार भवानीपुर के सराफ परिवार के एक सज्जन का सीतारामजी के मार्फत बहुत बडा सौदा खडा था, जिसका पता किसी को न था। अचानक उस सज्जन का देहान्त हो गया। श्मशानघाट मे सीतारामजी ने उसके पुत्र को सौदे के बारे मे बताया तो वह एक बार तो बहुत घबराया। सीतारामजी ने कहा—"घबराओ मत, उसमे बहुत मुनाफा हे। सौदा खडा है और तुम्हारे कहे बिना मैं उसे बराबर नही कर सकता।" उसने स्वीकृति दे दी। तब सीतारामजी ने सौदा बराबर किया। उससे सराफ के लडके को रु० २,२७,०००) मिले। उस समय इतनी रकम बहुत बडी समझी जाती थी। यह सन् १९२६-२७ की बात है। यह सारी बात मुझे सराफ परिवार के लडके ने खुद ने बताई। बाद मे सीतारामजी से पूछने पर मैंने इसे सही पाया।

सीतारामजी की सदैव यह इच्छा रही कि देश की हर लड़की शिक्षित बने। बाबू युगलकिशोरजी बिड़ला के सहयोग से जब बागतला लेन में मारवाड़ी बालिका विद्यालय खोला गया तो सीतारामजी घर-घर जाते और लड़कियों को पढ़ने के लिए प्रेरित करते। आज उनके द्वारा संचालित संस्थाओं में हजारों लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

ये गुण ही साधारण व्यक्ति को असाधारण बना देते हैं।

— ० —

समाज-सेवी और शिक्षा-प्रेमी,
श्री सीतारामजी के पुराने सहकर्मी

श्री गगाप्रसाद भोतिका

मातृ-हृदय

भाई सीतारामजी के साथ मेरा बहुत दीर्घ काल से घनिष्ठ सम्वन्ध रहा है। उन दिनो का स्मरण होने पर मुझे वडा हर्ष होता है जव हम सव मित्र गण मिल कर सामाजिक, राजनीतिक और शिक्षा सवधी कार्य किया करते थे।

भाई सीतारामजी को महिलाओ के उत्थान के कार्यों मे विशेष रुचि रहती थी। वे बहुत समय तक मारवाडी बालिका विद्यालय के मत्री रहे। जव उन्होंने स्वराज्य-आन्दोलन मे जेल-यात्रा की और मैं विद्यालय का मंत्री वना, तव भी जब कभी वे विद्यालय मे आते, बालिकाए मत्रीजी कह कर ही उन्हे सबोधन करती थी। इससे पता चलता है कि उनका बालिका विद्यालय से कितना प्रेम था। वाद मे श्री शिक्षायतन स्थापित हो जाने पर यद्यपि वे उसके मत्री नही रहे, पर उनका प्रेम विद्यालय से बरावर बना रहा।

महिलाओ के कार्य मे विशेष रुचि रहने के कारण ही जिन दिनो महिलाओ द्वारा विदेशी वस्त्रो की दूकानो पर पिकेटिंग की जाती थी, उसकी देखरेख का भार भी उन्हे ही सौंपा गया था।

अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हुआ मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वह उन्हे दीर्घजीवी बनावे।

—— ० ——

सुपरिचित समाज-सुधारक,
श्री सीतारामजी के अनन्य मित्र

श्री मोतीलाल लाठ

त्यागमय योग

'ज्ञान-वर्द्धनी मित्र मडली' नाम की जो सस्था वनी थी, उमी से हमारी मित्रता शुरू हुई थी, जो दिन-पर-दिन वढती ही गई। उसके वाद तो कलकत्ता के वडा वाजार मे, जहा मारवाडियो की ज्यादातर वस्ती है, कई सस्थाए वनी और समाज-सेवा और देश-सेवा का वहुत कुछ काम हुआ। उन सव कामो मे स्व० भाई वसन्त-लालजी मुरारका और भाई सीतारामजी सव से आगे रहा करते थे।

उस वक्त समाज रूढियो मे डूवा हुआ था, देश अग्रेजो का गुलाम था। इन दोनो को आजाद करने मे भाई सीतारामजी का पूरा त्यागमय योग था। वे कभी किसी भी सुधार-कार्य मे पीछे नही रहे, आगे ही आगे रहे। आज वे ८२ वर्ष के हो गए है। तव भी देश और समाज की सेवा मे वरावर लगे रहते हैं।

भगवान् उनको और लम्वी आयु प्रदान करे, जिससे हमारे देश और समाज को उनकी सेवा मिलती रहे।

—— ० ——

राष्ट्र-कर्मी और समाज-सेवी
श्री सीतारामजी के कर्मठ साथी

श्री मेघराज सेवक

अनगिनत सेवाएँ

आदरणीय सीतारामजी को लगभग ५७ वर्ष मे मै करीब से देखता आ रहा हूँ। उनके साथ, उनके सकेत पर सार्वजनिक कार्य भी करता रहा हूँ। मुझे सदा ही उनमे प्रेरणा मिलती रही है।

एक तरफ सीतारामजी सहज सरल व्यक्ति है तो दूसरी तरफ वे अपने सिद्धान्तो एव सकल्पो मे जिद्दी भी। कथनी और करनी मे बराबर मैने उन्हे खरा पाया। वे समाज-सेवी है, कर्मठ कर्मी हैं, सहृदय पर-हितकारी कार्यकर्ता है। मेरे लिए तो सब तरह से मार्ग-दर्शक है।

कलकत्ता के समाज मे सीतारामजी की सेवाओ की कोई गिनती नही है। देश और समाज के विभिन्न क्षेत्रो मे उन्होने जो और जैसा काम किया है, वह कभी भुलाया नही जा सकता। घूघट प्रथा का निवारण, मृतक-बिरादरी भोज का परिहार, बाल-वृद्ध विवाह का विरोध जैसे समाज-सुधार के कामो मे वे हर दम आगे रहे है। इसी प्रकार खादी-प्रचार का काम उन्होने अपने कन्धे पर खादी लादे घर-घर घूम कर किया है। इतना ही नही, उन्होंने अपनी धर्मपत्नी स्व० भगवानदेवी को भी सार्वजनिक काम करने के लिये प्रेरित किया।

मित्र-गोष्ठी से भारतीय सस्कृत ससद्, मातृ सेवा सदन से मारवाडी रिलीफ सोसायटी, मारवाडी बालिका विद्यालय से श्री शिक्षायतन की विकास-दूरियो को सीतारामजी ही तय कर सकते थे क्योकि उनमे अपनो को गले लगा कर काम करने और करवाने की ताकत और तरीका है।

मै सदा ही उनके दीर्घ जीवन की कामना रखता हूँ, रखता रहूँगा।

— ० —

श्री सीतारामजी की बड़ी पुत्री,
सुपरिचित समाज-सेविका

श्रीमती पन्ना देवी पोद्दार

आसक्ति और विरक्ति का विचित्र समन्वय

मेरा शैशव आपके वात्सल्य की छाया मे बीता है। आज आपकी ८२वी वर्षगाठ पर आपके साथ बिताए हुए दिनो की मीठी और कडुवी स्मृतिया मन को कई प्रकार के भावो से आपूरित कर रही है। आप सदा आदर्श के पूजक रहे। भक्ति-भाव मे चारो ओर से आखें बन्द कर के उस आदर्श तक पहुचने के लिये आप उसके पीछे ही तीव्र गति मे बहे। कर्मकाडी धर्म, समाज-सुधार, मातृ-पूजा तथा राजनीति मे आपका वही वेग रहा। आसक्ति और विरक्ति का विचित्र समन्वय आप मे रहा है—चाहे व्यवसाय के प्रति हो, चाहे राजनीति के प्रति और चाहे परिवार के प्रति हो।

मनुष्य जो कुछ प्राप्त करने के स्वप्न देखता है, उसी की उपलब्धि वह अपने निकटतमो मे भी देखना चाहता है। आदर्श के प्रति इस ममता के परिणाम स्वरूप आप दूसरो के प्रति तो कोमल रहे परन्तु अपने निकटतम परिवार वालो के प्रति अविचारी होकर भी अपने आदर्शो की रक्षा करने मे ही तत्पर रहें। परिवार वालो के, विशेष कर पत्नी के सहयोग और त्याग के बिना कोई पुरुष महान् नही बन पाता। मुझे हमेशा ही इसमे गौरव लगा कि मा आपके आदर्शो की रक्षा मे आप से भी अधिक तत्पर रही।

जो हो, आपकी उपलब्धिया सात्विक है, सुन्दर हैं, शुभ है। ईश्वर से यही कामना है कि आपका यही व्यक्तित्व सदा हमारा पथ-प्रदर्शन करता रहे।

—— ०——

श्री सीतारामजी की दौहित्री

श्रीमती भारती कानोडिया

प्रेरणा

त्वं वृधइन्द्र पूर्व्यो भूवरहिवस्यन्नुशने काव्याय।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वन पातम् ॥——ऋ० ६.२०.११

माता-पिता सन्तान के पालन-पोषण तथा सवर्धन मे महान् कष्ट उठाते है। उसकी निष्कृति किसी प्रकार नही हो सकती। अत अनन्य भाव से माता-पिता की सेवा और उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति करना सन्तान का प्रथम कर्तव्य है।

आज शैशव की मधुर स्मृतिया मुझे अपने कर्त्तव्य की याद दिला रही है। ममता और वात्सल्य के जिन सूत्रो से मै आप से जुडी हुई हू, उन पर मुझे अभिमान है। मेरा बचपन आपकी उगली थाम कर बडा हुआ। आपके साथ देखे चलचित्र जब-तब मानस-पट पर विभिन्न रगो की तूलिका से आल्हाद के कुछ चित्र अकित कर जाते है। आप से मिली प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रेरणाये मुझे जीवन मे सम्बल प्रदान करती रही है। जो कुछ आपने पाया, उसने आपको सब का पूजनीय बना दिया है। जो कुछ आपने खोया, वह आपको गभीर और उत्तरदायी बनाता गया है। ईश्वर के चरणो में मेरी यही विनती है कि आप चिरायु हो और निरन्तर इसी तरह ज्ञान-प्रसारण मे तत्पर रहे। आपका कर्म, आपकी वाणी, आपका ज्ञान सदा हमारा पथ प्रशस्त करता रहेगा। आज——

तुमको ही समर्पित चेतना, कर्म, वाणी,
भावनायें, कामनायें भी हृदय की;
ध्यान के कृश सूत्र में सित स्नेह गुफित,
तुम्हें ही सविनय समर्पित ॥

——'०'——

सुपरिचित समाज-सेविका,
बाल-मनोविज्ञान की विशेषज्ञा,
अभिनव भारती बाल मंदिर की संस्थापिका मंत्रिणी

श्रीमती ज्ञानवती लाठ

जागृति का इतिहास

प्रिय सिंघीजी,

आपने श्री सीतारामजी के सम्बन्ध मे व्यक्तिगत संस्मरण लिखने को कहा तो मानस-पटल पर पुरानी स्मृतियो की अनगिनत झांकियां चित्रवत् उभर आईं। स्मृतियो का ऊहापोह मन को खीच कर दूर ले गया उस काल मे, जब समाज मे न सिर्फ स्त्री, वरन् पुरुष भी सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक गुलामी की जंजीरो मे जकड़ित था। पूज्य ताऊजी के जीवन का इतिहास न सिर्फ मारवाड़ी समाज के विकास का, अपितु सारे भारत की जागृति का इतिहास है। कितनी जड़ता थी उस वक्त, कितनी चेतनता की स्फूर्ति है आज!

आज के व्यक्ति के लिए पर्दा-प्रथा, स्त्री-शिक्षा, बाल-शिक्षा आदि समस्याएं गौण है, किन्तु जिन्होंने अवरुद्ध मानस को स्वतंत्र करने और नया मार्ग प्रदर्शन करने की तात्कालिक प्रेरणा दी, वे महान् थे। याद आ रहा है, पर्दावाले घरो मे शादी के अवसर पर पर्दा-प्रथा के विरुद्ध सत्याग्रह के प्रथम दिन कैसा अपरिमित उत्साह था आप लोगो मे। तिलक और आरती की गई थी, जैसे रणक्षेत्र मे कोई योद्धा जा रहे हो। तब मजाक भी किया था मैंने—"वाह भाई, ऐसे सजे हो, जैसे महाराणा प्रताप अकबर से लड़ने ससैनिक युद्ध-क्षेत्र मे जा रहे हो। पर आज जब गंभीरता से सोचती हूं तो लगता है, विरोधी पक्ष के मध्य सत्याग्रह करना, आते-जाते वर-यात्री की गालियां-लांछनाएं सहन करना किस एटम बम से कम था? एटम बम बाहरी तत्वो को नष्ट करता है, तो लांछना और अपमान भीतरी तत्वो को।

चालीस साल पहले मैंने पूज्य सीतारामजी को पर्दा निवारक सम्मेलन के प्लैटफार्म पर पर्दा के विरुद्ध बोलते सुना था। उसी दिन किशोर मन पर ऐसी गहरी छाप पड़ी कि मां और दादी के लाख प्रयत्न भी मुझ से पर्दा नहीं करवा सके। और, आज जब मुझे किशोर अवस्था के बच्चो पर बोलने या लिखने का मौका मिलता है तो आंखो के समक्ष उस तेजस्वी वक्ता का चेहरा सदा घूम जाता

है, जिसने मेरी अवरुद्ध चेतना मे जागृति पैदा की थी। यही याद आती है जयशकर प्रसाद की कडिया—

विश्व की करुण कामना मूर्ति
स्पर्श के आकर्षण से पूर्ण
प्रकट करती जो जड मे स्फूर्ति।

न जाने मेरे जैसे कितने किशोर-किशोरियो के जड-सुप्त प्राणो मे उन्होने इसी प्रकार से स्फुरण पैदा किया होगा, अपने आदर्शो की दीप-शिखा से। चिन्तन करने पर लगता है, आधुनिक चेतना से पूर्ण और परम्पराओ के जर्जरित विचारो से मुक्त वे बिल्कुल स्वाधीन पुरुष थे। एक बार उन्होने जडवत् मानस को चेतना का स्पन्दित स्पर्श दिया, फिर तो महावीर के सार-वचन चरितार्थ होने लगे—"जो व्यक्ति आगे चल पडा, वह मजिल तक पहुच ही जाता है।"

'व्यक्ति एक सीमा तक ही अपने नियत्रण मे है, फिर तो वह यत्रवत् चलता है। प्रत्येक उत्थान-पतन मे यही मनोवैज्ञानिक सत्य है। सुसुप्त प्राणो को "उठ जाग" का सदेश देकर जागृत करने वाले आप लोग कितने थे? पर चिर नियम है कि विकास के कर्णधार होते हैं कुछ ही तेजस्वी व्यक्ति, जिनके विद्रोह का स्पन्दन स्पन्दित करता है समाज के सुप्त प्राणो को, जिनकी विद्रोही आवाज मे झकृत हो उठता है सारा वातावरण। यह परिवर्तन प्रत्येक युग का धर्म है। मैं सीतारामजी को परिवर्तन के स्रष्टा के रूप मे मानती हू और स्नेह-सिक्त भाव से उनका आदर करती हू।

याद आ रहा है कि जब उनके बालीगज स्थित निवास-स्थान पर मिलने गई तो उस शुभ्र-कान्तिमान सौम्य व्यक्ति ने प्रभासिक्त आखो से सुमधुर भाषा मे प्रश्न किया—"तुम क्या पढती हो?' पहला प्रश्न यही था। कितनी गहरी थी उनके मन मे स्त्री-शिक्षा की भावना। फिर पूछा—"किससे पढती हो"। "कहा पढती हो", यह भी पूछा। मेरे यह कहने पर कि "बरामदे मे पढती हू", उनकी जो प्रतिक्रिया हुई, उसे ले कर उन्होने 'अग्रवाल' मासिक मे स्त्री-शिक्षा पर एक लेख लिखा। उसमे दर्द-भरे शब्दो मे लिखा था—"एक बालिका के लिए पढने का अलग कमरा क्यो नही है?" आज के युग मे तो यह सामान्य विचार है कि बच्चो के लिए पढने के कमरे अलग हो, पर उस जमाने मे लडकियो की बात तो अलग, लडको के लिए भी घर मे पढने का कोई नियत स्थान नही होता था।

एक दिन मारवाडी बालिका विद्यालय के हाल मे मन्नोदेवीजी की अध्यक्षता मे सभा हुई नारी-जागरण पर। उसमे भी ताऊजी को सुना। मुझे अनुभव हुआ कि नारी-स्वतत्रता को वे अपने जीवन का लक्ष्य मानते हैं। मैंने जहा तक समझा है, उनकी दृष्टि मे स्त्री-स्वतत्रता मात्र नई पीढी का प्रतीक नही, परन्तु एक चिर-कालिक वास्तविकता है। वे मानते रहे है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, एव सास्कृतिक उन्नति के लिए स्त्री के स्त्रीत्व को जीवन के वास्तविक मूल्यो के साथ

प्रतिष्ठित करना अत्यन्त आवश्यक है। उन्होंने विचार किया कि स्त्री ऐसी दुर्दशा मे क्यो है, शरीर से कोमल होते हुए भी हृदय से विस्तारी और शक्तिशालिनी नारी-जाति क्यो और कैसे पग बन गई? ऐसी मा कहा से शौर्यशील सन्तान का निर्माण कर सकेगी? मथन चला, सत्य पैदा हुआ—स्त्री का अपमान मानव-जाति का अपमान है। उसकी निर्बलता पुरुष को क्षीण कर के समाज को पग बनाती है। अगर स्त्री का जीवन इस प्रकार बधा रहेगा तो समाज कभी भी उन्नति नही कर सकता। जहा नारी की यह अवस्था है वहा कभी भी शक्तिशाली पुरुष नही पैदा हो सकते। समाज को शक्तिशाली बनाने के लिए शक्तिशाली और मेधावी स्त्रियो की आवश्यकता है।

सीतारामजी भावुक कलाकार है। प्रत्येक कलाकार अपनी अनुभूतियो की गहराई से निर्मित करता है अपनी प्रतिभा। सीतारामजी की कलात्मक भावना ने न सिर्फ नारी-जागरण को गतिमान किया, अपितु उसमे प्राण भरने की चेष्टा भी की। स्त्री-चरित्र के अर्थ को उन्होने ठीक अर्थ मे समझ कर कर्मठ पुरुष की तरह उसे रचनात्मक प्रवृत्तियो मे लगाने का उत्साह दिया।

अभिनव भारती बाल-मन्दिर की स्थापना की कल्पना हुई तो सब से पहले उनका आशीर्वाद लेने की इच्छा हुई। आशीर्वाद के साथ उनका हृदय ही मिल गया। वे खूब उत्साह और सहारा देते गये। छोटी से छोटी उपलब्धि को सराहना और बडी से बडी भूल को माफ कर देना तो मानो उनका स्वभाव ही बन गया है। कार्य-कारिणी समिति ने न जाने कितनी भूले की, यहा तक कि प्रथम बार जब मिनिट बुक भी न लिखी जा सकी, तो हस कर कहा—"कौन सीख कर आता है? काम करते-करते सब आ जाता है, काम ही सिखाता है।" आज भी जब कोई लडकी अपने काम की भूलो को बहुत ज्यादा महसूस करती है तो मै ताऊजी के ऊपरोक्त शब्द दुहरा देती हू। बाल-मन्दिर के काम मे उन्होने हमे सदा ही गीजू भाई की तरह प्रेरणा दी। आज भी उनका आशीर्वाद हमारे साथ है।

पूज्य ताऊजी ने मारवाडी बालिका विद्यालय, मातृ सेवा सदन, श्री शिक्षायतन, आदि के लिए लाखो रुपये इकट्ठे किए, किन्तु सब से कठिन चन्दा उनके लिए अभिनव भारती के थियेटर हाल के निर्माण का था। मई का महीना। हम प्रत्येक माता-पिता के घर रुपये इकट्ठे करने जाते थे। तपतपाती गर्मी। चार-पाच मजिल का चढाव। पसीने मे तरबतर। फिर भी दो रुपए का, ग्यारह रुपए का चन्दा उनको इतनी खुशी देता था जैसे किसी ने पाच हजार रुपए दिए हो। मै जब कहती—"ताऊजी, आपको बहुत ही कष्ट हो रहा है।", तब उत्तर देते—"अरे पगली, मै तो खादी का गट्ठर सिर पर लादे दो-दो रुपयो की खादी बिक्री करने घर-घर जाता था। ये माता-पिता कितना सम्मान, कितनी ममता दे रहे है, जहा बडे कहलाने वाले लोग तो कई बार मुह पर दरवाजा बन्द कर लेते है। काम मे कष्ट कैसा?"

आपकी कलाप्रियता का मूर्त रूप है सगीत श्यामला। कितना उत्साह, कितना प्रोत्साहन दिया उस काल मे उन्होने इसकी स्थापना में। उस समय नृत्य-सगीत

के नाम से लोग लाठी मारने आते थे। जगह-जगह आलोचना, जगह-जगह पर्चेबाजी। ताऊजी और श्री भागीरथजी न होते तो संगीत और नृत्य की इस संस्था का निर्माण मुश्किल ही था।

इस प्रकार स्त्री-स्वातंत्र्य और बाल-शिक्षा के जिस बीहड़ मार्ग पर मैं चली हूं, चल पाई हूं, उसके विषय में जब कभी सोचने बैठती हूं तो ताऊजी से मिली प्रेरणा, प्रोत्साहन, पथ-प्रदर्शन के कितने प्रसंग सहज ही स्मृति-पटल पर उभर आते हैं। क्या लिखूं, कितना लिखूं? लिखा जो लिखने में आ गया, अनलिखा जो मन में ही उठता-उतराता रह गया। सब का स्वर एक ही है—ताऊजी के जीवन का अणु-अणु स्वयं आशीर्वाद है। यह वरद आशीर्वाद सदा ही बना रहे, यही मेरी, मेरी जैसी हजारों-हजारों बहिनों की हार्दिक कामना है।

आपकी,
ज्ञानवती

—— ० ——

सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि,
सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति

डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'

धन्यवाद !

जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला,
उस-उस राही को धन्यवाद।

जीवन अस्थिर, अनजाने ही
हो जाता पथ पर मेल कहीं,
सीमित पग-डग, लम्बी मंजिल
तय कर लेना कुछ खेल नहीं।

दाएँ-बाएँ सुख-दुख चलते,
सम्मुख चलता पथ का प्रमाद,
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला
उस-उस राही को धन्यवाद।

साँसों पर अवलम्बित काया
जब चलते चलते दूर हुई,
दो स्नेह-शब्द मिल गए, मिली
नव, स्फूर्ति थकावट चूर हुई।

पथ के पहचाने छूट गए
पर साथ-साथ चल रही याद
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला
उस-उस राही को धन्यवाद।

जो साथ न मेरा दे पाए
उनसे कब सूनी हुई डगर,
मैं भी न चलूँ यदि तो क्या,
राही मरे लेकिन राह अमर।

इस पथ पर वे ही चलते हैं
जो चलने का पा गये स्वाद,
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला
उस-उस राही को धन्यवाद।

कैसे चल पाता, यदि न मिला होता, मुझको आकुल अन्तर?
कैसे चल पाता यदि न मिलते चिर-तृप्ति अमरता-पूर्ण प्रहर?
आभारी हूँ मैं उन सब का, दे गए व्यथा का जो प्रसाद
जिस-जिस से पथ पर स्नेह मिला, उस-उस राही को धन्यवाद।

—— ० ——

द्वितीय खण्ड

जीवनी

जीवनी-लेखन का कार्य बड़ा दुरूह होता है, चाहे व्यक्ति स्वय लिखे, चाहे दूसरा कोई लिखे। जहा स्वय-लेखन मे सकोच के कारण अपूर्णता रह जाती है, वहा दूसरे के लेखन मे अतिशयोक्ति की सम्भावना होती है।

श्री सीतारामजी ने अपने भाषणो मे, लेखो मे और डायरियो मे बहुत कुछ कहा-लिखा है, परन्तु अपने जीवन की घटनाओ एव परिस्थितियो के बारे मे लगभग नहीं के बराबर ही। उनके पास सस्मरणो की अपार सम्पदा है। जो सस्मरण उन्होने लिखे है, और जो वे बातचीत के मध्य बताते रहते हैं, वे बहुत ही रोचक और प्रेरक होते हैं। काश इसी प्रकार वे अपने जीवन की घटनाओ के बारे में कहते-लिखते। परन्तु इस मामले मे उनका सकोच कुछ विशेष ही है। अपने अभावो और उपलब्धियो तथा सफलताओ और असफलताओ के बारे मे वे सोचते तो अवश्य ही होगे, परन्तु आत्म-साक्षात्कार के एकाकी एव अन्तरग क्षणो मे भी उनके बारे मे कहीं भी उन्होने कुछ लिखा नहीं है। डायरी लिखते समय जब कभी आत्म-साक्षात्कार के क्षण आये, तब भी उन्होने अधिकतर अपनी दुर्बलताओ, त्रुटियो और असफलताओ का आत्म-विश्लेषण कर पश्चात्ताप करते हुए प्रभु से उनको दूर करने की प्रार्थना के साथ ही छोड दिया है।

इस स्थिति मे उनकी जो जीवनी यहा प्रस्तुत की गई है, उसमे कुछ छूट गया हो, कुछ बढा कर कह दिया गया हो, यह सम्भव है ही। वैसे, जो कुछ बातें उनसे सुनी गई, उनके मित्रो से पूछी और जानी गई तथा उनकी डायरियो में से छान कर ढूढी जा सकी, उनके आधार पर ही यह जीवनी लिखी गई है। यदि इसमें कोई त्रुटि, अभाव या अतिशयोक्ति रह गई है तो उसके लिए हम उनसे तथा पाठको से क्षमा चाहते हैं।

जीवनी के लिये सामग्री-सकलन मे कुमारी कमला शास्त्री और श्री निर्मलकुमार श्रीवास्तव से जो सहयोग मिला है, उसके लिए हम उन दोनो के आभारी हैं।—सम्पादक

जीवन-वृत

स्थान और स्थिति :

राजस्थान के जिस अचल को शेखावाटी कहा जाता है, उसका नाम सारे भारतवर्ष मे फैला हुआ है। वहा के वैश्य समुदाय के लोग सैंकडो वर्ष पूर्व जीविकोपार्जन के लिये व्यापार-व्यवसाय की खोज मे जिस प्रकार साहस पूर्वक कठिनाइयो को झेलते हुए और बाधाओ को पार करते हुए देश के कोने-कोने मे गये तथा अपनी हिम्मत, सूझ-बूझ, परिश्रम, चरित्र, चातुरी, सादगी, मिलनसारिता और कष्ट-सहन की क्षमता से वहा व्यापार जमाने मे सफल हुए, उसका एक अपना इतिहास है। जहा इस समुदाय के हजारो-हजारो लोगो ने व्यापार-व्यवसाय और उद्योग-धधो का विकास कर धन-सम्पदा बढाने मे ही सिद्धि-प्रसिद्धि अर्जित की, वहा बहुत थोडे से लोगो ने ही राष्ट्र और समाज की सेवा के इतिहास मे विशिष्ट स्थान अर्जित किया। ऐसे लोगो मे सब से ऊपर नाम है स्वर्गीय सेठ जमनालालजी बजाज का और उसके बाद जो दूसरा नाम आता है, वह है श्री सीतारामजी सेकसरिया का। इन दोनो विशिष्ट पुरुषो ने मारवाडी समाज की उन्नति और विकास के कार्यो से आरम्भ कर देश-व्यापी जागृति, सुधार, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सम्बन्धी सभी आदोलनो मे सक्रिय भाग लिया—अपना सब कुछ त्याग कर समाज और देश की सेवा मे ही अपने को अर्पित कर दिया। स्वर्गीय श्री जमनालालजी सीकर के निवासी थे और श्री सीतारामजी नवलगढ के।

जिस नवलगढ का नाम आज भारतवर्ष के बडे-बडे उद्योगपतियो की जन्मभूमि के रूप मे प्रसिद्ध है और इस सन्दर्भ मे जिसका नाम भारतवर्ष के बाहर भी पहुच चुका है, उसी की कोख से श्री सीतारामजी जैसा त्यागी और सेवा-समर्पित व्यक्ति भी पैदा हुआ। वहा के एक साधारण अग्रवाल परिवार मे १ मई सन् १८९२ मे इनका जन्म हुआ था।

पारिवारिक पृष्ठभूमि और बाल्यकाल :

पितामह वृद्धिचन्द्रजी तीन भाई और दो बहिन थे। वे ही सब से बडे थे। बडे उदारमना और कर्मठ व्यक्ति। गाववालो पर उनकी दया और बडप्पन का बडा सिक्का था। उस समय जब कि पास के गावो की यात्रा भी कठिन थी, विदेशो की बात तो कोई सोच भी नही पाता था। तभी दादाजी ने चीन की यात्रा की। अढाई-तीन वर्ष तक वहा रहे। उन दिनो के हिसाब से प्रचुर सम्पत्ति अर्जन कर लौटे। वे सब के शुभचिन्तक थे, किसी का भी काम निकालने के लिये

वे सदा उद्यत रहते थे। बन्धु-बान्धवो और इष्ट-मित्रो की भलाई के अनेक कार्य उन्होने स्वय हानि सह कर भी किये थे। कैसे उन्होने एक सुनार की हवेली गाव के ठाकुरो के निषेध पर भी अपने नाम मे बनवाई और ठाकुर का क्रोध भडकने पर अपने शान्त स्वभाव और सुन्दर तर्को द्वारा उसे भी जीत लिया। दृढ निश्चयी वे इतने थे कि उनका जो मन होता, वही किया करते। किसी से प्रभावित न होना और सर्वदा दया करना ही उनकी आदत थी। उनकी नेकनीयती ही सेकसरिया परिवार की प्रतिष्ठा का कारण बनी। छत्तीस वर्ष की अल्प आयु मे ही उनकी मृत्यु हो गई। उस समय उनके एक मात्र पुत्र (सीतारामजी के पिता) श्री नथमलजी अढाई वर्ष के ही थे।

दादी भी ममता और शील की प्रतिमूर्ति थी। तेज बोलना तो वह जानती ही नही थी। सब से मधुर भाषण और विनम्र व्यवहार के कारण वह भी अपने पीहर और ससुराल मे सब की प्रिय पात्रा थी। गाव मे उनकी सब से पटती थी। मा का स्वभाव जरा तेज होने पर भी बालक सीताराम ने उन दोनो मे कभी अनबन नही देखी। ऐसी थी दादी जिसकी एक मात्र छत्र-छाया बालक सीताराम पर रही। खाना नही खाने पर मा बिगडती तो बालक दादी की गोद मे छिप जाता। इस प्रकार सरल, स्नेही, कोमल-चित्त दादी पौत्र को सिर पर चढाये रखती। वे जब गोपीनाथजी के मदिर जाती तो बालक सीताराम भी उनकी उगली पकड कर साथ जाता। कथा-वार्ता और स्नान-ध्यान सब मे दादी-पौत्र का साथ रहता। ६० वर्ष की उम्र मे वे भी परलोक-गत हो गई।

बालक सीताराम तब सात वर्ष का था। दादा-दादी के गुण और स्वभाव का उस पर गहरा असर पडा था। उनकी बातें मन मे बडी गहरी पैठ गई थी। बचपन ही तो था, कोई चीज क्या अर्थ रखती है, यह समझ तो कितनी होती ? जो हो, जो बाते देखी और सुनी, उनकी एक स्वाभाविक क्रिया-प्रतिक्रिया जरूर अन्दर ही अन्दर होती रही, जिसने परवर्ती जीवन मे अनेक मोड दिये।

पिता भी अपने ढग के विशेष व्यक्ति थे। मुक्तहस्त-खर्च और पर-सेवा की धुन के कारण वे न कमा पाते, न बचा पाते। मशहूर सीकरिया हलवाई के लड्डू गाव भर के बच्चो मे बाटा करते, अभावग्रस्तो को कपडे सिलवा कर दिया करते। यह उनकी शाही आदत थी। कलकत्ता आये तो कमाने के लिये, किन्तु प्लेग की महामारी से ग्रस्त एक परित्यक्त रोगी की सेवा करते हुए उन्होने जीवनमुक्ति पा ली। बालक सीताराम की आयु उस समय पौने-नौ वर्ष की थी।

बडी सुन्दर, बडी नाजुक मा और दुबला-पतला कोमल-सा सुदर्शन बालक सीताराम अब ससार मे अकेले रह गये। कुटुम्ब के लोग अलग रहते थे और उनसे सम्बन्ध भी विशेष नही थे। सत्ताइस-अट्ठाइस वर्ष की सुकुमार मा, जिसे दादी हमेशा पलग पर बिठाये रखती और घर का कोई काम नही करवाती तथा बालक जिसने दादा, दादी और पिता के स्नेह-सरक्षण मे ससार की रुक्षता और कटुता का अनुभव ही नही किया, दोनो पर यह मृत्यु वज्रघात-सी हुई। मा का अकेलापन दूर करने के लिए लोगो ने बालक के विवाह की बात सुझाई ताकि मन

अन्य बातो मे लगे, सान्त्वना मिले, सहारा हो। इस बात का असर हुआ और मा पूरे मनोयोग से बालक के विवाह की तैयारी मे जुट गई। दस वर्ष का ही था बालक, जब एक साढे-नौ वर्ष की कन्या से उसकी सगाई हो गई।

नियति-चक्र कुछ ऐसा ही था कि बालक सीताराम को अल्पायु मे ही संसार के कई दुखद सत्य देखने पडे। वह दिन बालक के हृदय मे चुभ कर रह गया, जब मा भावी बहू के लिए कपडे तैयार कर रही थी कि शाम के वक्त अचानक उन्हे लकवा मार गया और वे बेहोश होकर गिर पडी। छह दिन वैसे ही रही। सातवे दिन बालक को अनाथ छोड वे सदा के लिये चली गई।

अभाव और अभाव :

बालक अब बिलकुल अकेला, अनाथ, असहाय। थे कुछ दूर के रिश्तेदार, जिन्हे वह पहचानता भी मुश्किल से। लाड-प्यार मे पले बालक को एक के बाद एक हुई इन शीघ्र मृत्युओ ने खूब परखा। पर इन्ही से आगामी सघर्षो की भूमिका बनने लगी।

प्रश्न उठा—रहे कहा? नानाजी अच्छे व्यक्ति थे, इसलिए इच्छा थी उनके साथ रहने की, पर कुटुम्बियो के लिये यह परिवार की प्रतिष्ठा का विषय बन गया कि बालक ननिहाल मे न रहे। फलत दादा के सब से छोटे भाई के पास रखा गया। भावी ने यहा उनके धैर्य, सहन-शक्ति और विनम्रता की खूब परख की। वहा रहते हुए बालक का जीवन सुखद नही हुआ पर उद्दड भी नही हो पाया क्योकि दादी के अनिवार्य गुण उसमे थे—विनय और शील, जिनके कारण वह हमेशा एक अच्छा लडका माना जाता रहा।

पुन विवाह की जल्दी की गई। यह आशका थी कि मातृ-पितृ विहीन बालक को कौन पुत्री देगा! सगाई टूटने का अपनी भय था। फलस्वरूप तुरन्त ही करीब साढे दस वर्ष की उम्र मे विवाह हो गया। पत्नी आठ महीने छोटी थी। विवाह क्या होता है, यह समझने लायक उम्र नही थी, पर कुछ सुनी-सुनाई बातो को लेकर एक कौतुक अवश्य था। कवर-कलेवा, जुआ, कगन खोलना, सोट-सोटिये के खेल आदि मे बालक का मन खूब रमा। उस अवसर पर गाये जाने वाले बधावे, मीठी गालिया, मगल-गीत बडे अच्छे लगे। विवाह हो गया। बहू घर आ गई और चली भी गई। एक परिपाटी पूरी हुई। पति की बाल्यावस्था और स्वतत्र आवास की सुविधा न होने के कारण बहू अपने पीहर ही रहती।

इन्ही दिनो शिक्षा भी साथ-साथ चलती रही। गुरु हिन्दी और हिसाब-किताब सिखाया करते थे। एक अध्यापक और थे, जिनके पास ये अपनी रुचि से धर्म-ग्रन्थो को पढने की योग्यता प्राप्त करने के लिये सस्कृत सीखने जाया करते थे। एक मिडिल-पास मास्टर बाहर से आया था जो इक्कीस रुपये की दक्षिणा पर अग्रेजी का विद्वान् बनाने का आश्वासन देता था। उसके पास भी ये गये। कुल मिला कर जो शिक्षा बालक सीताराम प्राप्त कर पाया, वह साधारण ब्याज तक का

हिसाव, तार पढने लायक अग्रेजी, छापे और हाथ की लिपि की काम-चलाऊ हिन्दी ही।

पाठशालाओ मे मार वहुत पडा करती थी। वालक सीताराम पढने मे तेज माना जाता था क्योकि उसे मार कभी नही पडी। कुछ उसमें विनम्र और मधुर स्वभाव का भी कारण था। वह गाव भर का प्रिय लडका था। अपने काम को सुन्दर रूप से पूरा करने की धुन उसमे आरम्भ मे ही थी। एक बार साप्ताहिक परीक्षा के लिये रात्रि को दो वजे ही उठकर गुरु के घर चल पडा क्योकि पाठ सुना कर शावाशी पाने, प्रथम आने की लगन थी। घडी नही थी। उत्साह और धुन मे समय का ज्ञान न रहा। अन्य प्रतिभाशाली छात्र-मित्र के साथ जव यह गुरु के घर पहुचा तो छत पर कोई परछाई-सी चलती दीखी। दोनो डर मे दुवक कर वैठ गया और परछाई को अपनी ओर आती देख कर 'भूत है' कहते-कहते वेतहाशा भागा।

शिक्षा-समापन पर वे प्रथम तो नही, द्वितीय आये। उस जमाने की सर्वोच्च शिक्षा—"कटवा व्याज" का हिसाव—परिस्थितियो वश नही हो पाई। उसका उनको सदा अफसोस ही रहा। पाठशाला की पढाई-लिखाई के पश्चात् उन्होने सेठ चोखानी की गद्दी मे जा कर कुछ दिनो हिसाव-किताव का अभ्यास किया।

धर्मोन्मुखता :

नितान्त अभाव की परिस्थितियो ने मन पर वडा असर डाला। ससार रज्जु मे सर्प के भ्रम के समान ही मिथ्या लगने लगा। एक सत्य, एक लक्ष्य ईश्वर ही रह गया। उनके दर्शन की इच्छा ही जीवन की चरम लालसा वन गई। सारे कार्य, सारे व्यवहार, उसी के प्रयत्न मे होने लगे। दिन मे त्रिकाल-स्नान, सन्ध्या-वन्दन-पूजन। सूर्योदय पूर्व तारक छाया मे कुए पर स्नान कर गायत्री जाप करते, जल लेकर घर आते, पाठ-पूजा कर मदिर जाकर शिव-अभिषेक करते। दोपहर मे जाप होता। महाभारत, मनुस्मृति, कार्तिक महात्मा, योगवाशिष्ठ जैसे अन्य अनेक ग्रन्थ पढते, उनकी चर्चा करते। शास्त्रो के महान् पात्र वडे अच्छे लगते। उनका मन पर वडा असर पडता। लगता शास्त्रो की सारी वाते सच है, ईश्वर की वाणी है। अत उसी को जीवन मे उतारने का प्रयत्न करते। सध्या मदिरो मे आरती एव कीर्त्तन मे कटती। नौ-दस वजे तक जव वह क्रम समाप्त होता तो कुछ देर मदिर के वाहर वैठ कर ग्राम-ससार की वाते (गपशप) होती।

वालक सीताराम मे वचपन से ही झूठ न वोलने का सस्कार था। एक साधु गाव मे आया हुआ था। वह वस्त्रहीन रहता था। उसके ज्ञान और ब्रह्मचर्य ने जिज्ञासु वालक को वडा आकर्पित किया। वह ऐसे किसी सत्गुरू की तलाश मे था ही, जो उसे ईश्वर का दर्शन करा सके। उसने साधु से भगवान् का दर्शन कराने की याचना की। साधु ने आश्वासन तो दिया किन्तु यह भी कहा—'उसके लिये और भक्ति करो– योग्यता अर्जन करो'। उसने यह भी वताया कि राम और कृष्ण ही भगवान् नही है, भगवान् उनसे भी कुछ और ऊपर है, कुछ और वडे

हैं। सरल प्रकृतिवाले विश्वासी बालक ने इसे स्वीकार कर लिया। फिर तो बडी शुद्ध लगन और नियम से भक्ति करता और इसी बात की चर्चा करता। गाव मे डाक बटने पर सब लोग एकत्रित होते और बातचीत किया करते। उसी जगह जब उसने इस नई सीखी हुई बात को दृढतापूर्वक कहा तो लोगो ने उसे आर्य-समाजी, आधुनिक, भ्रमित इत्यादि कह कर रोप प्रकट करना शुरू किया। बालक डरता क्यो? उसे तो साधु महाराज ने ज्ञान दिया था। अत उसने कहा--"साधु महाराज यही कहते है। उनसे पूछ लीजिये।" उस भरी सभा मे उपस्थित होकर वह साधु अपनी कही हुई बात से इकार कर गया। अन्ध-विश्वासी पर भक्त किशोर सीताराम के मन मे इस बात से गहरा झटका लगा। उसे लगा—यह साधु झूठा है और जो स्वय झूठा है, वह ईश्वर के दर्शन क्या करायेगा! बस, साधु-सन्तो के प्रति अध-श्रद्धा का जो अध्याय आरम्भ हुआ था, वह इस एक घटना से ही समाप्त हो गया।

स्नेह की रिक्तता और दु ख के कारण मन फिर भी ईश्वरोन्मुख ही रहा। अत धार्मिकता चालू रही। गोपीनाथजी के मन्दिर का बडा ऊचा और सुन्दर शिखर देख कर ही हृदय नत हो जाया करता। शिव-मदिर मे ब्राह्मण वर्ग के अलावा कोई नही जा पाता था, इसलिये भक्त बालक वातायन से झाँक कर ही दर्शन करता। रामदेवजी (जो चमारो के देवता माने जाते थे) के मेले मे सब मे बडे प्रेम से मिलता, उत्सव मनाता किन्तु मेले के बाद फिर उन्ही अछूत समझे जाने वालो को छूने से परहेज रखता। छू जाय तो स्नान करता। भूल से भी अगर झूठ निकल जाता तो एक गायत्री-माला जप कर प्रायश्चित करता। यहा ज्ञान-अज्ञान का प्रश्न नही था, बस, जीवन को शास्त्र-सम्मत शुद्ध बनाने का प्रयत्न था। शास्त्र की बातें अटल लगती थी, सच्ची लगती थी। चमडे का जूता न पहन कर खडाऊ पहनता, काली किनारी की धोती नही पहनता क्योकि उसमे नील लगती और नील मे जीव-हत्या होती थी। चूल्हे मे जो लकडी जलाई जाती, वह धो कर व्यवहृत होती, चौके में यदि बिल्ली घुस आती तो रसोई भ्रष्ट समझ ली जाती क्योकि बिल्ली मासाहारी जीव थी। ऐसी बाह्य शुचिता, ऐसा आतरिक अध्यात्म। वेद-शास्त्र की चर्चा, रामायण आदि धर्म-ग्रथो का पाठ ही जीवन था।

किशोरावस्था

इस प्रकार बारह से अठारह वर्ष तक की किशोरावस्था साधारण बच्चो की तरह खेल-कूद, लौकिक अनुराग-विराग मे न बीत कर कडे नियमो की शृखला मे बधी ईश्वर को पाने के प्रयत्न मे बीती।

वह प्यार जो दादी एक झलक दिखा कर लुप्त हो गई, वह लाड जो माँ ने दिया, वह स्नेह और आत्मीयता जो पिता से प्राप्त हुई, सब इतना ज्यादा था कि उनका अभाव अन्य किसी वस्तु से पूर्ण नही हो सका। वही जब बलात् छीन लिया गया तो बचा ही क्या था सिवा भगवान के, जो सब का सहारा है, सब का अपना है। अपने कहलाने वाले लौकिक लोग यह कैसे स्वीकार कर लेते

कि संरक्षण-हीन उस बालक पर उनका कोई अधिकार है, या उसका उनके प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं। फलस्वरूप बालक गीताराम को अनेक निन्दा-स्तुतियों का सामना करना पड़ा। एक वैश्य बालक का व्यापार से वंचित रहना, अर्थोपार्जन न कर सकना बहुत ही बुरा समझा गया और हर तरह से दबाव दिया जाने लगा कि वे अर्थोपार्जन का कोई कार्य करें, जब कि स्वयं बालक का विचार यह था कि "नानाजी के पास जमा दादा की रकम के ब्याज के सात रुपये हर महीने मिलते हैं और खर्च दस रुपये का ही है। भगवान् किसी तरह बस तीन रुपये का और प्रबन्ध कर दे तो जीवन शांतिपूर्वक भजन-पूजन में बिताया जा सके।"

इस तरह उनकी किशोरावस्था धर्मोन्मुख होने के कारण अन्य किशोरों से बिलकुल भिन्न रही। मन पर सदा ही धर्म-ग्रन्थों तथा विद्वानों के उपदेशों और भाषणों का सात्विक प्रभाव रहता। हर सुन्दर स्त्री को देख कर मा की याद आती और मन निष्कपट स्नेह और श्रद्धा से झुक जाता। जब उनकी अवस्था के अन्य किशोर, खेल-कूद आदि में समय बिताते तो यह किशोर एक वृद्ध सज्जन के पास बैठ कर रामचरित मानस का पाठ सुनता। होली एवं अन्य अवसरों पर जब दूसरे बच्चे गन्दी-गन्दी गालियाँ देते, मजाक करते तो यह किशोर संस्कृत ग्रंथों से चुन-चुन कर रोज नियम-पूर्वक एक श्लोक याद करता और उसे अपने एक मित्र को सुना कर घर आता।

उस दादा के यहा कोई तीन-साढ़े तीन साल तक रहना पड़ा। तत्पश्चात् कुछ योग्य और बड़ा हुआ समझ कर नानाजी ने उसे फिर अपनी पुरानी हवेली में ला कर बसा दिया। एक दूकान भी करा दी। वह चूकि काम करने मे असमर्थ माना जाता था, अत दूकान साझे की हुई। वे दूकान पर जाते-बैठते पर यहाँ भी दया-धर्म व्यापारिकता पर हावी हो जाता। दूकान के बाहर अनाज पड़ा रहा करता। गाय आकर खाती तो हटाते नही लेकिन साझेदारों के डर से उठ कर अन्दर चले जाते, जैसे कुछ देखा ही न हो। ज्यादा दिनो तक इस प्रकार चलना असभव था। दूकान मे घाटा लगने लगा और कुछ मन भी नही लगा। अत लोगो को प्रमाण-पत्र मिल गया कि यह लड़का काम कर ही नही सकता। बनिये के बेटे के लिये व्यापार न कर पाना अति लज्जाजनक बात हुई।

गृहस्थी और संघर्ष :

इतनी बड़ी पैतृक हवेली मे अकेले ही रहते। पत्नी यद्यपि घर के कार्यों मे बड़ी होशियार थी, किन्तु सारी व्यवस्था ठीक न होने के कारण अधिकतर अपने पिता के घर ही रहती। बचपन के लाड-प्यार और सारे दिन खाने के ही आग्रहो के कारण खाने-पीने की कुछ राजसी आदते पड़ गई थी और यहा समस्या हुई कि खाना कौन बनावे और कई बार तो क्या बनावे, यह भी समस्या उठ खडी होती क्योकि घर में कोई सामान ही नही होता। ऐसी ही परिस्थितियो में भूख की व्याकुलता पर पकी निम्बौलिया खा कर भी काम चलाया और

जाले साफ करके महीनों पुराने लड्डू भी खाये। जिस बालक ने बचपन मे अभाव जाना ही न था, जिसे ज्यादा और अच्छा खाने के लिये परेशान कर दिया जाता था, न खाने पर मा तो मारती भी, उसी ने परिस्थितियो के बदलने पर उन्हें इतनी शातिपूर्वक स्वीकार किया कि उसे वे छह महीने पुराने लड्डू और निम्बौलिया भी बडी स्वादिष्ट लगी और काम चल गया। कोमल शरीर, राजसी खान-पान की आदते! फिर, खाना बनाना न जानने के कारण उल्टा-सीधा काम चलाने को स्वास्थ्य बरदाश्त नही कर पाया। जब भयकर टाइफाइड ने उन्हे आक्रात कर लिया, इक्कीस दिनो तक क्या हुआ, उन्हे ठीक होश ही नही रहा।

वह जीवन अनेक उथल पुथल और सघर्षो का था। किशोर सीताराम आगामी बडे सघर्षों और परिवर्त्तनो के लिये तैयार हो रहा था। बचपन में उसने नितान्त सम्पन्नता जानी। दादा द्वारा चीन से लाये साटिन के ही उसके कपडे होते, उसीके गद्दे-तकिये तक। अभाव क्या होता है, उसे तब पता चला जब दीवाली पर रुपयो द्वारा पूजन करने की आवश्यकता हुई और पास मे रुपये नही। बहुत हिम्मत कर पास के एक सम्पन्न ब्राह्मण के पास गये, जिसकी उन्होने उसके ब्राह्मणत्व के कारण बहुत सेवा की थी। उसने भी टका सा जबाब दिया कि दीवाली को रुपये नही दिये जाते। निराशा और ग्लानि तो हुई पर ऐसे छोटे-मोटे सघर्षो ने उन्हे झुकाया नही। नियति ने आरम्भ से ही उन्हे जो अभाव दिये थे, उनके सामने अन्य अभाव क्या गुरुता रखते? जीवन के बाह्य सघर्षो को आतरिक अध्यात्म द्वारा भुलाने का यत्न करते किन्तु घर मे एक पत्नी भी थी, जिसके प्रति कुछ दायित्व था, कुछ सांसारिकता की आवश्यकता थी। पत्नी चतुर थी। उसने रुपयो का प्रबन्ध कर लिया और काम रुका नही।

किशोरावस्था की बात है। उनकी उम्र १८, १९ वर्ष की होगी। पहली पत्नी का देहान्त हो गया। उससे एक पुत्र हुआ था, जो जीवित नही रह सका था। इतने दिनो का साथ था, अत मोह होना उस व्यक्ति के लिये स्वाभाविक ही था, जिसमे भावुकता भरी थी। उसकी मृत्यु पर हुआ दुख तब बहुत बढ गया, जब कि उसकी मृत्यु के पच्चीस दिन के अन्दर ही पिता के मामाजी ने दूसरा विवाह करा दिया। किशोर सीताराम उनका आदर करता था। उनसे डरता भी बहुत था। अत प्रतिवाद तो नही कर पाया, पर नई पत्नी से बात भी करने की इच्छा नही हुई। उस नवागता की उम्र साढे ग्यारह वर्ष की थी और तब सीताराम की १९ वर्ष। श्वसुर गणपतलालजी सुरेका सम्पन्न तो थे किन्तु किसानी ढग का कार्य करते थे। वैसे घर मे पत्नी होने के कारण नवागता बालिका पत्नी कुछ गवारू ढग की ही थी। सीताराम जब छूआछूत और धर्म-कर्म का विशेष ख्याल रखता, वह कुछ मानती ही नही थी क्योकि कुछ जानती ही नहीं थी। अब लगा "कि इसके साथ कैसे रहूँ—या तो यह मरे या मैं मरूँ, और यह क्यो मरे, मैं ही मरू तो क्लेश मिटे।" दूकान का काम भी खत्म हो गया था। अयोग्यता के प्रमाणपत्र के साथ गाव भर में चर्चा हो गई थी कि यह लडका काम नहीं कर सकता, साधु हो जायेगा। इन सब बातो से बडा क्लेश पहुचा और वह भक्त

तरुण वडा दुखी रहने लगा। निन्दा और चर्चा से बचने के लिये, अपनी योग्यता प्रमाणित करने के लिये उसने तब निश्चित किया कि वह भी कलकत्ता जायेगा। इच्छा वस यह बता देने की ही थी कि "मैं काम कर सकता हू, असमर्थ और अयोग्य नही हू। यह गाव वालो को दिखा दिया जाये और इतना-सा कमा भी लिया जाये कि बाकी जीवन शातिपूर्वक ईश्वराधना मे बीत सके।"

अपने गाव नवलगढ और वहा के लोगो मे बडी आत्मीयता थी। वहा का जीवन उसके रोम-रोम मे रमा था। वहा कुछ ऐसे महापुरुषो मे सपर्क स्थापित हो गया था, जिनकी अच्छाई और गुणो का उसके मन पर अमिट प्रभाव पडा। उन्ही मे से एक शिवदत्तरामजी दीजराजका थे, जिन्होने सिर्फ ज्ञान ही उपलब्ध नही किया। गरीबो की सेवा करना और सब की भलाई करना अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। बाह्य स्वरूप उनका कुछ कठोर और रूक्ष होते हुए भी, चित्त की कोमलता एव विशालता तथा पर-दुख-कातरता ने तरुण सीताराम को इतना प्रभावित किया कि उसने उस व्यक्ति को अपना आदर्श माना। उनके जीवन को देख कर उसे लगा कि व्यक्ति जीवन मे भजन-पूजन के अलावा कोई और भी बडा काम कर सकता है, और वह है पर-सेवा अर्थात् मानवता।

सामाजिक चेतना :

सयोग था कि उन्ही दिनो कलकत्ता से मोहनलाल गुरारका नवलगढ गये। समवयस्क होने के कारण उनसे बातचीत हुई। उन्होने भारतेन्दु और हिन्दी की चर्चा की तो तरुण सीताराम ने कहा—"कोई धर्म-ग्रन्थ की बात बताओ।" जो हो उनकी बाते समझ मे आने लगी और हिन्दी की ओर रुचि बढने लगी। कुछ मित्रो के साथ नवलगढ मे एक पुस्तकालय खोलने की योजना बनाई और २५ रुपये के चन्दे से चार आना महीना भाडे के कमरे मे कुछ धर्म-ग्रथो और कुछ बाहर से मगाई गई पत्रिकाओ के आधार पर "नवलगढ विद्या विवर्धनी पुस्तकालय" की स्थापना विक्रम सवत् १९६६ में हुई। पढे कौन, यह समस्या हुई, लोग समझते तो नही ही, बल्कि इन युवको का मजाक भी उडाते। एक-एक कर के मित्र भी सब कलकत्ता जाने लगे। बडी समस्या हुई। सयोगवशात् एक व्यक्ति ने मेस्मरेजिम जैसा कोई प्रयोग किया और प्रख्यात ज्योतिषी महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी की फोटो द्वारा कुछ ऐसा सम्मोहन पैदा किया कि सुनाई देने लगा "मानस लाओ, तभी पुस्तकालय चलेगा।" रामचरित मानस की प्रतिष्ठा की गई और वह तभी से उनके जीवन में कुछ ऐसा पैठ गया कि कभी इसके पाठ के नियम का भग नही हुआ। पुस्तकालय चल निकला, लोग पढने लगे। सार्वजनिक कार्य के क्षेत्र में आरभ वही से हुआ।

कला, सस्कृति और सौन्दर्य-बोध की शुरूआत भी हो गई थी। गाव के निश्छल एव सरल वातावरण में लोगो का सहज और भोला जीवन, और अभाव मे भी जो आत्म-सतोष और ईश्वर पर विश्वास की भावना थी, वह बडी अच्छी
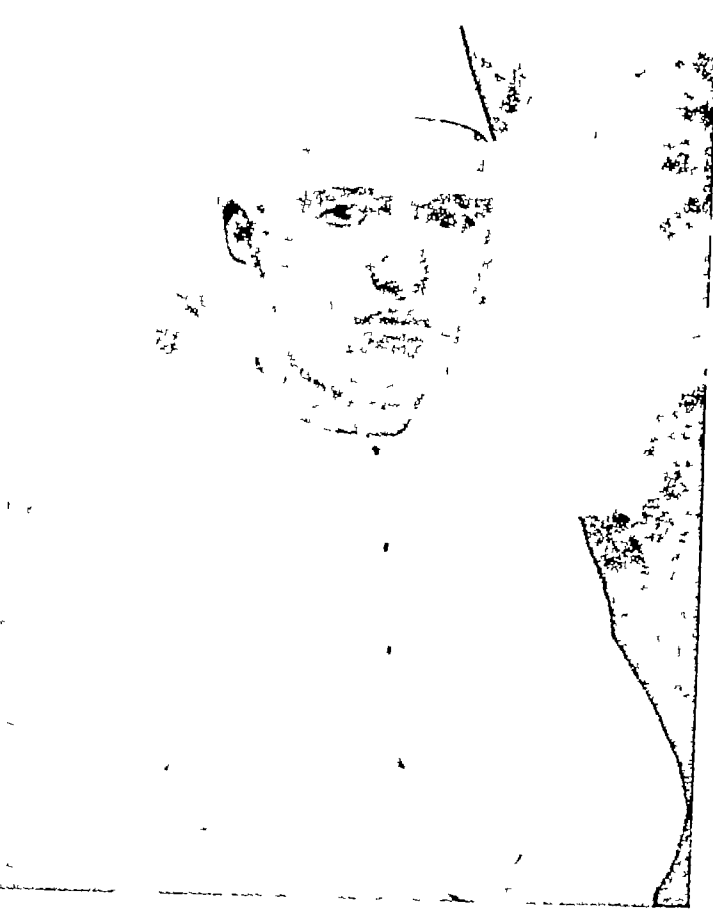
श्री सीताराम सेकसरिया
(युवावस्था में)

दो पौत्रों के साथ वयोवृद्ध
श्री सीतारामजी

लगा करती। गांव भर के लोगों से जो ताई, काकी, ताऊ, चाचा का रिश्ता और नीचे समझे जाने वाले लोगो के साथ जिस आत्मीयता का वर्ताव होता, वह इन्हे वडा भला लगा करता। एक तरह से वह आदत ही हो गई।

गणगौर, तीज आदि त्यौहारो के मेले, उनमे होने वाले खेल-तमाशे, आत्मीयता-पूर्ण व्यवहार, ठाकुरो का भी साधारण वर्ग के साथ उत्सव मनाना—सव वडा अच्छा लगता। जोगी लोग जो रात-रात भर अपनी सुरीली गूजती आवाज मे गाते, उसे सुनते-सुनते वह किशोर विभोर हो जाता। रामलीला और रासलीला आदि मे वह इतना खो जाता कि उसे सव सत्य प्रतीत होता और दुखद प्रसगो पर तो उसके आसू झरने लगते। वह दु ख न देख सकता था, न सह सकता था क्योकि उसने स्वय दु ख सहा था और उसकी तीव्रता जानता था। उसे लोकगीत वडे अच्छे लगते और मनोरजन के अवसर पर जो "आर्या उत्सवा प्रिया" सिद्ध होता, वह वडा अच्छा लगता और वह उसमे खुलकर भाग लेता। किन्तु उसे होली का हुडदग, उसके भद्दे और अश्लील ढग और मजाक नही अच्छे लगते जब कि उस अवसर पर वर्ण और जाति का भेद-भाव भूल जाना अच्छा लगता। भद्दी या दूसरो को छोटा बनाने वाली बातें वडी वुरी लगती। बाद मे ऐसे उत्सवो और आयोजनो मे भाग लेना उसने छोड ही दिया।

कलकत्ता-आगमन :

लोगो के निरन्तर आग्रह से और यह प्रमाणित करने के लिये कि वह अयोग्य नही है, आखिर कलकत्ता जाने का निश्चय हुआ। ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाते वक्त उसने यही कहा—"पडितजी, मैं वहाँ जा कर सफल होऊँ और कमाऊँ भी, लेकिन एक-डेढ वर्ष से ज्यादा वहाँ नही रहूँ, ऐसा मुहूर्त निकालिये।" शरद् पूर्णिमा की अर्द्ध-रात्रि को जब उन्होने घर से प्रस्थान किया तो हाथ में क्षीर लेकर गगा-मदिर से आते लोग सामने मिले, मानो शुभ शकुन द्वारा ईश्वर ने उन्हे कलकत्ता जाने पर सफलता और उन्नति का आशीर्वाद दिया।

यात्रा पहले कभी की ही नही थी। वस एक वार वगलवाले गाँव मुकुन्दगढ गये थे। कोई अनुभव नही, सिर्फ भय और आशका। जव दिल्ली स्टेशन पहुचा तो टिकट कटाने की वात भूल कर वह स्टेशन-मास्टर के कमरे मे चलते पखे को ही देखता रह गया—क्या वस्तु है, जो इतनी तेजी से घूमती है? आश्चर्य की ऐसी वाते देख कर मन की धार्मिकता और नियमवद्धता के कारण "कई वार तो मन हुआ कि लौट जाये। लोग ठीक ही कहते थे कि कलकत्ता तुम्हारे विचारो के अनुकूल नहीं पडेगा।" लेकिन गाव की निन्दा की जो मार्मिक चोट लगी थी, उसने रोक रखा और वापस वे नही गये। रेल मे छुआछूत के डर से खाया नही, दिल्ली की धर्मशाला की गन्दगी मे स्नान-ध्यान नहीं हो पाया लेकिन धीरे-धीरे कुआ भी मिल गया, शिव-मन्दिर भी मिल गया जहा स्नान और पूजन हो सका। और, ग्लानि कम होती गई। यही नहीं, ऐसा भी विश्वास हुआ कि कितनी भी कठिनाइया हो, भगवान् कोई न कोई रास्ता निकाल ही देगा।

कार्तिक कृष्णा चतुर्थी १९९९ को जब वे सर्व प्रथम हवडा स्टेशन पर उतरे, नन्ही नन्ही फुहारो ने उनका स्वागत किया। स्टेशन की अपार भीड मे साथी सब खो गये और वे किंकर्त्तव्यविमूढ प्लेटफार्म पर अकेले खडे रह गये। इतनी भीड, इतने लोग, इतनी भाग-दौड पहले कभी नही देखी थी। नया और अपरिचित शहर, फिर जिस जगह जाना, वहा का पता भी मालूम नही। सिर्फ नाम जानते थे—काली गोदाम। क्या करते? लोगो को मुटिया-मुटिया चिल्लाते सुना तो, वैसी ही आवाज लगा दी। मुटिया हाजिर हुआ और लोगो की ही तरह सामान रखवा कर अपरिचित सडको पर निकल पडे। सीधे चलते हुए अफीम चौरस्ते तक पहुचे। वहा खडे होकर चारो ओर देखने लगे—किधर जाये? सयोग था कि नवलगढ का एक परिचित ब्राह्मण वही किसी गद्दी मे उतरता मिल गया। उसने चाचाजी की गद्दी तक पहुचा दिया। ममेरे भाई मोहनलाल सरावगी मिले। किन्तु गाव की अनौपचारिक आत्मीयता से भरे हुए इस तरुण को यहा का शिष्टाचार कुछ विचित्र, कुछ खलता सा लगा। जो हो, गद्दी मे रहना, बासा मे खाना और काम की तलाश। आद्यशक्ति काली माता के दर्शन किये। बडे अच्छे दर्शन हुए, बडी भव्य प्रतिमा लगी। भक्त तरुण की आत्मा तृप्त हो गई। इस तरह कलकत्ता-निवास आरभ हुआ।

अर्थोपार्जन :

मामा भी यही रहा करते थे। उनसे मिले। उनके भाई और बेटे श्री सूरजमल शिवप्रसाद के प्रख्यात प्रतिष्ठान मे काम करते थे। उन्होने सीताराम को प्रतिष्ठान के मालिक रायबहादुर शिवप्रसादजी से मिलाया। उन्होने जो कुछ पूछा, वह सब परीक्षा के समान ही लगा किन्तु स्पष्ट वक्तव्य द्वारा सच्चाई और लगन देख वे प्रभावित हुए और उन्होने काम पर रखना स्वीकार कर लिया।

दूकान मे गद्दा बिछाने से ले कर पेटी लगाने और नमूने सजाने तक तो सब चल गया किन्तु जब चिलम लाने को कहा गया—तो आज्ञा पालन करना असभव हो गया। चिलम कैसे छूते? दो-तीन दिन मे ही लगा कि यह काम नही कर सकते। फिर एक दिन शिवप्रसादजी ने चिट्ठी लिखने बुलाया तो लिखने मे गडबडी हुई, सकोच और घबराहट के मारे कलम स्याही मे ज्यादा डूब गई और कागज पर स्याही टपक पडी, अक्षर टेढे-मेढे होने लगे। किन्तु अपने शील और विनय का प्रभाव था, कुछ भाग्य का साथ था कि गलतिया गिनी नही गईं। फिर भी पन्द्रह दिन के अन्दर ही तीन-चार काम बदले गये। मन विचलित सा हो उठा कि कही भी सफलता नही मिली। अपनी आदतो से युवक स्वय परेशान हो गया। उसने सोचा कि शायद वह स्वय ही अयोग्य है—कोई भी काम नही कर सकता। उसे वापस चले जाना चाहिये। दो-तीन दिन कपडे की गोदाम मे काम किया लिफ्ट मे माल उतरने का। लिफ्ट मे चढ तो गया किन्तु उतरते समय बडी उलझन में पडा कि कही लिफ्ट टूट कर गिर पडे तो? सीढी से उतरने का सोचा तो

और भी मुश्किल। गोल-गोल लोहे की सीढी, उससे उतरने मे तो चक्कर आ जाये। खैर, लिफ्ट बिना टूटे ही नीचे तक पहुचा गई। यह काम नही हुआ तो कच्ची वही का काम मिला ताकि थोडी बहुत गलतियो का असर न पडे किन्तु उसकी भी रिपोर्ट अच्छी नही गई। फिर भी भलमनसाहत का कुछ इतना प्रभाव था, कुछ भाग्य और सयोग ऐसा था कि रायसाहब ने एक भी गलती नही गिनी। एक के बाद दूसरे काम पर रखते गये। सयोगवशात् रोकडिये की जगह खाली हुई और उस पर इनको रख लिया गया। वहा भी शुरू मे काम सम्हल नही पाया। गिनने मे या लिखने मे भूल हो जाती। इसी तरह की भूल से एक बार दस रुपये कम पड गये। किससे कहते और क्या करते? शीघ्र शिवप्रसादजी के पास गये। उन्होने बडे गौर से देखा और कहा—"यह तो ठीक नही है। हिसाब से तो जिसके पास से रुपया घटता है, उसका लगता है।" युवक सीताराम रुपया कटाने को राजी हो गया क्योकि गलती तो हो ही गई थी। उन्होने कहा—"यह तो ठीक है, पर ऐसे तुम करोगे क्या? गद्दी के लोगो को मालूम हो गया तो वे तुम्हे उडा देगे। अत इस बार तो मै तुम्हे अपने पास से रुपये दे देता हू जिससे रकम पूरी कर लो किन्तु आगे से भूल मत करना।"

वात इतनी सी थी पर इसका असर कुछ ऐसा हुआ कि जो किसी काम को नही कर पा रहा था, वह जी जान से काम पर जुट गया। रायसाहब के बडप्पन, उदारता और स्नेह ने उसे जो बल दिया, उससे तरुण की स्वाभाविक प्रतिभा, लगन और दृढता जागृत हो गई। आठ महीनो तक वह गद्दी के वाहर नही गया—काम की धुन में। धर्म-कर्म भी कम हो गये। समय ही नही रहता। फिर भी, थोडा वहुत पाठ-पूजा-जप चलता। रात को वारह तक तो काम होता ही, सुबह दो वजे तक भी होता और पूजा के मौके पर तो सारी-सारी रात भी निकल जाती। वेतन २५ रु० ही मिलता था। इनकी एक ही आकाक्षा थी कि जैसे उनके साथ पाठशाला मे प्रथम आने वाले मित्र को ४५ रु० मिलते थे, उतने ही इन्हे भी मिले। किन्तु शिवप्रसादजी पिता तुल्य लगते, अत उनका काम करना अच्छा लगता। रुपये का प्रश्न गौण हो जाता। पिता तुल्य स्नेह मिलते ही इनकी सारी लगन अपने श्रद्धेय के लिये कार्य करने मे अर्पित हो गई। उनका पैर दबा कर युवक को गौरव मिलता। उनकी योग्यता, कार्य-क्षमता और दूरदर्शिता ने भी उनको काफी सम्माननीय वना दिया था। वह देखता कि किस प्रकार वे जल्दी-जल्दी सारा कार्य सलटाते है और वीमार पडने पर डाक्टर के और दूसरे लोगो के मना करने पर भी रात को छिप कर काम करते। पूछने पर कहते कि "काम चढ जाने पर मुझे नीद नही आती। यह बात उसे वडी अच्छी लगती। और एक वात यह भी वहुत अच्छी लगती कि वे कभी किसी का देना बाकी नही रखते, पावने मे भले ही देर हो जाये। इन दो गुणो को युवक ने भी अपने नियम वना लिये।

शीघ्र ही नये रोकडिये की काफी प्रतिष्ठा हो गई। रायसाहब की छत्रछाया थी। अच्छा पद था। मधुर स्वभाव और उदार आदते। अत लोकप्रियता भी

बढने लगी। तब पत्नी को बुलाने का निश्चय किया जो गांव मे अपने मैके ही मे थी। घर मे तो ताला बन्द था। बडा सकोच करते हुए युवक रायसाहब के पास गया पर कैसे कहे—क्या कहे? सयोग की बात कि उन्होने स्वय कहा—"अब तुम्हारी पत्नी को बुला लेना चाहिये।" कलकत्ता मे रहने और काम करते हुए भी यह तरुण इतना सरल और श्रद्धावान था कि उसे लगा—"ये तो मन की बात जानते है। इतने अच्छे आदमी है। जरूर कोई तपभ्रष्ट योगी ही है।" पत्नी आ गई। छोटी उम्र की ही थी, अत मामी के पास रहती। व्यस्तता के कारण वह कोई दस दिन मे एक बार वहाँ जाता। तनख्वाह दुगुनी हो गई थी। अलग घर लेकर आराम मे जीवन यापन करते हुए भी ८५ रु० ही खर्च होता और १५ रु० जमा करता था।

समाज के पुरुष वर्ग में व्यापक अनाचार था, क्योंकि वे काम करने अकेले आये हुए होते। किन्तु इनकी धार्मिकता और सात्विक वृत्ति ने हमेशा इनको बचाया। विदेशी कपडो की फर्म के मालिक के यहा काम करते थे, अत देश-प्रेम जैसी कोई बात स्पष्ट तो मन मे नही थी क्योंकि उन दिनो स्वदेशी वस्त्र पहनना ही देश-भक्ति मानी जाती थी। किन्तु 'सरस्वती' पत्रिका अवश्य पढा करते, यद्यपि छिपाकर पढनी पडती क्योंकि अगर रायसाहब देख लेते तो काम का आदमी नही मानते। कलकत्ता आने से पहले ही मुकुन्दगढ मे जिनसे भेंट हो चुकी थी, उन बसन्तलालजी मुरारका से काफी मित्रता हो गई थी। उन्हे छुट्टी जल्दी मिल जाती थी। इन्हे जब छुट्टी मिलने की सभावना होती तो दरबान के हाथ चिट भिजवा कर सूचना देते और फिर शाम को मिलते। तब देश और समाज की बाते होती।

गद्दी मे काम करते हुए पौने तीन वर्ष हुए थे। मन मे दया और उदारता काफी थी ही। ४०-५० व्यक्ति नीचे काम करते थे। उन्हे आवश्यकता पडने पर ये रुपये उधार दे देते और फिर पाने पर हिसाब मिला लेते। उनमे से एक व्यक्ति इनके दिये हुए ५० रुपये और गद्दी के अन्य रुपये लेकर भाग गया। उधार देने की बात इन्होने किसी से कही नही थी। मौका पा कर गद्दी के एक अन्य व्यक्ति ने, जो इनसे दुश्मनी रखता था, सेठ को जा कर सारी बात बता दी। सेठ ने अचानक आकर बिना पूछताछे रोकड की तलाशी ली। रुपये कम थे ही। तलाशी मे इनके कुर्ते की जेब से 'सरस्वती' पत्रिका निकली। उससे सेठ और भडक उठे और इनसे काम ले कर दूसरे व्यक्ति को दे दिया। बडा अपमान लगा। पर, बोलते क्या? अब तो सजा पाये व्यक्ति की तरह इनसे किसी ने भी बात नही की। मन निर्दोष था, अत इस घटना से बडा रोष, बडा दु ख पहुचा। शिवप्रताप सराफ नामक व्यक्ति गद्दी मे आया-जाया करता था। उसने इनकी बेईमानी न मान कर इनको प्यार दिया। मन इतना व्यथित हुआ था कि जरा से स्नेह-प्रदर्शन पर उसके चरण पकड लिये और आख से टप-टप आसू गिरने लगे।

दूसरे दिन रायसाहब ने बुलाया पूछताछ के लिये। अन्याय के कारण मन में रोष तो भरा हुआ था ही, कहा—"कुछ बताने की स्थिति अब रही कहां?

अब तो सब बातें-ही खत्म हुईं। मुझे क्षमा मत कीजिये, गलती के लिये ज्यादा से ज्यादा सजा दीजिये। बिना आज्ञा के नही जाऊगा, पर मुझे अब छोड दीजिये।"

रायसाहब ने इन्हे छोडा नही। पन्द्रह दिनो तक गद्दी मे बिना काम-काज के बैठे रहे। कोई बात भी नही करता। भाई मोहनलालजी तक मिलने नही आये। कुछ दिनो बाद इनको धोती की दूकान मे काम करने को कहा गया। परन्तु मन को जो धक्का लगा था, वह बर्दाश्त नही हुआ और आहिस्ते-आहिस्ते कमजोर हो कर बीमार पड गये। डाक्टरो ने भीषण पेट-दर्द को एपेन्डीसाइटीज बताया किन्तु आपरेशन की नौबत नही आई। मामी के यहा रहना पडा। मामी बडा स्नेह करती, सहानुभूति भी रखती। उन लोगो की सेवा और प्यार से तबियत ठीक हो गई और फिर काम की नौबत आई। जिस प्रेम और श्रद्धा के साथ शिवप्रसादजी के यहा काम कर रहे थे, वह खत्म हो चुकी थी। अत मन कुछ उचटा सा रहता। एक दिन सेठजी ने उन्होंने स्वय ही बुलवाया और कहा "सीताराम, तुम्हारे काम मे मुझ से गलती हो गई। प्रथम तो मै गलती करता नही और करू तो स्वीकार नही करता। नही तो इतने लोगो के बीच मेरा काम कैसे चले ? किन्तु तुम्हारे काम मे मुझ से गलती हुई। तुम्हे बहुत दु ख हुआ न ?" इतनी सी बात सुनते ही इनका सारा रोष, सारा हठ खत्म हो मन पिघल गया। इन्होने तुरन्त उनके चरण पकड लिये और अश्रुधारा फूट पडी। उन्होने कहा—"तुम पहलेवाला ही काम करो ताकि तुम्हारी प्रतिष्ठा बनी रहे और बदनामी उतर जाये।" यह बात अच्छी लगी। जैसे, एक राजा को सिंहासन से उतार कर पुनर्राज्याभिषेक होता है, उसी प्रकार फिर से वही काम, ठीक वैसे ही सम्हला दिया गया।

किन्तु, श्रद्धा और विश्वास के वे सूत्र जो प्रारम्भ मे थे, एक बार गहरे झटके से टूटे गये तो फिर नही जुड सके। मन मर गया था, उत्साह मद पड गया था। लाख कोशिश करने पर भी पहलेवाली दक्षता और तेजी नही आ पाई। यह बात स्वय को ही खलती थी। यह अच्छा नही लगता था कि जो कार्य किया जाय, उसमे पूर्ण ईमानदारी न हो। ऐसे ही मौके पर नवलगढ के एक मित्र रामरिख पाटोदिया, जो दलाली का कार्य किया करता था, ने साझे मे व्यापार करने का सुझाव दिया। इस पर रायसाहब ने व्यवसाय मे सफल होने का आशीर्वाद दिया और आवश्यकता पडने पर रुपये और काम से सहायता करने की भी बात कही।

जमा की हुई २५० रु० की पूजी से सीताराम रामरिख नामक साझेदारी मे हैसियन की दलाली का कार्य शुरू हुआ। शुरू मे अनुभवहीनता और चातुर्याभाव से घाटा ही लगना था। इसी बीच इनके एक पुत्र का जन्म हुआ। खर्च के लिये भी उधार लेना पडा। ये दिन बडे अभाव और सघर्ष के रहे किन्तु समय अब ज्यादा और स्वतत्रतापूर्वक मिलता, अत देश और समाज की बाते भी हो पाती थी। अखबार और पत्रिकाये पढा करते थे। बसन्तलालजी से काफी बाते हुआ करती।

स्वदेशी पहनना आरम्भ कर दिया था। हिन्दी के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। कुछ-कुछ पढने-लिखने भी लगे।

सार्वजनिक जीवन :

अब सार्वजनिक जीवन का वास्तविक आरम्भ हुआ। जैसे-जैसे उनकी सार्वजनिक दृष्टि बनती गई, वैसे ही वैसे उनकी धार्मिक मान्यतायें भी सार्वजनिकता मे परिणत होती गई। शुरू-शुरू मे जिस धर्म को उन्होने आत्मसात किया था, वह शास्त्रोक्त और सस्कारगत धर्म था। अब धर्म की एक और दृष्टि बनी, जो गाधीवादी दृष्टि थी। यह दृष्टि व्यक्तिगत नही, वरन् सामाजिक थी। उसका नैतिक पहलू सशक्त था। यह दृष्टि ईश्वरीय तो थी ही, पर उस का विस्तार मानवीय भी था। इस दृष्टि के निर्माण तथा विकास में सीतारामजी को पर्याप्त सघर्ष करना पडा। यह सघर्ष जहा बाहर समाज मे करना पडता, वहा अपने मन में भी करना पडता था। तथाकथित धार्मिक सस्थाओ और धार्मिक प्रवृत्तियो मे उनकी रुचि प्राय समाप्त हो गई। पहले स्वर्ग और मोक्ष के लिये जो पूजा-पाठ वे करते थे, उसका उद्देश्य अब मानवीय कल्याण और आत्म-पवित्रता हो गया। असमान सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न हरिजनो, भिखारियो, पीडितो, दुखियो, असहायो के बीच जब उन्हें कार्य करने का, उनके बीच जाने का अवसर मिला तो उनके मानस में मानवीय धर्म की यह तस्वीर और ज्यादा उजागर होती गई। रूढिगत धार्मिक कही जाने वाली परपराओ और प्रथाओ के विरुद्ध उन्होने आवाज उठायी, विद्रोह किया और आवश्यकतानुसार उन्हे उखाड फेकने का प्रयत्न किया। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय कलकत्ता मे हो रहे धार्मिक यज्ञ और पूजा की उनके ऊपर जो प्रतिक्रिया हुई, वह उनकी १७ जून '४० की डायरी के पृष्ठ पर इस तरह वर्णित है

"इस पक्ष मे तेरह दिन है और इसका बहुत बुरा परिणाम होता है, ऐसा लोगो का विश्वास है। कहते है कि महाभारत के समय ऐसा पक्ष आया था। इस पक्ष के निवारणार्थ एक यज्ञ किया गया था, जिसमें मारवाडी समाज के धार्मिक वृत्ति के लोगो ने काफी पैसा दिया और खूब उत्साह से भाग लिया। आज उस पक्ष की पूर्णाहूति थी। उस पक्ष की समाप्ति पर जुलूस निकला। जुलूस बहुत ही बडा था। जिन रास्तो से जुलूस निकला, वे सारे रास्ते मनुष्यो से भरे पडे थे। मकानो पर दूसरे मोहल्लो की स्त्रिया झुण्ड की झुण्ड जुलूस के दर्शनो की भावना से बैठी थी। रुपये भी खूब खर्च हुये। एक बडा ब्राह्मण-भोज भी होगा। चढावा भी खूब आया और चन्दा भी।"

"इन भावनाओ से प्रकट होता है कि जिस बीसवी सदी को आज जाग्रत सदी कहा जाता है, और जिसमे समाजो और देशो में क्रातिकारी परिवर्तन हुये है, उस में मारवाडी समाज कहाँ है? उसकी मनोभावना मे क्या परिवर्त्तन हुआ है? उसमें वही अन्ध-विश्वास, वही पुरानी परिपाटी, वही अज्ञान काम कर रहे है। वास्तव मे समाज मे नया काम किया ही नही गया, समाज के असली हृदय को

आर्कर्षित नही किया गया। धार्मिक भावना बुरी नही, उसका होना जरूरी है पर अंध-विश्वास का होना, अन्याय के साथ काम करना समाज के लिये हितकर नहीं हो सकता। शास्त्रो के नाम से, धर्म के नाम से भय दिखा कर, डरा कर जो काम किया जाता है, उसमे क्या है? उससे क्या लाभ हो सकता है?"

"मनुष्य मे आस्तिकता होनी चाहिये। ईश्वर के प्रति श्रद्धा हो, विश्वास हो, अपने कामो मे सचाई हो, दूसरो के लिये कष्ट उठाने, कष्ट सहने की क्षमता हो, त्याग कर सके, सेवा कर सके तो मनुष्य मनुष्य बनता है। न्याय-अन्याय से काफी पैसा इकट्ठा करके ब्राह्मणो को इकट्ठा कर लिया और उनको दक्षिणा दे दी, भोजन करा दिया, इससे कैसे मानव-कल्याण होगा और कैसे कहा जाय कि यह ठीक हो रहा है।"

सीतारामजी के जीवन मे जैसे-जैसे पर का विस्तार होता गया, विचारो के अन्वेषण के लिये उनकी दृष्टि स्वय बनती गई। यह दृष्टि उनके अनुभव की थी। उन्होने कहा है—"मनुष्य जिस परिस्थिति मे रहे, उसके विचार अधिकतर उसी के अनुसार बन जाते है। बहुत ही थोडे विचार अपने-आप बनते हैं। आदमी के मौलिक सिद्धान्त कम होते है, दूसरो को देख कर ही वह अधिक बनाता है। इन सब बातो से धर्म का बहुत कम सम्बन्ध है।"

जहा दर्शन, ध्यान और पूजन का नियमित कर्म में प्रवेश रहा हो, वहा उसे छोडते वक्त एक द्वन्द्व की स्थिति रहती है और व्यक्ति सिद्धान्त और कर्म दोनो के प्रति सदेहशील हो जाता है, लेकिन सीतारामजी मे दोनो के प्रति निष्ठा रहती है। एक बार वे दर्शन करने नही गये तो उन्होने अपनी डायरी मे एक जगह लिखा कि "रात मे दर्शन नही करते है, तब भोर मे भोजन करने के पूर्व दर्शन करते हैं। जब दर्शन हो जाते हैं, तब ही भोजन करते हैं। आज दर्शन नही हुये, इसलिये भोजन नही किया। यह सब बात कितने दिन और चलेगी, पता नही आजकल जिस तरह विचारो मे परिवर्तन हो रहा है, उसे देखते लगता है कि यह बात जल्द ही छूट जाये।"

सामाजिक-धार्मिक क्रांति :

इस तरह जैसे-जैसे सार्वजनिक जीवन का विस्तार हुआ, उनकी मानवीय दृष्टि का भी विस्तार होता गया। एक बार वे पुष्कर तीर्थ की यात्रा पर गये तो उन्हे लगा कि "पुष्कर मे ऐसी कोई चीज देखने को नही है। मगनीराम रामकुमार बागड का मदिर देखा जिसका नाम बहुत था। शेयर बाजार मे लोग कहते थे कि मगनीरामजी ने ८–९ लाख रुपये का मन्दिर बनवाया है। अपने को अच्छा नही लगा। दिन मे यहा घी के मशाल जलते हैं। इन भले आदमियो को यह पता नही कि देश के लोग रात मे भी तेल का चिराग नही जला सकते। यदि सच्चा धर्मभाव है तो पहले देश के दुखहरण मे अपना धन, अपनी शक्ति, अपनी विद्या-बुद्धि लगाओ। इस आत्म-विडम्बना मे क्यो पडे हो? अपने को यह बहुत बुरा मालूम पडा।"

सीतारामजी को तीर्थों और मन्दिरो के कलात्मक और मानवीय पक्षों मे सहानुभूति है पर उनके लिये तो साधनहीन, आश्रयहीन, अभावग्रस्त लोगो का घर ही वास्तविक तीर्थ हैं जहा पहुच कर वे भगवान को याद करते है। उनकी डायरी के एक पृष्ठ पर है—"आज बुनकर लोगो के घर देख कर आये। विचारे बहुत ही गरीब लोग है। देश का बहुत बडा भाग इस तरह के कार्य मे जीवन निर्वाह कर रहा है और लोग यहा मौज उडाते हैं। यह न्याय तो नही है। परमात्मा, इन गरीबो के तुम ही मालिक हो, इनकी दशा सुधारो और हम लोगो को सुबुद्धि दो कि उनके दुखो मे हाथ बटावे।" और इस तरह वे निरतर अपने परमात्मा से सुबुद्धि पाते रहे और लोगो के दुखो मे हाथ बटाते रहे। इस व्यस्तता मे यदि उनका चर्खा कातना छूट जाये तो दुख होता था पर यदि पूजा करना छूट जाये तो दुख भी नही होता था। ऐसे ही एक दिन की स्थिति पर उनके विचार है—"रोज पूजन करते हैं, आज नही हुआ। आजकल पूजन करने मे कई दफा बाधा पड जाती है। वास्तव मे विचार हो रहा है कि जब सब काम तो अपने लिये करते हैं नही, तो सब काम ही पूजन है।" इसीलिये वे समय-समय पर धार्मिक जडता और अकर्मण्यता के विरोध मे आवाज भी उठाते रहे। उनका विश्वास रहा है कि "श्रम करना निहायत जरूरी है, विना श्रम किये जो खाते हैं, वे पाप का खाते है और सार्वजनिक श्रम तो यज्ञ है। यह यज्ञ ही ईश्वर है। वही मनुष्य को पवित्र वनाता है।"

दिल्ली स्टेशन पर पहुचने पर जिस छुआछूत को भावना ने आ कर उन्हे घर लौटने को प्रेरित किया था, उसी ने उनके अन्दर एक सच्चे अर्थ मे धर्म का वोध पैदा किया और वे गाधी-विचार के गहरे उपासक वन गये। गाधी कार्यक्रम ने एक गहरा मोड उन्हें दिया जिसका एक उदाहरण उनकी हरिजन-सेवा की भावना से मिलता है, जो उनकी डायरी पर उन्ही के शब्दो मे है, जिसको उन्होने अपनी भूकम्प 'पीडितो' की सेवा के दिनो मे लिखा था—"एक डोम जाति का भाई जो हरिजन होता है, उसका कच्चा घर तो भूकम्प में गिर गया। वह गाव के बाहर एक छोटी सी टपरी वाधे रहता है। पुरुष तो उस समय कही खाना जुटाने की फिक्र में गया था पर स्त्री और उसके चार वच्चे उस घास की टपरी मे सिकुडे हुये पडे थे। उनके घर मे गये तो देखा कि उनके पास न तो वस्त्र है, न वर्तन है। एक वक्त का भोजन भी नही है। हरिजन होने के अपराध मे इसकी सुधि भी सिवाय हरि के कोई लेने वाला नही है। उस स्त्री को देखा, उससे वाते की, उसने शरीर पर कोई वस्त्र नही पहन रखा था। जो साडी लज्जा-निवारण के लिये पहन रखी थी, उससे पूरी-पूरी लज्जा का निवारण नही होता था। कारण वह जगह जगह फटी हुई थी और मैली तो इतनी ज्यादा थी कि उसे वताया नही जा सकता। वच्चे तो प्राय नगे थे। यही कहना चाहिये कि ओढने-विछाने के लिये तो ऐसे लोगो को मिलने का अधिकार ही नही हो सकता। पुवाल विछा रखा था। वरतनो मे मिट्टी की हडिया थी। वह भी शायद एक या दो से अधिक नही थी। खाना तो कई दिन से नही जुटा था। घर मे तो

हो ही क्या सकता था ? इनकी सपत्ति का मूल्य ग्राका जाय तो सिवा शून्य के थी, क्या ग्रायेगा ? इस जगह इस दानवीय ग्रौर भयावनी 'दरिद्रता की मूर्त्ति के दर्शन कर के मनुष्यता काप उठती है। इस वहिन से बाते की। वह बडी कमजोर थी, एक प्रकार से जीवित मुरदा थी। वह विचारी ग्रपने लोगो की हिन्दी वोली भी पूरी समझ नही सकती थी। इस दृश्य को देख कर ग्रासू चलने लगे।"

१९३० के बाद तो उन्होने हरिजन-सेवा को ऐसा ग्रपनाया कि वह उनके दैनिक कार्यक्रम का एक ग्रग बन गया। लाछन, उपेक्षा ग्रौर सघर्ष की चिंता न करते हुये वे ग्रपने विचारो के ग्रनुकूल ही धर्म ग्रपनाते चले। ग्रौर उनका यह धर्म 'बहुजन हिताय' का था। ऐसे कई ग्रवसर ग्राये जव उस युग मे उनके ग्रासपास का समाज नितान्त रूढिवादी ग्रौर ग्रनुदार वना लेकिन उन्होने कभी उस समाज से समझौता नही किया। एक बार मुसलमानो के एक त्यौहार पर उन्होने लिखा —"कल बकरीद है। यह मुसलमानो का वहुत बडा त्यौहार है। इस पर देश मे बहुत बडा दगा-फसाद हो जाया करता है। इस साल कानपुर मे दगा हो जाने के कारण सारे देश मे उत्तेजना ग्रधिक है, लोग चिंतित है। यह स्थिति ग्रच्छी नही है। न तो हिन्दुग्रो के लिये ही यह ठीक है कि जरा सी वात पर वे इतने सशक रहे ग्रौर न मुसलमानो के लिये ही यह शर्म की बात है कि उनका एक त्यौहार ग्राये तो उनके दूसरे भाई यह भय करे कि कही दगा न हो जाये ग्रौर जिसको धर्म-स्थान कहा जाय, वहा सरकार की पुलिस पहरा दे। यह कितना बडा ग्रपमान है। हम लोगो की कितनी वडी कमजोरी है पर हमारे ग्रज्ञान ने हमे ऐसा बना दिया है कि धार्मिक त्यौहार भी हम सरकार की मदद के बिना नही मना सकते। होना तो यह चाहिये कि इस देश की दो ग्राखे हिन्दुग्रो ग्रौर मुसलमानो मे परस्पर सहानुभूति पूर्वक एक दूसरे को देखती पर हमारी परतन्त्रता ने हमे बहुत पतित बना दिया है।"

सीतारामजी जन्म-मृत्यु ग्रौर पाप-पुण्य का एक नितान्त निराशावादी दृष्टिकोण रखते है। इस सदर्भ मे उनकी प्रतिक्रिया है कि "यह जीव ईश्वर का खिलौना है। समय-ग्रसमय खिलौने टूट जाते है। उसका क्या उपाय है ? स्वभावत ही थोडी चिन्ता होती है पर वास्तव मे यह एक खेल है ग्रौर इसे प्रसन्न मन से खेलने मे ही मजा है।"

वेदो, उपनिषदो ग्रौर ग्राख्यानो मे वर्णित धर्म से लेकर सामाजिक ग्राचरणो तक जितनी भी धार्मिक सकीर्णता सीतारामजी को जैसे-जैसे मालूम पडती गई वे उसका विरोध करते गये। ऐसे ही एक वार धार्मिक साहित्य के वारे मे उन्होने विचार किया तो उन्हे लगा कि "इस देश के जैसा दुख, इस देश की जैसी निर्वलता, ऐसी सकटापन्न स्थिति ग्रौर कहा होगी। इस देश के पापो का कब ग्रन्त होगा ? ग्रौर तो कुछ नही पर शरीर के लिये वस्त्र, पेट के लिये ग्रन्न, बीमारी के लिये दवा, यह तो प्रत्येक मनुष्य को मिलनी चाहिये। पर यहा तो यह स्थिति है कि एक जगह बच्चे भूख से बिलबिला कर मर रहे है ग्रौर इस कलकत्ता जैसे शहर मे तो ठीक उसके बगल के कमरे मे कुत्ते के बच्चे दूध को गिरा देते है।

ऐसी स्थिति का क्या कोई प्रतिकार नही है ? इन गरीबों को, इन दुखियों को इन धनियो के गुट्ट ने, इन ठगो के गुट्ट ने यह सिखा दिया है, ऐसे साहित्य की रचना कर दी है, ऐसे सस्कार इन गरीबो के मस्तिष्क मे पैदा कर दिये हैं कि हमारा भाग्य खराब है, हम अपने पूर्व-जन्म के पापो से कष्ट पा रहे हैं और जो हमारे ये बगल-वाले मजे उडा रहे है, उनका भाग्य अच्छा है। इन्होने पिछले जन्म में अच्छे कर्म किये थे। इन स्वार्थियो ने राजा की कल्पना की और उसमे ईश्वर की स्थापना कर दी जिससे कोई उसका विरोध न करे। उसकी भक्ति करना धर्म बता दिया गया। अपने स्वार्थ के लिये, अपनी सत्ता कायम रखने के लिये, अपने स्वार्थो की सिद्धि करने के लिये, अपने सुखो मे बाधा न पडे इस भावना से इस मनुष्य जाति ने न जाने क्या-क्या अनर्थ कराये है।"

धार्मिक उदारता के लिये सीतारामजी ने कभी प्रयत्न नही किया। वह उनकी एक स्वाभाविक गति रही है। जिन दिनो देश में हिन्दू-मुसलमान की कट्टरता का प्रचार था और प्राय दगे होते रहते थे, यहाँ तक कि किसी मुसलमान भाई से बात करना भी हिन्दू लोगो को बुरा लगता था, उन दिनो भी उन्होने कभी इस जडता को स्वीकार नही किया और स्वाभाविक रूप मे अपना काय करते रहे। उन दिनो का एक प्रसग उनकी डायरी के पृष्ठ पर अकित है—"आज एक बडी बात देखने को मिली। एक करीब ६५-७० वर्ष की बुड्ढी माँ अपने को आशीर्वाद देते हुये सामने आई और उसने उर्दू मिश्रित सुन्दर भाषा मे हिन्दू धर्म की और मुसलमान धर्म की अनेक बाते कही। उसी माता ने अपने को इलायची-पान दिया और कहने लगी कि आपको शर्बत और चाय तो दे नही सकती क्योकि आप हमारे हाथ का कैसे खायेगे। अपने कहा—माताजी मैं तो आपके हाथ की बनी रोटी खाऊँगा। मुझे इसमें कोई आपत्ति नही है। तब तो वह बहुत खुश हुई, कहने लगी, अल्लाह आपको सलामत रखे। बेटा, हम लोगो मे जो भेदभाव है, उसको मिटाने की बहुत जरूरत है। इस माता को देख कर सुख और आश्चर्य हो रहा था कि मुसलमान समाज मे इतनी बुड्ढी स्त्री के ऐसे विचार हैं। ईश्वर कब हिन्दू-मुसलमानो के मनोमालिन्य को, परस्पर के अविश्वास को हटा कर इस देश के दुखो को दूर करेगा।"

मानवीय आदर्शो और सद्भावना के लिये जिस धर्म के प्रति उनकी सहानुभूति रही, सचेतना रही, वह बराबर रही, नियमित और निरन्तर रही। भगवान् पर उनका भरोसा था और उसी भरोसे पर वे सदैव चलते भी रहे। धर्म के आडम्बरो और कल्पानाजनित ईश्वर की न तो उन्होने उपासना की, न तो साधना ही। इसके लिये वे सदैव विद्रोही भी रहे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद तो वे धार्मिक क्राति के लिये भी जागरूक ही नही, सक्रिय भी रहे। एक लेख में उन्होने लिखा है कि ईश्वर और धर्म के नाम पर अनेक धर्मो, सम्प्रदायो की रचना, नाना तरह के भेदो और जाति-पाति के जजालो द्वारा मानवता को खण्डित किया गया, और आज यह स्थिति है कि मनुष्य सब से कम महत्व पाता है। जाति, धर्म और सम्प्रदाय जीवन के आधार बन गये। ऐसी स्थिति मे धार्मिक, सामाजिक क्राति की

आवश्यकता प्रतीत होती है। उनका विश्वास रहा है और है कि "यह धार्मिक क्राति अपनी गति से आ रही है। आज का तरुण इस रूढिवाद, सम्प्रदायवाद और धार्मिक आडम्बर पूर्ण विधि-विधानो से उकता गया है। वह इन सारी चीजो के प्रति आसक्त नही है। वह चाहता है कि यह सब झाड-झखाड खत्म हो और एक स्वस्थ मानवता का विकास हो।"

"सामाजिक कार्य उन दिनो कम होते थे पर समाज-सुधार की चेतना लोगो मे जग चुकी थी। समाज-सुधार के कार्यो मे पचो से, घर के वडे बूढो से और समाज से सीधा विरोध होने के कारण यह आन्दोलन मारवाडी समाज मे वहुत धीमी गति से चल रहा था। सुधार की बात अगर कभी आती तो पचो के मार्फत ही आती। नवयुवक विचारो की दृष्टि से आगे थे पर काम करते समय उन्हे बडो की ओर देख कर ही आगे बढना पडता। समय-समय पर इस नई पीढी और पुरानी पीढी मे समाज-सुधार के कार्यो को ले कर परस्पर सघर्ष भी होता था। कई बार वह सघर्ष काफी गहरा और उग्र भी हो जाता था, जैसे आर्य-समाज और सनातन धर्म के सघर्ष का आन्दोलन हुआ। इस आन्दोलन का नाम चाहे जो रहा हो पर वास्तव मे यह नये-पुराने विचारो का ही सघर्ष था।

और, नये और पुराने विचारो के सघर्ष के, उनके अपने-अपने मूल्यो की टकराहट के तथा उनकी अपनी-अपनी स्थापनाओ के आग्रहपूर्ण, क्रोधपूर्ण नेतृत्व के कई दौर चले, कई भागो मे वटकर चले जिनको लिखते समय उन दिनो के और आज के मारवाडी समाज के कई चित्र स्पष्ट हो कर उभरते है, और इस उभार मे सीतारामजी का व्यक्तित्व भी कभी उपेक्षा और लाछना से दुखित, कभी अन्याय और असहयोग से क्रोधित, कभी करुणा और भक्ति से प्रभावित, कभी मानवीय दृष्टि और मानवता के उत्पीडन से सवाहित उभर कर सम्मुख आता है। इन सम्पूर्ण सन्दर्भो मे उन्होने कही विश्राम नही लिया, उन्हे कभी थकान नही लगी, उन्होने कभी टूटना नही सीखा, उन्होने कभी समझौता नही किया क्योकि उनकी दृष्टि मे "सामाजिक क्राति में तो इस बात की सब से अधिक जरूरत है कि खूब आगे बढ कर ही काम किया जाय जिससे हलचल मच जाय, सारे लोग देखने लग जाय, सोचने लग जाय कि इसकी तो कल्पना भी नही की थी, यह क्या हुआ, इन लोगो के साथ कैसे निभाया जाय? ऐसा जब तक नही होगा, तब तक समाज मे पूरा सुधार होना कठिन है। सुधारक को विनयी होना चाहिये पर सिद्धान्त के प्रचार मे कमजोरी नही रखनी चाहिये। उसके प्रचार मे उग्र होना जरूरी है। मोडरेट (उदार) से सुधार नही होता।"

नई कल्पना और सर्जना की इस दृष्टि का निर्माण सीतारामजी मे कैसे हुआ, यह जानने के लिये सम्पूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालना आवश्यक सा लगता है।

सन् १८९८ ई० मे कलकत्ता में मारवाडी एसोसियेशन की स्थापना के पहले पचायत ही मारवाडी समाज की एकमात्र शक्तिशाली सस्था थी। एसोसि-शन की स्थापना के बाद भी मारवाडी समाज की उस पचायत का प्रभाव ज्यो का त्यो चलता रहा। एसोसियेशन जब भी कोई वडा काम करना चाहता, तब उसे

पचायत को बुलाना पडता और उसी के द्वारा वह काम का श्रीगणेश करता था। इसी बीच समाज मे कुछ नवीन भावोवाले नवयुवक तैयार हो रहे थे। धीरे धीरे पचायत और एसोसियेशन का मतभेद बढता ही गया।

इसी बीच १९१६ मे ज्ञान-वर्द्धनी मित्र मण्डली नाम की सस्था की स्थापना हुई थी। इसके मत्री श्री सीतारामजी हुए थे। पुराने लोगो के साथ सघर्ष बढता गया जिसके दौरान सस्थाये बनती रही, आन्दोलन चलते रहे। इस सामाजिक परिवर्तन की दिशा मे सीतारामजी पूरे मनोयोग से लगे रहे। उनकी सामाजिक सेवा की भावना और बढती गयी। केवल मारवाडी समाज तक ही न रह कर उनकी इस भावना ने उनके मन के समाज-सेवी को सम्पूर्ण समष्टि के लिये समर्पित कर दिया। और, सामाजिक लाछना और उपेक्षा से सघर्ष करते हुये सीतारामजी समाज-सुधार के पथ पर निरतर चलते रहे।

एसोसियेशन के कार्यकर्ता पुराने पच-निर्णय को मान कर चलते रहे और इस पुरानेपन तथा सडी-गली मान्यताओ के विरुद्ध आवाज उठाने के लिये वैश्य सभा का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन मे आर्य समाज और सनातन धर्म वालो के सघर्ष का आरम्भ हुआ। रूढिवाद और प्रगतिशील विचारो के मध्य परस्पर शक्ति-परीक्षण का यह काल था।

उन्ही दिनो लक्ष्मीनारायणजी खेमानी द्वारा जालन्धर के आर्य कन्या महाविद्यालय मे अपनी बहन को भर्ती कराने पर सनातन धर्मियो द्वारा कठोर प्रतिक्रियात्मक कदम उठाया गया। इसी कदम से "आक्रोश और लाछना" से जुडा हुआ सनातनधर्मियो की ओर से "श्री सनातनधर्म" और सुधारवादियो की ओर से "सत्य सनातनधर्म" पत्रो के प्रकाशन और परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर के लेखो का काल आया जिसने समाज मे कोलाहल मचा दिया। और, इसी आन्दोलन के बीच स्वर्गीय कालीप्रसादजी खेतान का बैरिस्टरी पढने के लिये विलायत-यात्रा का निर्णय हुआ जिसका सनातनधर्मियो द्वारा कस कर विरोध किया गया। इस सब के बावजूद समाज निरन्तर बढता जा रहा था, प्राचीन मान्यतायें टूटती जा रही थी।

इसी बीच घृत आदोलन को लेकर समाज को एक और दिशा मिली। जब माहेश्वरी समाज के एक बडे व्यक्ति का मामला सामने आया तो पचायत के लोगो में मतभेद हो गया और उचित निर्णय न हो सका। तब से लोगो की श्रद्धा पचायत पर से उठने लगी। इसके बाद तो वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह, परदा-निवारण आदि के आन्दोलन काफी सचेतन होकर चलने लगे। १९२६ मे होने वाले सर्वप्रथम विधवा-विवाह ने तो समाज मे नया प्रतिमान स्थापित किया। इन सब के बीच सीतारामजी की भावना को रूप मिलता गया, उत्साह बढता गया और वे अधिकाधिक सक्रिय हो गये। इन प्रवृत्तियो मे सीतारामजी का समाज-सुधारक व्यक्तित्व निरतर ऊँचा होता गया परन्तु उनको कभी किसी प्रकार का लोभ नही रहा। उनके ही शब्दो में "रामेश्वरजी नाथानी पुत्र के विवाह पर बाजा बजवाना चाहते हैं जो समाज मे बहुत दिनो से बद कर रखा है। निश्चय रहा कि इसके लिये आदोलन किया जाय। अत में सत्याग्रह तक करना तय हुआ।

माहेश्वरी भवन मे एक मीटिंग करना तय रहा। उसमें अपना नाम भी मीटिंग बुलानेवालो मे रखा गया। आजकल यह नाम देने तथा सभापति बनने का एक –दो बार काम पड गया। यदि इसी तरह काम होता रहेगा तो अच्छा नही। इससे जहाँ तक हो अपने को अलग रखना चाहिये क्योकि काम तो चुपचाप करने से ही ठीक होता है। सेवा का काम करना चाहिये, नाम का नही।" और, इस पर भी जब किसी तरह उनका इस तरह की सभाओ–गोष्ठियो मे जाना होता है तो भी उनकी दृष्टि मात्र कार्य और कार्यकर्त्ताओ का ही निरीक्षण करती रहती है जिसे वे व्यक्त भी करते रहे है। माहेश्वरी भवन की सभा के बारे मे ऐसे ही निरीक्षण के बाद उन्होने सोचा था कि "इस मीटिंग मे लोगो की मनोवृत्ति बहुत बिगडी हुई मालूम पडी। असली काम के लिये जोश नही। बातो को या गाली देकर काम निकालने को अच्छा समझा जाता है। इस बात का विरोध करे तो महात्माई से काम चलने का नही, यह कहने को लोग तैयार। फोडा होने से दवा करनी ही पडती है। इसलिये कलकत्ता मे यह अडगे रहेगे ही।"

उन दिनो एक सामाजिक कार्यकर्त्ता को कितनी कठिनाइया होती थी, यह तो वे ही लोग बता सकते है जो उन दिनो की स्थितियो से अपने को सयोजित कर चुके है। फिर सीतारामजी जिनका, कार्य-क्षेत्र सेवा और सुधार दोनो का रहा, इसके कितने अनुभव लेते रहे है, इसका कुछ विवरण उनकी डायरियो के विभिन्न पृष्ठ सहज ही बोलते है

—"रामचन्द्रजी पोद्दार की माता की बिरादरी थी। वहाँ ४ बजे धरना देने गये हाथ जोड कर लोगो से प्रार्थना करने लगे कि आप लोग बिरादरी भोजन मे मत जाइये। इस पर रामचन्द्रजी भीतर से आये और बहुत कडे स्वर में कई बाते बोले। मारवाडी समाज के धनी लोगो मे शायद ही कोई बाकी रहा होगा कि जो अपने लोगो को जूतो से डाक कर भीतर न चला गया हो। आज अपना नया ही अनुभव था। किसी की धारणा ऐसी नही थी कि लोग अपने भाइयो को इस तरह कुचल कर ऊपर से चले जायेगे पर मारवाडी समाज मे जिसके पास धन है, वह जो चाहे करे। और, उसकी निन्दा करने वाला भी कोई नही मिले, यह लक्षण जीवित समाज का नही है। जब-जब सभा सोसायटी होती है और लोग लेक्चर देते है, तब मारवाडी जाति के बहुत गीत गाते है। वे यह नही जानते कि यह केवल मन की बात है। वास्तव मे यह जाति जमाने मे बहुत पीछे है, यदि दूसरी सभ्य जाति मे ऐसा किया जाय तो कोई भी शायद ऐसा नही होता कि भाइयो के ऊपर से चला जाता" (१७-६-३०)

—"मृतक बिरादरी मे पिकेटिंग करने गये। आज पचायत की तरफ से बडी उत्तेजनापूर्ण कार्यवाही हो रही थी। गालियो की तो बात ही नही, धक्का तथा कुछ मारपीट तक का भी ढग रहा। एक ब्राह्मण महाराज ने अपना भी गला पकडा था, ऊपर से पानी भी गिराया गया। (१६-६-३३)

श्री सीतारामजी की समाज-सेवा और सुधार का कार्य केवल कलकत्ता तक ही सीमित नही रहा। आसाम, बिहार, राजस्थान और उडीसा भी उनका क्षेत्र था। जहाँ से भी उनके

कानों में सामाजिक जडता और रूढि की आवाज पहुँचती थी, वे वहाँ चले जाते थे। वहाँ जाकर मात्र भाषण ही नही देते थे वरन् सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे कार्य करते रहे हैं। उनकी डायरी के हजार-हजार पृष्ठ अधिकाशत उनके सामाजिक सुधार और समाज-सेवा के कार्यों से भरे पडे हैं। मृतक-भोज निवारिणी सभा, अस्पृश्यता निवारक समिति, पर्दा प्रथा हटाओ आन्दोलन, नारी जागरण, देहेज प्रथा उन्मूलन समिति, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, त्यौहारो और पर्वो पर गीत गाने की परम्परा के विरोधी सगठन आदि अनेक सस्थाओ के वे जन्मदाता, सचालक और कार्यकर्ता रहे हैं। उनके कार्यो का क्षेत्र मात्र मारवाडी समाज ही नहीं रहा है। अन्य समाज भी रहे है जिनके लिये उन्होने कार्य किया है, सहायता की है, उन्हे विकसित होने का गौरव दिया है। उनकी दृष्टि मात्र हिन्दू समाज तक ही सीमित नही रही है। वे मुसलमानो को और अन्य धर्मावलम्बियो को भी उतना ही महत्त्व देते रहे हैं। यही कारण है कि उनकी समाज सुधार और सेवा की यात्रा चर्च, मन्दिर और मस्जिद में भी चलती रही है। ऐसे कितने अवसर उनके जीवन मे आये हैं, जब हिन्दू-मुसलमान परस्पर नफरत की दृष्टि से लडते रहे, झगडते रहे पर सीतारामजी ने हजारो मुस्लिम मित्रो को गले लगाया, उन्हे सद्भावना और सहयोग दिया, उनकी सभाओ का सभापतित्व किया, उनकी सस्थाओ को हर सभव सहायता की। सीतारामजी समाज के सुधार और सेवा के हर क्षेत्र, को अपनाने, और उसमे कार्य करने को उत्सुक ही नही रहे वरन इतिहास, दर्शन, धर्म, राजनीति, साहित्य की प्रत्येक नवीन उपलब्धि और उसकी प्रगतिशीलता को युग के साथ स्वीकार भी करते रहे।

सीतारामजी जीवन मे प्रगतिशीलता को सब से बडा महत्त्व देते हैं। वे आधुनिक वैज्ञानिक पद्धतियो को मानवीय दर्शन के साथ जोड कर देखते रहे हैं। उनकी दृष्टि में मानवता के विकास के लिए प्रगतिशीलता आवश्यक है न कि उसके विनाश के लिये। जड-मूल से सुधार की प्रवृत्ति का उनका यही लक्ष्य है। एक जगह उन्होने लिखा है—"विचार के नाम पर यह जचा कि "स्वधर्मे निधनो श्रेय, पर धर्मो भयावह" के अनुसार अपनी प्रवृत्ति, अपनी रुचि को देखते हुए, अपनी शक्ति का भान करते हुये, अपने को सामाजिक हो या राजनैतिक हो, आज की स्थिति में विद्रोह की प्रवृत्ति का प्रचार करना है। उसके लिये काम करना चाहिये। आज समाज रूढिवाद का गुलाम है, देश पराधीनता की जजीरो से जकडा पडा है। अपने पास न तो बहुत धन है, न अपने बहुत विद्वान हैं। ऐसी हालत में तब जहाँ पर भी मौका मिले, वहाँ पर विद्रोह-प्रवृत्ति का प्रचार करने के सिवा दूसरा क्या काम हो सकता है? और दूसरा अपने क्या कर सकते हैं। यदि मौका मिले, जब जो भी काम करें, पर इसी भावना से करे कि देश के लोगो के अदर विद्रोह करने की भावना जागृत हो तथा उनमें शक्ति आवे। किसी की थोडी सी सहायता कर भी दी तो क्या इससे वास्तविक लाभ होगा। जड-मूल से परिवर्तन की जरूरत है।" (१६-११-३२')

उनकी दृष्टि मे विवाह सामाजिक जीवन का एक स्वस्थ पहलू है। जिसका जितना ही अधिक सयोजित और परिष्कृत रूप से निर्वाह हो, उतना ही समाज स्वस्थ हो सकेगा। सीतारामजी ने विवाह के प्रत्येक पहलू को ध्यान से देखा। उन्हे पुरुषो की अपेक्षा नारियो का दायित्व अधिक लगता रहा है क्योकि उनकी दृष्टि मे नारियाँ ही स्वस्थ समाज की सच्ची निर्मात्री है। देश की नारियो को यदि स्वस्थ दिशा मिले तो वे बहुत कुछ कर सकती है, ऐसी उनकी धारणा सदैव रही है। अपने समाज मे जब भी बाल-विवाह या वृद्ध-विवाह होता था तो इन्हे वेदना होती थी और समाज की व्यवस्था पर दुख भी। इस दुख का एक व्यक्त क्षण इनकी डायरी मे है "मारवाडी समाज आज बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह रोकने मे लगा हुआ है। बाल-विवाह आदि जैसे सामान्य सुधार भी यह समाज अभी नही कर पाया है इससे ज्यादा चिंताजनक स्थिति क्या हो सकती है। (२१-२-३३)

१९३० मे ही सीतारामजी ने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो विवाह उनके सिद्धान्त के अनुकूल नही है, उसमे वे सम्मिलित होने नही जायेगे। और ऐसे कई क्षण आये जब कि इन्हे जाना जरूरी लगा लेकिन गये नही। इससे बहुत से आत्मीय स्वजनो का विरोध, लाछना भी इन्हे मिली, जाति से निकाले गये लेकिन अपने सिद्धान्त पर दृढ रहे। समाज मे प्रचलित वृद्ध-विवाह को रोकने मे वे सदैव जागरूक रहे। इसी जागरूकता मे एक क्षण यह भी था—"जो श्री अपना एक बालिका के साथ विवाह कर रहे है, उनके सबध मे विचार करने के लिये मित्रो की मीटिंग थी। उसमे गये। बहुत वाद-विवाद के बाद यह तय हुआ कि श्री   से मिल कर विवाह रुकवाने की कोशिश करनी चाहिये। और इस पर भी यदि वे विवाह करना निश्चित रखे तो मगलवार से पत्रो मे आन्दोलन शुरू किया जाय। चाहे जो भी हो पर यह कितने दुख की बात हे कि एक खूब पढा-लिखा और समझदार आदमी बियालिस-तियालिस वर्ष की उम्र मे तेरह-चौदह वर्ष की लडकी से विवाह करने के लिये तैयार हो जाता है। उसको इस बात का ख्याल नही रहता कि यह बालिका जब बीस वर्ष की होगी, तब वह पचास वर्ष का हो जायेगा और उस समय उसका क्या हाल होगा? और भी कितनी बातें है जो ऐसे सबधो में बहुत दुखदायी होती है पर किया क्या जाय? यह ऐसा काम है कि जो करने पर उतारू हो जाता है, वह करके रहता है। ऐसे विवाह यह प्रकट करते है कि समाज नीचे की ओर जा रहा है। जब ऐसे पढे-लिखे आदमी भी कुछ सोच-विचार नही करते तब दूसरो को क्या कहा जाय? अपने से हो सकेगा, उतना विरोध तो करेगे ही पर यह स्थिति बडी दुखद है। रात मे श्री   से मिले उनसे मिलने पर जो बाते हुई वे कोई सतोषजनक नही थी। वे चाहते है कि किसी बडी उम्र की लडकी के साथ विवाह हो तो कोई बात नही है। पर अपने को उससे कैसे सतोष हो सकता है? किसी विधवा से विवाह करने के लिये वे लोग तैयार नही होते दिखते। (१८-२-३३)

एक बाल-विवाह के परिणाम स्वरूप विधवा हो जाने वाली बहिन के प्रति

उनके हृदय मे कितनी पीडा होती थी, उसका वर्णन भी उनकी डायरी मे है—"एक सज्जन का लडका, जिसकी उमर सत्तरह वर्ष की थी और इसी साल जिसका विवाह हुआ था, चला गया। उसके यहाँ गये। बिचारे बडे दुखित थे। वास्तव मे उस लडकी का क्या होगा जिसकी उम्र १२।। वर्ष है। उस लडके का विवाह होने की बात थी, तब भी आपने कहा था कि इस उम्र मे विवाह मत कीजिये पर विवाह में न मालूम क्या है—कितना ही नुकसान तकलीफ क्यो न हो विवाह किये बगैर रहते ही नही। १४ से १८ तक बहुत लडके मरते है, यह सरकारी रिकार्ड है और प्रत्यक्ष भी देखने मे आता है पर तब भी लोग मानते नही। इस धर्म के नाम पर कितनी अज्ञानता फैली हुई है। (६-२-३३)

बाल–विधवाओ के लिये सीतारामजी के हृदय मे सदा बडी सहानुभूति रहती है। इसी से प्रेरित होकर विधवा-विवाह को उन्होने सदैव न्यायोचित माना है। उन्होने एक जगह अपनी डायरी मे लिखा है—"आज श्री का विवाह श्री देवी के साथ शाम को ७ बजे आर्य समाज भवन मे था। यह विवाह विधवा-विवाह है और अपना नाम निमत्रण देने वालो मे था। इसलिये वहाँ गये। इस विवाह के पहले जो विवाह हुआ था, उसकी तरह कुछ भी विरोध नही हुआ। लोगो मे उत्साह तथा कौतूहल था। इसलिये उपस्थिति बहुत अधिक हुई, विवाह सुसम्पन्न हो गया। श्री सिद्धान्तवादी और पक्का आदमी है। इससे मालूम होता है कि लडकी को किसी तरह की तकलीफ नही होगी। लडकी अच्छी मालूम होती है। यदि यह विवाह नही हो होता तो इस विधवा बहिन के लिये कही स्थान नही था। न मालूम ऐसी कितनी ही विधवाएँ क्या क्या कष्ट और अपमान तथा यत्रणा पूर्ण जीवन बिता रही है। हिन्दू समाज आज विधवाओ की मूह की आग मे जल रहा है। इसमे एक बहिन का जीवन भी सुखपूर्वक, धर्मपूर्वक बिताया जा सके तो उसका प्रयत्न करना पुण्य मालूम होता है। (२५-५-३३)

श्री सीतारामजी जडमूल से सुधार के पक्षपाती रहे है। इसलिये उनकी दृष्टि में सुधार-प्रियता तो मात्र भावुकता है। हाँ, जडमूल से सुधार हो, इसका उन्हे सदैव ध्यान रहता है। भावुकता से सुधार नही हो सकता, उसके लिये तो क्रिया-शीलता की जरूरत पडती है। एक जगह उन्हे एक बार जाना पडा, जिसे उन्होने अपने इसी दृष्टिकोण से पहचाना—"समाज मे नवीन भावनाओ का सचार समय के अनुकूल कुछ न कुछ होना अनिवार्य था ही। फिर पूज्य महात्मा जी के १९२१ के सत्याग्रह आन्दोलन की बातो मे सारे देश मे एक प्रकार से सुधार की, सादगी की, सच्चाई की, त्याग की, लहर वेग मे बढी ही। अब यह पहले वाला जमाना नही रहा, जिसमें केवल सुन्दर सी वक्तृता से काम चल जाता था। लोग आचरण की तरफ भी ध्यान देने लगे है। जिनकी कथनी और करनी मे अन्तर है, उनके प्रभाव से चाहे लोग उनके सामने विरोध न करें। पर मन मे उनका विरोध करने लगे है।

"अपने लोग समझौता करने पर राजी होते है। उससे लाभ मानते है। पर यह ठीक नही जचता। कुछ लोग तो ऐसे जरूर ही होने चाहिये कि जो बाते समाज के लिये, देश के लिये हानिकारक मालूम होती हो, उनका हरदम विरोध
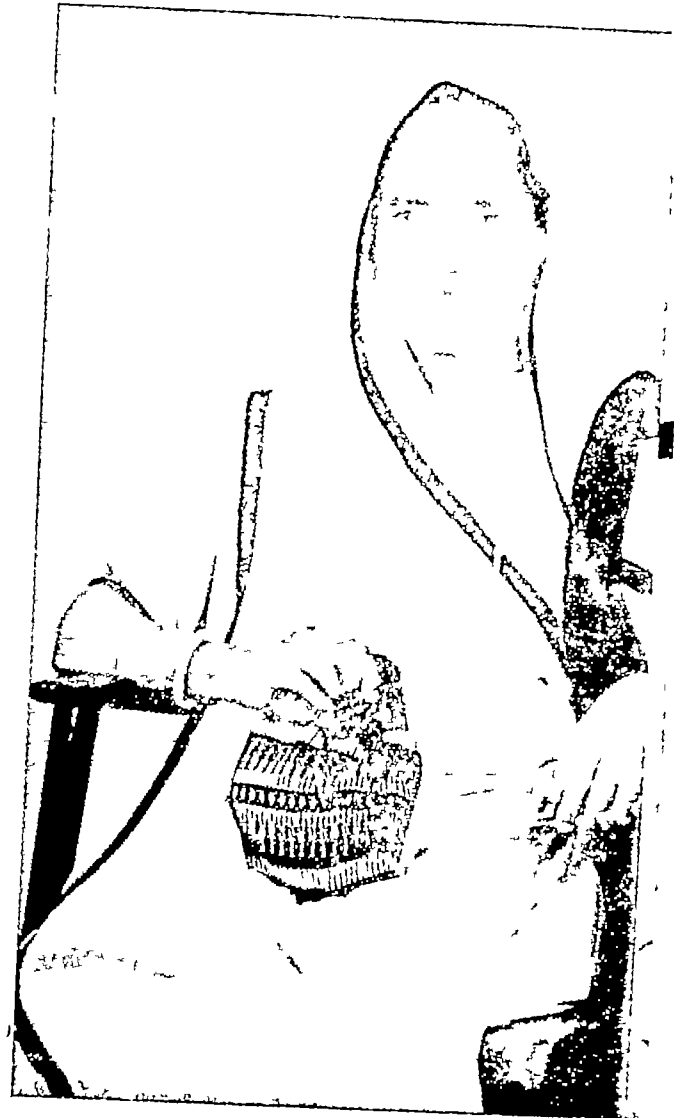
स्व० जमनालालजी और श्रीमती जानकीदेवी बजाज

प्रेरित

स्वाधीनता-संग्राम और सामाजिक क्रान्ति के क्षेत्र मे अविस्मरणीय युगल
स्व० वसन्तलाल मुरारका और श्री सीताराम सेकसरिया

श्री सीतारामजी बहुत अस्वस्थ थे, राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद कलकत्ता आगमन पर उनसे मिलने के लिये उनके घर पर पधारे। अनन्य मित्र श्री भागीरथ कानोडिया और कुटुम्ब के अनेक सदस्य उपस्थित हैं।

करे। और विरोध करें उन लोगो का जो उनको कायम रखने मे सहायक हो। जो लोग क्राति की बाते करते हो, क्राति को देश और समाज के लिये आवश्यक मानते हो, वे समझौता कैसे कर सकते है ? वे उन लोगो के साथ क्यो मेल करे, जो उनके विरोधी हैं। हो सकता है कि उनका साथ लोग नही देगे। उनका दल बहुत छोटा होगा। यह भी हो सकता है कि वे अपने जीवन-काल मे जिस क्राति की आशा रखते हैं, वह नही हो पर विद्रोह का भाव जागृत रखना तो उनका काम है। और यदि वे उसको कायम रख सके तो वे नहीं तो उनकी दूसरी या तीसरी पीढी के लोग सफल होंगे। यदि भावना मर गई तो सब मर गया। ऐसी बाते मन मे आई और इस प्रकार की हलचल काफी समय तक मन मे रही।" (६-३-३४)

अग्रवाल-माहेश्वरी विवाह-सम्बन्ध से उन्हे जो खुशी हुई, उसका वर्णन उनके ही शब्दो मे इस प्रकार है

"बालकृष्णजी मोहता के पुत्र श्री ब्रह्मदेव का विवाह एक अग्रवाल लडकी के साथ आज होने वाला था। मारवाडी समाज मे अग्रवाल-माहेश्वरी सम्बन्ध, जहाँ तक मालूम है, यह पहला है। इसलिये तथा चूकि इस विवाह मे रस्म-रिवाजो का पूर्ण बहिष्कार किया गया था और चूकि बालकृष्णजी से पुराना मित्रता का सम्बन्ध है, इसलिये इस विवाह मे भाग लेने का उत्साह था। भगवान देवी, पन्ना आदि सब के साथ वहाँ गये। और काफी देर तक वही रहे। विवाह खूब ही सादगी पूर्ण हुआ।"

नाम मात्र के सुधारो से सीतारामजी को सदैव चिढ-सी रही है क्योकि वे दिखावट और आडम्बर से घृणा करते रहे हैं। एक विवाह में जाने पर उनकी जो मनोदशा हुई थी, उसको अपनी डायरी में उन्होने लिखा है

"आज करीब ६-७ वर्ष के बाद खास मारवाडियो के विवाह मे सम्मिलित होने का मौका मिला होगा क्योकि लडकियो और लडको की उमर चौदह-अठारह से कम मे ही ज्यादातर विवाह हो जाते है और वहाँ अपने जाते नही। इस विवाह मे लडके की उम्र करीब २० और लडकी की उम्र करीब १५ साल है। दूसरे, दोनो ही परिवार सुधार-प्रिय हैं, खासकर लडका बहुत सुधारक विचार का है और अपने से बहुत ही प्रेम रखता है तथा अपनी बात मानता है। इसलिये इस विवाह मे उत्साह मे भाग लिया। इससे मालूम हुआ कि अभी मारवाडी समाज में सुधार नाम मात्र का ही हुआ है। वास्तविक सुधार कुछ भी नही हो पाया है। वह आज भी रूढियो का गुलाम है और उनको छोडना नही चाहता। जो बातें बिलकुल निरर्थक हैं, जिनको निरर्थक माना जाता है, उनको भी छोडना नही चाहता। दुख तो इस बात का है कि जो सुधारक विचार के हैं तथा काफी पढे-लिखे हैं, वे भी रूढियो से उसी तरह चिपके हुये है। इन लोगो के यहाँ जो सुधार होने चाहिये थे, उनको देखते, जो सुधार हुये हैं, वे नगन्य हैं। पर कुछ तो हुआ, इसी मे सतोष करना पडता है।" (११-१२-३२)

यात्रा मे भी जहाँ कही इनको मारवाडी समाज की रूढिवादिता दिखाई पडती थी, इनके मन मे पीडा हो उठती थी। इन अवसरो पर इनकी मन स्थिति का

एक चित्रण एक बार बिहार-भूकम्प के सिलसिले में यात्रा मे जाते समय की दिनचर्या मे मिल सकता है—"स्टीमर मे हाथीदह घाट आये। वहाँ गाडी मिली और उस पर मोकामा आये। रास्ते की एक बात और लिखने की इच्छा होती है। वह यह कि एक मारवाडी भाई, जिसकी उम्र करीब तीस-पैंतीस वर्ष की होगी अपनी नववधू के साथ यात्रा कर रहा था। उसके ढग और साथ के सामान से मालूम होता था कि वह गौना करके लाया है। और वधू से उसका पहले का परिचय नही के बराबर है। वधू भी जवान लडकी है। गहनो मे तथा घाघरा आदि कपडो से लथपथ है। नववधू होने के कारण ज्यादा लम्बा घूघट निकाले हुये है। बिचारी इतनी दबी हुई है और मुरझाई हुई बैठी है कि उसकी ओर देख कर एक प्रकार का दर्द सा होता था। हो सकता है दोनो का मन भीतर से बात करने के लिये खूब चाहता हो पर सकोच मे बिचारी वधू कैसे बात करे? पुरुष ने कुछ बाते की होगी पर अपरचितता मे विशेष बाते क्या हो सकती है? भाई भागीरथजी को मारवाडी समाज के दाम्पत्य जीवन के सबध मे अपने इस नवदम्पत्ति की बात कही। ये सब बाते समाज की वास्तविक स्थिति की द्योतक है। इस समाज में विकास आते न मालूम कितना समय लगेगा?"

इस प्रकार जैसे यात्रा में सीतारामजी की समाज-सुधार की दृष्टि जागरूक रही, वैसे ही जेल मे भी इनको चिन्ता लगी रहती थी। १९३२ की जेल-यात्रा मे दिनचर्या का एक पृष्ठ है—"आज जेल मे लोगो की मुलाकात आई। मालूम हुआ कि एक लडकी का विवाह जून महीने मे है। अपने बाहर थे, तब इस विवाह को रुकवाने की कोशिश की थी। और ऐसा मालूम हो गया था कि अब यह विवाह इस वर्ष तो कम से कम नही होगा। लेकिन आज मालूम हुआ कि वह विवाह होने वाला है। इससे अपने मन मे दुख हुआ क्योंकि लडकी उम्र मे १३॥ वर्ष अन्दाज की होते हुये भी बहुत नाटी थी। और कमजोर थी। तथा इसकी पढाई-लिखाई का भी काम अभी पूरा नही हुआ था। और लडकी की इच्छा अभी विवाह करने की नही थी। लडका भी अपने मित्र का ही है। उसकी उम्र १७ वर्ष की है और उसकी इच्छा अभी विवाह करने की नही थी। अपने सामने तो उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मै इस वर्ष विवाह नही करूँगा। लेकिन मारवाडी समाज के लडको मे दम कहाँ है कि वे अपने माता-पिता का तथा और लोगों का दबाव पडने पर अपने सिद्धान्त पर टिक सकें। लेकिन सब मे दुख की बात तो यह है कि दोनो तरफ ही सुधारक विचार के पढे-लिखे लोग होकर भी लडकी-लडके की इच्छा के विरुद्ध ऐसे विवाह करते हैं। समाज मे किससे आशा की जाय कि यह लोग समाज मे सुधार करने के लिये तैयार है या सुधार इनके द्वारा होगा। समय पर ये सभी कच्चे साबित हो जाते है। यह लडकी बहुत ही अच्छी है। और अपने उसे बहुत प्यार करते थे। मारवाडी बालिका विद्यालय में ही पढती थी। अपनी इच्छा थी कि इस लडकी को मैट्रीकुलेशन पास अवश्य करा लेगे। लेकिन मारवाडी समाज में सुधार होना तथा लडकियो में शिक्षा का प्रचार होना बहुत ही मुश्किल है। (२६-५-३२)

सीतारामजी ने विवाह मे आयु-सीमा के लिये शारदा एक्ट का समर्थन किया, जो तत्कालीन स्थिति मे एक साहस का काम था। समर्थन ही नही, उन्होंने उसके क्रियान्वयन के लिये दृढ सकल्प भी किया। उन्होने एक दिनचर्या मे कहा—"आज एक दो मित्रो से मिल कर बेलूर बैजनाथजी के बगीचे गये। वहाँ कई मित्र आये थे। समाज-सुधार के विषय पर बात हुई। शारदा कानून के अनुसार जो विवाह नही करते, ऐसे लोगो पर महासभा के नाम से मत्री केस चलाये और उसमे सभी मित्र मदद करे, ऐसा निश्चय हुआ। दूसरे, मृतक बिरादरी भोज को बन्द करने के लिये पब्लिक सभा हो और पर्दा प्रथा के लिये मित्रो के घरो पर स्त्री पुरुषो की सम्मिलित मीटिंग हो, ऐसा निश्चय हुआ।" (१४-८-३२)

उसके बाद तो जो विवाह शारदा एक्ट के अनुकूल नही होते थे, सीतारामजी उनमे जाते भी नही थे। एक बार उन्हे जाना ही पडा तो उसकी उनके मन पर जो प्रतिक्रिया हुई, उसकी अभिव्यक्ति उनके ही शब्दो मे इस प्रकार है—"शाम को नारायणदासजी बाजोरिया के उनके भतीजे का विवाह था। उसमे जीमने गये। आज कई वर्षों के बाद विवाह मे जीमने गये क्योकि मारवाडी समाज मे १४ वर्ष की लडकी और १८ वर्ष का लडका हो, ऐसे विवाह बहुत ही कम होते है। फिर जाने की इच्छा भी नही होती और हर एक अपने को बुलाता भी नही क्योकि जाति-पाँति वाला झगडा झूठा-सच्चा अभी तक है ही। इस विवाह मे जा कर जो देखा, वह भी अपने को सुधार-भावना से सम्बन्ध रखने वाला नही लगा। मारवाडी समाज मे सुधार होने मे बहुत समय लगेगा। आज देश की, समाज की जो स्थिति है, उसको देखते इन विवाहो के नाम पर अपने लोगो मे बहुत फिजूल खर्च हो रहा है।" (१९-६-३४)

नारी-उत्थान :

इन सारे आन्दोलनो के केन्द्र मे थी नारी। समाज मे, देश मे, घर मे उसका कोई अलग पद, कोई स्थान, कोई महत्व न होना उन्हे खलता था। समाज मे नारी की अपमान-जनक स्थिति ने इनके कोमल मन पर बडी चोट पहुँचाई। पति हो तब तक ही उसका सम्मान होता है, बाद मे हर तरह से तिरस्कार और उपेक्षा। यह स्थिति बडी अपमान-जनक लगती। विधवाओ का तो मानो कोई स्थान ही नही होता था। उन्हे बेटो के ही आधीन रहना पडता। स्त्रियो की जरा सी गलती को भी बहुत बडा कर के देखने और उन पर तरह-तरह के लाछन लगाने की प्रवृत्ति बडी अन्यायपूर्ण होती थी।

स्त्रियो की शिक्षा और उन्नति के लिये ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजा राममोहन राय ने जिस कार्य की शुरुआत की थी, उसी तरफ आगे बढने की इनकी दृढ प्रेरणा हुई। बाद में प्रो० कर्वे और लाला देवराजजी के दर्शन कर सीतारामजी का जीवन ही नारी-सेवा का प्रतीक बन गया। नारी-समाज की बुरी स्थिति उनकी अपने मन की व्यथा बन गई थी। उनकी यह धारणा दृढ होती चली गई

कि स्त्री-जाति को स्वतंत्रता, समता और सम्मान मिले बिना समाज और राष्ट्र की कोई प्रगति सभव नही है। उन्होंने अनुभव किया—"स्त्रियो की पूजा मे मन को बडा सतोष मिलता है और अपने को इस आदोलन मे आनन्द मालूम होता है। युद्ध समाप्त होने पर रचनात्मक कार्यो मे लगना ही है और वह काम जहाँ तक हो, बहिनो का ही हो। अब इस काम मे शारीरिक तकलीफो को कुछ देखना नही है। जितना रुपया पैसा भी हो, अपने मे खर्च करना ही है।

स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष आकर्षण एव रुचि के कारण सन् १९२७ में इन्हें मारवाडी बालिका विद्यालय का मत्री बनाया गया। विद्यालय की अवस्था तब बडी नाजुक थी। स्कूल में शुरू मे चार ही कक्षाये थी। एक-एक लडकी को लेकर आगे के क्लास आरभ किये गये और १० क्लास तक पहुँचने मे ८ वर्ष का समय लगा। फीस तो ली ही नही जाती थी, किन्तु तब भी माता-पिताओं को अपनी लडकियो को पढने भेजने के लिये राजी करना मुश्किल था। किन्तु उस महान् रूढिवादी युग मे भी इस निष्ठावान सेवाव्रती युवक को बालिकाओं के माता-पिता का सर्वदा विश्वास मिला और इस प्रकार नारी-जाति की सेवा और उन्नति करने के रास्ते खुलते गये। स्त्री-शिक्षा के विकास की जो यात्रा इन्होने मारवाडी बालिका विद्यालय से आरभ की, उसकी परिणति हुई श्री शिक्षायतन में जो आज देश मे इस क्षेत्र की महान् सस्थाओ में से है। इन दोनो सस्थाओ में हजारो लडकियो ने शिक्षा प्राप्त की।

फिर तो इन्होने नारी सत्याग्रह समिति की भी स्थापना की और स्त्रियाँ सन् १९३० में शराब और विदेशी कपडो के विरुद्ध पिकेटिंग करती हुई गिरफ्तार हो कर जेल भी गयी।

हरिजन-सेवा

इनका दूसरा प्रमुख कर्म-क्षेत्र था हरिजन-उत्थान का। हरिजन सेवक सघ की स्थापना तो १९३२ मे हुई और ये उसके प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे पर हरिजनो की सेवा का कार्य तो ये पहले ही शुरू कर चुके थे। हरिजनो का अज्ञान, उनकी दुरवस्था, उनके साथ होने वाला अन्याय इन्हे बडा दु ख देता था और उनका उत्पीडन देख इनकी आँखो से आँसू निकल आते थे। ये और इनकी पत्नी भगवान देवी हरिजन-बस्तियों में जाते, उनमे शराबबन्दी का प्रचार करते, सफाई और शिक्षा की बाते उनको सिखाते और जरूरत पडने पर स्वय उनके लिये सफाई का कार्य करते तथा उनके घर पर भोजन भी करते।

हिन्दी की उन्नति .

हरिजन-सेवा के अलावा दूसरा बडा कार्य था हिन्दी भाषा के प्रसार का। अग्रेजी की प्रभुता अच्छी नही लगती थी। इनका विचार था कि "अग्रेजी जितनी भी पढ ले, उसका जितना भी अनुकरण कर ले, हमे अग्रेज तो नही होना है।" जिन्हे बचपन में हिन्दी की नियमित शिक्षा भी प्राप्त नही हो सकी थी, उन सीतारामजी ने अपने स्वाध्याय और सम्पर्क के कारण अपना ज्ञान और अनुभव इतना बढा लिया कि

हिन्दी की सभी प्रमुख सस्थाये जैसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन इत्यादि इन्हे अपनी सभाओ मे अवश्य बुलाती। वहा ये अपने विचार भी व्यक्त करते। 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' की तरह महिला लेखिकाओ के लिये इन्होने 'सेकसरिया पुरस्कार' स्थापित किया। इनका विश्वास था कि स्वराज्य होने के बाद हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा होगी और उसकी उन्नति होगी। जब ऐसा नही हुआ तो इनको बडा कष्ट हुआ और आज भी है। जो हो, हिन्दी की साधना के लिये वे प्राणपण से प्रयत्नशील है। कलकत्ता मे हिन्दी भवन की स्थापना का उनका स्वप्न अभी तक पूरा नही हुआ, इसका उनके मन मे बडा विषाद है।

गाधीजी, काका कालेलकर और पुरुषोत्तमदासजी टडन के साथ राष्ट्रभाषा प्रचार के सभी कार्यो मे इन्होने योग दिया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन मे हिन्दी भवन स्थापित करवाने मे इनका विशेष सहयोग रहा।

हिन्दी के विषय मे इनकी धारणा इस प्रकार व्यक्त हुई हे —"भारतीय भाषाओ की एकता और परस्पर के मिलन मे अग्रेजी की सब से बडी बाधा है। जहा हमारा काम एक दूसरे को समझने की बात पर आता है, वहा अग्रेजी बीच में आ जाती है और हमारा कार्य चल जाता है। जहा पर बगाली और अन्य भाषा-भाषी मिलते है, परस्पर मिलन ज्यादा जल्दी होता है। यदि देश की भाषाओ की एकता अभीष्ट है तो अग्रेजी को हटाना होगा।"

राष्ट्रीय यज्ञ ·

कलकत्ता आने के थोडे दिनो बाद ही सीतारामजी के मन मे राष्ट्रीयता की उमग पैदा हो गई थी। उन्होने एक जगह लिखा है—"जब मैथिली-शरणजी गुप्त की 'भारत-भारती' प्रकाशित हुई तो बसन्तलालजी ने पत्र डाला और मुझे उसकी ये पक्तियाँ लिख भेजी—"हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होगे अभी ? आओ विचारे आज मिल कर यह समस्याये सभी।" और इसी सदर्भ मे उन्होने आगे लिखा है

"उन दिनो गद्दियो मे रात मे काम करना पडता था। बसतलालजी को दस बजे छुट्टी मिल जाती पर रोकड का काम होने के कारण मुझे अधिक समय तक काम करना पडता था। जिस दिन मुझे जल्दी छुट्टी मिलने की सभावना मालूम होती, उस दिन हम लोग मिलने की व्यवस्था करते और बडतल्ला की मोड की कोठी के पास बैठ कर घण्टो बाते करते। हमारी चर्चा का विषय होता देश और समाज की समस्या। अपने व्यावसायिक कार्य को करते हुये भी हम इन्ही समस्याओ के सदर्भ मे पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित महात्मा गाधी के दक्षिण अफ्रीका के समाचारो को विशेष दिलचस्पी से पढते थे और विचारते थे कि हम इन कामो को कैसे करे ? कभी-कभी देश के गण्यमान्य नेताओ के सम्बन्ध मे भी चर्चा कर लेते थे। लोकमान्य तिलक, विपिन चन्द्र पाल, गोखले, लाजपतराय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा गाधीजी और बगाल के क्रातिकारियो की बाते होती थी। हमारे

साथियो मे ऐसे युवक भी थे, जो जेल या सरकारी दमन की स्थिति के लिये अपने को तैयार करने की दृष्टि से जमीन पर सोते थे, ईंट का तकिया लगाते थे और खिचडी खाते थे। उन दिनो की भावनायें इतनी तीव्र थी कि हर आदमी, जो जरा भी देश और समाज की सेवा के बारे मे सोचता था, हर तरह से अपने-आपको कष्टो मे डालना चाहता था। ऐसी विचारधारा रखने वालो की आर्थिक अवस्था शोचनीय थी। फिर भी अपनी आमदनी का एक हिस्सा कुछ को छोड कर वे सार्वजनिक कार्यो मे देने के लिये बाध्य थे। सयोग से इसी समय एक स्वामीजी आये, जिन्होने नवयुवको को सादगी, सेवा, सत्य-निष्ठा और देश-प्रेम का पाठ पढाया। उन्होने सात जीवनोपयोगी व्रत दिलाये —(१) सूर्योदय मे पहले उठना, (२) उपासना करना, (३) व्यायाम करना, (४) स्वाध्याय करना, (५) स्वदेशी वस्त्र पहनना, (६) स्त्री सम्बन्धी चारित्रिक पवित्रता बरतना (७) आमदनी का एक हिस्सा, जो कम से कम दस प्रतिशत हो, देश के कार्यो मे देना।"

"हम लोग उन दिनो कार्यकर्ताओ की दूसरी पक्ति मे थे। इसलिये सारी बातो की पूरी जानकारी हमे नही मिलती थी, पर इस गतिविधि से हम सबधित थे और आकर्षित भी। स्वदेशी आन्दोलन ने बगाल मे ही नही समस्त भारतवर्ष मे राजनीतिक जागृति और स्वाधीनता की प्रबल भावना पैदा कर दी थी। उन दिनो "देश की बात" नामक एक पुस्तक की चर्चा हम लोगो मे खूब थी। इस पुस्तक ने अग्रेजी राज्य के विरोध मे बहुत अच्छा वातावरण पैदा किया था। इस पुस्तक को पढ कर हर भारतीय अग्रेजो का कट्टर विरोधी बन जाता था। पुस्तक जब्त थी। ऐसी स्थिति मे उसका किसी के पास मिल जाना खतरे से खाली नही था। सरकारी दमन का डर बहुत था। ऐसी बात नही थी कि हम डरते नही थे किन्तु इस प्रकार की पुस्तकें पढने, नेताओ के बारे मे जानने की जिज्ञासा रखते थे और समय आने पर कुछ करने-धरने का साहस भी।"

"१९१४ मे प्रथम महायुद्ध आरम्भ हुआ था। इसकी प्रतिक्रिया चारो तरफ दिखाई दी। सरकार भारत रक्षा कानून बना कर आतकवादियो को गिरफ्तार करने लगी। अग्रेजी राज्य के पिट्ठू लोग युद्ध में सहायता करने के लिये आदोलन और प्रचार करने लगे।"

"वस्तुत सन् १९०५ ई० मे बग-भग आन्दोलन के साथ-साथ स्वदेशी आदोलन शुरू हुआ था। उसमे मारवाडी नवयुवको ने अच्छा भाग लिया। उनमे कई तो मेरे मित्र हैं और मै अच्छी तरह जानता हू कि उस आदोलन के समय उनमे देश-भक्ति की भावना पैदा हुई थी। इसके बाद ही इस आदोलन ने एक दूसरा रूप भी लिया जिसको टेरोरिस्ट आन्दोलन कहा जाता है। इस आदोलन से मारवाडी समाज के नवयुवक कई रूपो मे सहानुभूति रखते रहे। हो सकता है उसमें मुख्य भाग न लिया हो, पर उस आदोलन से उनका ताल्लुक रहा और इसके परिणाम स्वरूप मारवाडी समाज के मुख्य-मुख्य नवयुवक पकडे गये और उन्होने बडी तकलीफे उठाई।"

"मारवाडी समाज व्यापारी समाज होने के कारण राजभक्त माना जाता था। विदेशी कपडे का व्यापार मारवाडी समाज का मुख्य व्यापार था। विदेशी कपडे का आयात अग्रेजी आफिसो के द्वारा होता था। मारवाड़ी समाज के बडे नेता या पच इन आफिसो के दलाल या मुसद्दी थे। पर मारवाडी समाज मे कुछ युवक थे जो अग्रेजी राज्य के खिलाफ विचार रखते थे और आतकवादी आन्दोलन-कारियो के साथ उनका सम्बन्ध था। डा० कैलाशचन्द्र बोस का मारवाडी समाज के धनी और प्रभावशाली लोगो पर उन दिनो काफी दवाव था। ये सब लोग नवयुवको के रवैये से सख्त नाराज थे। इसी समय एक घटना मे पाच-सात युवक भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार हो गये। इस घटना का समाज पर ऐसा प्रभाव पडा कि सारा नवयुवक समाज भय से कापने लगा। साथ ही कैलाश बाबू के नेतृत्व मे पच लोग सरकार के पास अपनी राजभक्ति के सदेश भेजने लगे। वर्तमान मारवाडी रिलीफ सोसायटी का नाम उन दिनो मारवाडी सहायक समिति था। इस सस्था का सचालन नवयुवको द्वारा ही होता था। बगाल मे आतकवादी आन्दोलन की भावना रखने वाली दो समितिया थी—एक युगान्तर समिति और दूसरी अनुशीलन समिति। मारवाडी सहायक समिति नाम रहने के कारण और नवयुवको की सस्था होने के कारण कैलाश बाबू ने राय दी कि इस सस्था का नाम न बदला गया तो सरकार की निगाह मे मारवाडी समाज शका की दृष्टि से देखा जायेगा। इन सब बातो का ऐसा प्रभाव पडा कि युवक समाज उनसे त्रस्त हो गया और सार्वजनिक काम की चर्चा बद सी हो गई।"

"कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप' उन दिनो हिन्दी के पत्रो मे नवयुवको का पथ-प्रदर्शक था। स्वर्गीय गणेश शकर विद्यार्थी के लेखो को युवक-समाज आदर की दृष्टि से देखता था। मारवाडी सहायक समिति का नाम बदलने पर यहा की जो स्थिति हो गई थी, उस पर विद्यार्थी जी ने 'प्रताप' मे एक बहुत ही प्रभाव-शाली लेख लिखा। विद्यार्थीजी की कलम मे वह शक्ति थी, वह जादू था, जिसका प्रभाव सर्वसाधारण पर पडे बिना नही रह सकता था और खास कर युवक वर्ग पर तो उनके लेखो का अत्यधिक प्रभाव पडता था।"

"भाई बसन्तलालजी की पत्नी बहुत बीमार थी। वे उनको लेकर जसीडीह गये हुये थे। 'प्रताप' के लेख को पढ कर मेरे मन मे जो प्रतिक्रिया हुई, उसको लिख कर विद्यार्थी जी के लेख के साथ मैंने भाई बसन्तलालजी के पास जसीडीह भेजा। मैंने उनसे यह पूछा था—आप विचार करे कि हम लोग क्या कर सकते है? और यह भी कि जितना जल्दी हो सके, आप कलकत्ता आ जाये। बसन्तलालजी पर इसकी प्रतिक्रिया होनी स्वाभाविक ही थी। उन्होने मुझे पत्र मे लिखा—"चाहे जो हो, हम चुप नही बैठ सकते, हमे कुछ न कुछ करना ही होगा। आप लोगो से मिलना-जुलना शुरू करे। मै जल्दी से जल्दी आ रहा हू।" एक सप्ताह ही में वे आ भी गये और इसके बाद राजनीतिक जीवन की सक्रियता बढती गयी।

बग-भग आदोलन से जब राष्ट्रीय आदोलन ने स्वदेशी आदोलन का रूप लिया तो मारवाडी समाज की क्या स्थिति हुई, इसके विषय में सीतारामजी ने लिखा

है—"जिसको टैरोरिस्ट आंदोलन कहा जाता है, वह आन्दोलन मारवाड़ी समाज की प्रकृति और स्थिति के अनुकूल नही था, तो भी मारवाड़ी समाज के नवयुवक कई रूपों मे उससे सहानुभूति रखते रहे। हो सकता है सब ने उसमें सक्रिय भाग न लिया हो, पर उस आंदोलन से उनका ताल्लुक रहा और उसके परिणाम स्वरूप मारवाड़ी समाज के मुख्य-मुख्य नवयुवक पकड़े गये और उन्होंने बड़ी यातनाएं उठाई। उन पकड़े जाने वाले नवयुवक बंधुओं मे दो-चार का नाम लिखना अनुचित नही होगा। श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, श्री ओंकारमलजी सराफ, श्री ज्वाला प्रसादजी कानोड़िया, श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, स्वर्गीय श्री फूलचन्द चौधरी, और श्री कन्हैयालालजी चितलांगिया। श्री घनश्यामदासजी बिड़ला पर भी वारण्ट निकला था। इसके अलावा और लोग भी थे। इस आंदोलन का शुरूआत मे ज्यादा जोर बंगाल मे ही था। इसलिये कलकत्ता के युवकों ने ही इसमे ज्यादा हिस्सा लिया।"

१९१७ मे जब कलकत्ता मे श्रीमती एनी बेसेण्ट की अध्यक्षता मे कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, उसी समय से सीतारामजी का झुकाव कांग्रेस की ओर शुरू हुआ। १९१९ मे जब तिलक और गांधीजी का कलकत्ता मे आगमन हुआ, तब तक सीतारामजी के अन्दर राजनीतिक चेतना काफी आ चुकी थी। समाज के लोग भी राष्ट्रीय भावना से प्रभावित हो चुके थे। गांधी जी राजनीति मे एक नयी धारा, नये विचार, नये भाव, नया तरीका ले कर आये थे। इस तरीके की परीक्षा हो चुकी थी और सफलता की छाप भी दक्षिण अफ्रीका मे लग चुकी थी। इसलिये गांधीजी की पवित्रता, सच्चाई, त्याग और अपने कार्य के प्रति उत्कट लगन ने सारे देश का ध्यान इनकी ओर खीचा। गांधीजी की भावना और तरीका मारवाड़ी समाज के ज्यादा अनुकूल था। इसलिये मारवाड़ी समाज के नवयुवक उनके चलाये आंदोलनो मे ज्यादा भाग लेने लगे।

श्री सीतारामजी को इन आंदोलनों में अधिक खीच लेने वालो मे स्वर्गीय जमनालालजी बजाज थे। १९१७ मे "स्व० जमनालाल बजाज की उम्र केवल २७ (सत्ताइस) साल की थी पर उसके पहले ही वे कई सार्वजनिक कार्य शुरू कर चुके थे और देश के अच्छे से अच्छे लोगो के संपर्क मे आ चुके थे।"

"उन्होंने हम लोगो को गांधी जी से मिलाया। उनके आतिथ्य का सारा काम हमी लोगो के जिम्मे था।"

इसके बाद आया सन् १९२१ का असहयोग आन्दोलन जिसने सीतारामजी पर बड़ा प्रभाव डाला। उन दिनो की डायरी मे एक जगह वे लिखते है—"सन् १९२१ के असहयोग आंदोलन के दिन थे। प्राय रोज सभायें होती रहती। इन सभाओ मे बंगाल के नेता जैसे देशबन्धु चितरंजनदास, विपिन चन्द्र पाल, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती आदि अनेक लोगो के व्याख्यान होते थे। वे जनता को विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, विद्यार्थियो को स्कूल-कालेज के बहिष्कार, वकीलो को अदालत, कचहरियो के बहिष्कार के लिये प्रेरित करते। इन सभाओ मे बड़ी उपस्थिति रहती और जोश का तो कहना ही क्या? नेताओ के व्याख्यान बड़े ही उत्तेजनापूर्ण

होते। 'इसी सिलसिले में चितरंजन एवेन्यू के मुहम्मद अली पार्क मे, जो उन दिनो होलेंडे पार्क के नाम से था, एक सभा में एक आदमी को खादी का साधारण कुर्ता, गाधी टोपी, कन्धे पर खादी की एक मोटी सी चादर लिये एक देहाती की तरह मच पर बैठे देखा। सोचा, यह आदमी कौन है जिसको देशबन्धु जैसे बडे नेता के पास बैठाया गया है। फिर उसको व्याख्यान देने के लिये कहा गया और उसने अपना व्याख्यान हिन्दी मे शुरू किया। मैंने वहा के लोगो से पूछा कि यह देहाती सा आदमी इतना अच्छा बोलनेवाला कौन था तो बताया गया कि यह राजेन्द्र बाबू हैं और बिहार के बहुत बडे वकील हैं।"

इसके बाद सीतारामजी राजनीतिक नेताओ के सपर्क मे आने लगे और निरतर राष्ट्रीय आदोलन की ओर अग्रसर होते गये। उन्ही के शब्दो मे—"१९२०-२१ के आन्दोलन में भी मारवाडी समाज ने खुल कर भाग लिया। जब तिलक-स्वराज्य फण्ड के लिये एक करोड रुपयो की अपील काग्रेस के नाम से गांधीजी ने की तो मारवाडी समाज के धनियो ने ही नही, मध्यम श्रेणी तथा साधारण श्रेणी के लोगों तक ने रुपयो से सहायता की। बम्बई के स्वर्गीय आनन्दीलालजी पोद्दार, श्री जयनारायण जी दानी, श्री हीरालालजी कारीवाला और कलकत्ता के बिडला ब्रादर्स आदि ने तो कई लाख रुपये दिये। इनमे से किसी ने भी एक लाख से कम तो दिया ही नही। श्री आनन्दीलालजी ने तो दो या तीन लाख दिये थे। इसके अलावा मारवाडी नवयुवको ने काग्रेस कमेटियो मे शामिल होकर आदोलन मे भाग लिया और जेलो मे गये। अन्य प्रान्तो की सूची तो मालूम नही पर कलकत्ता से कई युवक गये थे, जिनमे श्री पद्मराजजी जैन, श्री बसन्तलालजी मुरारका, श्री नागरमलजी मोदी आदि थे। इसके बाद जब स्वराज्य पार्टी की स्थापना हुई और स्वर्गीय देशबन्धु दास तथा त्यागमूर्ति मोतीलाल जी नेहरू ने कौंसिल और कारपोरेशन मे प्रवेश आदि के आदोलन चलाये, तो उसमे मारवाडी समाज के कई युवको ने, जो इस भावना के थे, हिस्सा लिया। इस आदोलन मे देशबन्धु दास, सुभाषचन्द्र बोस तथा बगाल के अनेक दूसरे नेता जेल मे गये। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, मौलाना अकरम खा (जो बाद मे मुस्लिम लीगी बन गये), अबिका प्रसाद बाजपेयी, भाई मूलचन्दजी अग्रवाल, भोलानाथजी बर्मन, माधोजी शुक्ल, प० लक्ष्मीनारायण जी गर्दे आदि अनेक लोग जेल गये। बाद मे पूज्य महात्माजी ने चौराचौरी काण्ड पर आन्दोलन बन्द कर दिया और यह एलान कर दिया कि जो लोग जेल गये हैं, वे वहां न रहना चाहे तो सरकार से अनुरोध कर के बाहर आ सकते हैं। बसतलालजी ने ऐसा नही किया। जो लोग जेल गये हैं, वे समझ सकते हैं कि आदोलन की गति धीमी पड जाने पर, जेल में रहने वालो की क्या मनोदशा हो जाती है, जेल के अधिकारियो का व्यवहार कितना क्रूर और यातनामय बन जाता है, फिर आदोलन का अनिश्चित काल तक बद हो जाना कितना दुखद बन जाता है।"

इसके बाद सन् १९२८ से स्वाधीनता-आदोलन के उग्र रूप की शुरुआत हुई। साइमन कमीशन के बहिष्कार का आदोलन जोरो से चल रहा था। क्रांति-

खादी आंदोलन शुरू हो गया था। इन आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप सीतारामजी के मन में लगन पर राजनीति में भाग लेने की इच्छा अंकुरित हो उठी। गांधीजी से तो सम्पर्क था ही, सुभाष बाबू से भी सम्पर्क हो गया था। जमनालालजी बजाज के साथ वे वर्धा गये। निकट से महात्मा जी का दर्शन प्राप्त करने का यह उनका पहला अवसर था। व्यापार में रह कर देशसेवा का काम कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं हो पा रहा था। फलस्वरूप उन्होंने १९२८ में व्यवसाय से प्रायः निवृत्ति ले ली। उन्हीं के शब्दों में—"सन् १९२८ के दिसम्बर में पू० महात्माजी की प्रेरणा और मेरी पुरानी इच्छा के अनुसार व्यापार आदि से अलग होकर प्रमुख रूप से सार्वजनिक काम में लगने के विचार से मैं वर्धा गया। पू० महात्माजी दिसम्बर महीने में प्रायः वर्धा आया करते थे। वे उस अवसर वहीं आये। श्री [illegible]जी शास्त्री भी अपने सार्वजनिक काम का निश्चय करने की इच्छा से मेरे साथ ही वर्धा गये थे। उसी समय गांधी आश्रम के अध्यक्ष आचार्य कृपलानी खादी के नमूने लेकर वर्धा आये और पू० बापूजी से उन्होंने कहा—'गांधी आश्रम का काम बन्द होता जा रहा है। मैं खादी के सम्बन्ध में आया हूँ। या तो खादी बिकवाइये, या हमें काम करने के लिए रुपये उधार दीजिए या फिर काम बन्द करने के लिये कहिये।" श्री घनश्यामदासजी बिड़ला भी वर्धा में आये थे। बापूजी ने कहा—"घनश्यामदास से कहो"। आचार्य कृपलानी बोले—'मैं तो तुमसे कहता हूँ। तुम उनसे कहो या किसी और से कहो।" बात वहीं रह गई। सुबह घूमने निकले तो श्री घनश्यामदासजी ने पू० बापूजी से कहा—"आप खादी के लिये क्या कहते थे?" बापू ने कहा—"खादी के काम में मदद करो"। श्री घनश्यामदासजी ने कहा—"क्या मदद करूँ? आप कहो कितने रुपये दूँ।' बापू ने कहा—"यह मैं जानता हूँ कि तुम रुपये दे दोगे पर मैं तुमसे केवल रुपया ही नहीं चाहता, तुम्हारी वह बुद्धि चाहता हूँ जिससे तुम करोड़पति बने हो। वह बुद्धि खादी को दो।" बात रुक गई। फिर शाम को ३-४ बजे बात चली। श्री घनश्यामदासजी ने बापू से कहा—"मुझे खादी के लिये क्या करना है? बापूजी ने साफ कहा—"तुम कलकत्ता में एक अच्छा-सा खादी भंडार खोलो और कृपलानी जैसे लोगों की बनती हुई खादी खरीदो और उसको वहां बेचो।' घनश्यामदासजी ने कहा—"ठीक है। इसके लिये मुझे आदमी चाहिए।" बापूजी ने कहा—"आदमी मैं दूंगा।" उस समय श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार वहीं थे। बापूजी ने पोद्दारजी से कहा—"तुम कलकत्ता जाओ और खादी भंडार का काम सभालो।' पोद्दारजी ने कहा—"मैं तो गोरखपुर में काम कर रहा हूं। वहां कैसे जा सकता हूं?" बापूजी बोले—"गोरखपुर का काम चलने दो पर कलकत्ता जाना जरूरी है।" पोद्दारजी ने कहा—"आपकी आज्ञा है तो एक वर्ष के लिये जाऊँगा। पर मुझे एक सहायक चाहिए।" बापूजी ने कहा—"सहायक दूंगा।' तब उन्होंने मुझ से कहा—"तुम व्यापार छोड कर सार्वजनिक काम मे लगना चाहते हो तो खादी भडार का काम सभालो।" मैंने कहा—"मेरी स्वाभाविक इच्छा तो स्त्री-शिक्षा का काम करने की है।" तब बापूजी ने कहा—"वह भी करो और यह

२८२

भी करो।" तो मैंने एक वर्ष के लिये पोद्दारजी के साथ काम करने का निश्चय किया और हम लोगो ने बापूजी से प्रार्थना की—"कलकत्ता काग्रेस के अवसर पर आप आवे तब इस भडार का उद्घाटन अपने हाथ से करे।" कुल १५ दिन बाकी थे। हम लोग तुरन्त कलकत्ता चले आये और भडार के लिये दूकान आदि ले कर उसकी व्यवस्था की।"

१ जनवरी १९२९ की सीतारामजी की डायरी मे इस भडार के उद्घाटन का जो चित्र अकित है, वह निम्न प्रकार है

"आज भोर मे मैदान घूमने नही गये, कारण आज महात्माजी द्वारा शुद्ध खादी भण्डार का उद्घाटनोत्सव था और वह काम अपने जिम्मे था। इसलिये भोर से ही इस काम मे लगना पडा। काम सारा अच्छी तरह हो गया। दो रुपये के टिकट से प्रवेश था। इसलिये उपस्थिति अच्छी नही हुई। महात्माजी तथा मालवीयजी करीब ३ बजे घनश्यामदासजी बिडला के साथ आये। घनश्यामदासजी ने एक छोटी-सी वक्तृता दी जिसमे खादी की विशेषता बताई। महात्माजी ने अपने हाथो से खादी-हुडी बेची। करीब ६ हजार रुपये की बिक्री।"

और फिर "अपने कार्यक्रम मे रोज ही शेयर बाजार जाते है पर वर्धा मे खादी भडार का काम जिम्मे ले लिया है। इस काम को अच्छी तरह करना चाहिये। इसलिये जब तक यह काम अच्छी तरह नही जच जाये, तब तक शेयर बाजार जाना स्थगित ही रहेगा। ग्राहको का ढग देखते तो ऐसा लगता है कि खादी अच्छी बिकेगी। खादी बहुत उपयोगी मालूम होती है। खादी ही गरीबो की रक्षा का उपाय है, ऐसा प्रतीत होता है। अपने विचार से तो अच्छा यही है कि खादी जिस जगह बनती है, वही बिक जाया करे यानी जिस जिले की खादी हो, उसी जिले मे उसकी बिक्री भी हो जाये पर जब तक यह परिस्थिति पैदा न हो, इसके लिये कलकत्ता जैसे शहरो का सहारा लेना ही पडेगा।" (२-१-२९)

वास्तव में सन् १९२९ का वर्ष सीतारामजी के व्यक्तित्व का राजनीतिक वर्ष बन कर आया। स्वाधीनता-आदोलन जिस क्रम से चलता रहा, सीतारामजी के चलने का भी वही क्रम था

"साइमन कमीशन कलकत्ता आने वाला है। इसके लिये उसके बायकाट का जुलूस निकलने वाला था। लोग कहते थे कि जुलूस मे जाने वालो पर पुलिस डण्डा बरसायेगी पर अपने यह बात कम जचती थी। अपने पहले तो स्यालदह गये, पर रास्ते मे मालूम हुआ कि हवडा जाना चाहिये। वहा से जल्दी के कारण मोटर मे बैठ कर हवडा चले। रास्ते मे सुभाष बाबू और प्रभुदयालजी स्ट्रैण्ड रोड पर खडे दिखाई दिये। वही ठहरे। आगे पुलिस किसी को जाने नही देती थी। जुलूस को देखने से मालूम होता था कि बायकाट का केवल हल्ला है।" (१२-१-२९)

"करीब ३ बजे साइमन कमीशन के बहिष्कार का जुलूस निकला। इसमे शरीक होने के लिये पोद्दारजी के साथ गये। साथ मे, खादी भण्डार के जो नोटिस थे, वे बाटे। एक तरह मे अच्छा विज्ञापन हो गया। जुलूस बहुत बडा

था। पहले तो लोग समझते थे कि एक लाख व्यक्तियों की जो बात अखबार में लिखी है, वह केवल लिखना ही है परन्तु आदमी उससे अधिक थे। ऐसे जुलूसों से जागृति बढ़ती है, इसमें कोई सदेह नहीं। तब भी हममें काम की लगन हो तो न मालूम क्या हो जाये, पर दुर्भाग्य से अभी हमारे देश के लोग दिखाऊ काम में अधिक शामिल हो जाते है, पर सच्चे काम करने वाले बहुत नहीं।" (१६-१-२६)

साइमन कमीशन के बहिष्कार के आंदोलन के पश्चात् विदेशी कपड़ा के बहिष्कार का आंदोलन चला। उसमें भी श्री सीतारामजी अग्रणी हो कर काफी सक्रिय रहे। सच तो यह है कि वे निरन्तर अपना सारा समय और सारी शक्ति स्वातंत्र्य-सग्राम में ही लगाते रहे। सन् १९३०, १९३२ और १९३३ के सत्याग्रह आंदोलनों में वे जेल गये। वस्तुत कलकत्ता के कांग्रेस-सगठन में वे पूरी तरह घुल-मिल गये। कई महत्वपूर्ण कार्यों की जिम्मेदारी उनको सौंपी गई और उसको उन्होंने पूरी तरह से निभाया। बगाल के राजनीतिक कार्यकर्ताओं की अग्रिम पंक्ति में उनका नाम आता था। प्रांत के छोटे-बड़े सभी नेता उनसे विचार-परामर्श करते थे। राजनीतिक ही नहीं, शिक्षा, साहित्य और संस्कृति आदि के क्षेत्रों में भी उनका काफी नाम हो गया था। सन् १९३८ में कवि-गुरु रवीन्द्र नाथ ठाकुर से भी उनका सम्पर्क हुआ और उसके बाद से गुरुदेव के साथ उनकी काफी घनिष्ठता हो गई। सीतारामजी प्राय कहा करते है कि उनके जीवन का वह बहुत ही महत्वपूर्ण समय था, जब विविध कार्यों की व्यस्तता उन्हें हमेशा आनन्दित किये रहती थी और वे बड़ा आत्म-सतोष अनुभव करते थे।

सन् १९४० में जब गाधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का सूत्रपात किया तो बगाल में इस सत्याग्रह के लिए जो लोग मनोनीत किये गये, उनमें श्री सीतारामजी का प्रमुख स्थान था। उन्होंने कलकत्ता और डायमण्ड हार्बर में यह सत्याग्रह किया। सन् १९४२ में जब स्वाधीनता-सग्राम के अंतिम चरण में "करो या मरो" आंदोलन आरम्भ हुआ, वे बगाल से अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सदस्य थे। बम्बई में समिति के जिस अधिवेशन में इस आंदोलन की घोषणा की गई, उसमें उपस्थित होकर जब वे और उनके जीवन-साथी स्वर्गीय बसतलालजी मुरारका कलकत्ता लौटे तो हवड़ा स्टेशन पर ट्रेन से उतरते ही दोनों गिरफ्तार कर के प्रेसीडेंसी जेल में भेज दिये गये, जहा श्री सीतारामजी लगभग १।। वर्ष कारावास में रहे।

सन् १९४५ में जब बगाल की कांग्रेस का पार्लियामेन्टरी बोर्ड बना तो उसके सदस्यों में श्री सीतारामजी भी चुने गये। पार्लियामेन्टरी बोर्ड के कार्य में उनके सुझावों को काफी महत्व दिया गया।

सन् १९४७ में जब बर्मा से नेताजी सुभाष चन्द्र बोस द्वारा सगठित आजाद हिन्द फौज के अफसर और सिपाही वापस देश में आने लगे या उनको देश में लाने के लिये आवश्यक कार्यवाही शुरू की गई, तो इस कार्य के लिये कलकत्ता में एक विशाल शक्तिशाली सगठन बना, जिसके अध्यक्ष बगाल के तत्कालीन महान् नेता

स्वर्गीय शरतचन्द्र बोस थे। श्री सीतारामजी उस संगठन के संयुक्त मंत्री थे। उन्होने अपना सारा समय और शक्ति लगा कर इस सगठन मे जो कार्य किया, उसकी शरद बाबू तथा बगाल के अन्यान्य नेताओ ने बडी प्रशसा की।

राजनीति से दूर :

१५ अगस्त सन् १९४७ को जब हमे स्वतत्रता मिली तो सारे देश मे आनन्द और उल्लास छा गया। नई आशाये, नई आकाक्षाये और नये सपने जगे। देश के नव-निर्माण की कल्पनाये और योजनायें लेकर समस्त कार्यकर्ता उस ओर अग्रसर हुये। किन्तु बाद मे दुर्भाग्य से कार्यकर्ताओ मे सत्ता की भूख जाग उठी और छोटे-बडे पदो के अधिकार के लिये छीना-झपटी शुरू हो गई। यह हालत देख कर श्री सीतारामजी को बडा दुख हुआ, बडी ग्लानि हुई। सारी राजनीति इतने नीचे स्तर पर पहुच गई और एक के बाद एक ऐसी घटनाये होती गई कि सीतारामजी जानबूझ कर राजनीति से दूर और दूर होते गये। इन्होने त्याग और उत्सर्ग की राजनीति देखी थी, की थी, पद और अधिकार की राजनीति नही। सत्ता के लिए दौड-भाग में लगे हुए नेताओ का जो भ्रष्टाचार सामने आया, उसने इनको राजनीति करने वालो का कटु आलोचक बना दिया। न मालूम कितने भाषणो मे, कितनें लेखो में और डायरियो के कितने पृष्ठो पर उन्होने अपना दुस्सह सताप और पुण्य-प्रकोप इस स्थिति के बारे मे प्रकट किया है। उनके शब्दो मे "स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद राष्ट्र-निर्माण का काम हमारे जिम्मे आया, पर देखा यह जाता है कि निर्माण तो दूर रहा, हम राष्ट्र का पतन और सर्वनाश करने पर तुले हुए है हम राजनीतिक स्वार्थों के नाम पर दलबन्दी करके देश मे अस्वस्थ विचार-धारा को ही प्रोत्साहन दे रहे है जिसका परिणाम शुभ नही हो सकता । हमारी स्वार्थपरता, पदो का लोभ, चरित्र की कमी, चारो ओर फैली हुई अव्यवस्था। आपसी दलबदी और फूट, पार्टियो की राजनीतिक गन्दगी देश को बरबाद कर रही है, पर क्या किया जाये ? पूज्य बापूजी ने अपने को एक बार बातो के सिलसिले मे कहा था—"स्वाधीनता क्या आई, एक बला आ गई।" सच, स्वाधीनता का सूद मिलना तो दूर की बात है, वह आफत सी हो गई है।" और, सन् १९४९ मे इसी सदर्भ मे उन्होंने लिखा—"अपन ने कम से कम बीस वर्ष काग्रेस मे काम किया है, काग्रेस के वे दिन देखे है जो बलिदानो के दिन थे। उन दिनो बलिदान करने की होड लगी थी। आज तो पदो की, स्वार्थों की होड लगी है। इसका ही परिणाम है कि आज काग्रेस अप्रिय होती जा रही है। आज की हालत पर विचार करते है तो दुख होता है। अपने करे भी क्या ? हा, यही सोचना और करना चाहिये कि अपने से जो कुछ देश की सेवा, जनता की सेवा हो सके, वह करते रहे।"

जब कभी वे पुराने प्रसगो और घटनाओ, सकल्पो और सपनो, उद्देश्यो और उत्सर्गों के बारे मे बोलने या लिखने लगते है तो उनका दुख प्रकट हुए बिना नही रहता। परन्तु वे आजीवन आशावादी रहे है, इसलिये यह आशा बाधे हुए

कि सब ठीक होगा ही, वे अक्षुण्ण भाव से जन-सेवा की साधना में लगे हुये है। राजनीति से दूर रह कर वे आज अपना सारा समय, सारी शक्ति शिक्षा, साहित्य संस्कृति, समाज-सुधार आदि के कार्यों में निरन्तर लगा रहे है और ऐसा करने में ही आनन्द अनुभव करते हैं।

वृद्ध तरुण :

आज ८२ वर्ष की आयु हो जाने पर भी न उनके विचारो में किसी तरह की शिथिलता आई है, न कार्य में। वे आयु से ही वृद्ध है, विचार और चिन्तन में आधुनिक है, प्रगतिशील है और कर्मठ है। प्रतिदिन काफी समय आज भी सार्वजनिक सेवा, विशेषकर नारी-शिक्षा के कार्यो में लगाते है। अभाव-ग्रस्तता से पीडित कितनी तरह के कितने लोग उनसे परामर्श और सहायता लेने को हर दिन आते रहते हैं और हरेक को वे अपनी सामर्थ्यानुसार तन, मन और धन से सहायता करते है। उनके जीवन का हर स्पदन मानो कहता है—

नत्वह कामये राज्य, न स्वर्ग, न पुनर्भव
कामये दुखतप्तानां, प्राणीनां आर्तिनाशन

हा, प्राणी मात्र का दुख दूर करने में सहायक होना ही वे जीवन की परम सिद्धि मानते है। इसमे देना ही देना है, उत्सर्ग ही उत्सर्ग है। यही कारण है कि उनको सभी समाजो के सभी लोगो का इतना स्नेह, इतना सम्मान प्राप्त है। सभी उनके मित्र है, प्रशसक है, उनके प्रति स्नेह, सम्मान और श्रद्धा रखते है, निंदक और शत्रु कोई नही है। इसी से उनको सब से बडा सतोष है और सुख है, जो जीवन को शातिमय, सुखमय और मगलमय बनाता है। सेवा-साधनो का यह प्रसाद ही उनके प्रति सच्चा और बडा से बडा अभिनन्दन है। सरकार द्वारा प्रदत्त "पद्मभूषण" से कही बडा उनके लिए स्नेह और श्रद्धा का यह प्रीति-भूषण है, ताम्रपत्र से कही बडा यह हृदय-पत्र है। बहुत कम लोगो को यह सौभाग्य मिलता है कि जीवन-यात्रा मे उम्र का व्यवधान विचारो और कार्यो मे कोई व्यवधान नही पैदा करता। श्री सीतारामजी ऐसे ही विरले सौभाग्यशालियो मे है।

सीतारामजी की पत्नी श्रीमती भगवान देवी ,जिसने उनके हर सेवा-कार्य में कधे से कधा मिला कर कार्य किया, सन् १९६५ मे परलोकगत हो गई। उनके दो पुत्र और दो पुत्रिया है। दोनो पुत्रिया—पन्ना और विजया—आज स्वय दादिया है। बडा पुत्र अशोक बाल्यावस्था से ही 'सादा जीवन, उच्च विचार' के आदर्श से अनुप्राणित हो कर अपने विचारो के अनुसार क्रातिकारी जीवन जी रहा है। वह अच्छा विचारशील लेखक है और अपना सारा समय लेखन और समाजवादी दल के राजनीतिक कार्य में लगाता है। वह लगभग ४० वर्ष का है, पर उसने विवाह अभी तक भी नही किया। छोटा लडका दिलीप एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान में काम करता है और अपनी गृहस्थी चलाता है। सीतारामजी के इस निजी परिवार से कही बडा, कही विशाल उनका जन-जन व्यापी परिवार है—कितने भाई, कितने

बेटे, कितनी बहिने, कितनी बेटिया। इस माने मे सीतारामजी का वडा विशाल कुल है, वे एक समाज है, एक सस्था है।

सीतारामजी का हृदय शुरू से ही अत्यन्त भावुक, कोमल और करुण है। हृदय से उन्हे लिखने की प्रेरणा हुई और अनुभूतियो को अपने आप गहरी अभिव्यक्ति मिल गई। बिना किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त किये ही वे एक अच्छे लेखक बन गये, वक्ता बन गये। विगत ४५ वर्षो से वे प्रतिदिन अपनी डायरी लिखते है और उसमे देश और समाज की विभिन्न घटनाओ पर उनके मन की प्रतिक्रिया होती है, चिन्तन होता है जो वहुत मूल्यवान होता है। सन् १९२९ से सन् १९४२ तक की उनकी डायरियाँ सक्षिप्त रूप मे दो भागो मे भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुई है। उनमे उस काल के समाज और राष्ट्र का बडा ज्ञान-प्रद एव प्रेरक चित्र है, एक पूरा इतिहास है। इसके अलावा उनके सस्मरणात्मक और साहित्यिक लेखो के भी दो सग्रह प्रकाशित हो चुके है—"स्मृति कण" और "बीता युग नई याद"।

उनकी प्रगतिशील दृष्टि, कार्यकरी निष्ठा और अखण्ड सेवा-साधना निरन्तर बनी रहे, यही जन-जन की कामना है और यही उनके प्रति हरेक का श्रद्धा-निवेदित अभिनन्दन है।

—o—

श्री सीतारामजी के अंतरंग मित्र
श्री भागीरथ कानोडिया
के संस्मरण

एक रेखांकित जीवन

जन्मस्थान, समय और स्थिति

राजस्थान में झुनझुनू और सीकर नाम के जो दो जिले हैं, उनके मिले-जुले इलाके का नाम शेखावाटी है। चुरू जिला भी शेखावाटी से सटा हुआ ही है। अंग्रेजों के आने से पहले झुनझुनू में नवाबी राज्य था। यही कारण है कि इस इलाके की भाषा पर उर्दू और फारसी का असर है और रहन-सहन और पहनाव-ओढाव में भी मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव है। झुनझुनू और फतेहपुर में जो नवाब थे, उनके पूर्वज चौहान राजपूत थे। सुल्तान फिरोज़ तुगलक (१३५१-१३८८ ई०) ने राजा मोटेराम के पुत्र करमचन्द को मुसलमान बना कर उसका नाम कायमखां रखा था। कायमखां के वंशज कायमखानी कहलाये और उन्होंने ही झुनझुनू और फतेहपुर में नवाबी कायम की। नवाबों से झुनझुनू शार्दूलसिंहजी शेखावत ने छीना था। इस बारे में कई दोहे प्रचलित हैं, जिनमें से कुछ इस प्रकार है —

सतरह सौ सतासिये, अगहन मास उदार।
सादै लीन्यू झुझनू, सुदि आठै शनिवार।।

सादै लीन्यू झुझनू, कीन्यू अमर पटै।
बेटा, पोता, पड़पोता, पीढी सात लटै।।

सादूलो जगराम को, सिंहल बुरी बलाय।
राम दुहाई फिर गई, लुकती फिरै खुदाय।।

शार्दूलसिंहजी के पूर्वजों में मोकलसिंहजी नाम के एक राजा हुए। उनके कोई पुत्र नहीं हुआ था, अतः वे निराश होकर अपनी जागीर मुसाहिबों के भरोसे छोड़ कर वृन्दावन चले गये थे। वहाँ जा कर उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के शिष्य माधव स्वामीजी की अच्छी सेवा की। स्वामीजी ने यह कहते हुए कि पुराने जमाने में पुत्र-प्राप्ति के लिए राजा दिलीप ने गायें चराई थी, उनको गाय चराने और गोपीनाथजी का इष्ट रखने का आदेश दिया। मोकलसिंहजी ने ऐसा ही
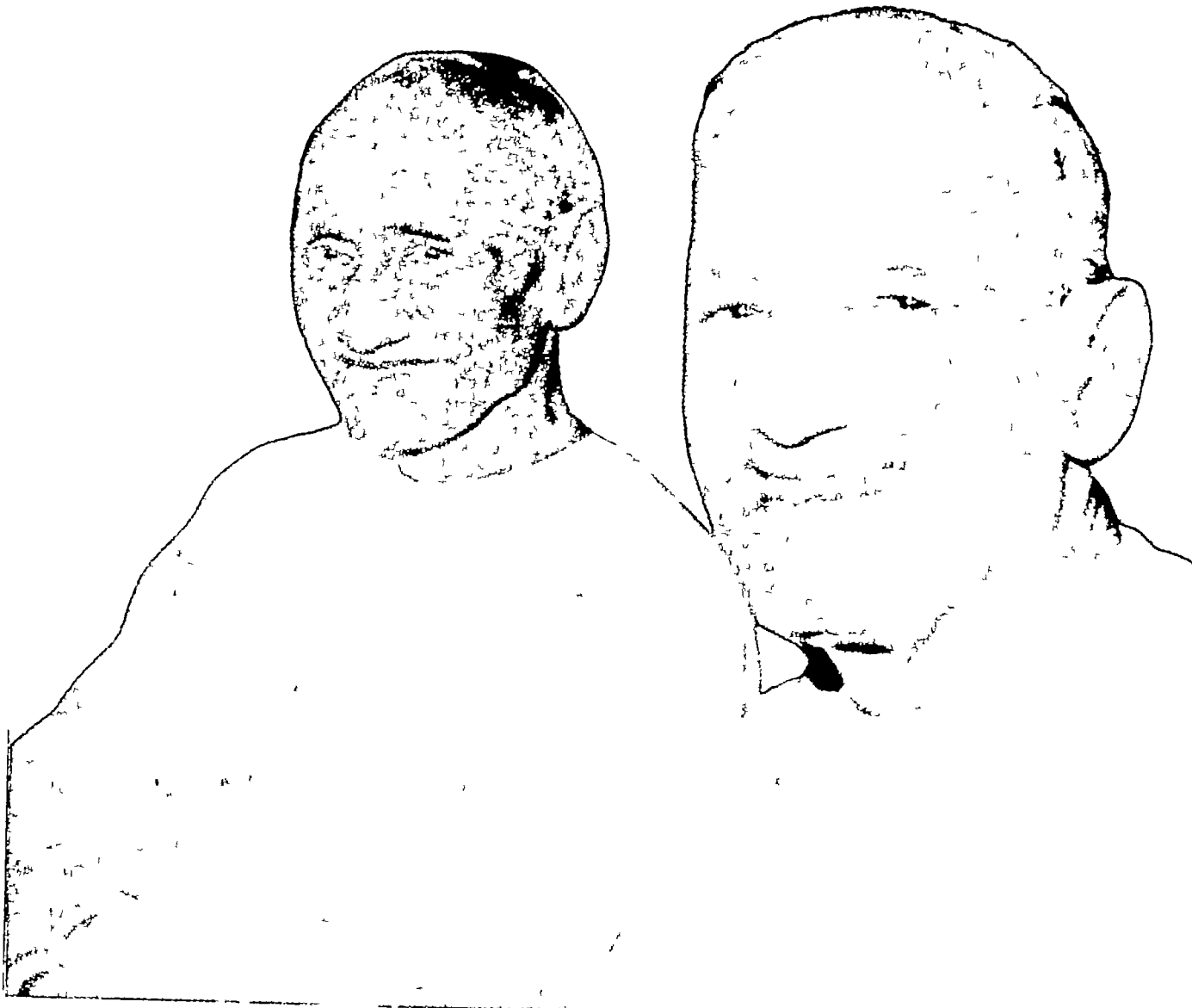
अपूर्व आनन्द की मुद्रा में जीवन-साथी श्री भागीरथ कानोडिया और श्री सीताराम सेकसरिया

श्रीमती महादेवी वर्मा का व्याख्यान सुनते हुए
ध्यान-मग्न श्री सीतारामजी
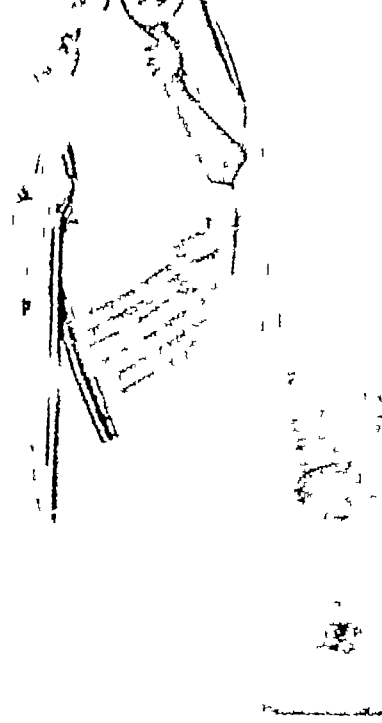
काकासाहब कालेलकर के साथ श्री सीतारामजी

किया और तब से आज तक उनके वंशज गाय और गोपीनाथजी को अपना इष्टदेव मानते आये हैं। एक दिन मोकलसिंहजी गाये चरा रहे थे तो उन्हे शेख बुरहान नाम का एक फकीर मिला, जिसने मोकलजी से कहा—"तुम्हारे लडका होगा।" उसके बाद उन्हे लडका हुआ। शेख के वरदान से पुत्र प्राप्त हुआ है, ऐसा मान कर उन्होने अपने पुत्र का नाम शेखाजी रखा। तदनन्तर शेखावतो का राज्य होने के कारण इस इलाके का नाम शेखावाटी पडा।

नवलगढ कस्बा शार्दूलसिंहजी के दूसरे बेटे नवलसिंहजी ने बसाया था। वे भी अपने पिता की तरह ही वीर थे। एक बार जयपुर और भरतपुर के राज्यो के बीच युद्ध छिड गया। उस युद्ध मे जयपुर की ओर से शेखावतो की सेना की टुकडी का सचालन नवलसिंहजी ने किया था। उनके नेतृत्व मे जिस दिन युद्ध हुआ, उसी दिन भरतपुर वालो ने हार मान कर आत्म-समर्पण कर दिया था। तब से जयपुर दरबार मे उनका सम्मान बहुत बढ गया था।

इस प्रकार यह इलाका तिहरी गुलामी में था—जागीदारो और ठाकुरो की गुलामी, जयपुर के राजा की गुलामी और इनके ऊपर अग्रेजी राज्य की गुलामी। गुलामी ही गुलामी चारो तरफ से जन-जीवन को घेरे हुए थी। न थी सामाजिक चेतना, न थी राजनीतिक जागृति, न थे शिक्षा के साधन, न थे आर्थिक प्रगति के उपादान। गरीबी और गर्दिश में से निकलने के लिये यहाँ के वैश्य लोग व्यापार-व्यवसाय के लिये बगाल, बिहार, आसाम तथा अन्यान्य प्रदेशो में गये, जिनको 'परदेश' कहा जाता था। उन क्षेत्रो मे जा कर उन्होने अपने कठोर परिश्रम और विशेष व्यवसाय-बुद्धि से सफलता प्राप्त की तथा नाम और प्रतिष्ठा जमाई। धीरे-धीरे देश के व्यवसाय-प्रधान समाजो मे इनका नाम सब से ऊँचा हो गया। वहाँ गये हुए ये सभी लोग 'मारवाडी' नाम से अभिहित हुए। जिन स्थानो से ये लोग गये, उनमे नवलगढ का विशेष स्थान था।

इसी नवलगढ में एक मध्यवित्त अग्रवाल परिवार मे १ मई १८६२ को श्री सीतारामजी सेकसरिया का जन्म हुआ।

बाल्यकाल और शिक्षा-दीक्षा :

अपने माता-पिता की इकलौती सतान होने के कारण उनका लालन-पालन बहुत लाड-प्यार मे हुआ। गोरा रग और खुबसूरत शकल-सूरत होने के कारण घरवालो को सदा यह भय लगा रहता था कि कही उनको नजर न लग जाय और साथ ही डर भी रहता था कि खेलने-कूदने मे उनको चोट न आ जाय। इसलिये माँ उनको घर मे बाहर बहुत कम जाने देती थी। जाडे के दिनो मे तो सर्दी-जुकाम हो जाने के भय से उन्हे बहुत ढक-ढाम कर रखा जाता था। इस तरह लाड-प्यार मे रखे जाने और खेल-कूद मे भाग न ले सकने के कारण उनके स्वास्थ्य पर विपरीत असर पडा जिसका नतीजा वे आज भी भोग रहे है। तथापि स्वास्थ्य की नाजुकता के बावजूद, उनका मनोबल हमेशा ऊँचा रहा है।

जो बात उन्हें न्यायसंगत नहीं लगी, उसका विरोध करने में उन्हें चाहे जितनी विपरीत स्थितियों का सामना करना पड़ा हो, उसके लिए वे सदा तैयार रहे हैं।

जिन दिनों उनका जन्म हुआ था, उन दिनों शेखावाटी में शिक्षा का प्रचार बहुत ही कम था। या तो थोड़ी-बहुत गुरु-चटशालाएँ थीं अथवा उर्दू-फारसी पढ़ाने के लिए मकतब। मकतबों में मुसलमान लड़कों को कोई मौलवी या पीर पढ़ाया करता था। इतनी-सी लिखाई-पढ़ाई भी कस्बों तक ही सीमित थी। छोटे गावों में तो शिक्षा का नाम ही नहीं था। गुरु-चटशालाओं में छात्रों को अक्षर-ज्ञान करा दिया जाता था तथा साधारण हिसाब-किताब करने और बही-खाता लिखने की विधि सिखा दी जाती थी। अक्षर-ज्ञान में ह्रस्व-दीर्घ मात्राओं की जानकारी तक बहुत कम लोगों को ही होती थी। शुद्ध हिन्दी लिखना तो न छात्र को आता था, न छात्र के अभिभावक को और न स्वयं अध्यापक महोदय को ही।

इस तरह के वातावरण में सीतारामजी की शिक्षा-दीक्षा क्या हो सकती थी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। बस, मामूली अक्षर-ज्ञान और हिसाब-किताब की साधारण जानकारी। अथ से इति तक इनकी पढ़ाई में कुल पन्द्रह रुपये खर्च हुए, जिसमें पाठशाला का शुल्क भी आ गया तथा कापियों और स्लेट आदि का खर्च भी।

अभाव एवं संघर्ष :

दस वर्ष की आयु होते-होते वे मातृ-पितृ विहीन हो गये। न दूसरा कोई बहन-भाई था, न सगा कहा जाने वाला ताऊ-चाचा, न बुआ, न दादा-दादी और न दूसरा ही कोई अपना निजी कहा जाने वाला सम्बन्धी। माता-पिता की मृत्यु के बाद अपने दादा के एक भाई के पास ये रहे।

आज का आदमी चाहे विश्वास न करे लेकिन बात सच्ची है कि साढ़े दस वर्ष की उम्र में इनका विवाह हो गया था। जब फेरों के लिए इन्हें नींद से जगाया गया तो हजरत अपना अंगूठा चूस रहे थे।

छोटी उम्र में इनका जीवन कितना अभावग्रस्त रहा, इसका पता इस बात से लगेगा कि इनके जीवन में एक-दो मौके ऐसे भी आये हैं, जब दो-दो दिन बिना खाये ही रहना पड़ा। वे दिन उन्होंने नीम की पकी निंबोलियां खाकर बिताये। निंबोलियां हासिल करने का भी एक किस्सा है। अमीर स्वभाव और नाजुक स्वास्थ्य होने के कारण इनके लिए नीम पर चढ़ना सम्भव नहीं था। अतः इन्होंने अपने एक मित्र से दो पैसे उधार लिये। उनमें से एक पैसा एक आदमी को देकर उसे नीम के पेड़ पर चढ़वाया और बोले—"तुम नीम की डालियां हिलाओ, जिससे पकी-पकी निंबोलियां नीचे गिरती जायें। मैं उन्हें इकट्ठी करता रहूँगा।" इस तरह इन्होंने निंबोलियां हासिल कीं। एक पैसा इनके पास बचा। उसे इन्होंने भविष्य-निधि के तौर पर अपने पास रख लिया था।

इस संदर्भ में एक घटना का जिक्र और कर दूं। एक बार इनके एक मित्र ने जा कर इनकी सास से कह दिया—"अपरान्ह में हम लोग कलेवा करते है, तो सीताराम टुकुर-टुकुर देखता रहता है।" इस पर इनकी सास ने इनको बुला कर एक रुपया दिया। उस रुपये के ६४ पैसे ला कर इन्होने एक बटुए मे रखे और उनकी बदौलत ये एक पैसे के हिसाब से दो-ढाई महीने तक कलेवा करते रहे। उन दिनो एक पैसे मे एक अच्छा लड्डू या एक छोटा पेडा मिल जाया करता था। और, दाल के गरम-गरम बडे तो एक पैसे के सोलह आते थे।

परन्तु अपने अभाव की बात इन्होने किसी के सामने प्रकट नही होने दी क्योकि हर हालत मे इन्हे अपने कुल की लाज का ख्याल रहा। आखिर इस अभाव का पता जब इनके बडे मामा (इनके पिता के मामा) को लगा तो उन्होने इनके लिए अलग रहने की व्यवस्था कर दी और यह बात भी बता दी कि सीतारामजी के दादा के दिये हुए दो हजार रुपये उनके पास जमा है, जिनके ब्याज के दस रुपये महीने इन्हे मिलते रहेगे।

तब इन्होने अपनी अलग गृहस्थी बसा ली। उन दिनो यहाँ प्राय बाजरा और गेहू खाने का प्रचलन था लेकिन इनको कभी बाजरा खाने की जरूरत नही पडी। सस्ती का जमाना होने के कारण इनका गेहू-घी-दूध खाने-पीने तथा कथा-मदिर-व्रत आदि का सारा खर्च भी उक्त दस रुपयो की आमदनी से चल जाता था।

धार्मिक संस्कारो की कट्टरता :

पुराने सस्कारो मे पले और बडे होने के सबब से इन्होने वैसे ही सस्कार ग्रहण किये। बचपन से ही धार्मिक भावना और शास्त्रो के प्रति श्रद्धा खूब थी। सस्कृत मे लिखे हुए हर अक्षर को ये वेद-वाक्य मानते थे। ऐसी मान्यताओ के कारण ये कट्टर रूप से छुआछूत मानते थे। यहाँ तक कि लकडी धोकर जलाते थे, जूतिया भी धोकर पहनते थे, व्रत आदि बराबर रखते थे और व्रतो की कथा भी सुना करते थे। इनकी धार्मिक कट्टरता के बारे मे कुछेक घटनाए यहा बता देना चाहता हूँ, जो आज के आदमी को कितनी भी अजीब, अटपटी एव हास्यास्पद लगे, है सही।

एक बार ये अपने भाइयो के यहाँ किसी विवाह मे कुटुम्ब के दूसरे लोगो के साथ भोजन करने गये हुए थे। जिस तख्ते पर ये बैठे हुए थे, उसके नीचे एक कुत्ता घुस आया और वह तख्ते पर बिछी हुई जाजम से छू गया। कुत्ते से छुई हुई जाजम पर बैठे हुए होने के कारण इन्होने अपने को अशुचि माना, अत बिना स्नान किये भोज मे शरीक हो तो कैसे हो? साथ ही इन्हे इस बात का भय और सकोच भी था कि भाई लोग क्या समझेगे और क्या कहेगे? लेकिन धर्म की रक्षा तो हर हालत मे आवश्यक थी, अत किसी तरह सब लोगो की नजर बचाकर ये वहाँ से खिसके और भागते-दौडते घर पहुच कर स्नान किया, दूसरे वस्त्र पहने और तब भोज मे शरीक होने के लिए वापस पहुचे। ये पहुचे तब तक जीमनवार की पगत नही पडी थी, अत इन्हे बहुत खुशी हुई और इन्होने

अपने भाग्य को सराहा कि धर्म भी बच गया और समय पर पहुंच भी गये। उस समय इनकी आयु करीब सोलह वर्ष की ही होगी।

दूसरी घटना है कि एक बार रात को करीब १० बजे शिवालय से लौट कर आये तो अंधेरा गहरा होने के कारण इनका पांव अपनी पत्नी के पानी पीने के लिये रखे हुए मिट्टी के बर्तन से छू गया। चूंकि पत्नी उस दिन एकवस्त्रा थीं, इसलिये इन्होंने माना—"अपने अपवित्र हो गये, इसलिए स्नान करना आवश्यक है।" लेकिन मुश्किल यह आयी कि स्नान करें तो कैसे करें क्योंकि अब ये स्वयं तो 'परीडे' को छू नहीं सकते थे और घर पर दूसरा कोई आदमी स्नान कराने वाला था नहीं। अतः इन्होंने अत्यन्त संकोच के साथ अपने पडोस में रहने वाले एक समवयस्क मित्र को जाकर जगाया, उसको सारी घटना बताई और उसे अपने घर लाकर बोले—"मैं बैठता हूं, तुम घड़ा लेकर मेरे ऊपर पानी डालो।" जाडे के दिन थे। रात का वक्त था। राजस्थान की वह कडाके की सरदी और घडे में रखा हुआ बरफ जैसा ठंडा पानी। लेकिन इन्होंने इन सब की जरा भी परवाह नहीं की। पडोसी मित्र ने उनके कहने के अनुसार इन्हें स्नान कराया। तब कपडे बदल कर ये अपने बिछौने पर गये।

तीसरी बात है कि एक बार इन्होंने किसी पुस्तक में पढ लिया या किसी पंडित से सुन लिया था कि स्नान किया हुआ आदमी अगर दो गधों के बीच से निकल जाय तो उसे पुनः स्नान करना चाहिए। इनके बाल-मित्रों को इनकी इस मान्यता का पता था। अतः जब ये कुए में स्नान करके खडाऊ पहने हुए घर लौट रहे होते तो वे दो गधे लाकर रास्ते में दोनों तरफ खडे कर देते। फल यह होता कि ये देर तक खडे-खडे उनकी अनुनय-विनय करते रहते और जब वे गधों को हटाते, तब ही ये अपने घर आते।

नियमों की पाबन्दी :

पढाई-लिखाई नहीं के बराबर होने के बावजूद ये रहे हमेशा ही बहुश्रुत। विष्णु सहस्रनाम, महिम्न स्तोत्र, रुद्री आदि इन्होंने कंठस्थ कर रखे थे और नित्य ही उनका पाठ किया करते थे। रोज प्रातः एवं सायं संध्या करना, गायत्री मंत्र का जाप करना नित्य नियम था। तुलसीकृत रामायण पढने का शौक इनको बचपन से ही था। योगवाशिष्ठ भी ये पढा करते थे। आगे चल कर इन्होंने गीता और रामायण का भी नियमपूर्वक पाठ करना शुरू कर दिया। वह क्रम आज भी चालू है। यही बात डायरी लिखने के बारे में भी है। इन्होंने अपने किसी बडे कुटुम्बीजन से बचपन में कहानी रूप में महाभारत की कथा सुनी थी। वह आज भी इन्हें ज्यों-की-त्यों याद है। एक बार इन्होंने अपने एक मित्र के सामने यह नियम लिया कि ये संस्कृत का एक श्लोक रोज याद करेंगे और उसे सुनायेंगे। महीनों तक वह क्रम चला। फलस्वरूप इन्हें संस्कृत के कई सौ श्लोक कंठस्थ हो गये। शास्त्र कहे जाने वाले ग्रंथों का सही-सही अर्थ समझ सकें, इसके लिए

इन्होंने एक बार सस्कृत पढना भी आरम्भ किया था लेकिन पचसधि तक पहुचते-पहुचते इनकी पत्नी का देहात हो जाने के कारण इनका वह क्रम टूट गया।

छुटपन से ही इन्होंने झूठ नही बोलने का नियम ले रखा था। अगर भूल से या हसी में भी कोई वाक्य झूठ निकल जाय तो ये प्रायश्चित स्वरूप एक माला गायत्री मत्र की फेरा करते थे।

१९४२ मे जब गाधीजी के आदेश पर इन्होंने उर्दू सीखना शुरू किया तो यह नियम लिया कि जिस दिन उर्दू नही पढूगा, उस दिन भोजन नही करूगा। कुछ दिनो मे इन्हे जब उर्दू का ठीक-ठीक अभ्यास हो गया, तब इन्होंने गाधीजी को अपने हाथ से उर्दू मे पत्र लिख कर भेजा था और उनकी शाबासी हासिल की थी। उस समय इनकी अवस्था पचास वर्ष से अधिक थी।

जीविकोपार्जन की दिशा मे :

नवलगढ मे रहते हुए ही इन्होंने किसी के साझे मे दूकान की थी लेकिन वह चली-चलायी नही। अत जीविकोपार्जन के लिये सन् १९११ मे ये कलकत्ता चले आये। आते ही कुछ दिन तो नौकरी की, बाद मे स्वतत्र रूप से शेयर बाजार की दलाली करने लगे। जितने दिनो व्यापार या दलाली की, इन्होंने कभी झूठ का आश्रय नही लिया। सारा काम अत्यन्त ईमानदारी पूर्वक किया, क्योकि पैसे का अधिक लोभ इन्हे कभी था ही नही।

ईमानदारी के बारे मे एक घटना का जिक्र यहा कर देना चाहूगा। जिन दिनो ये दलाली किया करते थे, उन दिनो बैजनाथजी सराफ नाम के एक व्यक्ति ने इनकी मार्फत एक बडा-सा सौदा कर रखा था। सौदे का पता किसी दूसरे व्यक्ति को नही था और उस सौदे मे काफी नफा था। बैजनाथजी का एकाएक देहान्त हो गया। सीतारामजी उनकी दाह-क्रिया मे गये, तब श्मशान-घाट पर ही इन्होंने बैजनाथजी के लडके को सारी बात बता दी और उसे पूछकर सौदा बराबर कर दिया। नफे के जो करीब सवा दो लाख रुपये थे, वे तत्काल उनके घरवालो को भेज दिये। इनके मन मे एक क्षण के लिए भी यह विचार नही आया कि जब इस सौदे का पता भी किसी को नही है तो मै क्यो उनके घर वालो को कहू और क्यो उनको रुपये भेजू। यह घटना जिन दिनो की हे, उन दिनो लाखो की तो बात ही क्या, पचीस-पचास हजार रुपये भी बडे माने जाते थे।

सन् १९२८ तक इनका दलाली का धधा बहुत अच्छा जम गया था। पर इनका मन तो पूरा समय सार्वजनिक सेवा-कार्यो मे ही लगाने को छटपटा रहा था। इसलिए उसी वर्ष ये अपना काम-धधा छोड कर अलग हो गये और तब से आज तक अपना पूरा समय, शक्ति और बुद्धि सार्वजनिक कामो मे ही लगाते आ रहे हैं। मारवाडी समाज मे ऐसा कोई दूसरा उदाहरण ढूढने पर भी शायद ही मिले जो बढते हुए धधे को इस तरह ठुकरा कर अलग हो गया हो और अपना जीवन परार्थ समर्पित कर दिया हो।

सेवा श्रौर त्याग की इनकी ऐसी प्रवृत्ति से उद्भासित सौम्य तथा कान्तिमय चेहरा देख कर ही एक वार वगाल की प्रख्यात महिला-नेतृ श्रीमती सरला देवी चौधरानी (श्री रामभजदत्त चौधरी की धर्मपत्नी) ने इनसे कहा था—"ग्राप वैश्य नही हो सकते, निश्चय ही ब्राह्मण है।" दरग्रसल सीतारामजी केवल जन्मना ही वैश्य है, कर्मणा तो ये सदा ब्राह्मण ही रहे है।

समाज-सुधार :

श्री सीतारामजी का ग्राज का समाज-सुधारक रूप देख कर कुछ लोगो को ग्राश्चर्य हो सकता है कि इतने पुरान-पथी सीतारामजी इतनी सुधार-वृत्ति वाले कैसे हो गये ? लेकिन इसमे ग्राश्चर्य की वात कुछ नही है। वे जो कुछ वचपन मे करते थे, वह धार्मिक मान्यताग्रो के कारण करते थे ग्रौर ग्राज भी जो कुछ करते है, उसे धर्म मान कर ही करते है। ग्रत मूल वृत्ति मे कुछ भी फर्क नही हुग्रा है।

कलकत्ता ग्राने के पश्चात् जव उन्होने देखा कि धार्मिक मानी जाने वाली ग्रधी ग्रौर विवेकहीन रूढियो के कारण समाज पिछडा हुग्रा है ग्रौर खास तौर से स्त्रियो के विकास मे उन रूढियो के कारण वाधा पहुचती है, तो रूढियो के वधन काटने मे ही वे सच्चा धर्म मानने लगे ग्रौर उसके लिये कार्य करने मे कटिवद्ध हो गये।

परदा उठाने की वात ग्राई, तो सव से पहले उन्होने शुरुग्रात की। वाल-विवाह में शरीक नही होने का निश्चय जिन कुछ लोगो ने किया, उनमे ये प्रथम पक्ति मे थे। फलस्वरूप निकटस्थ परिवार में ग्रौर ग्रपने मित्रो के यहाँ होने वाले कतिपय विवाहो मे शरीक होने से भी इन्हे वचित रहना पडा था।

१९२६ मे विधवा-विवाह मे सक्रिय भाग लेने के कारण ग्रन्य ग्यारह मित्रो के साथ इन्हे भी जाति-वहिष्कृत होना पडा था। समाज में होने वाले वृद्ध-विवाहो का इन्होने डट कर मुकावला किया था। मृतक बिरादरी भोज के विरुद्ध ग्रान्दोलन मे भाग लेते हुए इन पर ग्रौर इनके मित्रो ग्रौर साथियो पर जूठी पत्तले ग्रौर सिकोरे फेंके गये थे, लेकिन इन्होने इन सव वातो को ग्रपनी सेवाग्रो का पुरस्कार ही माना था।

जिन धारणाग्रो, क्रियाग्रो ग्रौर प्रवृत्तियो को इन्होंने गलत, विवेकहीन ग्रौर हानिकारक माना, उन सभी के खिलाफ इन्होने ग्रावाज उठाई ग्रौर ग्रादोलन किये। वस्तुत वचपन से ही इनमे हीन प्रवृत्तियो का विरोध करने का जोश खूव था। एक वार नवलगढ मे एक साधु ग्राया जो इनको वहुत ग्रच्छा लगा। उसके प्रति इनका विशेष ग्राकर्षण हो गया। वे ग्रधिकाधिक समय उसके पास रहने लगे। रात को भी देर तक उसके साथ रहते। यह देख कर एक वार तो लोगो के मन मे ऐसी ग्राशका भी होने लगी थी कि वे उस साधु के साथ ही चले न जाय। वाद मे एक मौके पर जव यह सावित हो गया कि उस साधु ने कोई वात झूठ कही है तो ये तिलमिला उठे ग्रौर उस साधु से उन्होने स्पष्ट ही कह दिया—"ग्रापने

अमुक बात झूठ कही है, अत आप झूठे है।" उस दिन के बाद वे उसके पास कभी नहीं गये।

कलकत्ता मे उन दिनो शीतलाष्टमी के दिन पूजा होती थी वहनो की। गोपाष्टमी के मेले पर सोदपुर मे स्त्री और पुरुपो की, तथा ग्रहण आदि अवसरो पर गगा स्नानार्थ जाने वाली महिलाओ की बहुत भीड हुआ करती थी। विभिन्न सेवा-सस्थाओ की ओर से स्वयसेवको की जो टोलिया ऐसे अवसरो पर सेवा-कार्य के लिए जाया करती थी, उनमे ये प्राय साथ हुआ करते थे। उन दिनो यो भी गगा-स्नान के लिए महिलाएँ बहुत बडी सख्या मे नित्य ही जाया करती थी और वे प्राय तडके-तडके ही जाया करती थी। उन महिलाओ के साथ कुछ मनचले लोगों द्वारा वहुत छेडछाड हुआ करती थी। उस हरकत का डट कर विरोध करने वाले कुछ लोगो में सीतारामजी भी एक थे। उस विरोध का परिणाम काफी अच्छा हुआ था।

सन् १६२०-२२ की बात है। अलीपुर मे फेन्सी-फेयर के नाम से एक मेला लगा करता था। उसमे विभिन्न सस्थाए अपना-अपना स्टाल लगाया करती थी और उन स्टालो पर लाटरी तथा 'लकी सेवन' का जुआ चला करता था। मारवाडी रिलीफ सोसाइटी भी वहा स्टाल लगाया करती थी। इस सस्था ने जब लाटरी चालू की, तब सीतारामजी और उनके मित्रो ने मिल कर जोरदार विरोध किया कि अपने को जुए से पैसे नही कमाने हैं। परिणाम-स्वरूप मारवाडी रिलीफ सोसाइटी ने अपने स्टाल से लाटरी की प्रथा उठा दी थी।

धार्मिक भावना होने के साथ-साथ सार्वजनिक कार्य करने की भावना भी इनमे सदा ही तीव्र रूप से रही है। बचपन मे जो धार्मिक सस्कार इनमे पडे थे वे रूप-भेद के साथ आज भी विद्यमान हैं। शुरू मे साधु-सतो के प्रति जो जगह थी, वह आगे चल कर देश के बडे साहित्यिको तथा राजनीतिक नेताओ ने ले ली। अस्पृश्यता का जो सस्कार इनमे था, उसकी जगह हरिजन-सेवा ने ले ली। कथा-प्रवचन आदि आज भी इन्हे रुचते हैं लेकिन तोतारटत की तरह कही जाने वाली कथाए नही वरन् वे कथाये जो विद्वानो, तत्वज्ञ लोगो द्वारा कही जाती हैं। ऐसी कथाओ, प्रवचनो, व्याख्यानो आदि मे ये खूब शरीक होते हैं।

स्त्री-शिक्षा :

उन दिनो मारवाडी समाज की लडकिया प्राय अपढ होती थी, चाहे उनका परिवार कितना ही समृद्ध हो तथा उन लडकियो के पिता-भाई आदि कितने भी लिखे-पढे हो। लडकियो की पाठशाला के नाम पर मात्र एक सावित्री पाठशाला थी लेकिन उसमे या तो केवल अक्षर-ज्ञान करा दिया जाता था अथवा तो गीता के कुछ श्लोक या रामायण की कुछ चौपाइया या विष्णु सहस्रनाम आदि रटा दिये जाते थे।

लडकियो को वर्गवार शिक्षा देने के लिये सब से पहले मारवाडी बालिका विद्यालय की स्थापना सन् १६२० मे हुई। उस सस्था के काम मे सीतारामजी

का शुरू से ही गहरा सम्बन्ध रहा है। बीच का थोड़ा-सा समय छोड़ कर उस संस्था की देखरेख तथा व्यवस्था आदि की जिम्मेदारी इनकी ही रही है। इस विद्यालय का काम हाथ मे लेने के तुरन्त बाद इन्होंने कलकत्ता की विविध महिला-संस्थाओं को देखा, उनके अधिकारियों से मिल कर हर प्रकार की जानकारी प्राप्त की, साथ ही जालधर, प्रयाग और पूना की महिला-शिक्षण-संस्थाओं को भी निकट से देखा तथा महर्षि कर्वे, लाला देवराजजी आदि लोगों से मिले और उनके द्वारा चलाई जाने वाली संस्थाओं के सम्बन्ध में तथा स्त्री-शिक्षा की अन्यान्य बातों के बारे में हर आवश्यक जानकारी हासिल की।

कलकत्ता मे मारवाडी समाज मे लडकियों को अंग्रेजी पढाने की कल्पना पहले-पहले इनके दिमाग में आयी और इन्होंने मारवाडी बालिका विद्यालय की प्रबन्ध समिति के सामने यह प्रस्ताव रखा। समिति के सारे ही सदस्यों, जो अपने को सुधारक मानते थे, ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। आखिर इनके आग्रह पर यह तय हुआ—"अभिभावकों की राय ली जाय। यदि वे सहमति दे दे, तो अंग्रेजी शामिल की जा सकती है।" सीतारामजी घर-घर फिर कर लडकियों के अभिभावकों से लिखित सहमति लाये, तब समिति ने इसकी स्वीकृति दी। इस काम मे प० हीरालालजी शास्त्री, जो उन दिनों कलकत्ता मे ही रह रहे थे, ने इनकी अच्छी मदद की थी।

इनकी देखरेख में मारवाडी बालिका विद्यालय की काफी प्रगति हुई पर स्थानाभाव के कारण उतनी प्रगति नही हो सकी जितनी इनके मन मे थी। ये ऐसी संस्था चाहते थे, जहा हिन्दी-भाषी लडकियों के लिये आद्योपान्त शिक्षा का प्रबन्ध हो, खेलने-कूदने के लिए बडा-सा प्रागण हो और हो मुक्त वातावरण। कुछ दिनो बाद लार्ड सिन्हा रोड पर इनके मन के अनुकूल एक जमीन मिल गयी जिसमें मकान भी बना हुआ था। यह जमीन सर आगा खा की थी। पैसा तो संस्था के पास नही था किंतु समाज की दानशीलता तथा अपने और अपने मित्रों के प्रयत्न के भरोसे इन्होंने वह जमीन खरीद ली और वहा पर १९५४ मे श्री शिक्षायतन के नाम से स्कूल चालू कर दी। एक वर्ष बाद ही कालेज की कक्षाये भी आरम्भ कर दी गयी।

पुराना मकान तोड दिया गया और चार नई बडी-बडी इमारते वहा बनवाई गई—एक प्राइमरी विभाग के लिए, दूसरी उच्च माध्यमिक विद्यालय के लिए, तीसरी कालेज के लिए और चौथी सतरणी (स्वीमिंग पूल) के लिए। एक बार इन्होंने श्री घनश्यामदासजी बिडला को लडकियों के सामने बोलने के लिए बुलाया था। संस्था के दरवाजे मे प्रवेश करते ही इमारतों की सुन्दरता और विशालता देख कर उन्होंने कहा था—"भव्य है।"

श्री शिक्षायतन में प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर बी० एड० तक की शिक्षा का प्रबन्ध है। छात्राओं की संख्या २५०० है। एक बडा-सा हाल और एक सतरणी है। यह संस्था कलकता की महिला शिक्षण संस्थाओं में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। लडकियों को लाने और ले जाने के लिए आठ बसे हैं। यहा पर रहने वाली

छात्राओ के लिये दो छात्रावास है, एक स्कूल की लडकियो के लिए और दूसरा कालेज की लडकियो के लिए। ७०-७० लडकिया दोनो छात्रावासो में रहती है। अध्यापिकाओ की कुल सख्या ११३ है और अन्य काम करने वाले कार्यकर्त्ताओ की सख्या ७८। सस्था का कुल बजट करीब एक लाख रुपया महीना है। सतरणी मे तैरना सिखाने के लिए दो प्रशिक्षित महिलाये रखी हुई है। यह तरणताल कलकत्ता मे शायद सर्वश्रेष्ठ है। यह इतना लोकप्रिय हुआ है कि अब तक करीब दस हजार महिलाये और लडकिया यहा पर अच्छी तरह तैरना सीख चुकी है।

मातृजाति की सेवा :

सीतारामजी की सदा यह इच्छा रही है और प्रयत्न भी कि महिलाए शिक्षित हो, स्वतत्र हो, समाज मे उनका सम्मान हो। इस दृष्टि से इन्होने मातृजाति की सेवा को ही अपने जीवन का सब से बडा उद्देश्य माना और आज भी मानते है।

सन् १९३१ की बात है। कलकत्ता मे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर प० गगानाथजी झा को जब 'मगलाप्रसाद पारितोषिक' से सम्मानित किया गया तो इनके मन मे यह कल्पना उठी कि इसी तरह का सम्मान महिला लेखिका का भी हो। इन्होने अपनी मशा राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन के सामने प्रकट की। टण्डन जी को यह बात पसन्द आई और तत्काल ही 'सेकसरिया महिला पारितोषिक' की घोषणा की गयी। भारतवर्ष मे महिलाओ के लिए यह पहला पारितोषिक था और वह सब से पहिले श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान को उनकी "मुकुल' नामक कृति पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा दिया गया था।

मारवाडी समाज मे लडको के विवाह पर कुछ दान-धर्म करने की परिपाटी तो रही है लेकिन लडकियो के विवाह पर कभी किसी ने ऐसा नही किया। जनवरी १९३६ मे इनकी बडी लडकी पन्ना का विवाह हुआ, जिसका पोरोहित्य किया था राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टण्डन ने और विवाह-सस्कार विधि प० नेकीरामजी शर्मा ने सम्पन्न कराई थी। विवाह के बाद वर-वधू को आशीर्वाद देने वाले सर्व प्रथम व्यक्ति थे साधुमना आचार्य पी० सी० राय, जिन्होने आशीर्वाद मे कहा था—"सुखे थाको, धर्मे थाको।' आशीर्वाद देने वाले दूसरे महान् पुरुष थे डा० राजेन्द्र प्रसाद। वे उन दिनो काग्रेस के अध्यक्ष थे और इस विवाह मे शरीक होने के लिए ही पटना से कलकत्ता आये थे। गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने अपने हाथ से लिख कर एक बहुत सुन्दर आशीर्वादात्मक कविता भेजी थी। मारवाडी समाज मे अपने ढग का वह पहला ही विवाह था। अत उसमे शरीक होने वालो का एक मेला-सा लग गया था। निमन्त्रण देने वालो मे लडकी की मा और लडके की मा दोनो के नाम भी थे। इस अवसर पर सीतारामजी ने पचीस हजार रुपये देकर महिला-उन्नति के लिए एक सार्वजनिक निधि कायम की थी। दिसम्बर १९४५ मे सीतारामजी की दूसरी लडकी विजया का विवाह हुआ। उस अवसर पर इन्होने फिर २५००० रुपये देकर उस निधि को बढाया।

बडा बाजार मे एक-एक कमरा किराये पर लेकर जो गृहस्थ लोग रहते थे, उनके घर मे किसी भी स्त्री को जब प्रसव होता था, तो स्थान का बहुत बडा अभाव होता था। अस्पताल में प्रसव कराने की प्रथा उन दिनो थी ही नही। स्थान के अभाव और इलाज की समुचित व्यवस्था न होने के कारण बहुत सी महिलाए बीमार हो जाती थी। बच्चे तो अनेक खण्डित हो ही जाते थे। उस सकट को दूर करने के लिए इन्होने सन् १६३७ मे मातृ-सेवा-सदन नामक सस्था की स्थापना की। इन्होने अपने प्रयत्न से लोगो के मन की इस भ्राति को भी दूर किया कि अस्पताल मे प्रसव कराना ठीक नही है। परिणाम स्वरूप धीरे-धीरे लोगो ने सेवा-सदन का उपयोग करना आरम्भ कर दिया। शुरू-शुरू मे इस सेवा-सदन मे केवल दस सीटे थी लेकिन ज्यो-ज्यो लोगो ने इस सस्था का अधिकाधिक उपयोग करना शुरू किया त्यो-त्यो धीरे-धीरे बढा कर सीटो की सख्या पचास तक कर दी गयी। सीतारामजी की सेवाओ के कारण यह सेवा-सदन इतना लोकप्रिय हो गया कि पचास की सख्या भी कम पडने लगी तो विचार उठा कि चन्दा करके एक बडा सा मकान बनवा लिया जाय। कुछ लोगो ने अपने आप पैसा देने का प्रस्ताव भी रखा, लेकिन इसी बीच स्व० कन्हैयालाल जी लोहिया ने अपनी ओर से इस तरह का अस्पताल बनाने की मशा जाहिर की और बातचीत के बाद मातृ-सेवा-सदन का विलीनीकरण लोहिया मातृ सेवा सदन मे हो गया।

समशील और सहकर्मिणी धर्मपत्नी.

इनका यह सौभाग्य रहा है कि पत्नी रूप मे इन्हे भगवानदेवी जैसी साथिन मिली। वह अनपढ भले ही हो, लेकिन उनमे त्याग और वीरता के सस्कार जन्मजात ही थे। सुधार-वृत्ति हो या सीतारामजी की दूसरी कोई भी प्रवृत्ति हो, वे इनसे सदा दो कदम आगे ही रहती थी। स्वतत्रता-आदोलन के दौरान पिकेटिंग करती हुई वे एक बार जेल भी गई। उसकी तेजस्विता के बारे मे यहाँ पर दो-एक घटनाए लिख देना चाहूँगा।

सन् १६३० मे श्रद्धानन्द पार्क मे स्त्रियो द्वारा बुलाई गयी एक मीटिंग में शरीक होने के लिये वे गयी हुई थी। भारी शरीर और पेट में बच्चा। वे पार्क के बाहर ही खडी हुई थी। इतने मे ही पुलिस ने मीटिंग पर एकाएक लाठी चार्ज कर दिया। उन्होने आव देखा न ताव, रेलिग फाद कर पार्क के भीतर कूद पडी और जहाँ लाठिया चल रही थी, वहा जा पहुची। पूछने पर उन्होने बताया कि भीतर लाठिया चले और मैं बाहर खडी तमाशबीन की तरह देखती रहू, यह कैसे हो सकता है?

उस मीटिंग मे पुरुष भी काफी सख्या में उपस्थित थे। पुलिस की लाठी से एक मुसलमान भाई का सर फट गया था, तो उन्होने तुरन्त अपनी साडी फाड कर उसके सर पर पट्टी बाधी थी।

एक बार जब सीतारामजी जेल में थे, तो भगवानदेवी बीमार पड गई। सीतारामजी को अपनी पत्नी से मिलाने के लिये पुलिस घर पर लायी थी।

इन्होंने अपनी पत्नी के मन की थाह लेने के लिए पूछा—तुम कहो तो मैं पेरौल पर छूट सकता हू। भगवानदेवी ने आक्रोश मे भर कर कहा था कि जिस दिन आप पेरौल देना स्वीकार कर लेगे, उस दिन मे आपका मुह नही देखूगी। कितनी हिन्दू नारिया ऐसी होगी, जिनमे रुग्णावस्था के समय भी यह तेजस्विता हो और जो अपनी सुख-सुविधा का जरा-सा भी खयाल किये बिना अपने सिद्धात पर इस तरह अटल बनी रहे।

भगवानदेवी की स्नेहशीलता के सम्बन्ध मे भी दो-एक घटनाए यहा लिख दू।

यो तो कोई भी आदमी, चाहे वह अनजान ही हो, उनके घर चला जाता, तो कुछ-न-कुछ खिलाये बिना वे उसे वापस नही जाने देती लेकिन मैं जो घटना लिख हू, वह उन दिनो की है, जब वे मृत्यु-शैया पर पडी थी।

मैं उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार पूछने गया था। उस समय उनके कुछ रिश्तेदार बम्बई से आकर ठहरे हुए थे। मैंने जब पूछा—"कैसी हो," तो उन्होंने अश्रुपूर्ण नेत्रो से कहा था—"ये हमारे निजी सम्बन्धी बम्बई से आये हुए हैं। मैं स्वय इनके लिए कुछ भी नही कर पा रही हू, इसका मन मे अफसोस है। कितनी लाचारी है, यह भी कैसा जीवन है? "

दूसरी बार जब मैं उनके घर गया और उनसे तबियत का हालचाल पूछा, तो उन्होने कहा था—"मैं आपके भाई (सीतारामजी) के लिए कुछ भी सुख-सुविधा की व्यवस्था करने मे असमर्थ हो गयी हू। मेरे जीवन का अब क्या मोल रहा है?"

इन दोनो अवसरो पर भगवान देवी के चेहरे पर जो भाव था और उनकी आखो मे जो स्नेह उमडा हुआ था, उसकी छवि मेरे मानस-पटल पर आज भी ज्यो-की-त्यो अकित है। यदि मै चित्रकार होता, तो उस छवि को अकित करके लोगो को दिखा देता और देखने वाले अपने को धन्य मानते।

मैं यह भी बताना चाहता हू कि भगवानदेवी जब तक स्वस्थ रही, तब तक सीतारामजी को अपने हाथ से पीसे हुये आटे की रोटिया खिलाती रही और वे हर रोज ३-४ बजे उठ कर इनके लिए दही भी जमाती रही, जिससे उसमे जरा भी खट्टापन नही आने पाये। उन दिनो भी सीतारामजी का घर कार्यकर्ताओ के ठहरने का अड्डा-सा बना रहता था। आगन्तुको की सुख-सुविधा का ख्याल रखने मे इनकी पत्नी भगवानदेवी के माथे पर कभी सिकुडन नही देखी गयी। सीतारामजी जेल मे हो, चाहे बाहर, इनके घर पर एक या दो अतिथि तो तीसो दिन रहते ही थे। कभी-कभी यह सख्या दस-पन्द्रह तक भी पहुच जाती थी। छोटा सा घर, न टेलीफोन, न मोटर और न दूसरी ही किसी तरह की सुविधा लेकिन क्या मजाल कि किसी अतिथि को जरा-सी भी असुविधा हो जाय। भगवानदेवी की कार्यकुशलता, मितव्ययिता तथा स्नेहशील स्वभाव के कारण ही यह सब सम्भव हो पाता था। इनके यहा अतिथि रूप मे ठहरने वाले अनेक लोगो मे डा० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, काका कालेलकर, ठक्कर बापा, जयप्रकाशनारायणजी,

महादेव भाई देसाई, प्यारेलालजी, शन्नोदेवीजी, जमनालालजी बजाज, महादेवीजी वर्मा, वियोगी हरि तथा बजाज परिवार के लोग भी थे।

स्वाधीनता-आंदोलन में

सार्वजनिक कार्य करने की जो वृत्ति सीतारामजी मे बाल्यकाल से ही थी, उसका कलकत्ता आने के बाद निरतर प्रस्फुटन होता गया। ज्यो-ज्यो इनकी सार्वजनिक प्रवृत्तिया विस्तृत हुई, त्यो-त्यो देश के विभिन्न क्षेत्रो के बडे-से-बडे लोगो जैसे महात्मा गाधी, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर, प० मोतीलाल नेहरू, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, देशबधु चित्तरजन दास, जमनालालजी बजाज, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद, आदि के साथ इनका परिचय गहरे से गहरा होता गया और उन सभी के ये बहुत ही विश्वासपात्र और स्नेहभाजन हो गये। जमनालालजी तथा उनके सारे ही कुटुम्बीजनो के साथ तो इनका सम्बन्ध अत्यन्त घरेलू और आत्मीयतापूर्ण था।

एक बार जब वे जमनालालजी के साथ कही जा रहे थे, तो गाडी मे पेट्रोल की आवश्यकता पडी। रास्ते मे बर्मा शेल कम्पनी का पेट्रोल पम्प पहले पडा, पर इनका ड्राइवर उसे छोड कर आगे बढ गया। जमनालालजी ने कहा—"पेट्रोल लेना था, वह क्यो नही लिया ?" इस पर इन्होने कहा,—"यह ब्रिटिश पप है। आगे अमेरिकन पप से लेंगे।" इस कथन से जमनालालजी पर इनके देशभक्ति-पूर्ण रुख की बहुत छाप पडी थी। यह उनके राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्रीय सेवा-वृत्ति का एक उदाहरण है।

गाधीजी के द्वारा चलाए हुए सभी राजनीतिक आन्दोलनो मे सीतारामजी ने भाग लिया, लेकिन १९३०-३२ मे बडाबाजार में चलने वाली पिकेटिंग की जिम्मेदारी तो ये पूरी अपनी ही मानते थे। उस समय इनकी आर्थिक और गार्हस्थिक स्थिति ऐसी नही थी कि ये चला कर जेल जाने का आह्वान करते लेकिन ये उस आन्दोलन की मदद बराबर करते रहे। इनके मन की यह तैयारी जरूर रही कि काम करते-करते अगर पकडे जायें, तो भले ही पकडे जाय। इन्होने अपनी पत्नी से यह कह भी दिया था—"सम्भव है, मैं पकडा जाऊँ। तुम इसके लिए अपने मन को तैयार रखना।" उन दिनो इनके पास पैसा कुछ भी नही था, अत अपनी पत्नी से यह भी कह दिया था—"यदि मे जेल चला जाऊँ, तो जब तक छूट कर नही आऊ, तब तक तुम खरचे का काम अपना जेवर बेच कर चलाती रहना।" पत्नी की उम्र उस वक्त २०-२२ वर्ष की रही होगी। वे अपढ थी तो क्या, उन्होंने इसे खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया। मेरे ऊपरोक्त कथन से कोई यह कल्पना न कर ले कि इनके घर मे बहुत जेवरात थे। कुल मिला कर दो-ढाई हजार रुपये के जेवर रहे होंगे। पत्नी की इस हिम्मत और तेजस्विता से सीतारामजी को बडा बल मिला।

१९३९ में जयपुर राज्य प्रजा मण्डल ने जमनालालजी के नेतृत्व में वहा की प्रजा को एक अधिकार दिलाने के लिये जो आन्दोलन किया था, उस आन्दोलन को

मदद पहुंचाने के लिए कलकत्ता मे जो संगठन कायम किया गया था, उसकी पूरी जिम्मेदारी सीतारामजी की ही थी।

सन् १९४० मे गाधीजी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया। उस सत्याग्रह मे केवल वे ही लोग भाग ले सकते थे, जिनका नाम गाधीजी चुने। कलकत्ता का नम्बर आया, तो गाधीजी ने सर्वप्रथम सीतारामजी का नाम चुना था। जब पहले-पहल ये सत्यागह करने के लिये बडा बाजार मे गये, उस समय जो भीड उमडी थी तथा जो जोश लोगो मे था, वह देखते ही बनता था। ट्राम, बसे आदि सभी बद हो गयी थी। दूर-दूर तक नरमुड ही नरमुड दिखाई देते थे। "महात्मा गाधी की जय", "वीर सत्याग्रही की जय" के नारो से आकाश गुजायमान था। जिन लोगो ने वह नजारा देखा है, वे आज भी उसे भूले नही होगे। बडी-बडी उम्र की महिलाओ तक मे इनके चरण छूने की होड-सी लग गयी थी लेकिन इन्होने किसी भी स्त्री या पुरुष को ऐसा करने नही दिया था।

उन दिनो यहा के मुख्य मत्री मिया फजलुल हक और गृह मत्री ख्वाजा नाजिमुद्दीन थे। पता नही क्यो, उन लोगो ने इनकी गिरफ्तारी का आदेश नही दिया था। चूकि धारणा यह थी कि ये तुरन्त ही गिरफ्तार कर लिये जायेगे, ये देर तक वहा रहे। लोगो की भीड वढती ही जा रही थी। आखिर काफी देर तक वहा ठहरने और व्याख्यान आदि देने के वाद भी जब इनको गिरफ्तार नही किया गया, तब इन्होने लोगो को अपने-अपने घर जाने का इशारा किया। भीड तथा लोगो का जोश देख कर इनके मन मे थोडी-थोडी आशका भी होने लगी थी कि कही शान्ति भग न हो जाय। इसके वाद ये मेरे साथ मेरे घर चले आये। वहा पर भी लोगो की बडी भीड लग गयी थी। कलकत्ता के जितने भी प्रेस रिपोर्टर थे, सब ने इनका वक्तव्य और फोटोग्राफ चाहा था। उसके बाद वे हर रोज ही बडा बाजार में कभी यहा और कभी वहाँ सत्याग्रह करते रहे लेकिन इन्हे गिरफ्तार नही किया गया।

अत मे ये सत्याग्रह करने के लिए डायमड हार्वर चले गये और वही रह कर रोज-रोज विभिन्न स्थानो पर सत्याग्रह करते रहे, लेकिन वहा पर भी इन्हे गिरफ्तार नही किया गया। वहाँ एक दिन जब ये सत्याग्रह कर रहे थे, एक अग्रेज, जो शायद पोर्ट का बडा अफसर था, ने इनको पकडवा कर अपने यहा बुला लिया और क्रोध मे भर कर बहुत तरह की खरी-खोटी कही और अपने नौकर मे बोला—"इस आदमी को खम्भे से बाध दो और मेरी राइफल ले आओ। मैं इसे अभी और यही पर मार डालना चाहता हूँ।" इतने मे ही उस अफसर के पास किसी आदमी का टेलीफोन आ गया और वह उससे बात करने लगा। टेलीफोन पर वातचीत खतम होने के वाद उस अग्रेज अफसर ने इनसे कहा—"मेरे मित्र का कहना है कि तुम्हें हुगली नदी मे फेक दिया जाय।" इतना कह कर वह बड-बडाता हुआ वहाँ से चला गया। सीतारामजी जरा भी नही डरे, अविचल भाव से वही खड़े रहे। आखिर दो-तीन घटे बाद वह अफसर लौट कर आया। अब तक वह ठडा पड चुका था। उसने इन्हे अपने पास बिठाया। चाय-पानी

की वात भी पूछी और दूसरी वातें भी करने लगा। वात-वात में वह वोला; ; "मेरा वाप एक वडा फौजी अफसर था और था वहुत तेज स्वभाव का, लेकिन मेरी मा दयालु स्वभाव की थी।" इस पर हसते हुए और चुटकी लेते हुए ये वोले—"अव मैं समझा, पहले आप मे आपके पिता वोल रहे थे और अव आपकी मा वोल रही है।"

एक वार इन्हे जेल मे 'सी' क्लास मे रखा गया। 'सी' क्लास के कैदियो जैसा ही खाना इन्हें भी दिया जाता था और उनकी तरह ही रखा जाता था। नाजुक स्वास्थ्य और विगडैल नवावी आदतो के कारण इस तरह का रहन-सहन और खान-पान इनको जरा भी अनुकूल नही पडा और ये वीमार हो गये। जेल के सुपरिन्टैण्डेण्ट ने इनसे कहा—"आप एक दरख्वास्त लिख दीजिये कि आप वीमार है, मै सिफारिश करके आपको अस्पताल भिजवा दूगा। वहाँ खाने-पीने और दवा आदि का आवश्यक प्रवन्ध हो सकेगा।" लेकिन इन्होने जेल अधिकारियो के पास दरख्वास्त भेजने की अपेक्षा 'सी' क्लास मे रहना ही ठीक समझा और कुछ भी लिखने से इन्कार कर दिया।

स्वराज्य मिलने के वाद किये गये श्री सीतारामजी के सार्वजनिक कार्यों मे नेताजी सुभाप चन्द्र वोस द्वारा सगठित आजाद हिन्द फौज के प्रत्यागामी वीरो की सेवा और सहायता का कार्य मुख्य था। युद्ध की समाप्ति के वाद जव आजाद हिन्द फौज के लोग वर्मा से यहा वापस आने लगे, तो उनकी व्यवस्था करने, ब्रिटिश राज्य द्वारा उन पर चलाये हुए मुकदमो मे पैरवी करने तथा पीछे रह गये लोगो को वापस लाने के लिए कलकत्ता में आई० एन० ए० का एक सगठन कायम हुआ था। इसके सभापति थे श्री शरतचन्द्र वोस और सयुक्त मन्त्री थे उनके पुत्र अमिय वोस और सीतारामजी। वह सगठन अखिल भारतीय स्तर का था। कई लाख रुपये इकट्ठे हुए थे और वहुत वडा काम उस सगठन द्वारा हुआ था जिसका अपने-आप मे एक वडा इतिहास है। सीतारामजी नित्य ही आई० एन० ए० की आफिस मे जाते, वहा घटो वैठते, मीटिंग आदि की व्यवस्था करते, हिसाव-किताव देखते तथा वर्मा से आने वाले लोगो से सही जानकारी हासिल करते।

सन् १९४८ के वाद से काग्रेस के साथ सीतारामजी का सम्पर्क प्राय टूट-सा गया क्योकि अव काग्रेस का अर्थ त्याग या कष्ट-सहन की राजनीति नही रह गया था। अव तो होड यह हो चली थी कि कौन कितना हासिल कर ले। लेकिन सीतारामजी की चाह तो कभी कुछ हासिल करने की थी नही। इन्हे न कभी एसेम्वली जाने की चाह थी और न पार्लियामेन्ट का सदस्य वनने की, हालाकि यह सव इनके लिए सुगम था। देश तथा समाज के लिए जो हितकर लगा, वही ये विना किसी प्रलोभन के, और नि स्वार्थ भाव से करते रहे और कर रहे है।

रचनात्मक प्रवृत्तिया :

जव इनकी आयु सतरह वर्ष की थी, तव ही कुछ मित्रो के साथ इन्होने नवलगढ में एक पुस्तकालय स्थापित करने का निश्चय किया। उस पुस्तकालय की

स्थापना के लिए ये नियमपूर्वक पैसा मागने के लिए लोगो के पास जाया करते थे। बीच मे इनकी पत्नी बीमार हो गयी, पर इनका चदा मागने का क्रम जारी रहा। एक दिन जब ये पुस्तकालय के सम्बन्ध मे ही कुछ सलाह करने के लिए घर से बाहर एक मित्र के पास गये हुए थे तो इनकी पत्नी की बीमारी ने उग्र रूप ले लिया और उनकी हालत बहुत खराब हो गई। सीतारामजी तुरन्त घर लौटे लेकिन उनके पहुचते-पहुचते वह बेचारी चल बसी।

इस पुस्तकालय की स्थापना एक छोटे से रूप मे हुई थी पर सीतारामजी की सेवाओ से सिंचित होकर वह बढता गया और आज काफी समृद्ध होकर नवलगढ की जनता को सीतारामजी के जीवन से प्रेरणा लेने की शिक्षा दे रहा है।

कलकत्ता आने के बाद गाधीजी द्वारा चलाई हुई अन्य सारी रचनात्मक प्रवृत्तियो में ये लगातार गहरा हिस्सा लेते रहे, जैसे हरिजन-सेवा, खादी-प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, महिला-जागृति, अहिन्दी प्रातो मे हिन्दी का प्रचार आदि।

इस दिशा मे इनका रचनात्मक कार्य शुद्ध खादी भडार से शुरू हुआ था जिसकी स्थापना सन् १६२६ मे हुई थी। इसका उद्घाटन गाधीजी ने किया था। कलकत्ता मे खादी भडार की स्थापना करने का मुख्य उद्देश्य यह था कि जिन उत्पादन-केन्द्रो मे खादी का स्टाक जमा हो जाय, उस स्टाक को निकालना। इसके लिए इन्होने, इनकी पत्नी ने तथा इनके दूसरे मित्रो और साथियो ने कई बार घर-घर घूमकर खादी बेची। ऐसा करने में लोगो के भाति-भाति के ताने भी इन्हे सुनने पडे लेकिन इन्होने अपना क्रम यथावत जारी रखा था। जब से खादी भडार की स्थापना हुई, तब से आज तक, शुरू के पाच-सात वर्षो को छोड कर, पूरी-पूरी जिम्मेदारी इन पर ही रही है। शुरू के उन वर्षो मे महावीर-प्रसादजी पोद्दार काम देखते थे लेकिन उन दिनो भी ये नित्य वहा जाते थे और उनकी मदद करते थे।

खादी भण्डार मे केवल खादी-बिक्री का काम ही नही होता था बल्कि वहा पर नौजवान लडको को खादी पहनने का व्रत दिलाया जाता था, सामाजिक और राजनीतिक प्रेरणा भी दी जाती थी। इसके अलावा प्रकाशन का काम भी इस सस्था द्वारा होता था। गाधीजी द्वारा लिखी हुई 'अनासक्ति योग' नामक पुस्तक के हिन्दी सस्करण का सर्व प्रथम प्रकाशन यहा से ही हुआ था और उसकी करीब एक लाख प्रतिया बिकी थी। इसके सिवा "अंग्रेजी राज्य के सौ साल" और "
"गाधीजी की जीवनी" आदि कई पुस्तके प्रकाशित हुई जिनमें सात पुस्तके तो तत्कालीन सरकार द्वारा राजद्रोहात्मक कही जाकर जब्त भी की गई थी।

राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार, प्रसार और प्रगति के लिये इनके मन मे सदा बडा ही भाव रहा है। हर मौके पर हर तरह से इन्होने हिन्दी की सेवा की है।

आसाम, बगाल और उडीसा मे हिन्दी प्रचार का काम करने वाली पूर्व भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के ये कई वर्षो तक सभापति रहे। इस सस्था द्वारा ऊपरोक्त तीनो प्रातो मे हिन्दी प्रचार का अच्छा काम हुआ था।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के मन मे कल्पना उठी कि शाति निकेतन मे एक हिन्दी-भवन की स्थापना हो तो शाति निकेतन मे गुरुदेव के दर्शन के समय सीतारामजी ने श्रद्धापूर्वक इस काम के लिए गुरुदेव के चरणो मे पाच सौ रुपये रखे थे। उनकी गुरुदेव पर इतनी अधिक छाप पडी थी कि पटना में होने वाली एक सभा में उन्होने इस बात का जिक्र किया। कहा तो पाच सौ रुपये की नगण्य राशि और कहा गुरुदेव जैसा महान् व्यक्ति, लेकिन यह जिक्र पाच सौ रुपये का नही बल्कि सीतारामजी की श्रद्धा और भावना का था।

एक बार गुरुदेव ने इनके सामने कहा था—"शान्ति निकेतन मे हिन्दी पढाने के लिए मैने हजारीप्रसाद द्विवेदी को बुला रखा है। उनको मात्र ६० रुपये महीना देता हू। ये रुपये बनारसवाले बाबू शिवप्रसादजी गुप्त, की तरफ से मुझे मिलते रहे हैं। उनका पत्र आया है कि किसी कारण से अब वे उस सहायता को चालू नही रख सकेगे। अत मुझे हजारीप्रसाद को छोडना पडेगा। वह आदमी "नवनीत" के समान है लेकिन मेरे पास दूसरा कोई मद नही है, जहाँ से मैं ये रुपये दे सकू।" सीतारामजी ने तत्काल गुरुदेव से कहा—"आप इन्हे छोडिये मत, ६० रुपये की क्या बात है, ये रुपये तो मैं ही आपको भेजता रहूगा।"

शाति निकेतन की गवर्निंग बाडी में जो दो सीटे गुरुदेव की तरफ से थी, उनमे एक सीट पर जब तक वे जीये, तब तक अपनी तरफ से सीतारामजी को ही मनोनीत करते रहे।

गुरुदेव जब-जब कलकत्ता आते थे, एक गोष्ठी का आयोजन उनके घर पर हुआ करता था। ऐसी गोष्ठियो में सीतारामजी सदा निमंत्रित होते और शरीक होते। जिन लोगो ने वे गोष्ठिया देखी है, वे आज भी याद करते है कि वहाँ पर किस तरह साहित्यिक रस-सुधा प्रवाहित होती थी।

वीणा दास—अब वीणा भौतिक—क्रातिकारी स्वभाव की थी। जब कलकत्ता यूनिवर्सिटी के दीक्षान्त समारोह मे अपनी सनद लेने गयी, तब उसने गर्वनर पर गोली चला दी थी। गवर्नर तो बच गये लेकिन वीणा तुरन्त गिरफ्तार हो गयी। लबी जेल काटने के बाद जब वह लौटी, तो उसके क्रातिकारी स्वभाव के कारण, सरकार से डर कर, किसी ने भी उसे नौकरी नही दी। आखिर एक मित्र वीणा को लेकर सीतारामजी के पास आया, तो इन्होने उसे मारवाडी बालिका विद्यालय मे पढाने के लिए रख लिया। कुछ दिनो बाद जब वीणा गुरुदेव से मिलने शाति निकेतन गई, तो उन्होने पूछा—"कोई नौकरी लगी या नही?" वीणा ने बताया—"सीतारामजी सेकसरिया ने मुझे मारवाडी बालिका विद्यालय मे स्थान दे दिया है।" इस पर, जहाँ तक मेरा ख्याल है, गुरुदेव ने यह कहा—"मारवाडी समाज न केवल पैसे मे ही धनी है, बल्कि दिल का भी धनी है। जिस वीणा को किसी भी बगाली सस्थान ने काम नही दिया, उसे मारवाडी हो कर सीतारामजी सेकसरिया ने दिया।"

राजस्थान में श्री हीरालालजी शास्त्री ने "जीवन-कुटीर" के नाम से एक सस्था स्थापित की। उस सस्था का काम कहाँ आरम्भ किया जाय, इसके लिए

मारवाडी वालिका विद्यालय में अशीति वर्ष की आयु-सम्पूर्ति के शुभ दिन छात्राओं और अध्यापिकाओं द्वारा अपने चिर-मंत्री श्री सीतारामजी का अभिनन्दन —'आप शतायु हो।' साथ में परिलक्षित हैं— विद्यालय प्रवन्ध समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री भागीरथ कानोडिया, मन्त्री श्रीमती सुशीला सिंघी, कार्य समिति की सदस्याएँ श्रीमती कुसुम खेमानी और डॉ० (श्रीमती) रामप्यारी वडेरा

मारवाडी वालिका विद्यालय का भवन, जहाँ श्री सीतारामजी ने स्त्री-शिक्षा का यज्ञ आरम्भ किया
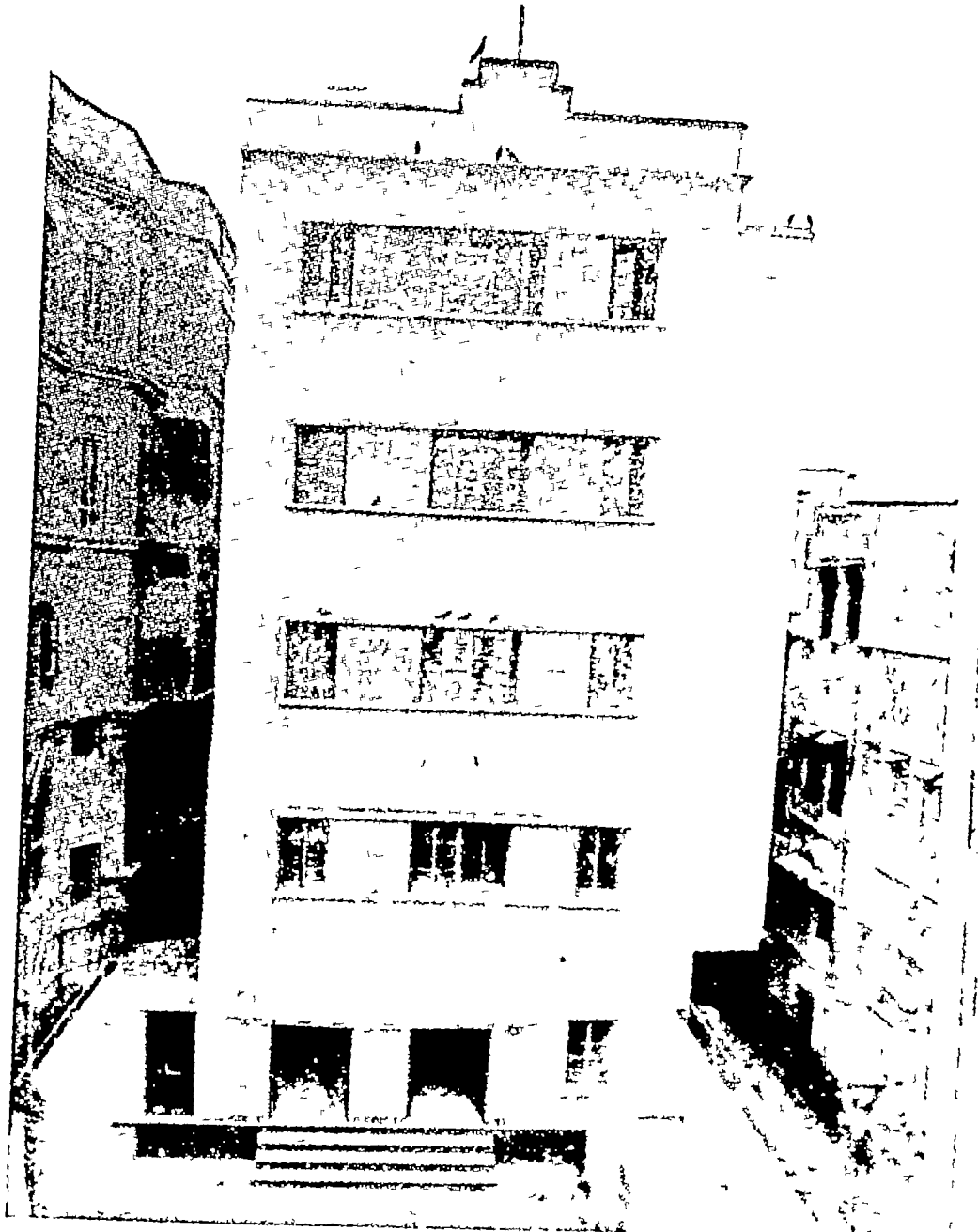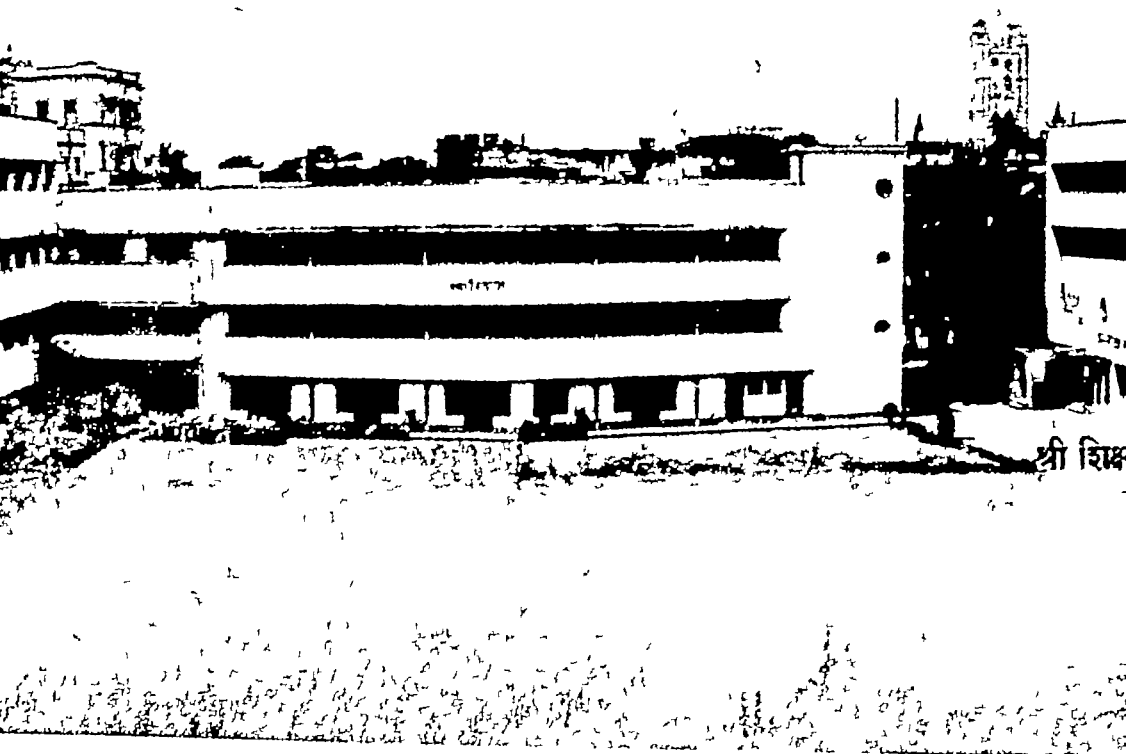
श्री शिक्षायतन का भव्य प्रागण, जहाँ विभिन
श्री सीताराम सेकसरिया की
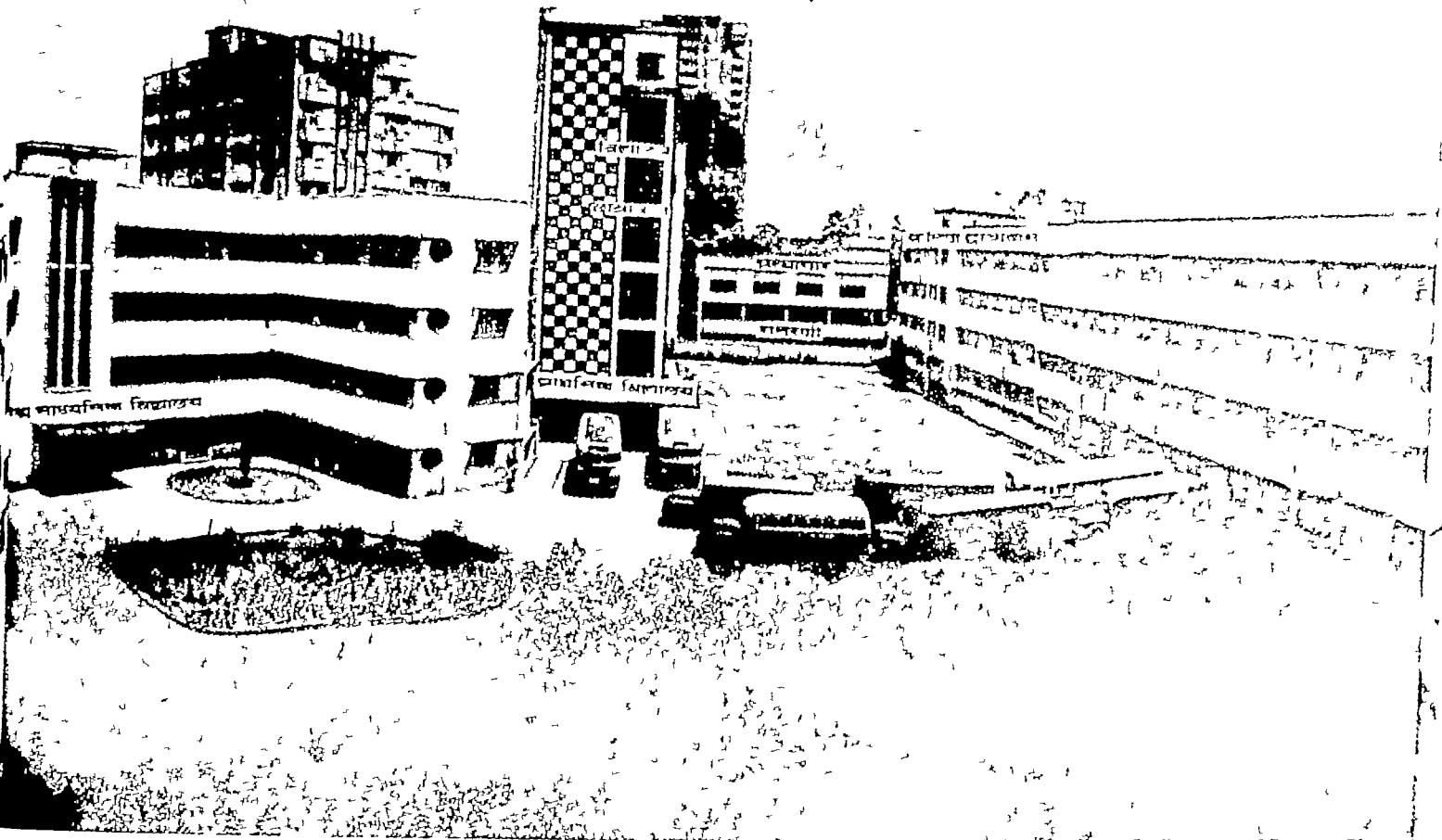
प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक की शिक्षा-व्यवस्था है
और कला-आराधना की पुण्यभूमि
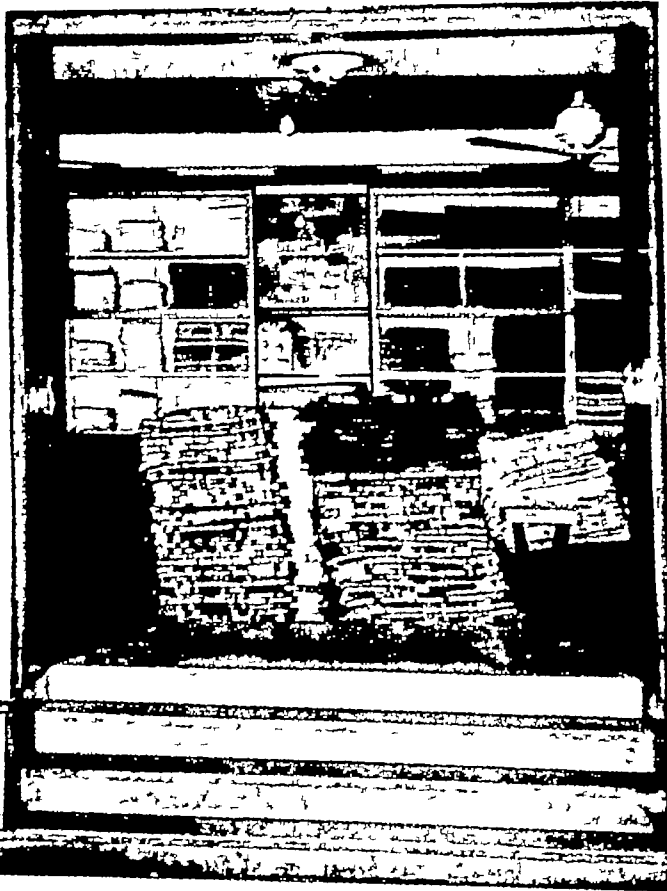
शुद्ध खादी भण्डार

(महात्मा गांधी द्वारा १ जनवरी १९२६ को उद्घाटित)

जहाँ श्री सीतारामजी ने स्वराज्य-साधना का शुभारम्भ किया

स्थान ढूढने मे सीतारामजी भी हीरालालजी के साथ थे। अधिक-से-अधिक पिछडा हुआ और सब प्रकार के साधनो से हीन स्थान ये लोग ढूढना चाहते थे और उसके लिए वनस्थली ग्राम चुना गया।

"जीवन कुटीर" की स्थापना से लेकर आज तक इनका और शास्त्रीजी का तथा इनका और वनस्थली का सबध बडा ही गहरा और अटूट रहा है। वनस्थली के स्थापको में भी इनका नाम लिया जा सकता है और सहायको मे भी।

"जीवन कुटीर" का काम करते-करते शास्त्रीजी की एक लडकी, जिसका नाम शाताबाई था, का देहान्त हो गया था। श्मशान मे बैठे-बैठे ही शास्त्रीजी के मन मे उस बाई की स्मृति मे कन्या विद्यालय स्थापित करने का विचार आया और उसके अनुसार ग्राम-सुधार के साथ-साथ छोटे से रूप में कन्या-शिक्षा का कार्य भी आरम्भ हुआ। जिन लोगो ने केवल आज की समृद्ध एव विस्तृत वनस्थली को ही देखा है, वे उस वनस्थली की कल्पना भी नही कर सकते, जिसमे शास्त्रीजी ने काफी दिनो तक जौ की रोटिया खाई थी और खारा पानी पिया था।

सब का स्नेह, विश्वास और सन्मान :

पराधीन भारत मे विधान-सभाओ का अतिम चुनाव १९४६ मे हुआ था। इस चुनाव में वगाल पार्लियामेन्टरी बोर्ड का जो गठन हुआ था, उसके ये प्रमुख सदस्य थे। काग्रेस की तरफ से खडे होने वाले उम्मीदवारो पर होने वाले खर्चे के लिए सरदार वल्लभ भाई पटेल ने इनके पास दस लाख रुपया भेजा था और यह कहा था कि पैसा तुम अपनी बुद्धि के अनुसार लगाना, किसी के दवाव मे आकर नही।

चुनाव के बाद उन रुपयो मे से पन्द्रह हजार रुपये बचे थे। वे रुपये और सारा हिसाब उन्होने सरदार वल्लभ भाई को भेज दिया था गो कि उन्होने इसके वारे मे कभी कुछ भी पूछा नही था।

सन् १९४५ मे सीतारामजी के पाव मे चोट लग गई थी तो इन्हे देखने के लिए इनके घर पर डा० राजेन्द्रप्रसादजी और वावू अनुग्रहनारायणसिंहजी आये थे। राजेन्द्रप्रसादजी का स्वास्थ्य अच्छा नही था। दमे से पीडित थे, खासी हो रही थी। सीतारामजी ने राजेन्द्र वावू से कहा —"इस हालत मे आपने कष्ट क्यो किया" तो उन्होने कहा था—"आपकी चोट के समाचार सुन कर आये विना कैसे रह सकता था? दूसरी वार जुलाई १९६१ मे राजेन्द्र वावू फिर इनके घर इनकी बीमारी के हालात पूछने आये थे। उस समय वे राष्ट्रपति थे।

कार्यकर्ताओ एव नेताओ मे इनका कितना विशिष्ट स्थान था, इसके वारे में मै एक वात यहाँ वताना चाहूँगा। एक पोलीटिकल काफरेस मे भाग लेने ये उडीसा गये थे। वहाँ डा० हरेकृष्ण मेहताव ने कहा था—"सीतारामजी हमारे नेता है, हम सव लोग तो इनके सिपाही है।"

वंगाल के सारे ही नेताओ तथा अनेकानेक कार्यकर्ताओ से इनका वहुत ही आत्मीयता का सम्वन्ध रहा है, चाहे वे किसी भी क्षेत्र मे काम करने वाले हो। वे लोग इन्हे श्रद्धा और विश्वास की दृष्टि से देखते रहे है और ये भी उनके हर दुख-सुख मे शरीक होते रहे है। वगाली समाज के लोगो के मन मे इनके लिए सदा ऐसी भावना रही है, मानो ये वगाली ही है।

इनकी वुद्धि सदा ही तीक्ष्ण थी और उसका ही यह परिणाम है कि पढाई-लिखाई नगण्य होने पर भी आज ये अच्छा लिख सकते है और वडी-वडी सभाओ मे वहुत अच्छा वोल भी लेते है। इनकी वाणी और कलम दोनो ही सशक्त है। इनकी लेखन-शैली के वारे मे यहाँ एक उदाहरण देना चाहता हूँ। इन्होने "स्मृति-कण" नाम से एक पुस्तक लिखी है। उसे पढ कर महापण्डित राहुल साकृत्यायन ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था—"कणो से पेट नही भरता, ज्यादा मा दीजिये।"

अपने जीवन मे ये जो भी नियम या मकल्प लेते उसका पालन निष्ठापूर्वक किया करते थे। इनकी पहले भी यह मान्यता थी और आज भी है कि मकल्प में वहुत वल होता है।

मीतारामजो के जीवन के इतने प्रसग है और वे इतने प्रेरणादायक है कि इस लेख में उनका पूरा चित्रण करना सम्भव नही है। इसके लिए तो एक स्वतत्र ग्रथ की आवश्यकता है। इनके जीवन के वारे में कोई अधिक जानना चाहे तो 'एक कार्यकर्ता की डायरी' के नाम से इनकी डायरियो के जो दो भाग छपे है, उन्हे पढना चाहिए। इन डायरियो के वारे में श्रीमती महादेवी वर्मा, प० मगलदेव शास्त्री तथा अन्य लोगो ने वहुत ऊँची राय व्यक्त की है। इन डायरियो को पढने से इस वात का पता चलेगा कि मीतारामजी का जीवन किस तरह एक खुली किताव जैसा रहा है, छिपाव-दुराव नाम की कोई चीज इनके जीवन में कभी नही रही है। इन्होने प्रेम और करुणा के क्षेत्र मे वुद्ध भगवान को, सत्य, न्याय और कर्म के क्षेत्र मे मात्मा गाधी को तथा कला और साहित्य के क्षेत्र मे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर को अपना इष्ट माना है।

सीतारामजी की मिलनमारिता और उनके सरल स्वभाव तथा निरन्तर सेवामय जीवन के कारण समाज के मारे ही लोगो मे, चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले हो, किसी भी मम्प्रदाय के हो, वे ममान रूप से समादृत है। जहाँ तक वन पडता है, अपने हर परिचित आदमी की वीमारी-मीमारी मे, दुख-सुख मे ये उसके पास अवश्य जाते है।

इनकी मेवाओ के कारण जनवरी १९६२ मे सरकार ने इन्हे 'पद्मभूषण' की उपाधि दी, लेकिन इन्होने तो ममाज के लोगो से प्राप्त सम्मान और स्नेह को ही अधिक मूल्यवान माना है और मानते है।

—०—

तृतीय खण्ड

चिन्तन

एक सच्चा कार्यकर्त्ता जितना बाहर देखता है, उससे अधिक अपने अन्दर झांकता रहता है। अन्तर से ही शक्ति पा कर वह बाहर की परिस्थितियो से सफलतापूर्वक सघर्ष कर पाता है तथा अपना एवं समाज का वांछित परिवर्तन और शोधन-सस्कार कर सकता है। अतएव कार्यकर्त्ता को अतर की शुद्धि और बाहर की शक्ति के समाहार के प्रति सदैव जागरूक रहना होता है। अतर जितना शुद्ध और दृढ होता है, बाह्य उतना ही सस्कृत और परिष्कृत हो पाता है। यही कारण है कि कार्यकर्त्ता को हर समय अतर-शुद्धि के लिए सावधान रहना पडता है।

श्री सीतारामजी जीवनभर एक जागरूक और कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे हैं। वे हमेशा आत्म-साक्षात्कार, आत्म-निरीक्षण और आत्म-चिन्तन करते रहे हैं। अपनी कमियो और त्रुटियो के प्रति वे सदैव जागृत एव जिम्मेदार रहे हैं। अपनी डायरियो के सदर्भ मे उन्होने लिखा है—"मैंने अपने मन के साथ जो बातें की हैं, वे इनमे अकित हैं"। देश-काल की हर घटना और परिस्थिति की उनके मन पर जो क्रिया-प्रतिक्रिया हुई, उससे विचारो का ऊहा-पोह और मथन होकर जो चिन्तन प्रसूत हुआ, उसको उन्होने समय-समय पर अनुभूति की गहराई और अभिव्यक्ति की सरलता के साथ अपनी डायरियो मे, लेखो मे, भाषणो मे रेखाकित किया है।

उनकी ४५ वर्षों की डायरियो के हजारो पृष्ठो पर जो विचार अकित हैं, वे उनके अपने लिये तो महत्वपूर्ण रहे ही हैं, किन्तु दूसरो के लिए भी उनमे बडी गहरी प्रेरणा है। जीवन के विभिन्न विषयो पर विभिन्न प्रसगो मे हजारो-हजारो तरह के विचारो का भण्डार उनकी डायरियो मे है। उन्हीं मे से नमूने के रूप मे कुछ चुने हुए विचार यहाँ उद्धृत किये गये हैं।

इस कार्य मे डा० (श्रीमती) प्रतिभा अग्रवाल की सहायता उल्लेखनीय है। —संपादक

१—आत्मालोचन

१

आज मन मे यह विचार हुआ कि आदमी आराम से रहने लगे तो उसको कष्टकर कदम उठाने का साहस नही रहता। कोई आदमी देश-सेवा करना चाहे तो यह निश्चय हे कि उसको कष्ट होगा। अपने आजकल थोडा आराम से रहने लगे हैं, यह अच्छी बात नही है। आगे जैसा समय आने वाला है, उसमे देश को बहुत से व्यक्तियो की जरूरत पडेगी। उस समय पीछे रहना क्या ठीक होगा? आराम का जीवन न बिता कर कुछ कष्ट सहने की शक्ति लानी चाहिये।
२६-११-१९२९

२

स्त्रियो की पूजा से मन को बडा सतोष मिलता है और अपने को इस आन्दोलन मे आनन्द मालूम होता है। युद्ध समाप्त होने पर रचनात्मक कार्यो मे लगना ही है और वह काम जहाँ तक हो बहिनो का ही हो। अब इस काम मे शारीरिक तकलीफो को कुछ देखना नही है। जितना रुपया-पैसा भी हो, अपने से खर्च करना ही है।
५-१-१९३१

३

आजकल अपने मे लोगो का परिचय बढ रहा है। प्राय सब लोग ही सहायता चाहते है और देनी पडती है। इसमे खर्च हैसियत से अधिक लग रहा है। सोचते है, तब मालूम होता है कि इस तरह के खर्च से कैसे काम चलेगा। फिर यह विचार होता है कि जब तक है, तब तक दो। फिर लोग मागेगे भी नही और मागेगे तो अपने देगे ही कैसे?
४-२-१९३१

४

आज जल्दी घर आ जाने के कारण आराम खूब मिला। एक दिन ऐसा करने मे ही मन मे लालच आने लगा कि इस समय घर आ जाया करे। अपने कोई बन्धन है ही नही, बधन तो लगा रहे हैं। पर थोडी देर बाद विचार आया कि आराम करना ठीक नही है। और, यह अपने को नही करना चाहिए।

जैसे भी हो, जहाँ तक बने, काम करना उचित है। घर में बैठ कर आराम करना तो अपने लिए ठीक नही है। जितना ज्यादा काम कर सके, उतना करना चाहिये।
१२-८-१६३१

५

केवल एक चाह है। वह यह कि पवित्र रहे और पवित्र भावनाओं को लिये हुए जैसे सार्वजनिक सेवा की, वैसे ही देशसेवा की भावनाओं को लिए हुए मरे। सत्य की ओर जाये, असत्य और अज्ञान का मार्ग भूले ताकि ज्ञान का मार्ग दिखाई दे।
२०-६-१६३७

६

काफी देर बैठे रहने के बाद भगवान देवी आई और अपने को सफाई करने के लिए पानी मिला। इससे अपने को बहुत बुरा लगा, क्रोध भी आ गया। दो-चार बाते भगवान देवी को कह भी डाली। इससे उसे भी दुख हुआ, अपने को भी। दिन भर तबियत खराब रही, मन खराब रहा। गुस्सा शरीर पर, मन पर क्या असर करता है, इसका प्रत्यक्ष पता चल रहा था। गुस्सा कितनी बुरी चीज है पर मनुष्य उसके वश हो जाता है। लेकिन ये सब विकार है। विकारो से हानि ही होती है। ईश्वर विकारो से पिंड छुडावे, तब ही यह छूट सकता है। "हौ हार्‌यो करि जतन विविध, विधि अतिसै प्रबल अजै तुलसीदास, वश होइ तबहि प्रेरक प्रभु बरजै, मेरो मन हरिजै हठ न तजै।"
३१-८-१६४५

७

अपने पास आजकल सेवा करने का साधन नही रहा है। कारण, मित्रो के साथ मेल नही बैठता और अकेले काम कर नही सकते। वातावरण निहायत गुस्से से भरा तथा साम्प्रदायिक मनोभाव से पूर्ण है। ऐसी हालत मे एक प्रकार की निराशा-सी है अपने सामने, पर निराशा और नास्तिकता एक ही चीज है। जो लोग ईश्वर पर विश्वास करते हैं, वे निराधार नही हो सकते। इसलिए अपने लिए निराशा कैसी? वह तो अपने पास फटकनी भी नही चाहिये। ईश्वर अपने लिए रास्ता निकालेगा ही, अपना सदा भला होगा।
२३-१०-१६४६

८

गाँधीजी बगाल मे आ कर इतनी बडी रिस्क, जीवन की रिस्क, लेकर काम करे और अपने बगाल मे रहते हुए चुपचाप बैठे देखते रहे, यह एक पाप जैसी बात

है। साथ ही, आत्मग्लानि भी होती है। क्या करे, यह सोचते रहते है। अपने गाँवो मे जा कर रहे, काम करे, यह सोचते रहते है। यह क्या सम्भव है? क्या अपनी स्थिति, शारीरिक अवस्था, आदते इसे करने लायक है? यदि नही हैं और उत्साह या विचारो के कारण वहा चले जाय और कुछ कर भी न सके, बीमार होकर वहाँ के लोगो पर भारस्वरूप हो जायँ तो? यह सब विचार मन मे चल रहे हैं। कुछ न करे तो मन को शाति नही मिलती पर यदि इसी तरह सोचते रहेगे, कुछ करेगे नही तो आहिस्ते-आहिस्ते यह विकलता कम हो जायेगी। क्या करे, कुछ समझ मे नही आता। पू० बापू जी को पत्र लिख कर पूछने की इच्छा होती है पर सकोच है। इसलिए कि उन्होने आजकल पत्र पढना-लिखना भी प्राय बन्द कर दिया है। ईश्वर से प्रार्थना है कि कोई मार्ग सुझावे, कुछ करने का बल दे। केवल विचारो से कुछ होता नही। प्रभु काम कराओ, काम करने की शक्ति और कौशल प्रदान करो।
७-१२-१९४६

९

अपने मन की जो हालत है, वह कुछ दिनो से ऐसी हो रही है कि अपने को रास्ता नही दीख रहा है। काम करना चाहते है पर दरअसल अपने कुछ कर नही रहे हैं। इससे मानसिक असतोष बना रहा है। आदमी अपने मन का काम करते-करते मर जाय तो उसे मरने मे भी सुख है पर ऐसा तो तभी हो सकता है, जब प्रभु की कृपा हो।
१५-३-१९४७

१०

अपनी इच्छा है कि जब तक जिये, काम करते रहे पर यह तो प्रभु की कृपा और इच्छा पर ही हो सकता है। अपने जीवन मे ऐसा रहा है कि सदा अपने-आप जीवन की धारा बदली है। अपने खूब व्यापार मे रत थे। जब व्यापार छोड कर पूरी तरह सार्वजनिक काम करने की प्रेरणा हुई, तब व्यापार मे अलग हुए। अब सार्वजनिक जीवन के प्रति उत्साहहीन होना, सुस्त होना, कार्यशील न रहना यह तो अपने को बिलकुल बर्दाश्त नही होता। अपने करे, प्रभु अपने से करावे, हर तरह से अपना जीवन और काम उत्साहपूर्ण एव जीवन भरा हो तो ही सतोष हो सकता है।
१७-४-१९४७

११

मनुष्य मे स्वभाव से अनेक कमजोरियाँ रहती है। पर आज उन कमजोरियो को सेवा का रूप दिया जाता है। आज की राजनीति मे अपने लिए कोई काम रह गया हो, ऐसा नही लगता। मन मे अपने भी कमजोरी है ही।

सिर्फ समाज-सेवा का मौन काम करके मन वह सतोष नही पाता, जो एक सच्चे सेवक को हुआ करता है या होना चाहिये। काम करने के बाद भी एक भूख-सी, एक कमी-सी, एक अभाव-सा अनुभव होता है। वह चाहे सामाजिक प्रभाव का हो, इज्जत का हो, पूछताछ का हो, आदर का हो, जो कह लीजिए पर उसकी तरफ से अपना मन बिलकुल शात हो गया हो, ऐसा तो नही लगता। अपने जब इस पर विचार करते है, इसकी गहराई मे जाते है तो यह बिलकुल थोथी चीज मालूम होती है। यदि सामाजिक इज्जत या मान मिल भी जाय तो उसका कितना मूल्य ?

३१-१२-१९४७

१२

आजकल अपनी मनोदशा ऐसी हो रही है कि कही जाने-आने की तथा कुछ करने-कराने की या किसी से मिलने-जुलने की इच्छा नही होती। इसमे दोष तो अपना खुद का ही है पर लगता दूसरो का है। यह कोई अच्छी हालत नही पर वस्तु-स्थिति जो है, वही कही जाय न ? अपने क्या करे ? ईश्वर जो चाहेगा, वही होगा। वह अपने से जो करवाना चाहेगा, वही अपने कर सकेंगे। आजकल मन निहायत बुझा-बुझा रहता है। प्रार्थना तो रोज यह किया करते है कि विषाद की भूमि मे आनन्द निर्माण करने की शक्ति हो। शायद यह प्रार्थना सच्चे हृदय से नही होती। नही तो आज मन की जो हालत है, वह हो कैसे सकती है ? भरोसा तो भगवान् का ही है। वही सब कुछ ठीक करने वाला है।

२८-३-१९४९

१३

आर्थिक स्थिति काफी नाजुक हो गयी है। बोझा रहता है खर्च का। अपने बीसो वर्ष से सार्वजनिक काम करते हैं। व्यापार मे न तो मन लगता है, न व्यापार करना अच्छा लगता है। आज व्यापार करने की शक्ति और बुद्धि भी अपने मे नही रह गयी है। ऐसी हालत मे अपने क्या करे ? अपने धन नही चाहते तो भी खर्च लगता है, उसका इन्तजाम तो हो। तब ही काम चले न ? कोई चीज सूझती नही। ईश्वर मालिक है। वही अपना सब निभाता है, निभायेगा, इसमे सन्देह नही। चिन्ता क्या करे ? सब अच्छा ही होगा।

९-६-१९४९

१४

मीटिंगो मे जाना भी अपने कामो का एक अग बन गया है। पर मीटिंगो मे जाकर खुशी प्राय नही होती। ऐसा लगता है कि समय व्यर्थ-सा ही गया। खास कर सार्वजनिक सभाओ मे यह ज्यादा महसूस होता है। तब भी मीटिंगो मे खूब जाते हैं और जाने की इच्छा भी रहती है। यह एक प्रकार का मोह है।

मोहो से छुटकारा पाना सहज थोडे ही है। चाहते हैं, सोचते भी है पर आदमी जैसा सोचता है, वैसा कर सके, तभी उसका विकास होता है। न कर सके तो यह उसकी कमजोरी है। आहिस्ते-आहिस्ते इस कमजोरी पर विजय पाना चाहिये। कमजोरी का शिकार खोजना या उसके वश मे आ जाना ठीक नही। ऐसा हुआ तो फिर कुछ भी नही रहा। आदमी अपनी कमजोरिया को छिपाना या भुलाना चाहे तो वह अपने-आपको ठगता है। अपने-आपको ठग ा जितना सरल है, उतना दूसरे को ठगना नही। जो हो, अपने सब सोचते-विचारते है। आखिर अपने को तो यही अच्छा लगता है कि भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये—हमे अच्छा रास्ता दिखावे और उस पर चलने का बल दे।
२४-१-१९५०

१५

अपने से जो कुछ भला हो सके, वह करते रहना है। इसके सिवा जो होने वाला है, जो हो रहा है, उसके लिए चिन्ता करना फिजूल है। पर अपनी मानसिक हालत ऐसी नही है। अपने सोचते बहुत ज्यादा है और मानसिक परेशानी से घिरे रहते है। अपने जिस तरह सोचते हैं, इस समस्या को उस तरह से सोचने वाले या उस तरह के विचारो के लोग अपने को नही मिल रहे हैं। अपने विचारो के विरोधी तो कदम-कदम पर मिलते है। ऐसी हालत मे एक प्रकार की वेदना से मन भरता जा रहा हे। सोचते है तो ऐसा लगता है कि इस पीडा से अपने खुद का या किसी और का कोई लाभ नही होता तो भी मन के सस्कार अपना काम करते ही है। अपने क्या करे? मुसलमानो की हालत हिन्दुओ से बदतर हो रही है, हिन्दुओ की उनसे बदतर। आज यह सवाल इस तरह किसी के मन मे क्यो नही उठता कि मानव की, आदमी की, इन्सान की यह हालत किसी को भी बर्दाश्त नही करनी चाहिये। अपने एक प्रकार से ऐसे मौको पर नि सहाय से हो जाते है। यह अच्छा नही है। यदि कुछ हो सके तो करना है, न हो सके तो सतोष मान कर चुप रहना है। यह असतोष, यह दुख, यह वेदना तो, जो कुछ कर सकते है, उससे भी वचित कर रही है। अपना मालिक भगवान् है। निर्बल के बल तो राम है। जो प्रभु करेगा, वही होगा। आजकल रात को भी देर मे सोते है।
९-३-१९५०

१६

मन के साथ ऐसा सघर्ष करना पडता है कि थकान आ जाती है। आज के समाज मे, आज की राजनीति मे, आज की पारस्परिक स्थिति मे अपने फिट नही हो पाते। कसूर तो अपना ही होगा या हे। पर अपने सोचते है तो कोई अन्याय किया हो, पाप किया हो या लोभ वश कुछ गडवड की हो, ऐसा नही लगता है। तब भी अपने को यदि शाति न मिले तो यही सोचना चाहिये कि

कोई छिपी बात ऐसी है जिसको अपने नही जानते और उसकी वजह से अपने कोई ऐसी गलती करते रहते हैं, जिससे अपने मन को शांति और संतोष नही मिलता।
१८-३-१९५१

१७

सुबह की बातो पर विचार करता रहा। क्रोध, अहंकार तो पाप का मूल है, चाहे उचित, चाहे अनुचित। क्रोध तो अनुचित ही है। सामने वाले का कसूर हो तब भी यदि अपने क्रोध करे तो अपने भी दोषी हो जाते हैं। इससे अपने को काफी पश्चात्ताप है सुबह की घटना का। आजकल अपने को क्रोध ज्यादा-ज्यादा आने लगा है। यह तो गिरने की बात हुई। चढ़ना चाहते हैं ऊँचे तो फिर यह सब गंदगी साथ लेकर ऊपर कैसे जाया जा सकता है? ईश्वर से प्रार्थना तो यह करते है—द्वेष की जगह प्रेम करने की शक्ति दो, शक और सन्देह के बदले विश्वास पैदा करने की शक्ति दो। क्रोध के वश मे हो अंधकार मे चले जाये तो फिर यह प्रार्थना कैसी? जो हो, कमियाँ-खामियाँ तो भरी पडी हैं। उनसे बचना, उनको हटाना, यही काम होना चाहिये।
१२-६-१९५२

१८

अपने सार्वजनिक काम करते हैं। नाना तरह के लोगो से संबध मे आते है। बहुत-सी संस्थाओ से संबधित है। इसलिए आज की सामाजिक स्थिति का अपने को जो अनुभव होता है, उससे समाज मे अस्वस्थ वातावरण है, ऐसा लगने लगता है। लोगो का बौद्धिक ज्ञान तो बढा मालूम होता है पर चारित्रिक उच्चता बढने की जगह घटी है। चालाकी, स्वार्थ-परता आदि बुरी मनोवृत्तिया पैदा हुई हैं और उनके द्वारा जो क्षणिक सफलता मिलती है, उसके प्रति लोगो मे आकर्षण है। आदमी सोचता है कि जिससे अपना स्वार्थ सिद्ध हो, वही काम करना चाहिये, चाहे उस स्वार्थ को सिद्ध करने का मार्ग कैसा भी हो। इसलिए मैं आज एक युद्ध के घायल सिपाही की स्थिति मे चल रहा हूँ जो युद्ध मे लडने की इच्छा रखते हुए भी युद्ध नही कर पाता। घर मे बैठ कर घाव को सुधारा नही जा सकता, क्योंकि सामाजिक घात-प्रतिघातो के घाव घर मे बैठ कर कैसे भरे जा सकते हैं? उन घावो को भरने के लिए तो निरंतर संघर्ष करना पडेगा। उस संघर्ष को करने की शक्ति प्राप्त करने से ही अपनी स्थिति स्वस्थ हो सकती है? हिम्मत नही हारना, चाहे जान जाये।
१३-३-१९५३

१९

कैसी दयनीय हालत है कन्याओ की कि उनके माता-पिता पशुओ की तरह उनको खरीददार के यहाँ दिखाते हैं। फिर पशु भी खरीदे तो पैसा देना पडता

है पर लडकी को कोई अपने लडके के लिए लेने को तैयार हो तो इस शर्त पर कि कितना रुपया साथ दोगे ? विचित्र हालत है समाज मे लडकी की।
२३-३-५४

२०

एक अनुभव हुआ कि जिस दिन से विधवा का विवाह होना तय हुआ उस दिन से लडकी मे नया जीवन आ गया। जैसे दीये मे तेल खत्म हो गया हो और बाती जल रही हो, ऐसी हालत थी इस लडकी की। और ,सम्वन्ध तय हुआ उस दिन से जैसे किसी ने दीये मे तेल डाल दिया हो और नया प्रकाश आ गया हो' ऐसा परिवर्तन लडकी मे प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। इससे यह साबित होता है कि विधवाओ का विवाह कितना आवश्यक है, कितना जीवनप्रद और पवित्र है। ऐसा लगता हे कि एक मनुष्य, जो जीवित रहते हुए भी मृतक की तरह रहता है, के लिए अमृत जैसा है, उसको नया जीवन, नया उत्साह, नई प्रेरणा, नई स्फूर्ति और सामाजिक स्थान देना। यह समाज के लिए उपयोगी जीवन जीने की स्थिति प्रदान करता है।
१४-६-५५

२१

आज की दुनिया मे मै अपने-आपको फिट नही कर पाता। इससे मुझे मौके-मौके पर कष्ट होता रहता है। यह मेरा ही दोष है। दुनिया तो है सो है ही। वह जैसी है, वैसी ही रहने वाली है। अपना काम सच्चाईपूर्वक, परिश्रमपूर्वक, जो योग्यता ईश्वर ने दी है, उसके अनुसार करके सतोष मानना चाहिए। दुनिया को जिसने बनाया है, वही इसको जैसे उचित समझेगा, वैसे चलायेगा। उस नियन्ता के सामने अपने-आपको ठीक रख सके तो सव ठीक, यही मानना चाहिये। "दास कवीर जतन से ओढी, ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया।"
५-१०-१९५५

२२

मै जव-जव ऐसी स्थितियो को देखता हूँ, तव-तव एक विकलता का अनुभव करता हूँ पर वह क्षणिक होती है। एक आवेग जैसी होती है। इसमे कुछ होता नही। दु ख की, अभाव की गहरी अनुभूति हो तो अपने-आपको तथा अपने कामो को वदल कर इन अभावग्रस्त लोगो की सेवा करने का काम करना चाहिए। पर आवेग तो स्थायी नही होता, आता हे, चला जाता हे।
१४-२-१९५६

२३

फिर मारवाडी रिलीफ सोसायटी के स्थापना-दिवस के उत्सव में जाना पडा। इस प्रकार सारा दिन वीता। जिस दिन शिक्षायतन, खादी भडार आदि बन्द रहते हैं, उस दिन समय प्राय इसी तरह के कामो मे वीतता है। ऐसा लगता है कि एक भ्रम से भ्रमित होकर फिर रहा हूँ। क्या करना है? कैसे करना है? किस लिए करना है? चाह है, समाज के कल्याण के काम करने की, समाज को समुन्नत, समृद्ध, समुज्जवल बनाने की, अपने-आपको पवित्र बनाने तथा सत्य के द्वारा जीवन को कृत्य-कृत्य करने की पर क्या यह सब हो पाता है? जिस तरह चल रहा हूँ, उससे यह होगा भी? यह डायरी लिखता हूँ, तब आत्मनिरीक्षण के रूप मे ऐसे प्रश्न मन मे उठते है। पर वे पानी की लहर की तरह यो ही चल कर समाप्त हो जाते हैं। उनको असली रूप मे जानना जरूरी है। जीवन का बहुत बडा हिस्सा बीत चुका है। किसी को ठगने की, धोखा देने की इच्छा कभी नही जगी, न कुछ ऐसे काम किये जिससे किसी का अहित हुआ हो। जो कुछ भला है, वह करने की कोशिश करता रहा हूँ, करता हूँ। पर जो चाहता हूँ, वह तो नही हो सकता है। इसलिए ईश्वर की शरण ही मेरा अवलम्ब है। वह जो करता है, जो कराता है, वही करना है।

११-३-१९५६

२४

धन का प्रभाव, धनी का प्रभाव जाने अनजाने हम पर, हमारे मानस पर पडता है। चाहे हम उसकी कितनी भी निन्दा करे, उसे कितना भी बुरा बताये पर धन मे जो प्रभाव है, धन के द्वारा जो चीजे प्राप्त होती है, हो सकती हैं, काम करती हैं। यही धन की विजय है। यही धनी के धन का विनाश चाहने वालो की कमजोरी है। यह स्थिति बदलने के लिए समाज-रचना का सारा ढग मूल से बदले, तब काम हो।

२४-३-५६

२५

आज भी इतने परिवर्तनो के बाद भी स्त्री की स्थिति निहायत नाजुक है। वह अपमानित रह कर दूसरे लोगो की कृपा, दया की पात्र है। यह स्थिति अस्वस्थ करती हे। साथ ही, सामाजिक न्याय का खोखलापन प्रकट करती है।

३०-३-५६

२६

आदमी समाज से लेना चाहता है, देने के लिए उसके पास है ही कम, फिर जो है, वह भी वह देना नही चाहता। यह तो मानी हुई बात है कि दूसरे उन्नत

देशो के सामने हमारा देश पिछडा हुआ है। इसलिए जरूरत यह है कि हमारे देशवासी समाज से कम लेकर अधिक देने की कोशिश करे, तब ही हम उन्नत देशो के पास तक पहुँचने मे समर्थ हो सकते है। यहाँ ऐसा नही हो कर, उल्टा हो रहा है।

१४-६-५६

२७

आजकल मेरा अधिक समय और शक्ति स्त्री-शिक्षा के काम मे लगती है। स्त्री-शिक्षा का काम मुख्य रूप से स्त्री-उन्नति का काम है और इससे सतोप मिलता है। पर मै सोचता हूँ—क्या दरअसल मै कुछ कर रहा हूँ? कुछ लडकियो के पढाने की व्यवस्था कर लेने से ही सतोप नही होता। फिर यह भी सोचना है कि यह पढाई स्त्री-उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है क्या? जो लडकियाँ आज पढ रही हैं, उनमे और साधारण-सी पढी स्त्रियो मे वास्तव मे क्या और कितना अन्तर है। यह प्रश्न खडा होने पर कोई ऐसा उत्तर नही दिया जा सकता जो वास्तविक अन्तर को बता दे। मनुष्य विकास करके, अपने से ऊपर उठ कर दूसरो के लिए सोचने लगे, कुछ करने लगे, तब ही तो उसका ज्ञान, उसका विकास सार्थक माना जाना चाहिए न?

१७-७-५६

२८

आजकल मेरे मन मे नवयुवक कहे जाने वाले लोगो के बारे मे काफी विचार चलता रहता है। उनके क्रिया-कलापो मे मुझे समाज की, देश की भावना का अभाव मालूम होता है। पिछले बडे लोगो के प्रति जो मनोभाव वे रखते है, वे अकृतज्ञता के भाव है। जिन्होने देश और समाज की सेवा मे अपना जीवन होम कर दिया, जिनकी देश-सेवा से हम ऋण-मुक्त नही हो सकते उनके प्रति श्रद्धा न रखना मुझे बहुत ही अखरता है। जो हो, वही अच्छा है यह मान कर चलना चाहिये और अपने से जो हो सके, वह करते रहना चाहिये।

२६-७-५६

२६

जब देश मे निर्माण का वृहत काम सामने हैं, उस समय हम आपसी मतभेदो, भ्रातिपूर्ण विचारो का प्रचार करके देश के सामने नाना तरह की जटिलता भरी समस्याये खडी करे तो यह देश-भक्ति या समाज-सेवा कैसे कही जा सकती है?

६-३-५८

३०

मैं कोशिश करता हूँ, चाहता हूँ कि सब लोगों को सुखी कर सकूं, सब का हित कर सकूं पर यह सब ईश्वर की कृपा के बिना हो नहीं सकता। इसलिए सम्पूर्ण रूप से ईश्वर की शरण में हूँ। उनसे ही प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरी कमियों को दूर करें और मुझे बहुत नम्र, सहिष्णु और कार्यकुशल बनायें।

३-५-१९६०

३१

मेरे जीवन का उपयोग दूसरों के लिए हो, सब के हित-साधन में हो, किसी प्रकार की हानि मेरे द्वारा न हो, यह इच्छा, यह प्रयत्न मैं करता हूँ पर जैसा सेवा-कार्य होना चाहिये, उसमें जितना वेग और प्रभाव होना चाहिये, वह न होने से असतोष या निराशा होती है, बुरा लगता है। यह दुःख, यह असतोष मन को सतप्त करता है।

१-५-१९६२

३२

जब मैं आज के समाज के बारे में सोचता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि आज का समाज स्वस्थ नहीं है। व्यक्ति की अस्वस्थता और समाज की अस्वस्थता में फर्क है। व्यक्ति को हम किसी बीमारी का शिकार होने पर अस्वस्थ कहेंगे, पर समाज के बारे में सोचेंगे तो उसकी अस्वस्थता दूसरी ही तरह की मिलेगी। जो समाज स्वस्थ विचारधारा को नहीं अपना सकता, वह कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकता। समाज की सस्कारिता यानी सस्कृति ही उसे स्वस्थ रख सकती है। जिस समाज की विचारधारा में सस्कारिता की कमी आ जाती है, जिसकी सस्कृति में विकार पैदा हो जाता है, वह समाज अस्वस्थ हो जाता है।

३३

गलती को स्वीकार करना ही बहादुरी है। सब लोग ऐसी बहादुरी दिखा नहीं सकते पर जो लोग दूसरे की गलती का लाभ उठा लेना चाहते हैं, वे जिसने गलती की है, उसका और अपना, किसी का भला नहीं करते। आज जो गलती मैंने की है, हो सकता है कल वही गलती आप भी करें। इसलिए यदि मेरी गलती अनैतिक न हो तो मुझे नीचा दिखलाने की कोशिश मत करिये। मुझे नीचा दिखला कर आप एक कार्यकर्त्ता खोयेंगे। हो सकता है कि आज आप मुझे नीचा दिखा कर खुश हो जायें और उसे अपनी जीत मान ले पर कल ऐसा मौका भी आ सकता है कि आपके साथ भी ऐसा ही गुजरे। इस प्रकार हम अपने साथियों को छोड़ते जायेंगे, उनकी शक्ति और ताकत घटाते जायेंगे और समाज सेवा की भावना को ऐसा धक्का देंगे कि नये लोगों को इस क्षेत्र में आने तक की इच्छा नहीं रहेगी।

३४

युवको को ज्यादा तेजी से कदम उठाने है क्योकि जहाँ पर कूडा ही कूडा पडा हो, वहाँ झाडू देकर सफाई नही की जा सकती है। वहाँ तो आग लगा कर कूडे-करकट को जला डालना पडता है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि वहाँ के युवको मे ज्यादा प्राण होने चाहिये। मै स्वभाव से उग्र नही हूँ। मुझे विनय और नम्रता प्यारी लगती है, पर मै यह महसूस करता हूँ कि यदि इस ओर सुधार करना है तो युवक सामाजिक क्राति की आग प्रज्ज्वलित करे और उस आग मे यह पुराने विचार, यह थोथी दलील, यह रूढिवाद, यह कूप-मडूकता, यह ढोग-पथ, यह झूठे धार्मिक आडम्बर---सारी चीजे झोक दी जाये।

३५

मेरा विश्वास है कि हमारे युवक अन्य देशो के युवको मे किसी बात मे कम नही हैं। उन्हे अपनी शक्ति का भान होना चाहिये। उन्हे पुराने लोगो पर निर्भर न करके, नये पथ, नयी पद्धति और नये कार्यक्रम बनाने चाहिये। युवक को अपना मार्ग अपने-आप खोजना है और बिना किसी की परवाह किये हिम्मत, उत्साह, उमग, आशा और विश्वास के बल पर परिश्रम और सच्चाई के द्वारा आगे बढना है। विजय उसकी है, आनेवाला समय उसका है। वह जितना शक्तिशाली है, जितना बहादुर है, जितना क्रियाशील है और सबसे बडी बात तो यह कि वह जितना चरित्रवान और परिश्रमी है, देश का भविष्य उतना ही उज्ज्वल है, क्योकि आज की पीढी शेष हो रही है। आने वाला समय उसका है। वह कल का मालिक है।

—— ० ——

२—विचार-विलोचन

१

ममाज मे जिमके पाम धन है, वह जो चाहे करे और उसकी निन्दा भी करने वाला कोई नही मिले, यह लक्षण जीवित ममाज का नही है।
१७-६-१६३०

२

मामाजिक क्राति मे तो इम वात की मव मे अधिक जरूरत है कि खूब ही आगे वढ कर काम किया जाय जिममे हलचल मच जाय। मारे लोग देखने लग जायें, मोचने लग जाये कि इमकी तो कल्पना भी नही की थी—लोगो के माथ कैसे निभाव होगा? ऐसा जब तक नही होता, तब तक ममाज मे पूरा सुधार होना कठिन है। मुधारक को विनयी होना चाहिये पर मिद्धात के प्रचार मे कमजोरी नही रखनी चाहिये। उमके प्रचार मे उग्र होना जरूरी है। मोडरेट से सुधार नही होता।
११-६-१६३१

३

जव तक अन्धविश्वास रहता है, मनुष्य स्वय विचार करने की शक्ति नही पा मकता।
११-६-१६३१

४

अधिकतर विचार परिस्थिति के अनुसार ही वन जाते है। वहुत ही थोडे विचार अपने आप बनते हैं। आदमी के मौलिक मिद्धान्त कम होते हैं, और दूसरो को देख कर वह अधिक वनता है। इन सव वातो से धर्म का वहुत कम सवध है।
३१-१२-१६३१

५

मच्चाई के माथ देश की सेवा करनेवालो को वडी कठिनताओ का सामना करना पडता है और यदि वे दुख को ही सुख न मान ले तो उनका जीवन वडा कष्टमय हो जाता है। ये दु ख पाते हैं, कष्ट उठाते है, अपनी सम्पत्ति हो तो वे

सीताराम सेकसरिया

मैं, भारत का राष्ट्रपति, राजेन्द्र प्रसाद, व्यक्तिगत गुणों के लिए आपके सम्मानार्थ, पद्म-भूषण प्रदान करता हूँ।

राजेन्द्र प्रसाद

राष्ट्रपति

नई दिल्ली

दिनाक २८ अप्रैल १९६२
८ बैशाख १८८४
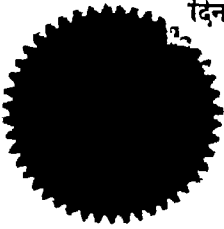
सारी-की-सारी देश को अर्पण कर देते हैं। निज मे पैसे-पैसे के भिखारी वन जाते है और फिर सफलता मिलना तो उनके हाथ की बात नही, वह देने वाला तो दूसरा ही है। असफलता पा जाने पर बदनाम होते है, मूर्ख कहलाते है, देश-सेवा का सच्चा मार्ग वडा ही कण्टकाकीर्ण होता है। किसी गुजराती कवि ने ठीक ही कहा है—"हरिनो मार्ग छै सरानो नही, कायरनो काम जान।" वास्तव मे यह सच है। जो देश-सेवा का, ईश्वर का मार्ग पकडता है, उसमे कायरता से काम नही चल सकता।

२३-१०-१९३५

६

आग मे कूदना जरूर चाहिये पर आग मे कूद कर हम क्या कर सकेंगे, यह भी देखना चाहिये।

२०-१०-१९३६

७

शाति का जीवन तो निर्जीव जीवन है। जीवन मे संघर्ष चाहिये। आज तो देश दरिद्रता, पराधीनता तथा रूढिवाद के अधकार मे गर्क हो रहा है। ऐसी हालत मे शाति कैसी?

९-१२-१९३६

८

यह जीव ईश्वर का खिलौना है। समय-असमय खिलौने टूट जाते है। इसका क्या उपाय है। स्वाभाविक थोडी चिंता होती है पर वास्तव मे यह एक खेल है और इसे प्रसन्न मन से खेलने मे ही मजा है।

२९-५-१९३७

९

जहाँ अभिमान आ जाता है, वही पतन हो जाता है।

२५-२-१९३८

१०

मनुष्य कमजोरियो का घर है। जव तक वह अपनी कमजोरियो को नही मिटाता, तब तक वह सच्चाई का जीवन नही जी सकता और देश की वास्तविक सेवा नही कर सकता।

४-६-१९३८

११

नियम पर सोना, नियमित समय पर उठना और समय पर प्रार्थना करना, व्यायाम करना और भोजन करना नियमित समय पर शौचादि हो जाना——ये पाँच नियम पालन कर सके तो मनुष्य अपने आगे के जीवन को उन्नत बना सकता है।
३-१२-१६४१

१२

अधिकार और सेवा मे दिन-रात जैसा फर्क है। सेवा करनेवाला सबसे छोटा है, सबका दास है। वह किसी से झगडा क्यो करे? अपनी शक्ति के अनुसार बने, उतनी सेवा करके सतोष माने। उसमे उद्विग्नता कैसी? उसमे उदासीनता क्यो? उसमे राग-द्वेष की भावना क्यो?
११-१२-१६४१

१३

मनुष्य को अपने प्रति कडा-से-कडा रुख लेना चाहिये। अपनी साधारण-सी कमजोरी को ज्यादा मान कर उसे मिटाने की कोशिश करनी चाहिये। दूसरो की तरफ उदार दृष्टि से देखना चाहिये। उनके गुणो का ही ध्यान रखना चाहिये।
३१-१२-१६४१

१४

मतभेद बुरी चीज नही है, मतभेद तो जागृति का लक्षण है।
१६-१-१६४२

१५

प्रत्येक व्यक्ति को गम्भीर और सहनशील होना चाहिये। हो सकता है कि सामने वाले की बात ठीक हो और हमारी समझ मे न आती हो। यह कैसे माना जा सकता है कि हम जो समझते है, वही ठीक है। जब तक वह न जचे, तब तक अपना आग्रह रखना ठीक है। पर सामने वाले के प्रति क्रोध या तिरस्कार का भाव तो असस्कारिता ही कहा जायेगा।
२१-३-१६४२

१६

व्यापारिक कामो मे और सार्वजनिक कामो मे फर्क रहना जरूरी है तथा वहाँ के कार्यकर्ताओ के विचारो, भावनाओ और कार्यो मे फर्क होना चाहिये।

१७

काम अपने आप चलता है, आदमी निमित्त होता है। मनुष्य व्यर्थ का अभिमान करता है कि अमुक काम मैं करता हूँ, मेरे बिना वह नही होता है। यह उसकी निरी मूर्खता है पर मनुष्य का अहम् उससे सब कराती ही है।
२८-८-१९४५

१८

आदमी क्या करता है? उसकी कोई ताकत या हस्ती नही। जो कुछ होने वाला है,,वही होता है। आदमी अपने मन के महल बनाया करता है, व्यर्थ का अभिमान किया करता है पर वास्तव मे वह एक कठपुतली है और उसको नचाने वाला कोई और है जिसके हाथ मे इस पुतली की डोर है। वह अपनी डोर के इशारे से पुतली को नचाता है। दर्शक समझता है, पुतली नाचती है। उसे पर्दे के पीछे की डोर दिखाई नही देती पर जो कुछ होता है, वह तो उस बाजीगर के हाथ मे है। मनुष्य व्यर्थ के सकल्पो-विकल्पो मे पडा रहता है पर इस स्थिति से ऊपर उठना प्रभु की कृपा बिना नही हो सकता।
२५-९-१९४५

१९

जिस देश की, जिस जाति की अपनी भाषा नही या जो अपनी भाषा को उन्नत नही करता, वह तो एक पाप करता है। अपनी भाषा की उन्नति, अपने साहित्य की उन्नति ही सच्ची उन्नति है। भारतेन्दुजी ने कहा—"निज भाषा उन्नति यह सब उन्नति का मूल। बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।"
१३-१०-१९४५

२०

सेवा करने मे लाभ हो सकता है पर अधिकार तो लोभ की ही चीज है। जहाँ कामना हुई वहाँ क्रोध का होना अनिवार्य है। क्रोध होने से लोभ होगा ही और उससे बुद्धि-भ्रम और बुद्धि-भ्रम के बाद नाश।
२७-१०-१९४५

२१

राजनीति मानव को ऊपर नही उठाती, यह तो अधिकार प्राप्त करने की, बडा बनने की चीज है।
२-१-१९४६

२२

प्रभु का प्यार तो अकिंचन को मिलता है, पर अकिंचन बन कर रहना सहज नहीं है।

२-१-१९४६

२३

आदमी को कभी भी निराश नहीं होना चाहिये, कभी भी सुस्त और कमजोर नहीं होना चाहिये। आशा मे ही जीवन है। बिना जीवन का जीना क्या जीना है। आदमी को तो जीवन मे ओतप्रोत होना चाहिये।

२०-६-१९४६

२४

धनी और गरीब के बीच गहरा सघर्ष चलने लगा है। गरीब धनी को अपनी बात मानने के लिये बाध्य करने लगा है लेकिन वह न्याय से नहीं, जोर से। और धनी भी न्याय से सुनता नहीं, दबता है, तब मानता है। इससे समाज को सच्चा सुख नहीं मिल सकेगा। यह सब हो रहा है, होना अनिवार्य भी है क्योंकि गरीब इतना नीचे चला गया है कि अब और नीचे जाने की जगह ही नहीं रही। इसलिए उसका ऊपर उठना रुक नहीं सकता। जो हो, अपने को शेष मे अपने बारे मे ही सोचना है और अपने आपको ठीक रखना है। यदि अपने आपको ठीक रखा जा सके तो समाज का, देश का सबका भला कर सकते हैं। अपने आप को ठीक न रख सके तो चाहे कुछ भी हो, कुछ नहीं कर सकते।

२९-७-४६

२५

आदमी बुरा काम करके शांति नहीं पा सकता, कुछ नहीं पा सकता। जिस काम को करके छिपाना पडे, सकोच करना पडे, वह नीचा काम है। और ऐसे काम, जो मनुष्य का पतन कराते हैं, अनैतिक है।

२५-११-१९४६

२६

जिस लडकी को माता-पिता पन्द्रह वर्ष तक पालते पोसते हैं, उसके ऊपर उनका कोई अधिकार नहीं रह जाता। लडकी की इच्छा या उसके मा-बाप की इच्छा का कोई मूल्य नहीं रह जाता। मूल्य होता है उसकी सास की, ससुर की और पति की इच्छा का। यह है समाज की व्यवस्था क्योंकि लडकी को उन लोगो के साथ रहना है। माता-पिता को भी लडकी को उनके यहा यानी ससुराल मे ही रखना है। इसलिए उनकी इच्छा का पालन करना जरूरी हो जाता है।

२६-१२-१९४६

२७

यह विश्वास करना चाहिये कि दूसरे भी ठीक सोचते है, ठीक करने की कोशिश करते हैं तथा अपने काम मे सच्चे है। उनमे विश्वास रखना चाहिये। विश्वास से ही विश्वास पैदा होता है तथा बढता है।
११-९-१९४७

२८

सत्ता एक अभिमान की चीज है और वह आदमी को भुलावे मे डाल देती है।
१-१०-१९४७

२९

राजनीति बडी निष्ठुर चीज है। इसमे आदमी आज मित्र बनता है, कल शत्रु बन जाता है। इसमे जो कुछ होता है, वह दाव-पेच से होता है। स्वार्थ से होता है, लगन से नही होता, प्रेम से नही होता, न्याय से भी नही होता।
११-१-१९४८

३०

कला एक ऐसी चीज है जो आदमी के अन्दर रसानुभूति का उद्वेग करती है। सच्चा कलाकार, सच्चा सौदर्य-उपासक किसी सत और साधक से कम नही होता। सत अपने सयम से, अपने व्रत से, अपने त्याग और तप से मानव-कल्याण की साधना करता है, कलाकार अपनी सौदर्य-उपासना से, अपनी कला की साधना से जन-कल्याण करता है। वह अपने कामो के ज्ञान को एक रूप देता है। और जो सत्य है वही शिव है, जो शिव है वही सुन्दर है और जो सुन्दर है वही कला है। कला की उपासना प्रभु की ही उपासना है। सच्चा कलाकार और सच्चा साधक एक ही है। दोनो के रास्ते अलग-अलग हैं, पर दोनो मानव के ही हितकारी हैं।
२५-१-१९४९

३१

कोई भी जाति, देश या व्यक्ति अपने गुणो के आधार पर बडा होता है, अपने दुर्गुणो से नष्ट होता है।
१३-६-१९४९

३२

दरअसल समाज मे बडा परिवर्तन न हो, तब तक सिर्फ कहने मे या उपदेशो से लडकियो का आदर नही हो सकता। समाज मे स्त्रियो की हालत बहुत दयनीय

है। उसका ऊपर उठना यों बातों से नहीं होता। उसके लिए क्रांतिकारी भावना की जरूरत है, बड़े परिवर्तन की जरूरत है।
६-१०-१९४९

३३

हमारे मानस में इतनी जड़ता, इतना प्रमाद और इतनी स्वार्थपरता आ गई है कि हम स्वस्थ विचार नहीं कर पाते। हम बातें तो चाहे कितनी भी बड़ी करें पर अपने से आगे तो देख नहीं पाते और न सोच ही सकते हैं। हमारा दर्शन बदलना होगा। हमारी सामाजिक--आर्थिक व्यवस्था बदलनी होगी। हमें नया दृष्टिकोण अपनाना होगा, नया जीवन ग्रहण करना होगा। तभी हम सच्चे अर्थ में स्वाधीनता का अनुभव कर सकते हैं। आज के दृष्टिकोण से, पुरानी विचार-धारा से अब काम नहीं चल सकता। हमें नये समाज की रचना करनी है, तो नया दर्शन चाहिए जिसमें प्राण को उत्फुल्ल करने के तत्व हों और जो जीवन की ज्योति दे सके।
१-१२-१९४९

३४

कामों में दोष तो कम-ज्यादा रहता ही है। इसलिए मनुष्य को जितना हो सके, उतना अनासक्त भाव रख कर, प्रभु की सेवा के भाव से जो बने, वह करते जाना चाहिये। होगा तो वही, जो मजूरे खुदा होता है।
२-३-१९५१

३५

जिस देश में ज्यादा लोग अनैतिकता का जीवन जीवें, वह देश कैसे बड़ा देश, उन्नत देश हो सकता है और रह सकता है?
२८-७-१९५१

३६

ऐसी बात, जो प्रेम की हो, कर्त्तव्य की हो, त्याग की हो, सच्चाई की हो, वह तो कम मिलती है, कम सुनाई पड़ती है। स्वार्थ की, वैर की, राग-द्वेष की, अधिकार प्राप्त करने की बात ही ज्यादा मिलती है। इससे सच्चा सुख या आनन्द नहीं मिलता।
१८-९-१९५१

३७

स्त्री बिचारी तो पुरुष के लिए त्याग करने को ही पैदा हुई है। स्त्री के चरित्र पर दोष लगा कर समाज ने जितना घातक काम किया है, उसकी मिसाल

नही। किसी भी स्त्री को कुल्टा कह कर उसे समाज की दृष्टि मे गिराया जा सकता है, उसे निरीह बनाया जा सकता है। पर जिनको हम हल्के तपके के लोग कहते है, उनकी स्त्रियां इस दोष के कारण या इस इल्जाम के कारण गिराई नही जा सकती। वे पुरुषो के बराबर कमाती है, अपनी रोजी-रोजगार आप चलाती हैं। इसलिए उन्हे कुल्टा कह कर नष्ट नही किया जा सकता।
१०-१-१९५२

३८

दूसरो को धोखा देने की अपेक्षा अपने को धोखा देना सहज है। यदि आदमी अपने को धोखा न दे तो वह दूसरो को तो दे ही कैसे सकता है? उसे सतत आत्म-निरीक्षण करना चाहिए, जागरूक रहना चाहिये। शैतान से बचना चाहिये।
२५-१-१९५२

३९

नये-नये प्रश्न सदा ही सामने आते रहे है, आते रहेगे पर सब बातो के लिए सनातन नियम जो न्याय का, सत्य का है, उसी मे सातत्य है। यदि उसके अनुसार सारी बातो को सोचा-समझा और किया जाय तो सारे प्रश्न अपने-आप सुलझ सकते है। समाज की भलाई की भावना, न्याय करने और बरतने की इच्छा, सत्य का अनुकरण यह सब ऐसी चीजे है, ऐसा राजमार्ग है कि इस पर चल कर आदमी भटकता नही, निश्चित रूप से अपने लक्ष्य की जगह पर पहुच जाता है। लक्ष्य तक न भी पहुँचे तो वह ऐसा रास्ता है जिस पर चलते हुए लक्ष्य की ओर बढना तो निश्चित ही है।
३०-१-१९५२

४०

मानव अभिमान करता है, सोचता है कि मैं अमुक काम करता हूँ—कर सकता हूँ। पर सोच कर देखा जाय तो वह किसी अज्ञात शक्ति के इशारे पर चलने वाला प्राणी ही है। उसको अभिमान न रहे तो वह खुश हो सकता है, शात हो सकता है। और, शायद इस दुनिया मे ज्यादा काम का हो सकता है।
१२-२-१९५२

४१

ऊँचे उठने के लिए तो ऊँचाई पर से ही सोचना, समझना और करना होगा।
२१-२-१९५२

४२

सकल्प की दृढता एक खास चीज है। जो सोचे, जो निश्चय करे, उसे खूब सोच-समझ कर करे। बाद मे यदि व्यक्ति बराबर सकल्पो को, निश्चयो को बदलता रहे, उनसे डरता रहे तो मन को ऐसा करने की एक प्रकार की आदत पड जाती है। और फिर मन वैसा ही बन जाता है।

१५-२-१९५२

४३

ससार त्रिगुणात्मक है, पर तापस की प्रधानता दु खदायी है, सत्य की प्रधानता उत्कर्पदायी है।

१०-६-१९५२

४४

दरअसल दान लेना और देना दोनो ही गलत है। देने वाले का अभिमान बढता है, मागने वाले को नीचा होना पडता है।

२८-७-१९५२

४५

दरअसल आज की समाज-रचना मे जो दोप है, उनको मिटाये बिना लोक सुखी हो ही नही सकता। इसमे व्यक्ति का क्या दोप-गुण है? दोप है पद्धति का। उसे ही ठीक करने की जरूरत है। कोई भी आदमी चाहे जैसा सोचे, वह चलता है, रहता है, उसी स्थिति मे जो वर्तमान है। इसलिए इस स्थिति मे रहने के लिए उसे ही दूर करना, बदलना होगा।

२८-२-१९५३

४६

आदमी सामाजिक प्राणी है। उसे जिस समाज मे रहना पडता है, जिस समाज का काम करना पडता है, उसके साथ समझौता करके चलना पडता है। वह समझौता सिद्धातो का नही होता, न होना चाहिये। वह होता है पद्धति का यानी जिस जगह पहुचना है, जो करना है, उसके लिए बीच की मजिल तय करने के रास्तो का।

२-३-१९५३

४७

किसी भी समाज की उन्नति का सच्चा साधन उसका नैतिक एव सास्कृतिक विकास ही हो सकता है, पर दुख है कि आज के समय मे व्यक्ति और समाज की

उन्नति का मुख्य आधार अर्थ माना जाने लगा है। अर्थ का अपना स्थान है। पर यदि भले लोग भी अर्थ से प्रभावित होने लगे तो फिर समाज विकास की ओर न जाकर पतन की ओर ही जाता है।
१५-६-१९५३

४८

आदमी यदि बुरा हो गया तो समाज या राज्य कैसे अच्छा हो सकता है? आज आदमी गलत बनता जा रहा है। सब से बडी बात है—आदमी को आदमी बनाना।
१६-७-१९५३

४९

आग मे तपे बिना सिर्फ मनोविकारो के वश होकर जो विद्रोह किया जाता है, वह सफल नही होता, सफल होता है तो भी वह समाज मे शिव की भावना पैदा नही करता।
१५-८-१९५३

५०

समय अपना काम करता रहता है। वह किसी की न तो प्रतीक्षा करता है, न परवाह। इसलिए समझदार आदमी समय की गति को पहचान कर उसके अनुकूल चलता है। जो लोग समय की गति को नही पहचानते, वे पुराने पद्धति से, पुराने विवादो और परम्पराओ से चिपके रहते है, जो मर चुकी होती है या मरणासन्न होती है।
१-११-१९५३

५१

काम करते समय चाहे जितनी आसक्ति रहे पर परिणाम मे आसक्ति न रहे तो ही शाति मिल सकती है। जो हो, ईश्वर जो करता है, वही होता है।
१६-१२-१९५३

५२

मुसलमान, हरिजन और स्त्रियाँ तीन अङ्ग समाज मे पिछडे हुए, सताए हुए है, अभाव का, अपमान का, कष्ट का जीवन जीने वाले आदमी हैं। इसलिए देश को उन्नत करना है तो इन तीनो की उपेक्षा न करके इनके प्रति आदर, प्यार और सहूलियत का वर्ताव करना चाहिए।
१५-३-१९५४

५३

आदमी ज्यादा-से-ज्यादा लेना चाहता है, देना कुछ नही चाहता। इसलिए अस्वस्थता भरे सघर्ष हो रहे हैं , मस्तिष्क विकृत हो रहे है, विचारधाराएँ गलत हो रही है, इसके परिणामस्वरूप समाज रोग का और नाना तरह की चिंताओ का घर बन गया है।

२७-३-१९५४

५४

शाति तो मन के अन्दर है। कर्म के अन्दर से ही शाति प्राप्त करनी होगी। बाहर शाति कहाँ मिलने वाली है? मानस वेदना से भरा पडा है। ईश्वर से प्रार्थना के सिवा कोई रास्ता नही, 'निर्बल के बल राम' इसी का नाम है।

२५-८-१९५४

५५

किसी का बुरा करना तो पाप है ही, बुरा सोचना भी पाप ही है। ईश्वर हमे ऐसा ही मन, विचार दे कि हमारे द्वारा किसी का बुरा, किसी का नुकसान हो ही नही, सब का भला करने, सब को सुखी बनाने, सब की उन्नति करने, सब की सेवा करने की भावना दे, यही प्रार्थना बराबर करनी है।

१६-२-१९५५

५६

मन सात्विक हो, श्रद्धावान हो, भला विचारे, भला ही काम करे, जो करे उसको ईश्वर को अर्पण करके करे, आसक्ति का त्याग करके समाज को ईश्वर का रूप मान कर निरभिमान भाव से मानवता की सेवा करे, यही सच्चा जीवन है। आलस्य त्याग कर निरतर जागरूक रह कर काम करते रहना ही जीवन का, सात्विक जीवन का लक्षण है।

२२-२-१९५५

५७

जो लोग इधर-उधर की बाहरी पुस्तके पढ कर अपने आप को, विद्वान, विचारक, क्रातिकारी, प्रगतिशील मानने लग जाते है, उनके जीवन मे त्याग की कीमत नही, चरित्र की कीमत नही। सिफ विचारो की, बातो की ही वहाँ कीमत होती है।

२७-२-१९५५

५८

अर्थ का दास मानवता का पुजारी नही बन सकता।
१९-४-१९५५

५९

उचित ढग से न्यायपूर्वक स्वार्थ-रहित बुद्धि से सोच कर जो ठीक लगे सच्चाई के साथ उसका आचरण करना ही धर्म है।
२०-६-१९५५

६०

साधारणत आदमी मृत्यु का भय करता रहता है। स्वजन की मृत्यु का भय, खुद की मृत्यु का अति भय, यह मनुष्य का स्वभाव-सा मालूम होता है। मनुष्य इस अवस्था से ऊपर उठ सके और ईश्वर पर विश्वास करे कि जो होता है या जो होगा, वह अच्छा ही होगा, और निर्भय रहे तो ही जीवन मे आनन्द मिल सकता है। भय का जीवन भी कोई जीवन है? अभयता तो प्राप्त करनी ही चाहिये।
१७-७-१९५५

६१

किसी से प्रेम की या किसी भी प्रकार की आशा और इच्छा किये विना काम करते जाना चाहिए। समाज मे भलाई, सहृदयता, परिश्रमशीलता, ईमानदारी पैदा हो, इसकी कोशिश करते-करते वह हो तो भी सतोष, न हो तो भी सतोष मानना चाहिये।
१३-८-१९५५

६२

रुपयो से सामग्री तो जुटाई जा सकती है, भवनो का निर्माण भी हो सकता है पर आदमी का तो निर्माण नही हो सकता। वह तो शिक्षा, सस्कार, सत्सग, परिश्रम, त्याग, सच्चाई के द्वारा ही बनता है। यदि आदमी हमारे पास है तो वह सारे साधन जुटा सकेगा। सौ साधन होने पर भी आदमी नही हो तो वे साधन व्यर्थ हो जाते है।
२८-१-१९५६

६३

काम सब से बडी चीज है। हर हालत मे काम करते रहना है। यदि अनुकूलता न हो तो भी काम तो करते ही रहना है। काम करते-करते अनुकूलता

हो जायेगी, न हो तो भी परवाह नही। सब काम, चाहे वह मन के अनुकूल हो या प्रतिकूल कैसा भी हो, ईश्वर की सेवा समझ कर करना चाहिए। इस भावना को साधना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। इसके बाद अनुकूलता-प्रतिकूलता कुछ नही रह जाती। सेवक बन जाने के बाद सभी अनुकूल है।
१-३-१९५६

६४

आगे आने वाले दिन महत्वपूर्ण हैं। जिस आदमी के अन्दर ईमानदारी, सच्चाई, योग्यता और ठीक सोचने-करने की शक्ति है और किसी भी तरह के स्वार्थ के साथ जिसके मानस का सम्बन्ध नही है, वही आदमी देश को सही रास्ता बता सकता है। उस रास्ते पर देश को चला सकता है।
१६-४-१९५६

६५

नैतिकता, आचार, सद्भावना, कष्ट सहन, परिश्रमशीलता, दूसरो के लिए त्याग करने की इच्छा आदि सद्गुणो के बिना न तो व्यक्ति विकसित और कर्तृत्वशील हो सकता है, न समाज ही। इसलिए जरूरत तो इस बात की ही रहेगी या है कि मनुष्य स्वभाव से, कामो से, विचारो से उदार, सहनशील, सहानुभूतिपूर्ण बने। यदि ऐसा न हो तो विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।
४-६-१९५६

६६

कष्टो और सघर्षो का जीवन ही सच्चा जीवन है। वे सघर्ष, जो सबके सुख के लिए, सबके विकास के लिए, सबके हित की दृष्टि से किये जाते हैं या करने पडते हैं, वे विकास-क्रम के सघर्ष है। इन सघर्षो के अन्दर से गुजर कर ही आज जो विकास है, वह हुआ है। यदि सघर्ष से डरा जाय तो जीवन स्थिर हो जायेगा। स्थिर जीवन जीवन नही है। जीवन तो सरिता के जल की तरह चलने वाला ही जीवन है। स्थिर तो पोखरे का पानी रहता है। जो बदला न जाय तो सडने लगता है। ऐसी ही बात जीवन के बारे मे भी कही जा सकती है।
२८-८-१९५६

६७

धनी के पास जो ताकत है, जो शक्ति है, जो कुछ वह कर सकता है या करता है, उसमे उसका धन ही काम करता है, उसका चरित्र, ज्ञान या और दूसरे गुण-अवगुण गौण रहते हैं।
१३-१०-१९५६

६८

मेरी निगाह में मानव जाति को उन्नत करने के लिए, विकसित करने के लिए, सस्कारी और सत्यवान बनाने के लिए माता को यानी स्त्री समाज को उन्नत करना, सस्कारी बनाना, विकसित करना अधिक जरूरी और अधिक शुभ कार्य है। इस विचारधारा के अनुसार मै स्त्री-शिक्षा का काम कर रहा हूँ।
७-११-१९५६

६९

जीवन एक तमाशा है, एक स्वप्न है, पानी का बुदबुदा है, हवा का गुब्बारा है। इसलिए इसके द्वारा जो भी भला कर सको, वह करते रहना है। ईश्वर का भरोसा करना है। उसकी शरण मे जा कर सब काम उसी को समर्पण करना है। यह भी मानना है कि जो कुछ होता है, वह ईश्वर की ही कृति है। सारा अभिमान, सारा अहम् खत्म करके अणु से भी सूक्ष्म मान कर यानी कुछ भी न मान कर चलना है।
१८-१२-१९५६

७०

व्यर्थ की चिंता या कल्पना के झंझट मे पड कर शक्ति का, बुद्धि का और शरीर का क्षय करके लाभ तो होता नही, हानि ही अधिक होती है। इसलिए यह कोशिश करनी चाहिए कि जो हो सके वह शातिपूर्वक करते रहना है। क्षुब्ध और अशात जीवन किसी काम का नही। निराशा का तो नाम भी नही लेना चाहिए।
१३-९-१९५७

७१

यदि चलने की ताकत रही है या है तो भटक कर भी अत मे उचित पथ पर आ जायेंगे।
१९-७-१९५७

७२

आज देश मे चारो ओर असतोष है, अशाति है, स्वार्थ है, अधिकारो की भूख भयानक रूप से जगी है। दलबन्दी, एक दूसरे को गिरा कर आगे बढने की इच्छा, राग-द्वेष, निन्दा, परस्पर का व्यर्थ और अनुचित सघर्ष आदि है। इससे देश कैसे आगे बढ सकता है? राष्ट्र-निर्माण के लिए सहयोग की, सद्भावना की, कठिन परिश्रम की, ईमानदारी और सचाई की आवश्यकता है। यदि ऐसा न हो सका तो देश उन्नत नही होगा।
७-८-१९५७

७३

हमारे देश मे साम्प्रदायिकता, प्रांतीयता, जातिवाद आदि अनेक तरह की बीमारिया हैं, जो समाज को खोखला किये जा रही है। राजनीति ने यह सब भ्रात धारणाये और भी बढा दी है। आज लोग राजनीतिक तौर-तरीको से सोचने और काम करने लगे है।

४-२-१९५८

७४

नाम की, सुख की, धन की, यश की, किसी की भी चाह है तो दुख है ही। अनुकूल वेदना ही सुख है, प्रतिकूल वेदना ही दुख है। पर दुख-सुख से परे होना जीवन का साध्य होना चाहिये।

२३-३-१९५८

७५

काम मनुष्य को साधारण बातो की ओर से उदासीन बनाता है। काम ही महत्वपूर्ण चीज है, वही करते रहना चाहिये। हाथो से काम करना, मन मे ईश्वर को याद रखना, उसके बताये रास्ते पर चलना, यही सही जीवन की कसौटी या सफलता, जो कहो, है। नही तो सब बेकार ही है। काम करना ही ईश्वर की पूजा है, अर्चना है, गान है, स्तुति है।

२६-३-१९५८

७६

यह दुनिया सुन्दर भी है और कुरूप भी। यदि इसे सुन्दर ही रखना है या बनाना है तो आदमी सौंदर्यपूर्ण यानी सत्य काम ही करे। सत्य ही सुन्दर है, सुन्दर ही सत्य है। सच्चा सौन्दर्य ही ईश्वर का रूप है, ईश्वर की उपासना है। असत्य के द्वारा, असुन्दर के द्वारा ईश्वर का दर्शन नही हो सकता। यह जगत का रूप ही ईश्वर का व्यक्त स्वरूप है। ईश्वर की पूजा व्यक्त-अव्यक्त दोनो की पूजा होती है। इस व्यक्त स्वरूप मे विकार न आने पावे। इसमे असत्य का, असुन्दर का प्रवेश हो तो वह ईश्वर का रूप नही रह पाता।

२९-४-१९५८

७७

आदमी ठीक से, नियम से काम करे, सच्चाई, ईमानदारी, मेहनत और योग्यता से सक्रिय होकर बाकायदा अपने जिम्मे का काम करे तब ही समाज बनता है और व्यक्ति भी तभी बनता है। पर लाचारी ऐसी बन जाती है कि सारा

समाज या समाज का एक बडा भाग ही जब गलत तरीकों पर चलने लगे, मंत्री या राज्य-सचालक तथा दूसरे वे प्रभावशाली आदमी, जिनकी समाज मे ताकत है सभी लोग गलत तरीको पर चलने लगें तो फिर व्यक्ति का सवाल नही रहता और जो आदमी काम करना चाहता है, जीना चाहता है उसे जीने के लिए जो करना है, वह करना ही पडता है। ऐसी स्थिति मे जडमूल से क्रांति हो, तब काम चले। पर वह हो कैसे ?

९-६-१९५८

७८

वही क्रांति सच्चे अर्थ मे, सच्चे रूप मे सफल क्रांति कही और मानी जानी चाहिये जिससे देश के दु खी और अभावग्रस्त, पद-दलित अगों को ऊपर उठा कर देश की स्थिति को हर तरह से उन्नत करने का साधन हर आदमी सुगमता से प्राप्त कर सके। जो हो, नाना तरह की समस्याए सामने है। उनके लिए जीवन भर वह करते रहना है।

१२-७-१९५८

७९

जगत ही जगदीश्वर का रूप है। उसकी पूजा यही हो सकती है कि उसको सुन्दर बनाया जाये। इसमे जितनी कुरूपता है, वह शैतान का रूप है। जितनी सुन्दरता है, वह ईश्वर का रूप है। इसलिए शैतान को हटा कर यानी कुरूपता को हटा कर सौदर्य की सृष्टि करना ही ईश्वर की पूजा है। विचारो की, आचार की, कर्म की, सारी कुरूपता, सारा अन्धकार, सारा विकार, सारा अज्ञान, सारी अस्वस्थता, सारी दरिद्रता दूर हो। उसके स्थान पर विचारो की, कर्मों की पवित्रता, सच्चाई, ज्ञान, स्वस्थता और प्रकाश चारों ओर फैले, यही इष्ट होना चाहिए। इस दिशा मे काम करना ही ईश्वर की पूजा है।

१७-७-१९५८

८०

कहने को आदमी सब कुछ करने की शक्ति रखता है पर शेष वह किसी अज्ञात शक्ति के वश मे है, वह उससे जो कराती है, वही वह कर सकता है। मनुष्य के पास अभिमान करने के लिए कुछ भी नही पर अज्ञानवश वह अभिमान करता है। यही उसके पतन का कारण हो जाता है। आदमी जागरूक रह कर निरभिमानी बन कर सच्चाई के साथ जीवन की विशेषताओ को जानने का प्रयत्न करता रहे तो वह बहुत ही उपयोगी हो सकता है।

१५-५-१९५९

८१

स्वाधीनता एक वडी चीज है। वह खुद इतनी वडी है कि उसकी तुलना किसी अन्य से नही की जा सकती।
१०-१२-१९५९

८२

मनुष्य मन का स्वामी वन सके, तो वह वहुत वडा काम कर सकता है। मन को जिन विचारो मे रखने का प्रयत्न किया जाय, आहिस्ते-आहिस्ते वह उन विचारो को मानने लगता है। इसलिए आवश्यकता है उत्साह, उमग, आशा और विश्वास के साथ जीने की, काम करने की। मृत्यु और जीवन निराशा और आशा, विश्वास और अविश्वास का ही खेल है। निराश मनुष्य का जीवन क्या और आशावान की मृत्यु क्या ?
१३-१-१९६०

८३

जो मनुष्य नाना तरह से छल-कपट, झूठ-सच, गलत-सही तरीके जो, उसके अनुकूल पडे, उनको अपना कर अपना काम करता है, उसके पास कोई नैतिक मूल्य नही है।
१७-१-१९६०

८४

जव आदमी किसी प्रकार की सफलता किसी भी तरह से प्राप्त कर लेता है तो उसकी कमियो को लोग नही देखते और उसकी सफलताओ से प्रभावित होकर उसके साथ हो जाते है। जव वही आदमी किसी कारण से विफल हो जाता है तो उसमे जितनी कमियाँ थी वे वहुत वडे रूप मे दीखने लगती हैं और उसकी विशेषताएँ भुला दी जाती हैं या वे लुप्त हो गई-सी लगने लगती है।
२४-१-१९६०

८५

नाना तरह की समस्याएँ हैं, व्यक्ति, समाज और देश के सामने। यही जीवन है। वह जीवन कैसा जिसमे समस्याएँ न हो। समस्याओ को वहादुरी, परिश्रम, योग्यता और ईमानदारीपूर्वक सुलझाना जीवन की सफलता और सार्थकता है। घवराना, डर जाना, फिर पलायन करना, यह कायरता और एक तरह की मृत्यु है। जीवन और मृत्यु क्षण-क्षण मे होते रहते है। उत्साह, सत्यप्रियता जीवन है, कायरता, भय, असत्य यह सव मृत्यु है। जव मनुष्य असत्य से सत्य की ओर जाता है, अधकार से प्रकाश की ओर जाता है तो अमृत पाता है। यानी जीवन

पाता है। इससे उल्टा जाता है तो मृत्यु की ओर जाता है। यह जीवन और मृत्यु का व्यापार अनन्त काल से चल रहा है, चलता ही रहेगा। जिसको जो प्यारा है, जो प्राप्त करना है, उसे वही प्रयत्न करना चाहिये।
२-६-१९६०

८६

अच्छी बातो के लिए यदि कष्ट सहा जाय तो उसका परिणाम मगलमय होता है।
३०-११-१९६०

८७

आज की पढी-लिखी लडकियाँ जिस असतोष का जीवन जीती हैं, वह सामाजिक समस्या बनता जा रहा है। जो साहित्य वे पढती है, जिस तरह का शिक्षण लेती हैं, जिस वातावरण मे रहती है, उसमे समर्पण के सस्कार लिकुल नही है। भारतीय पुरुष आज भी स्त्री के प्रति उदार नही बन सका है। पूर्व और पश्चिम के सस्कारो, विचारो और तौर-तरीको का यह सघर्ष है। इसलिए आज की स्थिति मे इससे तकलीफ है। वह बर्दाश्त करनी पडेगी। इसी सघर्ष के भीतर से अपने आप कोई-न-कोई रास्ता निकल आयेगा जो परस्पर के सहयोग सहानुभूति और कम-से-कम समझौते द्वारा सुख से जीने का तरीका तो होगा ही।
१९-९-१९६१

८८

किसी समय जो आवश्यक था, उपयोगी था, वह सदा वैसा ही रहे, यह विवेक नही। परिस्थिति बदलती है तो विचार बदलते हैं, कार्य बदलता है। यदि यह न हो तो जीवन विकृत हो जाता है। वह अपनी गति खो देता है। पुराने का त्याग और नये का ग्रहण ही जीवन की गति है। जो इससे बचना चाहता है, वह मृत्यु चाहता है, चाहे वह अज्ञानवश ही क्यो न हो? इसलिए आज इस अणु युग मे हम यदि उन हजारो वर्ष पहले की परम्पराओ को न छोड सके तो युग हमारा इन्तजार नही करेगा। वह हमे कुचल कर आगे बढ जायेगा।

८९

जैसे जीवन हमारे शरीर के एक-एक अणु मे व्याप्त है, एक-एक रोम मे जाग्रत है, वैसे ही हमारे आचरण का सत्य भी हमारे हरएक काम मे व्याप्त है, होना चाहिये। जैसे जीवन के कोई टुकडे नही किये जा सकते, वैसे ही आचरण के भी विभाग नही किये जा सकते। वह भी हमारी हर हरकत से, हमारे हर काम से सबध रखता है, तब यह कहना अपने-आपको तथा समाज को धोखा देना है कि अमुक जगह मैने अमुक काम इसलिए किया था कि इसमे समाज का भला होनेवाला है। ऐसी भ्रात धारणाये ही समाज की अस्वस्थता की द्योतक है।

कलाकार की एक दृष्टि ऐसी ही चिरकाल से है, जिसमे कलाकार की आत्मा का निवेदन ही नही, उसके पाठको की प्रशसा-श्रद्धा भी उस यज्ञाग्नि में घृताहुति का कार्य निरन्तर करती रहती है। यही कारण है कि कलाकार का वास्तविक परिचय उसकी ऐसी कृतियो के द्वारा होता है जो देखने मे रत्नाचल की तरह हैं, लेकिन जिनका महत् उद्देश्य तो दान की महत् कामना है। कलाकार का प्रत्यक्ष दर्शन या उसके ससर्ग मे आने का सौभाग्य बहुत कम लोगो को मिल पाता है पर उसकी कृतियाँ तो चाहने वालो को इस तरह प्राप्त हो सकती है, मानो नीर्थयात्री की अपरचित तीर्थों की पगडडी अपने आप बढाते ले चले। यही कारण है कि सच्चे कलाकार की कृतियाँ प्रभाव पैदा किये बिना नही रहती।

६१

जिस देश मे, जिस समाज मे भले लोग, बुद्धिमान लोग, जिम्मेदार लोग, मेहनती लोग और ईमानदार लोग ज्यादा होगे, वही देश और समाज उन्नति कर मकेगा। यदि समाज मे बुरे, गैर-जिम्मेदार और बेईमान लोग बढते रहेगे तो उस देश का पतन अवश्यम्भावी है। आज यदि तनिक गम्भीरता से सोच कर देखें तो पता चलेगा कि हम राजनीतिक स्वार्थों के नाम पर दलबन्दी करके देश मे अस्वस्थ विचारधाराओ को ही प्रोत्साहन दे रहे हैं, जिसका परिणाम किसी के लिए भी शुभ नही हो सकता।

६२

क्राति का आह्वान करने के लिये जो भी प्रयत्न होता है, वह उन सब लोगो को अखरता है, बुरा लगता है, जो साम्प्रदायिकता के आधार पर ही जीते हैं या मम्मान पाते है।

६३

जिम युवक मे जोण न हो, उमग न हो, आशा न हो, बडे-बडे स्वप्न लेने की इच्छा न हो, कल्पना न हो तो वह युवक कैसा? उसमे वेग होना चाहिये पर वेग के माथ स्रोत भी होना चाहिये। विना स्रोत का बहता पानी जल्दी ममाप्त हो जाता है। फिर कोई जाकर उस सूखे स्थान को देखता भी नही।

६४

कला निर्घूम यज्ञाग्नि की तरह उस सम्पूर्ण समर्पण को ग्रहण कर लेती है, जो यज्ञकाल मे सहधर्मियो के हाथो होम दिया जाता है। और, कलाकार की कला या कृति का यज्ञकाल तो उतने दीर्घ समय तक चलता रहता है, जब तक कि वह कला या कृति जन-मन रजक के रूप मे जीवित रहती है।

चतुर्थ खण्ड

पत्राचार

जीवनी-साहित्य मे व्यक्तिगत पत्रो का बड़ा महत्व होता है। पत्रो के माध्यम से व्यक्ति के विचारों और भावनाओ का जैसा पारदर्शी परिचय मिलता है, वैसा दूसरी किसी विधा के द्वारा नहीं। यही कारण है कि विश्व के महान् नेताओ, शासको, समाजसेवियो, कवियो, लेखको और वैज्ञानिकों की जीवनियो मे उनके पत्रो को विशेष महत्व दिया गया है। ये पत्र जीवन के उन अतरग क्षणो को प्रकट करते हैं, जो अन्यथा अप्रकट रह जाते हैं। इनमे जो पारदर्शी सचाई होती है, वह हृदय को स्पर्श करती है और व्यक्तित्व की वास्तविकता का बोध कराती है। अधिकाशत व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार प्रकाशन की दृष्टि मे नहीं होता और इसलिये व्यक्ति के मन मे प्रकाशन की कामना या डर नहीं रहता। उसका सबध दो व्यक्तियो के बीच ही सीमित रहता है—जो पत्र लिखता है और जिसको लिखा जाता है। इसमे कृत्रिमता नहीं आती। जिसको जिस प्रसग मे पत्र लिखा जाता है, उसका वास्तविक चित्रण उसमे मिलता है। इसलिये जीवनीकार के लिये पत्रो का जितना महत्व होता है, उतना जिस व्यक्ति की जीवनी लिखी जाती है, उसके द्वारा जीवनी के लिये ही लिखे हुए या बताए हुए का महत्व नहीं होता। सचमुच पत्रो मे व्यक्ति जितना प्रकट होता है, उतना अन्यत्र नहीं।

विश्व की जो जीवनी-पुस्तकें प्रसिद्ध हुई हैं, उनमे व्यक्तिगत पत्रो की सामग्री विशेष तौर से दी गई है। हाल ही मे हमारे युग के महान् विचारक बर्ट्रेन्ड रसल की जो आत्मकथा प्रकाशित हुई है, उसमे उनको और उनके द्वारा लिखे हुए पत्रो का भाग ही ज्यादा बडा है। यदि इन पत्रो को नहीं पढा जाये तो रसल ने अपने सस्मरणो के रूप मे जो कुछ लिखा है, वह अधूरा ही लगेगा, उनके व्यक्तित्व की सम्पूर्णता को प्रकट करनेवाली आत्मिक सचाई नहीं मिल पायेगी। किसी इतिहासकार ने ठीक ही कहा है—किसी भी महान् व्यक्ति की महानता का सच्चा विश्लेषण उसके व्यक्तिगत पत्रो के आधार पर जितना किया जा सकता है, उतना दूसरी तरह से नहीं।

साहित्य का विद्यार्थी कितने ही कवियो और लेखको की रचना-प्रक्रिया को सही-सही रूप मे समझने के लिये उनके व्यक्तिगत पत्रो से जो सहायता पाता है, उसका बडा महत्व होता है। अग्रेजी साहित्य मे शेक्सपियर, मिल्टन, कीट्स, शैली, लॉरेंस और बर्नड शा आदि प्रसिद्ध लेखको की कितनी ही रचनाओ की पृष्ठभूमि और चिन्तन-प्रक्रिया उनके पत्रो के बिना पूर्णतया समझ मे नहीं आती। सच तो यह है कि मनुष्य का चरित्र और चितन जितनी सचाई के साथ उसके व्यक्तिगत पत्रो (व्यक्तिगत सबधो) मे प्रकट होता है, उतना दूसरी तरह नहीं।

हमारे देश मे व्यक्तिगत पत्रो का सग्रह करने-रखने और उनको प्रकाशित करने की परम्परा का अभी तक भी बहुत विकास नहीं हो पाया है। हमारे पुराने साहित्यकारो के पत्र तो शायद है ही नही। उनकी खोज भी नहीं की गई है। तब भी जब कभी किसी कवि या लेखक के पत्र मिल जाते है तो उनसे उसके अतरग को जानने और समझने की विशियट सामग्री मिलती है, और पाठक को उसके अतरग-ससार मे विचरण करने का विशेष आनन्द भी। महात्मा गाधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और जवाहरलाल नेहरू के जो पत्र छपे हैं, वे बडे से बडे जीवनीकारो के द्वारा अथवा उनके खुद के द्वारा लिखी हुई जीवनियो से अधिक हृदय को छूने वाले और मस्तिष्क को झकझोरने वाले है।

श्री सीतारामजी के व्यक्तिगत पत्रो के विषय मे भी यही बात है। पिछले पचास वर्षो मे उन्होने हजारो ही पत्र लिखे होगे—विभिन्न व्यक्तियो को, विभिन्न प्रसगो मे। व्यक्तिगत पत्रो को सम्हाल कर सुरक्षित रखने की वृत्ति और व्यवस्था बहुत कम लोगो मे होती है। स्वय सीतारामजी इस मामले मे बिलकुल ही व्यवस्थित नहीं रहे। यही कारण है कि उनके पास आये कितने लोगो के कितने पत्र आज नहीं हैं। सयोगवशात् जो बहुत थोडे से पत्र रह गये—श्री सत्यनारायण सुरेका ने उनके पास रहते हुए जो इधर-उधर पडे हुए ढूढ लिये—उन्हीं मे से छॉट कर कतिपय पत्र यहाँ दिये गये है। जिनको उन्होने पत्र लिखे, उनमे से भी बहुत थोडे लोगो ने इसी वृत्ति

से हो, या किसी अन्य कारण से हो, बहुत ही कम रखे होंगे। और, जिन्होंने जो रखे, उनमे से कुछ ही लोगो ने हमे भेजे हैं। जो हो, सीतारामजी के द्वारा और सीतारामजी को लिखित जो कुछ पत्र हम यहाँ दे पा रहे हैं, वे उनके व्यक्तित्व के अध्ययन मे तो महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे ही, परन्तु उनसे पाठको को प्रेरणा भी मिलेगी। इन पत्रों मे दोनों ओर से ही संबधो की गहरी आत्मीयता है, हार्दिकता है, देश और समाज के विभिन्न विषयो पर मानवीय दृष्टि की तलस्पर्शी गहराई है।

श्री सीतारामजी, पडित बनारसीदास जी चतुर्वेदी के शब्दो मे, 'पत्र-लेखको मे शिरोमणी' हैं।

—सम्पादक

—o—

१—श्री सीतारामजी को लिखे गये पत्र

भाई सीतारामजी,

भाई किशोरीलाल के खत से मालुम होता है के आप की हड्डी टूट गई है. जान कर कुछ चिंता हुई है. बतलाईये क्या हुआ था और अब प्रकृति कैसी है? हड्डी जुड़ जाएगी या नहीं?

बापु के आशिर्वाद

सेगांव, वर्धा
८.२.३८.

महात्मा गांधी का एक पत्र

महात्मा गाधी का दूसरा पत्र

काकासाहब श्री कालेलकर के पत्र

(१)

७-७-४१

प्रिय सीतारामजी,

मैंने चि० विजया को एक पत्र लिखा है। उसका जवाव आ ही जायेगा। आज इस पत्र के साथ चि० सरोजिनी तथा चि० सीता के खत आपके नाम भेज रहा हूँ। इनकी हिन्दी मे असमिया ही ज्यादा है, लेकिन आस्ते-आस्ते सुधर जायगी। इन दो लडकियों का सब से पहले लिखा हुआ हिन्दी-पत्र आपके ही नाम है। प्रथम प्रयास के तौर पर ही आप उसे पढेगें।

जब कभी आपका स्मरण करता हूँ, तब बालीगज के ढाकुरिया सरोवर का साथ ही स्मरण होता है। झूलता पुल लाघ कर मस्जिद के पास हम बैठे थे और अनेक विषयो की बाते करते थे, यही याद आता है। तब आप अपनी वासरी मे से, जो अपने पुरखाओ के स्वभाव-चित्र पढ कर सुनाते थे, उसकी भी याद आती है।

राष्ट्रीय दृष्टि और साहित्यिक दृष्टि मेरे अभिप्राय के अनुसार द्वयम् चीज है। जीवन-दृष्टि, मानवता की दृष्टि ही सर्वश्रेष्ठ है। इस दृष्टि की सुगन्ध से ही राष्ट्रीय दृष्टि पुनीत होती है और साहित्यिक दृष्टि उद्दीपित हो उठती है। आपके पास यह मानव-दृष्टि है, और साहित्यिक कृत्रिमता नही है। इसीलिए मुझे आपके लेखन मे विशेष रस मिलता है।

उस दिन हम सरोवर मे नौका विहार करने गये। श्री रूपलाल बाबू नौका चलाते थे। उनके चेहरे पर एक किस्म की सात्विकता है, जो मुझे अच्छी लगती है। उनका मेरा विशेप परिचय नही है लेकिन वडे सौम्य और ग्रहणशील सज्जन मालूम होते है।

सरोवर के अन्दर जो टापू जैसा है, उसके अन्दर कबूतरो का एक घर है। दो घर होगे। वहाँ कबूतर कैसे रहते होगे? रात को कैसी सुरक्षितता* का अनुभव करते होगे, इसका मै विचार कर रहा था। इतने मे चि० विजया ने आपको दूर से सरोवर के किनारे टहलते देखा। श्री रामकुमारजी शायद आपके साथ थे। आपको देखते ही चि० विजया कैसी प्रसन्न और उत्तेजित हो उठी? वह दृष्य देखने ही लायक था। विजया के ऐसे उत्कृष्ट और मुग्ध प्रेम के आप अधिकारी हैं, यह यथायोग्य है। मैंने तुरन्त रूपलाल बाबू को कहा कि बोट किनारे के पास ले चलिये, विजया को अपने पिता के साथ थोडा बोलने दीजिये।
आपको क्या पता था? आप तो आगे ही जा रहे थे। किन्तु आप जमीन पर चल रहे थे, हम पानी मे फूल के जैसी हलकी नाव मे तीर के वेग से जा

रहे थे। हमने आपको जल्दी ही पकड लिया। आप से वातचीत करके विजया धन्य हुयी और उसकी धन्यता देख कर मै भी कुछ कम धन्य नही हुआ। मै शरीर से तो वूढा वन गया हूँ लेकिन मेरी चित्त-वृत्ति तो अभी भी वालक की ही है। इसीलिए मै वच्चो के साथ एकजीव हो सकता हूँ और इसी कारण वालक जिन वातो का अनुभव करते हैं लेकिन व्यक्त नही कर सकते है, उन्हे व्यक्त कर सकता हूँ।

चि० दिलीप के साथ मेरी दोस्ती है, वह भी इसी कारण है। मेरे जैसा वूढा समान मित्र उसे कहाँ मिलने वाला था?

यहां आकर मैंने तीन दिन का उपवास किया। चार दिन सिर्फ मौसम्वी के रस पर रहा। रोज ३६ औंस रस लेता था। अव मामूली आहार पर आ रहा हूँ। अव डा० सुशीला मेरा ही लोहू निकाल कर उसीका इजेक्शन मुझे देने वाली है। कहते हैं, उससे यह वीमारी मिट जाती है।

सौ० भगवान देवी रात को एक वज़े उठ कर मेरे लिए दही जमाती थी, यह मै कभी भी नही भूलूगा।

श्री भागीरथजी, श्री वसन्तलालजी, श्री भवरमलजी आदि को मेरा वन्दे मातरम् आप कहेगे ही। लेकिन अतिथिशील सरोवर को भी मेरा प्रणाम कहियेगा।

स्नेहाधीन काका का सप्रेम वन्देमातरम्

* कवूतरो की सुरक्षितता

चि० विजया को कहिये कि जहाँ कवूतरो के घोसले होते हैं, वहाँ साप जा कर उनके अण्डे खा डालते हैं। टापू मे साप जा नही सकते हैं, दुष्ट विल्ली भी नही जा सकती। इसलिए कवूतर वडे ही सुरक्षित होते है।

—काका

(२)

१४-८-५६

प्रिय सीतारामजी,

आपका ११-८ का पत्र मिला। मैंने जो पत्र आपके नाम *'नया समाज'* के पते पर भेजा था, उसका जवाव अभी तक मुझे मिला नही है। मैंने मान लिया कि मेरा पत्र कही गुम हो गया होगा। और फिर से लिखने का उत्साह न रहा। आपकी फाइल की कापी आपसे मागना मुझे उचित नही लगता। प० हजारी प्रसादजी की लेखमाला किसी दिन पुस्तक के रूप मे प्रकट होगी, तव आप भेजिये। तव पढूगा। और न पढ सका तो भी क्या? अव पहले के जैसा उत्साह नही रहा है। निवृत्ति की शाति और निवृत्ति का आनन्द काफी मात्रा मे मिल रहा हैं।

एक जमाना था, जब मुझे लगता था कि चन्द बाते मैं ही अच्छी तरह से कर सकता हूँ। तब तो खूब आग्रह के साथ कार्य करता था। अब देखता हूँ कि हर तरह के काम करने के लिए अनेक लोग तैयार हो गये हैं। लेकिन कामो का महत्व कम हो गया है। जमाना बदल गया है। नये मूल्य स्थापित हो रहे हैं। उनमे से चन्द अच्छे हैं, प्रगति के द्योतक हैं। किन्तु चन्द मूल्य मुझे जचते नही। इसलिए ऐसी चीजो के प्रति उदासीनता बढ रही है।

साधक होकर हिमालय मे घूमता था। तब जैसे आत्म-तत्व का चितन होता था, वैसी ही अभिरुचि बढ रही है। सौ० भगवान देवी से कहिये कि अब एक दफा सिक्कीम जाना है। तब कलकत्ता आऊँगा। हिमालय के बारे मे एक मित्र एक किताब लिखने वाले हैं। कलकत्ता मे हिमालय क्लब के पुस्तकालय मे अच्छी किताबे हैं। वह वहा बैठ कर पढनी है।

ऐसा कुछ काम न हो तो भी कलकत्ता जाकर आप से मिलने का आनन्द तो है ही।

बात सही है कि मैंने दाढी बढायी है। यह तीसरी आवृत्ति है। पहली आवृत्ति हिमालयवाली थी। दूसरी जेलवाली थी। अब सत्तर साल के उपलक्ष्य मे सफेद दाढी रखी है। आतरिक परिवर्तन का यह बाह्य चिन्ह है। आसपास के सब लोग समझ गये है कि अब मै सब प्रवृत्ति से मुक्त होना चाहता हूँ।

भगवान् जब हम से काम मागता है, तब प्रसन्नता से और उत्साह से हम काम करे। और जब भगवान् काम खीच लेता है, तब उतनी ही प्रसन्नता से वह सब छोड देवे।

जब तक स्वराज्य मिला नही था, तब तक राजनीति का अर्थ अलग था। स्वराज्य मिलने के बाद राजनीति का अर्थ ही बदल गया है। अब की राजनीति के बारे मे मैं शुद्ध दृष्टि से सोच सकता हूँ, लेकिन उसके अनुसार काम नही कर सकता। इसलिए अलिप्त हूँ। इसका असीम आनन्द होता है। भगवान् ने आपको इस वक्त जो काम दिया है, वही करने के लिए आपको परमात्मा ने सात्विक वृत्ति भी दी है।

आप कभी-कभी कार्य वश दिल्ली आते थे। अब विना कार्य की प्रेरणा से भी कभी तो इस ओर आइये। दिल्ली का आकर्षण भले न हो किन्तु देश मे जगह-जगह घूम कर स्नेहियो से मिलने का आकर्षण तो होगा ही।

काका के
सप्रेम वदेमातरम्

—— ० ——

श्री माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र

(१)

खण्डवा (सी०पी०)
ता० ४-८-४८

भाई सेकसरियाजी,

सादर नमन !

आज बहुत दिनो पश्चात् आपका पत्र पाकर मिलन जैसा सुख हुआ। मेरा स्वास्थ्य इधर काफी खराब रहने लगा है। केवल प्रभु-कृपा पर ही यह कागज की नाव चलाते-चलाते साठवे वर्ष तक पहुँची है। राजनीतिक जीवन की भाग-दौड मे तीस दिनो मे साठ प्रकार के बिना व्यवस्था के भोजन, जागरण और दौड मे जो कुछ प्राप्त हो सकता था, वह प्राप्त है। इसीमे विगत के क्षण जब ध्यानावस्थितता माग बैठते है, तब आज के स्वास्थ्य को ध्यान के विस्तार का बोझ सभालने मे भी बोझ मालूम होने लगता है। सासो की सडक पर, बोझ लदे जीवन के घोडे को किसी तरह चलाया ही जा सकता है, उसे आवेगो के हटरो से भी दौडाया नही जा सकता। इसलिए यदि दारिद्रय-वरण के मरण मे से आज्ञा-पालन मे विलम्ब हो जाय तो क्षमा कर दीजियेगा। यो 'नया समाज' हमारी आज की सब से बडी समस्या है। उसके लिए कुछ लिख सकू, यह मेरी इच्छा है।

इसी समय मै दो बातो के लिये आपको अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ। पहली तो यह कि आप सम्मेलन के सेकसरिया पारितोषिक को चलाये लिये जा रहे है। मेरी विनय है, उसे अब आप युग की आवश्यकता देख कर थोडा सा बढा दे। दूसरी कृतज्ञता इसलिये है कि आपने साहित्यकार ससद के पुण्य-यज्ञ मे लगी हुई श्रीमती महादेवी जी वर्मा के उस प्रयत्न मे सहायता की। राष्ट्र-मित्रता का बोझ रख कर, अपनी विधायक प्रवृत्तियो मे समय निकाल कर आप साहित्य की ओर ध्यान देते है, मुझे प्रसन्नता होती है। उन उजडे दिनो के बाद अब वर्धा तो मेरे लिये प्रशात महासागर जैसा दूर हो गया।

कृपा रखे। सन् ३२ के दिसम्बर मे कलकत्ता आया था। आपको कष्ट दिया था। आज १६ वर्ष हो चले।

विनम्र,
माखनलाल चतुर्वेदी

श्री विनोबाजी जून मे खण्डवा आये थे। कोई दो घण्टे घर मे चर्चा करते रहे।

माखनलाल चतुर्वेदी

दि०

श्रीमन् भाई सीताराम जी,

सादर, सप्रेम नमन !

आपका कृपा पत्र मिल गया। मैं पहले ही बीमार-सा रहता हूँ, फिर आ गये चुनाव जिनमे मै सर्वत चिन्तामुक्त नही रह पाया। इसी बीच एक सज्जन काशी से मेरी जीवन-घटनाओ को लिखने के लिये आ पहुँचे है। अत प्रात काल का कुछ समय वे ले लेते है, और मै थक जाता हूँ। इसीलिए मुझे उत्तर देने में विलम्ब हुआ। आशा है आप मुझे क्षमा कर देगे।

आपके कृपा-पत्र का अधिकाश, जो लेखक समाज से सम्बन्धित है, ऐसा ही है, जो मेरे विचारो के साथ है। मेरे विचार से इस बोझ को इस समय समाज, मारवाडी समाज भी उठा ले तो बहुत काम हो सकता है। लेखक को उसकी मजदूरी भर मिल जाय, जब तक उसमे लिखने की शक्ति रहे। जब लिखने की शक्ति उसमे नही रहे, तब एक तो उसकी सहायता का नियमित प्रबध हो, दूसरे उसके लिखे ग्रथो पर उसे समुचित रायल्टी मिल जाये। कुछ लेखक गम्भीर विषयो पर लिखते है। जन-साधारण उनकी पुस्तको को नही खरीदेगे—नही खरीद सकेगे। ऐसे लेखको को पुस्तको के पृष्ठो से नही, उनके गहरे अध्ययन और उनके द्वारा खर्च और जिल्लतो को देख कर उनका मूल्य चुकाना चाहिये। सरकार को लेखको के—सब भाषा के लेखको के—श्रम को चुन कर उन्हे एक तो भारत और विदेशो मे जाने की विशेष सुविधा देनी चाहिये, दूसरे उनके साहित्यिक परिश्रम को उचित हो तो खरीद लेना चाहिये, तीसरे यह देखना चाहिये कि वे बेचारे रोटी, कपडा और मकान की चिन्ता से मुक्त हैं। बीमार लेखको को मरने के लिए नही छोड देना चाहिये, उनका उत्तरदायित्व समाज को लेना चाहिये। हाँ, इस बात के लिये सावधान रहना चाहिये कि शासन या समाज के आसपास जमघट जमा कर काम निकालनेवालो के पास ही सरकारी या समाज के कान न बन्द हो जाय। समाज की दृष्टि देश और विश्व के सुदूर कानो तक जावे और वह यथार्थ श्रेणी के लेखको को खोज ले।

यह विषय बहुत बडा है। केवल पत्रोत्तर के रूप मे मै कहाँ तक लिखूगा? आपने लेखक के गौरव की ओर सदैव ध्यान दिया है। कोई सगठन स्थापित हो सकता हो तो आप कृपापूर्वक प्रयत्न कर देखे। यह जरूरी नही है कि हम यह सूघते बैठे रहे कि लोग हमारे विचारो का समर्थन करते है। हम तो उसी प्रकार उसके सहायक हो, जिस तरह प्रकृति प्रकाश, जल और भूमि देते समय पक्षपात नही करती।

मै बूढा हो गया हूँ। अत साहित्य और समाज की मेरी मजूरी मे कोई कमी रही हो तो आप और सब मित्र मुझे क्षमा कर दे। यही निवेदन है।

मा० चतुर्वेदी

२४-३-५७

श्रीमन् भाई सीतारामजी सेकसरिया,

सादर, सस्नेह नमन !

कृपा-पत्र मिला। कृतज्ञ हूँ। लेखक के प्रति आपके मन मे सदैव सहानुभूति रही है, मैं जानता हूँ। आपका हिन्दी सा०म० का सेकसरिया पुरस्कार तथा साहित्यकार ससद मे आपकी सहायता—दोनो वस्तुएँ शुभ हैं। आज के लेखक की समस्या दैनदिन है। यदि वह स्वाधीनचेता हुआ तो उसकी खैर नही है। लोग मीठे बोल बोल लेते है, किन्तु बोलो के पीछे रहनेवाली निश्चयात्मक कटुता को क्या कहिये ? दिल्ली के आखें नही है, कानो मे उसकी अपनी प्रशसा है। कदाचित् आपका ध्यान न गया हो। गरीब की समस्या, जो गाँधीजी के सेवा-पथ की प्रथम चरण थी, आज कोई चीज ही नही है। किन्तु चुपचाप गरीबी सहते रहने वालो की जो पीढी है, उसे सहते रहना ही होगा। आप इस दिशा मे व्यक्तिगत या समूहगत जो कर सकें, उससे मैं अत्यन्त कृतज्ञ और प्रसन्न होऊँगा। कृपया लिखें, आप इस दिशा मे क्या करना चाहेगे, तथा किस तरह करना चाहेंगे। यदि सम्मिलित लेखक-जीवन का वह केन्द्र कलकत्ता मे रहे तो बहुत अच्छी बात होगी।

कृपया लिखे, इस विषय में क्या किया जा सकता है। 'नया समाज' के रूप मे हिन्दी जगत की जो सेवा हो रही है, उसके लिये 'नया समाज' के सम्पादक को मेरी ओर से बधाई दें तथा मेरे नमन।

आपका अपना,
माखनलाल चतुर्वेदी

श्री रायकृष्णदास का पत्र

भारत कला भवन, बनारस
जुलाई ५।४८

प्रिय सेकसरियाजी,

सप्रेम जयहिन्द !

यहाँ आते ही ऐसी गर्मी और काम की भीड का सामना करना पडा कि आपको आज तक पत्र न लिख सका, यद्यपि इस बीच आपका कृपा-कार्ड भी प्राप्त हुआ।

यद्यपि इस बार की मेरी कलकत्ता-यात्रा बडे ही अप्रिय प्रसग मे हुई, फिर भी आप जैसे साधु-बन्धु का प्रत्यक्ष परिचय और सत्सग पाकर मुझे जो हर्ष और

लाभ हुआ है, उसे मै शब्दो में व्यक्त नही कर सकता। महाभारत ने सच कहा है—

गोभि विप्रैश्च वदैश्च सतीभि सत्यवादिभि
अलुब्धै दानशूरैश्च षडेभि धार्यते मही ।।

निश्चय ही कलकत्ता जैसी मशीन-युग की प्रतीक नगरी आप सरीखे साधु व्यक्तित्वो के ही बल पर टिकी है। इसे आप तनिक भी औपचारिक उक्ति न समझे, अपने हृदय की अन्वर्थ बात लिख रहा हूँ।

आपका सत्सग वहाँ के मेघाछन्न वातावरण मे मेरे लिए रवि-रश्मि के सदृश सुखद स्वय प्रकाशपूर्ण था। क्या कहूँ, यह सौभाग्य मुझे अत्यल्प ही प्राप्त हो सका। आशा करता हूँ कि भगवत् कृपा से शीघ्र ही आपके साहचर्य का सुयोग प्राप्त होगा। मैं जल्दी-से-जल्दी कलकत्ता पहुँचना चाहता हूँ। कन्या तो यहाँ है ही। कई काम अधूरे छोड आया हूँ।

'नया समाज' के लिय लेख आरम्भ कर दिया है। प्राय २ फुलिस्केप लिख भी गया हूँ। किन्तु इधर 'कलानिधि' को जल्दी से जल्दी निकाल देने के समुद्यम मे लगा हूँ। मैटर रथयात्रा से कपोज होना आरम्भ हो जावेगा। इस गाडी के चालू होते ही आपका लेख भेज दूँगा। 'नया समाज' अपने विचारो के नाते एव आपकी चीज होने के कारण मेरी ही चीज है। अत उसके लिये जो भी सभव होगा, करता रहूँगा।

उस दिन मातृ-सदन मे आपकी देर तक प्रतीक्षा एक कार्यवश करता रहा। आपको वता ही चुका हूँ कि कलकत्ता प्रवास मे ७०००) का सामान कला भवन के लिये ले चुका हूँ या लेने की पक्की बातचीत कर चुका हूँ। यह गड्ढा आपको पूरा कराना होगा। बीस वरस वाद कलकत्ता जाने पर मेरे लिये सयम करना असभव था। साथ ही ऐसी वस्तुएँ मिलती भी नित्य नही है। जो हाथ लग गई, सो लग गई। जो निकल गई सो निकल गई। अत अपने इस असयम को मै असयम नही, करणीय कार्य मानता हूँ। यह असयम है केवल आर्थिक दृष्टि से, क्योकि दूसरे मदो का रुपया इस मद मे लगा कर अव मैं फकीर वन वैठा हूँ। ऐसी परिस्थिति मे मै आपके अतिरिक्त किसको पकड़ू? वहाँ उस दिन हिन्दुस्तान क्लव मे कुछ ऐसे अर्थपति दीखे थे, जिनसे पहले का परिचय है और मैं उनसे याचना करता तो वे अवश्य ध्यान देते पर आप ही के वूते मैंने ऐसा न किया। उनकी अहार्दिकता मेरे झेले न झेली जाती। अब चाहे जैसे भी हो, इस कार्य को पूरा कराइये और यह ध्यान मे रखिये कि कला भवन पर अपना वरद हस्त रख कर एक और वला आपने अपने गले वाध ली है। मेरे तीस वरस वाले इस प्रयास को फूला-फला आप ही वना सकते है।

शेष विनय।

कृष्ण दास

स्व० श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला का पत्र

१-३-४८

प्रिय भाई श्री सीतारामजी,

आपका कृपा-पत्र मिला। मुझे लिखने मे आपको तो कभी सकोच नही करना चाहिये। यदि मुझे लिखने मे भी आप सकोच करने लगे, तो फिर भाई प्रह्लाद को आपको लिखने मे भी सकोच लगना चाहिये। खैर।

"पर्दा छोड" के आन्दोलन का प्रश्न समझा। पिकेटिंग का स्वरूप मैं पूरा-पूरा समझा नही हूँ। अगर उसका स्वरूप इतना ही हो कि कुछ भाई और बहनें विवाह के स्थान पर जाते है, अपने हाथो मे लिखे हुए पोस्टर रखते हैं, जिनमे पर्दे के बारे मे हमारे देश के बडे लोगो की राय लिखी रहती है, इसी तरह के छपे हुए परचे भी बाटते हैं—तब तो उसमे मैं कोई दोष नही देखता हूँ।

परन्तु, वहाँ नारे लगाना, इसे मैं सत्याग्रही अहिंसक-वृत्ति नही समझता। यह लडकपन है, लडकपन सत्याग्रह मे असभ्यता है और असभ्यता अहिंसात्मक नही कही जा सकती। यह उस प्रकार की चीज है जैसी सत्याग्रह आदोलनो मे कही स्वयसेवक कचहरी या जेल मे जाकर हुल्लड मचाना, जोर से चिल्लाना, जज की कुर्सी पर बैठ जाना आदि करते थे।

फिर उससे भी आगे जाकर यदि पिकेटिंग का यह स्वरूप हो कि जिस विवाह मे पर्दा न छोडने वाली स्त्रियाँ हो, उसमे हिस्सा ही न लेना चाहिये और अतिथियो आदि को उसमे शरीक होने से रोकना चाहिये, और उन्हे रोकने के लिये आगे खडे रहना या सो जाना वगैरह—तब तो वह असभ्यता की पराकाष्ठा ही समझता हूँ और उसे जबरदस्ती कहना होगा। उसे सत्याग्रह तो कहा ही नही जा सकता।

पर्दा हटाने के पीछे आखिर क्या चीज है, वह हमे देखना चाहिये। पर्दा मे कोई अधर्म, अनीति, दुराचार है, ऐसा तो नही कहेगे। वह एक बुद्धिहीन रूढि है। उसके पीछे शायद पुरुष की ईर्षा है और स्त्रियो पर एक तरह से अनुचित सख्ती है, परन्तु वह अत्याचार नही है, जब तक उसके पालन कराने मे कोई बलात्कार किया न जाता हो। आज उसका वह स्वरूप नही है। नयी पीढी और जूनी पीढी के बीच मे का फर्क केवल रहा है। इसलिये यह समझाने-बुझाने का काम है। उसमे बहिष्कार-असहयोग आदि के लिये स्थान नही मालूम होता। वैसे देखे तो जूनी पीढी का घूघट और नयी पीढी का खुला सिर और छूटे केश के बीच नैतिकता या सत्यता की तुलना करना हो, तो शायद कहना होगा कि खुले सिर और छूटे केश की जो रूढि फैशन-प्रचलित हो रही है, वह ज्यादा असभ्य और इस दृष्टि से कम नैतिक है कि उसमे शृगार और आकर्षण की ज्यादा वृत्ति है। घूघट मे जरूरत से अधिक सकोच है, दूसरे मे उचित से अधिक मर्यादा-त्याग है। अगर सिर ढाकने के विषय की तरह-तरह की कुरूढियो के विरुद्ध आदोलन करना ही हो, तो मैं सोचता हूँ कि दोनो कुरूढियाँ है और शृगार-विलासी कुरूढि अधिक खराब है। तब मेरी राय मे पर्दा हटवाने का प्रयत्न तो करना चाहिये,

परन्तु जो हटाये नहीं, उनको सताना, बहिष्कार करना, अपमानित करना, विवाह आदि मौके पर जाकर धाधली मचाना, यह कोई अच्छी बात नही। सत्याग्रही कभी अशिष्ट, असभ्य हो ही नही सकता।

अधिकतर तो पर्दा हटाने का आन्दोलन और प्रयत्न समझदार स्त्रियो को ही करना चाहिये। समझदार पुरुप वर्ग उन्हे उत्साह दे और आन्दोलन करने के लिये सब सुविधाये दे। जहाँ पुरुष वर्ग को समझाने की बात हो, वहाँ पुरुष वर्ग पुरुषो को समझाने मे मदद करे।

पिकेटिंग करने और अच्छी तरह विरोध करने लायक इससे ज्यादा बुराइयाँ तो बहुत है। उदाहरण के लिये, रेर्शानिग और भोजन आदि पर नियत्रण होते हुए भी सैकडो लोगो को खिलाया जाता है—अन्नो को फेका जाता है, बिगाडा जाता है, ब्लैक मारकेट का माल खरीदा जाता है। ऐसे विवाह आदि मे क्यो तरुण वर्ग जाता है? क्यो वहाँ जाकर पिकेटिंग करना, मैजिस्ट्रेट को बुलाना आदि नही करता?

आशा है मेरे विचार आपको जच जायेगे। कोई शका हो या मेरी कोई गैर-समझ हो तो जरूर लिखेगे।

आपका,
किशोर लाल

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय का पत्र

६, हेस्टिंग्स रोड,
इलाहाबाद
२३-७-५०

प्रियवर श्री सेकसरियाजी,

"स्मृतिकण" के लिये अनेक धन्यवाद। पुस्तक निहायत सुन्दर है। आज ही मिली और कुछ घण्टो की एक ही बैठक मे समाप्त कर गया। उपन्यास की भाँति सस्मरण अत्यन्त रोचक है। गुरुदेव वाला सस्मरण तो अत्यन्त करुण है। पढ कर रोमाच हो आया, आँखे भर आईं। ऐसे ही अन्तिम "दो लडकिया" पढ कर भी। इन लडकियो मे पहली मेरे मित्र श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त की ब्याही थी जो प्रयाग विश्वविद्यालय मे अग्रेजी के अध्यापक है। दूसरी के सम्बन्ध का सस्मरण बडा मधुर है।

आपकी भाषा इतनी सरल और कोमल है कि उसमे सत्साहित्य का आनन्द आता है। भाषा के प्रसाद ने उसमे असाधारण माधुर्य भर दिया है। सस्मरणो के लिये तो इससे उपयुक्त भाषा और हो नही सकती। मै तो पढते समय बराबर यही अनुभव करता रहा कि आप बोल रहे है और मै सुन रहा हूँ। दूर पढी जाती हुई भाषा यदि लेखक के स्वर और कण्ठ को प्रतिध्वनित कर दे तो उसकी

सार्थकता सिद्ध है। उनको पढते समय यही जान पडा कि आपकी साधना सिद्ध है। आप इसमे सम्मृत व्यक्तियो के इतने निकट रहे है कि उनके विषय मे लिखने के अधिकारी है। अत्यन्त रोमाचक, मधुर और आदर्श निर्मल सस्मरणो के सफल रेखाकन के लिए अमित बधाई।

सानन्द होगे।

आपका,
भगवतशरण उपाध्याय

श्रीमती उषा मित्र का पत्र

११५, ब्यौहार बाग,
जबलपुर
३-७-

परम श्रद्धास्पद,

श्री सीतारामजी,

स्टेशन जाते समय 'स्मृति-कण' मिला। बडी ही प्रसन्नता हुई।

'स्मृति-कण' तो पाठको के मन मे अपनी अमिट स्मृति रख देता है। लगता है, न तो यह मिटने वाली है और न मरने वाली।

सस्मरण जाने कितने ही लिखे गये और लिखे जावेगे, परन्तु 'स्मृति कण' के कण मेरे मन मे जो महावर-रजित पद-चिन्ह छोड गए, उन पद-चिन्हो का जोड कहा है?

आपके कार्यो से पहले भी परिचित थी, किन्तु आप जैसे साधु पुरुष के व्यक्तित्व तथा लेखनी से परिचित होने का सौभाग्य मुझे पहले नही मिला था। साधक के दर्शन तो दुर्लभ ही हुआ करते है न?

आपका स्वास्थ्य तो ठीक है? यहाँ अब तक गरमी है। मै ब्लड प्रेशर तथा पेट की पीडा से तग आ गई।

सादर नमस्कार

विनीता,
उषा मित्र

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का पत्र

काशी विश्वविद्यालय,
११-९-५०

आदरणीय सेकसरियाजी,

सादर नमस्कार !

मैंने यहाँ आने का निश्चय इतनी जल्दी मे किया कि किसी से मिलने-मिलाने या सलाह लेने का समय ही नही मिला। एक बार कलकत्ते गया भी तो आप कही बाहर गए हुए थे, मिलना नही हो सका। उसके बाद मै यहा आ गया और यद्यपि प्राय ही आपको पत्र लिखने की बात सोचता रहा पर लिखने का अवसर नही मिला। यह पत्र किसी विशेप उद्देश्य से नही लिख रहा हूँ। आपके न तो दीर्घकाल से दर्शन ही हुए और न कोई पत्रादि ही प्राप्त हुए, इसलिये स्मरण दिलाने के लिये यह लिख रहा हूँ। ऐसा न हो कि दूर आ गया हूँ तो आप लोग भूल ही जाये। आप लोगो की स्मृति मेरे जीवन की बहुत बडी निधि रही है। भाग्य से मनुष्य को सत्सग प्राप्त होता है और उस सत्सग का अनायास मिल जाना तो बहुत बडे पुण्यकाल का परिणाम है।

यहाँ मै एक प्रकार चल रहा हूँ। शान्तिनिकेतन सा सहज उत्लास अभी नही प्राप्त कर सका हूँ। शायद धीरे-धीरे प्राप्त होने लगे। यहा कुछ प्रपच अधिक जान पडता है। वैसे, सब अच्छा ही है।

आशा है, सानन्द है। हम लोग प्रसन्न हैं।

आपका,
हजारीप्रसाद द्विवेदी

श्री जयप्रकाश नारायण का पत्र

पटना
२०-५-५३

प्रिय सीतारामजी,

कृपलानीजी के चुनाव के लिये यदि कुछ मित्रो ने सहायता देना पसन्द न किया तो मुझे कोई दु ख न हुआ। लेकिन मेरी समझ मे यह बिल्कुल न आया कि यह कैसे कहा जा रहा है कि सोशलिस्ट ही आपस मे लड रहे है। दो सीटे हैं। हर सीट पर हमारा एक-एक उम्मीदवार है। काग्रेस ने एक सीट से अपना उम्मीदवार हटा लिया तो हम भी दूसरी सीट से क्यो हट जाये। काग्रेस से कोई सौदा तो हमने किया नही था, न सीटो के ऊपर करना ही चाहते है। कृपलानीजी का विरोध न हो, यह एक अलग बात है। और, वह एक तत्व पर कायम है। मेरा यह पुराना विचार है कि कुछ लोगो का विरोध नही होना चाहिये और

पार्टियो को उनके सम्बन्ध में दलगत नीति नही बरतनी चाहिये। जवाहरलालजी और मौलाना का विरोध पिछले चुनाव मे हम लोगो ने सोच-समझ कर नही किया था। नरेन्द्रदेव का विरोध कांग्रेस ने किया तो सज्जनो को वह अच्छा नही लगा था। मै एक पार्टी का सदस्य हूँ, फिर भी मानता हूँ कि एक हद के बाद पार्टी-बाजी को नही ले जाना चाहिये। इन्ही आदर्शो के अनुसार अगर कांग्रेस ने कृपलानीजी का विरोध नही किया है तो उसका मै स्वागत करता हूँ। यह दूसरी बात है कि कानून की पेचीदगी के कारण उस हालत मे भी कृपलानीजी के लिये चुनाव लडना ही पड रहा है। उससे बचने के लिये अगर हम लोग अपना हरिजन उम्मीदवार बैठा लेते तो वह एक ओछा सौदा होता और हरिजनो के साथ विश्वासघात। हरिजन उम्मीदवार को न बिठाने की सारी जिम्मेदारी मेरी है। इसलिये सोचा कि अपने विचार आपको लिख दूँ। उस दिन जब आपने कहा कि लोग कहते हैं कि सोशलिस्ट आपस मे लड रहे हैं तो मुझे चोट लगी थी। जो बात मेरे लिये इतनी स्पष्ट है, वह दूसरो के लिये इतनी जटिल क्यो लगती है, यह समझ नही पाता।

आपका सस्नेह,
जयप्रकाश

श्रीमती महादेवी वर्मा के पत्र

(१)

प्रयाग महिला विद्यापीठ,
१, एल्गिन रोड, इलाहाबाद

मान्य भाई,

वन्दे मातरम्!

भाई सगमलालजी से ज्ञात हुआ कि आपको मेरे दोनो पत्र नही मिले। यह पत्र न पहुँचने का रहस्य तो बहुत कष्टकर हो उठा है। समझ मे नही आता कि कारण क्या है।

कलकत्ते मे लौटते ही मै कार्यभार से एकदम घिर गई थी। विद्यार्थियो को प्रेपरेशन लीव फरवरी मे दी जाती है। अत एम० ए० बी० ए० कक्षाओ का पूरा पाठ्यक्रम जनवरी मे समाप्त करना था। साहित्यकार-ससद के उद्घाटन-समारोह का प्रबन्ध भी करना था और कागज तथा लेखको की सहायता के सबध मे कई बार लखनऊ की यात्रा भी करनी पडी। ३० जनवरी को जब ससद के उद्घाटन सबधी निमत्रण-पत्रो पर पते लिखवा रही थी, तभी वज्रपात के समान, बापू के निष्ठूर निधन का समाचार सुनाई दिया। मन और शरीर से मै इतनी क्लान्त थी कि उस आघात को सभालना कठिन हो गया और १०-१२ दिन तक मुझे न आलोक का पता चला, न अन्धकार का। बापू पर प्रहार केवल एक परम आत्मीय व्यक्ति पर प्रहार ही नही था; वह तो एक महान् सिद्धात पर आघात

भी था। इस चुनौती का, जो असत्य ने सत्य को दी है, उत्तर अपनी आत्मा मे खोजना है। अभी तक मैं उसे नही खोज सकी हूँ। इसीसे हृदय का स्वास्थ्य भी अभी तक लौट नही सका है।

वापू के भौतिक अवशेष को सगम मे प्रवाहित कर कर्त्तव्य की ओर मन लगाने का प्रयत्न कर रही थी कि वसन्तपचमी को वहन सुभद्रा ने विदा ली। उनके साथ स्नेह का वह सगीत भी थम गया, जिसकी सौ-सौ मूर्च्छनाओ ने २९ वर्ष से मेरे जीवन को घेर रखा था। मित्र के नाम से मेरे पास केवल सुभद्रा ही थी। अत अपनी व्यथा के सबध मे क्या कहूँ? २९ फरवरी को उनके शोक-विकल पति तथा मातृहीन वच्चो के साथ उनके अन्तिम अवशेष को त्रिवेणी की उन्ही उज्ज्वल श्याम लहरो मे मिलकर तिरोहित होते देखा, जहाँ वापू की अस्थियो को अनन्त विश्राम मिला था।

मेरी स्थिति श्मशान से लौटे हुए व्यक्ति जैसी है, जिसे सब कुछ सारहीन लगता है। वैसे मैं जानती हूँ कि अब तो अपने हिस्से का ही नही, जो नही रहे हैं उनके हिस्से का काम भी करना चाहिए।

वहन,
महादेवी

(२)

इलाहावाद, १६-४-१९४८

मान्य भाई,

वन्देमातरम्

कृपा-पत्र मिला। निश्चय यह किया है कि आपको साधारण पत्र नही भेजूगी। अत अब पत्र खोने की समस्या सुलझ जायेगी। जब मैं कलकत्ते मे थी, तब भोजनगृह की आलमारी के ऊपर रखे कागजो मे मुझे अपना १० दिन पहले लिखा हुआ पत्र बन्द अवस्था मे मिला था। मैंने चि० अशोक से कहा भी था। कही ऐसा तो नही होता कि मेरे पत्र वही सुरक्षित पडे रह जाते हों। आप नौकरी-चाकरी, व्यापार आदि से मुक्त होकर भी कितने व्यस्त रहते है, यह मैं जानती हूँ। आपके सामने आने पर ही पत्र बेचारे को पत्रता प्राप्त हो सकती है। आपके पास तो पत्रो की चिन्ता अथवा खोज का अवकाश ही नही है।

आपके सस्मरणो मे कुछ पृष्ठ और जुड सकते तो अच्छा होता। पुस्तक वापू के महाप्रयाण के उपरान्त निकल रही है। उसके अन्तिम पृष्ठो मे यदि उस व्यथा की छाया न हो जो आपने अनुभव की है, तो वह अपूर्ण रहेगी। यदि आपने अपनी डायरी मे कुछ लिखा हो तो वही दे दे। कवर पर मैं वही चित्र देना चाहती हूँ जो आपके कमरे मे है। यह चित्र वापू की सभी प्रवृत्तियो का सकेत दे सकता है। आपको भी यह विचार पसन्द हो तो किसी अच्छे ब्लाक वनाने वाले को दे दे।

मैने दूसरा बनाने का प्रयत्न तो किया किन्तु आसुओ के मारे बनता ही नही। जान पडता है अब बहुत दिन प्रकृतिस्थ होने मे लगेगे। तब तक आखे और भी बेकार हो जावेगी।

मै आजकल फिर इजेक्शन ले रही हूँ। मुझे मन्द रक्तचाप का कष्ट है, जो आजकल अधिक बढ गया है। इधर चिन्ता भी अधिक रही—मेरे भाई, भाभी, पिता सब हैदराबाद मे है। न वहाँ से आने की अनुमति मिलती है, न बैंक से रुपया निकालने दिया जाता है। रजाकारो का उत्पात इतना बढ गया है कि वहाँ हिन्दू अपने आपको निरापद नही समझता। है भी यही सत्य। न जाने इस देश के भाग्य मे क्या है? यदि इस गृहयुद्ध से मुक्ति न मिल सकी तो फिर राजनीतिक मक्ति का स्थायी होना आकाश कुसुम है।

विनीत,
महादेवी

(३)

प्रयाग
३-१२-५६

मान्य भाई,

वन्दे

श्री निरालाजी की सहायतार्थ जो सग्रह ससद ने प्रकाशित किया था, उसे भेजती हूँ। दो पुस्तके और है किन्तु वे हमारे शहर के कार्यालय मे रखी है और आजकल वहाँ करफ्यू लगा हुआ है। स्थिति कुछ ठीक होने पर भेजूगी।

'अपरा' अच्छी नही छप सकी। सग्रहीत कविताओ का कापीराइट बिक चुका था और लीडर प्रेस ने हमे प्रकाशन की अनुमति नही दी थी। मुकद्दमे के भय से कोई अच्छा प्रेस छापने को प्रस्तुत नही हुआ। अब निरालाजी की कुछ पुस्तको का कापीराइट उन्हें मिल गया है। विश्वास है कि उन्हें अब दो-दो दिन गगा-जल पीकर नही रहना पडेगा।

देश की और विशेपत बगाल की स्थिति ने हम सब को बहुत मर्माहत किया है। अपनी पिछली बैठक मे हमने इस सम्बन्ध मे एक कार्यक्रम भी निश्चित किया है। हमारी बात कोई सुने या न सुने परन्तु हमारा कर्त्तव्य तो स्पष्ट ही है।

दीपक की लौ चाहे जितनी छोटी हो, अन्धकार का विरोध करेगी ही क्योकि इसी विरोध के लिये उसका अस्तित्व है। हम मानव के देवत्व के विश्वासी हैं। उसके मार्ग की बाधक पशुता के विरोध मे हमारे जीवन का अन्तिम क्षण और शेष अणु तक काम मे आना चाहिए। हृदय व्यथा से भरा है किन्तु निराशा से दृष्टि धुधली नही है। जो आसू आँखो की ज्योति को बुझा दे, वे तो व्यर्थ ही हैं।

आज की परिस्थिति मे स्वार्थ की बात कहना अपराध है, किन्तु इस समय यह अपराध ही कर्त्तव्य बन गया है। पिछले दो वर्ष से हम साहित्यकार ससद के आश्रम के लिये गगातट पर कोई ऐसा स्थान खोज रहे थे जहाँ हम एक साहित्य-कार-केन्द्र बना सके, पुस्तकालय रख सके और जो साहित्यिक रहना चाहते हैं, उन्हे रहने की सुविधा दे सके।

अब ऐसा एक स्थान मिला है जिसमे एक बगला और दो एकड से अधिक भूमि है—विस्तार की भी सम्भावना है। उसे ले लेने पर हमे कई वर्ष तक कुछ बनाने की आवश्यकता न होगी। निकट बहती हुई गगा और शान्त वातावरण हमारे आश्रम के सर्वथा उपयुक्त है।

मेरा स्वास्थ्य इधर फिर बहुत खराब हो गया। क्या करूँ? मेरे शरीर और मन का सम्बन्ध फूस और अगारे जैसा है। मन जलता है और शरीर राख होता जा रहा है। आँखे अभी वैसी ही हैं। पिछले मास से फिर इजेक्शन लग रहे है।

कुछ दिनो से लिखवाने का अभ्यास कर रही हूँ किन्तु इस प्रकार बोल कर लिख-वाना मुझे अच्छा नही लगता।

आपकी बहन,
महादेवी

पडित सुन्दरलालजी का पत्र

४०, हनुमान लेन,
नई दिल्ली-१
१७-१०-६०

प्यारे भाई सीतारामजी,

आपका पत्र मिल गया था। उसे पढ कर मैंने कही रख दिया था। जवाब देने की कोई खास जरूरत भी मालूम नही होती थी। कल पिछले कागजो को टटोलते हुए आपका खत फिर हाथ मे आया। एक बार फिर पढ कर फाड कर फेंक दिया। किन्तु फिर सोचा कि आपसे जो प्रेम है और रहेगा, उस नाते जवाब देना आवश्यक है। इसलिये इस समय जवाब देने बैठा हूँ।

आपके पत्र को पढ कर निराशा और दु ख दोनो हुए। विचार तो मेरे जो आपने लिखे है, वही है। चीन के मामले मे आप से काफी बाते हो चुकी है। वही विचार मेरे आज भी हैं और उन्हें मैं बिलकुल ठीक मानता हूँ। जहाँ तक मैंने सुना है, लगभग यही विचार इस मामले मे विनोबाजी के है। जवाहरलालजी को जो रिपोर्ट मेरे कलकत्ते के भाषण की मिली थी, उसमे कुछ गलत भी था। मैंने अपने और जवाहरलालजी के इस सबध के पूरे पत्र-व्यवहार की नकल आपको भिजवा दी है। पजाबी सूबे के भी मैं हक मे था और हक मे हूँ। मास्टर तारासिहजी का भी मेरे दिल मे आदर है। किसी के दिल मे किसी का भी आदर हो तो वह

किसी को भी क्यो बुरा लगे ? प० मदनमोहन मालवीय, लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानन्द तक का हम आदर करते ही हैं और ठीक करते है। विचार किसी बात मे मिलना और किसी मे न मिलना अलग बात है। इस निगाह मे भी आपके पत्र को पढ कर मुझे दु ख हुआ।

और, फिर क्या इन सब बातो का उस बात से, जो आपके पत्र की मुख्य बात थी, इतना गहरा सबध हैं ? क्या इन मामलो मे भी विचार अलग-अलग होना इतनी बुरी बात है ? इतना लबा सबध यू तिरस्कृत तो नही होना चाहिये। और, फिर कहा जा कर रुकियेगा ? क्या अब ठहरना-ठहराना भी अनुचित नही होगा ?

मुझे इन बातो को लिखने के लिये क्षमा कीजियेगा। आपसे जो प्रेम है, उसके नाते मैंने अपना दिल खोल कर रख देना अपना धर्म समझा। मै और किसी मे भी इस तरह के पत्र की आशा कर सकता था, किन्तु आप से नही। नही तो मै आपसे वह बात ही क्यो करता, जिसके लिए यह पत्र-व्यवहार हुआ। आपके पत्र से जो दु ख और निराशा हुई, उसे प्रकट कर देना भी प्रेम का तकाजा था।

बाकी बाते कभी मिलेगे तो होगी या यदि फिर कभी कलकत्ते आया और आपके यहा ठहरने पर रोक न लगी, तो वहा मिल बैठ कर प्रेम से बाते होगी।

आशा है, आप अच्छी तरह होगे।

सदैव आपके प्रेम का भाजन,
सुन्दरलाल

श्री वृन्दावनलाल वर्मा का पत्र

झाँसी (उ० प्र०)
४-६-६५

प्रियवर श्री सेकसरियाजी,

नमस्कार !

आपका ३।२ वाला शुभकामना से भरा पत्र मेरे पास सुरक्षित है। आज यकायक सामने आ गया। इन दिनो जो विषय मेरे मन पर बहुत छाया हुआ है, सोचा कि उसके बारे मे आपको भी लिखू, क्योकि आप साहित्य-प्रेमी है और देश-हितचिन्तक भी।

विषय है आजकल की फिल्म—हिन्दी फिल्म। मैंने फिल्म-मनोविज्ञान का भी अध्ययन किया है। फिल्म का प्रभाव दर्शक-श्रोता पर बहुत शीघ्र और गहरा पडता है। गन्दे फिल्मो की बहुतायत है जो समाज को पतन की ओर लिये जा रही हैं। अपनी सस्कृति की रक्षा और देश के ऊचे आदर्शो को बचाने, ऊपर लाने की बडी आवश्यकता है। फिल्म देखने लोग मनोरजन के लिये जाते हैं। फिल्म मनोरजक परन्तु साथ ही स्फूर्ति और प्रेरणादायक भी हो। मैंने इसी धुन मे एक

चार्ट बनाया है। यदि इसके (लगभग) अनुसार फिल्म बने तो विश्वास है कि समाज और देश का हित होगा। हर हालत मे गन्दे फिल्मो का निर्माण बन्द होना चाहिये। मेरे विनम्र सुझाव के अनुसार यदि फिल्म बने तो पूजी लगानेवालो को लाभ भी होगा और साथ ही समाज का कल्याण। आशा है, आप भी इस प्रसग पर विचार करेगे और अपने मित्रो से इसकी चर्चा करेगे।

स्नेही,

वृन्दावनलाल वर्मा

श्री विमल मित्र का पत्र

२६।१।१, चेतला सेन्ट्रल रोड,
कलकत्ता-२७
दिनाक १०-६-६७

श्रीमान् सेकसरियाजी,

आपका दि० १७ मई का पत्र प्राप्त हुआ था। उत्तर शीघ्र नही दे सका। कुछ अस्वस्थ रहा। अब ठीक हूँ।

मैंने अपने पहले पत्र मे आपको लिखा था और सेठ गोविन्ददासजी को भी लिख दिया है कि मुझ से जो भी सहकार्य अपेक्षित है और सभव हे, मैं अवश्य करता रहूँगा। यह ठीक है कि हिन्दीवालो को बगला के निकट लाना चाहिए लेकिन हमे अधिकतर अखिल भारतीय स्तर पर ही सोचना चाहिये। इस सबध मे आपकी कोई योजना हो तो कृपया सूचित करे। मैं भी अपने विचार उस पर लिख दूँगा।

एक और बात। उदीयमान लेखको के बारे मे एक विचार मन मे आता है कि उन्हे लिखने के लिए स्वाधीनता और सुविधाएँ पर्याप्त मात्र मे नही मिलती। लेखन के लिए जो एकात मनन की आवश्यकता है, वह मिलना कठिन हो गया है। उनके निर्वाह का भी प्रश्न है और कृतियो के प्रकाशन का भी। इस ओर अगर कुछ कर सके तो नई पीढी मे श्रद्धा उत्पन्न हो कर कुछ ठोस काम हो सकता है। हीन प्रवृत्ति को कुचलने का एक ही मार्ग है कि उच्च साहित्य प्रचुर मात्रा मे और सस्ते मे उपलब्ध हो ताकि सामान्य लोगो का ध्यान आकर्षित कर सत्प्रवृत्ति मे लगा दे।

आशा है, आप स्वस्थ और सानन्द है।

सधन्यवाद,

आपका,
विमल मित्र

—— ० ——

२—श्री सीतारामजी के पत्र

श्री किशोरलाल घ० मशरूवाला को

पूज्य किशोरलाल भाई,

सादर प्रणाम।

कई मौको पर आपको पत्र लिखने की इच्छा होती है। आपसे मार्ग-दर्शन लेने के लिये मन ललचाता है पर आपके ऊपर जो जिम्मेदारी है और आपके स्वास्थ्य की जो हालत है, उसे देखकर आपको जरा भी कष्ट हो, आप पर और नया बोझ पडे, यह उचित नही मालूम पडता। इसलिये किसी भी प्रकार के लोभ को रोकने की इच्छा से आपको पत्र नही लिखता।

कई बार यह बात भी मन मे आई कि पूज्य बापूजी के बारे मे भी मेरे मन मे बहुत सकोच रहा और मौका मिलने पर या इच्छा रहने पर भी मन को यही समझाया कि बापूजी के इतने महत्वपूर्ण कामो के बीच उनका समय लेना या उनसे पत्र मागना क्या उचित है? परन्तु आज ऐसा लगता है कि बापूजी से जितनी बाते कर लेते य उनसे पूछ लेते, क्या उतना ही अच्छा न था?

जो हो, कई दिनो से एक सघर्ष सा मेरे मन मे चल रहा है। आखिर उसने बाध्य किया आपको पत्र लिखने के लिये।

कुछ महीने पहिले से मारवाडी समाज के युवक बधुओ ने, मारवाडी समाज मे जो पर्दा प्रथा प्रचलित है, उसको हटाने के लिये विवाहो के मौको पर इस प्रथा के खिलाफ सत्याग्रह, या पिकेटिंग कहिये, शुरू किया। मै तो अपने-आप मे उसको पर्दे के विरुद्ध प्रदर्शन कहना ज्यादा मुनासिब समझता हूँ। कुछ भाई और बहिन विवाह के स्थान पर जाते हैं। अपने हाथो मे लिखे हुए पोस्टर रखते हैं, जिनमे पर्दे के बारे मे हमारे देश के बडे लोगो की राय लिखी रहती है और इसी तरह के छपे हुए परचे भी बाटते हैं, नारे लगाते है।

जब यह काम शुरू किया गया तो मुझे भी बुलाया गया और मुझ से भी राय मागी गई। मुझे उस समय ऐसा लगा कि इस काम के लिये सत्याग्रह जैसा कदम नही उठाना चाहिये। दूसरे, जो लोग सत्याग्रह करनेवाले थे, उनमे से कुछ लोग मुझे जल्दी उत्तेजित हो सकनेवाले लग रहे थे। मै उसमे शामिल नही हुआ पर वे लोग मुझसे बराबर सलाह-मशविरा करते रहे थे। कई मित्र उसमे थे। मै बराबर इस चीज को देखता रहा और मुझे ऐसा विश्वास होने लगा कि ये लोग सयम से काम करने की कोशिश करते हैं। साथ ही, यह भी लगा कि इस सत्याग्रह का प्रभाव युवको के मनो पर अच्छा पड रहा है। उनको बल मिल रहा है पर्दा प्रथा को हटाने मे। उन सत्याग्रह करनेवाले मित्रो का तो आग्रह था ही। मै

भी सत्याग्रह के काम मे शरीक हो गया। मेरे आने से उसमे थोडा-बहुत सुधार भी हुआ, ऐसा लगता है।

पर पुराने विचार के भाई इसको ठीक नही मानते। यह ठीक भी है। नये विचार के या, यो कहे, जो लोग पर्दा प्रथा के विरोधी है, जिनके यहाँ पर्दा प्रथा को हटा दिया गया है, वे भी पिकेटिंग के विरोधी है। मेरे नजदीक के मित्र भी पिकेटिग के विरोधी है। जब यह सवाल सामने आया तो सोचता रहा कि कोई गलती तो नही हो रही है। पर ऐसा भी लगा कि जान मे तो कोई ऐसी बात नही जिसके बश होकर अपने इस काम मे लोभ या अन्य किसी ऐसे कारण से पडे हो, जो नैतिकता के या अपने जिन विचारो पर चलने की कोशिश करते है, उनके खिलाफ हो।

पिछले दिनो श्री घनश्यामदासजी बिडला यहा आये थे। उन्होने मुझ से इस काम के लिये खासतौर पर बाते की और कहा कि यह तो सरासर जबरदस्ती है और गाधीजी की पद्धति के, गाधीजी की विचारधारा के, उनके दर्शन के खिलाफ है। मैंने उनको नम्रता से बताया कि गाधीजी के सिद्धातो पर चलने की हिम्मत करने का दावा तो मैं नही कर सकता पर यदि मेरी निगाह मे यह बापूजी के विचार के खिलाफ हो तो मैं इस काम को नही करना चाहूँ। पर उनसे काफी बाते होने पर भी कुछ जँची नही। नतीजा यह हुआ कि एक-दो जगह हम लोगो ने पिकेटिग की और घनश्यामदासजी उन विवाहो मे शरीक हुए। इससे हमारी विरोधी पार्टी को थोडा बल मिला। जो हो, अब हमारे मित्र, जो भले और अच्छे आदमी है, भी कहते है कि यह काम, यह पिकेटिंग सामने वाले के दिल मे हठ और गुस्सा पैदा करते हैं तथा उसके विवाह जैसे मागलिक काम मे बाधा डालता है, उसके मन मे दुख और दर्द पैदा करता है। यह हिंसा है। और, इससे दिल बदल भी कैसे सकता है? श्री घनश्यामदासजी ने भी ऐसी ही बाते कही थी। इधर हमारे साथी उतावले से हो रहे हैं कि हमे ज्यादा उग्र होना चाहिये। यानी, हमे इतनी जोरदार पिकेटिंग करनी चाहिये कि या तो लोग वहाँ आये ही नही और आवे तो हमारे ऊपर से ही विवाह के स्थान पर जाये।

मेरे मन मे यह क्रिया चल रही है कि हमे जिनके यहाँ विवाह हो, उनके काम मे किसी प्रकार की बाधा पहुँचाये बिना अपना काम करते रहना चाहिये। यदि वह हमारे कामो से दुखी होता हो, उसके मन मे ऐसा लगता हो कि हम लोग जो कर रहे है, वह उसे हानि पहुँचाने की नियत से कर रहे है तो फिर कौन-सा रास्ता, कौन-सा तरीका हम अखतियार करे, जिससे हम उसके मन पर अपना सही असर डाल सके। आज तो ऐसा लगता है कि हम लोग एक पार्टी बनते जा रहे है, वे दूसरी पार्टी बन रहे है। यह तो वाछनीय नही मालूम होता।

सब से ज्यादा तकलीफ तब होती है, जब अच्छे लोग नाना तरह की बाते कह कर हमारे इस काम का विरोध करते हैं और विवाहो मे शामिल भी होते है। हमे क्या करना चाहिये इन सब हालतो मे? मैं तो अपने खुद के लिये आपको तकलीफ दे रहा हूँ। आप जो लिखेगे, उसका असर तो सब पर ही पडेगा।

यदि इसके द्वारा कुछ भी अनुचित हो तो कम-से-कम मै तो इस काम मे अलग हो जाना ही पसन्द करूगा। आप उचित समझे तो मुझे पत्र मे उत्तर देने की कृपा करे, उचित समझे तो 'हरिजन' मे लिखे। पत्र लम्बा हो गया है। इतना लम्बा पत्र लिखने मे सकोच भी है पर कुछ बाते आपको बताना जरूरी मालूम हुआ।

पूज्य गोमती बहिन को हम दोनो का प्रणाम कहे। आप लोगो की तबियत के बारे मे क्या लिखा और क्या पूछा जाय? वह तो जैसी चलती है, चलती ही है। यो साधारणत तो ठीक चल रही है न? आप इन्दौर सर्वोदय सम्मेलन मे जाने का विचार तो कर ही रहे होगे। 'हरिजन' मै बराबर पढता हूँ। आजकल की हवा मे उससे जो खुराक मिलती है, वह जीवन का सहारा है।

विशेष कृपा। क्षमा करेगे।

सीताराम सेकसरिया का प्रणाम

—— ० ——

श्री जयप्रकाश नारायण को

ता० १०-१०-६२

प्रिय भाई श्री जयप्रकाशजी,

सादर नमस्कार!

इस बार मेरे बीमार हो जाने के कारण हम लोग मिल नही सके। आपका पत्र यथा समय मिल गया था। प्रभा बहन से भेट हुई और मैने आपसे मिलने की इच्छा प्रकट की तो उन्होने कहा कि आप सुबह प्लेन से चले गये।

आपको पत्र लिखने की मेरी अनेक बार इच्छा होती है। पर पत्रो का सिलसिला बैठा नही। आप भी बहुत ज्यादा दूर मे रहते हैं। परसो के अखबारो मे श्री जवाहरलालजी के हिन्दी सम्बन्धी भाषणो के उत्तर मे आपका एक वक्तव्य पढा जो बहुत ही सामयिक, उचित और अच्छा था। जवाहरलालजी की हिन्दी-नीति के बारे मे मेरे मन मे भी बहुत क्षोभ है। सविधान मे जो सशोधन आ रहा है, वह उसी रूप मे स्वीकार हो जायेगा तो अग्रेजी सदा के लिये राजकीय और प्रभावशाली भाषा रहेगी। और, हिन्दी कभी राष्ट्रभाषा नही होगी। इसके अलावा अग्रेजी राज्य मे अग्रेजी के द्वारा जितना काम होता था, उतना ही या उससे भी ज्यादा बराबर होता रहेगा। पहिले की अपेक्षा आज इगलिश मीडियम की स्कूलें अधिक चलती हैं और लोग अपने बच्चो को इगलिश मीडियम से पढाना ज्यादा पसन्द करने लगे है। इन सब स्थितियो मे हिन्दी का उचित नेतृत्व होना आवश्यक है। दुःख है कि हिन्दी के पास कोई बडा नेता नही है। डा० लोहिया ऊटपटाग बातें करते है। डा० रघुवीर शेष मे साम्प्रदायिक हैं और सेठ गोविन्ददास जी का बहुत अधिक सतुलित प्रभाव नही मालूम पडता। दिनकरजी आदि की

भी कोई खास बात नही। ऐसी स्थिति में आप यदि जोरदार आवाज उठावें और हिन्दी को उचित नेतृत्व प्रदान करे और पूज्य राजेन्द्र बाबू का हम लोग आशीर्वाद प्राप्त कर सके तो सविधान मे जो सशोधन होने वाला है, वह समाधान-कारक रूप मे हो सकता है और हिन्दी वाले जो गलत तरीके अपनाते है, उनका भी सुधार हो सकता है। यदि पटना मे आप हो तो मेरी इच्छा होती है कि आपसे मिलू और पूज्य राजेन्द्र बाबू के भी दर्शन करूँ। आपके वक्तव्य की एक कापी मझे भेज सके तो भेजे।

आशा है आप स्वस्थ हैं। कलकत्ते आने का तो फिलहाल आपका कोई कार्यक्रम नही है न ?

आपका
सीताराम सेकसरिया

काकासाहब कालेलकर को

(१) २३-२-५७

पूज्य काका साहब,

सादर प्रणाम ।

इधर कई दिनो से आपके कृपा-पत्र नही मिल रहे है। मैं भी नही लिख पा रहा हूँ। कुछ दिनो पहिले एक पत्र आपकी सेवा मे भेजा था। ऐसा लगता है कि शायद वह पत्र आपको मिला नही।

'मगल प्रभात' साप्ताहिक प्रकाशित हुआ, तब से मुझे तीन अक मिले है। उनको मैंने ध्यानपूर्वक पढा है। 'मगल प्रभात' मासिक को भी बराबर पढता रहा हूँ। साप्ताहिक 'मगल प्रभात' मुझे मासिक से अच्छा लगा। यो तो उसमे भी अधिकाश लेख आपके ही रहते थे, तब भी यह साप्ताहिक अधिक अच्छा लगा। 'मगल प्रभात' के द्वारा आपके विचार और आपका साहित्य पढने का सुअवसर मिलता है, जो कि अन्यत्र दुर्लभ है। आप जानते हैं कि मेरा यह विश्वास रहा है और है कि अनेक मानो मे आपका साहित्य समाज के लिए आज और आगे सदा ही उपयोगी रहेगा।

आदरणीय रैहाना बहिन के दो लेख साप्ताहिक 'मगल प्रभात' मे पढने को मिले। उनके प्रति अधिक-से-अधिक आदर रखते हुए, उनके ज्ञान, विचार और उनकी जीवन-साधना को जानते एव समझते हुए भी स्त्री-शिक्षा के सबध मे उन्होने जो विचार प्रकट किये है, उनसे मैं अपने-आपको सहमत नही कर सका। आज के युग और मनुष्य की जो स्थिति है, उसमे हम स्त्री को पुरुष से अधिक भिन्न अवस्था मे नही रख सकते। कामो मे भी विभाग बहुत अधिक नही किए जा सकते। ऐसी स्थिति मे शिक्षा मे भी बहुत फर्क नही होना चाहिये। शिक्षा के लिये हमने भिन्न-भिन्न विषय रखे हैं। उसी प्रकार स्त्रियो के लिए जो विषय

विशेष उपयोगी माने जाये, वे और जोड दिये जाये। यदि स्त्रिया उन विषयो को पसन्द करे तो उनको पढ सकती हैं। जो स्त्रिया सार्वजनिक, राजनीतिक और आर्थिक जीवन मे प्रवेश करना चाहती है तथा जो स्त्रियाँ सिर्फ गृहस्थ-जीवन मे बाल-बच्चो और पति के साथ ही रहना ज्यादा पसन्द करती हैं, वे अपने-अपने अनुकूल विषयो का चुनाव करले। हमे शिक्षा-प्रचार का काम अधिक-से-अधिक आगे बढाना है, करोडो-करोडो लोगो को हमे शिक्षित करना है। ऐसी हालत मे यदि लडके और लडकिया एक ही शाला मे शिक्षा पा सके तो शिक्षा के विस्तार मे सहायता मिलेगी। लडको के लिए अलग स्कूल और लडकियो के लिए अलग स्कूल तथा ऐसे ही उच्च शिक्षा पाने के लिए अलग-अलग कालेज खुले और लडको के लिए पुरुष-अध्यापक तथा लडकियो के लिए स्त्री-अध्यापिका आदि की व्यवस्था की जाये तो वह अधिक व्ययसाध्य है। और, स्थान की आवश्यकता भी अधिक होगी। इतने ज्यादा अध्यापक और अध्यापिकाओ का मिलना भी कठिन सा है—खासकर अध्यापिकाओ का। हमारे देश मे लडको के लिए स्कूल और कालेज अधिक चल रहे है, लडकियो के बहुत कम। देहातो मे तो लडकियो की शिक्षा का बहुत ही कम प्रबध है। और, प्रबध करना भी कठिन हो रहा है। यदि लडको की स्कूल मे ही लडकिया भी पढने लगें तो कुछ अशो मे लडकियो की शिक्षा आगे बढेगी।

स्त्री और पुरुष समाज के सारे ही काम साथ-साथ करते है तो शिक्षा भी साथ-साथ हो, इसमे क्या बाधा है? शायद शुरू से साथ रहने के कारण उनके पारस्परिक सबध आज से अधिक सुखद, सुन्दर और सुव्यवस्थित हो सके। समय था, जब समाज स्त्रियो की शिक्षा की आवश्यकता नही मानता था और स्त्री-शिक्षा का विरोध भी करता था। आज यह स्थिति बिलकुल बदल गई है। विरोध बिलकुल मिट गया है। बल्कि उसकी आवश्यकता महसूस होने लगी है। तब भी समाज का बहुत बडा हिस्सा यह मानता है कि स्त्रियो की शिक्षा-व्यवस्था पुरुषो से भिन्न और अलग स्थान मे हो। अधिकाश लडकियो की स्कूले सिर्फ लडकियो के लिए ही चलाई जाती है। आज की स्थिति मे इससे थोडा काम हो रहा है। मेरी निगाह मे यह स्थिति पैदा करनी चाहिए कि लडके और लडकियो की स्कूले और युनिवर्सिटी एक साथ ही चलें। जैसा मैंने ऊपर लिखा है, स्त्रियोपयोगी विषयो की व्यवस्था सब स्कूलो और कालेजो मे की जाय और स्त्रियो के समय-विभाग अलग कर दिये जायें। यो ही मेरे मन मे यह विचार आये और लिख दिये हैं। करीब ३० वर्ष से मै स्त्री-शिक्षा के काम से सबधित हूँ। आज भी मुझे इस बात की कठिनाई अनुभव हो रही है कि विज्ञान पढाने के लिये बहुत योग्य बहिनो का मिलना कठिन है, जब कि पुरुष-अध्यापक आसानी से मिल जाते है। और तो और, गार्हस्थ्य-शास्त्र पढाने के लिए भी बहिने कम मिलती है। उनकी लिखी पुस्तकें तो और भी कम। इसलिए पुरुष और स्त्री दोनो मिल कर ही पढने और पढाने का काम अधिक रूप मे कर सकते है।

रैहाना बहिन को मेरे प्रणाम कहे और मैंने कोई धृष्टता की हो तो पहिले ही क्षमा माग लेता हूँ। "सुनिये, काका साहेब" पुस्तक पढ कर रैहाना बहिन की

शैली और भाषा पर मैं मुग्ध हो गया था। रैहाना बहिन का कोई भी लेख पढते समय ऐसा लगता है कि वे बोल रही है और हम सुन रहे है। वे अपने लेख के द्वारा पाठक के सामने प्रत्यक्ष उपस्थित होती है, जो कि सहज नही है।

सरोज बहिन अच्छी होगी। उनको मेरे प्रणाम कहे।

विनीत,

सीताराम सेकसरिया

—— ० ——

(२)

२९-३-५७

पूज्य काका साहब,

मगल प्रभात' के ता० बारह मार्च के अक मे 'अचलो का तर्पण' आपका लेख पढा। आपके सभी लेख अच्छे और पठनीय होते है पर जिस समय आप नदी, पर्वत या प्रकृति के अन्य अवदानो का वर्णन करते है, उस समय की आपकी तन्मयता पाठक को भी सहज ही तन्मय कर लेती है। 'हिमालय नू प्रवास' और 'जीवन नु आनन्द' को पढा हुआ आदमी उन वर्णनो को किसी समय भी भुला नही सकता। 'सप्त सरिता' मे भी आपने भारत की सस्कृति और नदियो का सुन्दर इतिहास ही नही, एक मोहक कला का सजीव चित्रण भी किया है। 'हमारे देश का नाम' एक बहुत छोटा-सा लेख भी अपने-आप मे पूर्ण है। आज देश मे जिस शिक्षा का प्रचार हुआ है या हो रहा है, वह स्वभावत हमे सच्चे 'भारत-दर्शन' से विमुख करता जा रहा है। मैं न तो यह कहता हूँ और न यह मानता हूँ कि हमारा प्राचीन सारा-का-सारा उत्तम है और नवीन या आधुनिक सब-का-सब बुरा है। मुझे यह अच्छा लगता है कि प्राचीन भारत की विशेषताएँ और नवीन ससार की वैज्ञानिकता के द्वारा हम इतिहास का सही रूप देखे। उसके दर्शन, कलाओ की सुन्दरता, और प्राचीन की महत्ता स्वीकार किये बिना नही हो सकते। किसी के प्रति श्रद्धा का सस्कार लिये बिना हम उसकी वास्तविकता को नही पा सकते।

काका साहब, एक बार मैं एक चित्र-पारखी और कलाविद को उनकी सहायता कराने के लिये एक धनी के यहा ले गया। उन्होने आदर के साथ उनकी सहायता की। लौटते समय रास्ते मे मैंने उनसे साज-सामान से सज्जित उक्त धनी के ड्राइगरूम के सम्बन्ध मे पूछा—वह आपको कैसा लगा? उन्होने साधारण तरह मे उत्तर दिया—अच्छा ही था। मैंने उनके हृदय को कुरेदने की कोशिश की तो कहने लगे—कुछ था नही। यह लम्बा दास्तान है। फिर उन्हें एक दूसरे सज्जन के यहाँ ले गया, जो उस धनी के सामने साधारण सा ही धनी है पर उनको चित्रो का शौक है। उनका साधारण सा ड्राइग रूम था पर यह कलाविद वहाँ रम गया। इसी प्रकार कोई बीस-बाईस वर्ष पहिले मैं पू० जमनालालजी के साथ

सर जगदीशचन्द्र वसु के यहाँ गया था। उनका ड्राइंग रूम देखा, जिसमें भारत-माता का एक चित्र था। वह चित्र तथा बैठने का स्थान हर तरह से कलापूर्ण था। मैं आज तक भूल नही सका हूँ। गुरुदेव के प्रथम दर्शन शाति निकेतन मे जिस कमरे मे मैंने किये, उसे भी भुलाया नही जा सकता है। वहाँ आज के ढग की तडक-भडक नही के बराबर थी पर जो कुछ था, वह कितना सुन्दर और कला-पूर्ण था, यह तो अनुभूति की ही बात है।

एक और बात कहूँ। एक योरोपियन महिला को एक आधुनिक स्कूल दिखाने ले गया। उसने वहाँ की सब चीजे देख कर कहा—यह तो हमारे यहाँ के स्कूलो जैसी है। सचालक को बहुत प्रसन्नता हुई। पर तुरन्त ही उस महिला ने कहा—इसमे आपका क्या है और वह कहाँ है? सचालक महोदय इसका समुचित उत्तर नही दे सके और इधर-उधर की बात बताने लगे। यह भी लम्बी बात हो जायेगी, यदि सब कहने लगू।

काका साहब, अपने श्री शिक्षायतन मे एक नवीन भवन का निर्माण हो रहा है। उसमे एक रगमच भी बना रहे है। इस सिलसिले मे कल एक कलाकार के यहाँ गया था। उस कलाकार की बातो ने मुझे प्रभावित किया और रात मे तीन बजे जब नीद टूटी तो वे बाते याद आने लगी। यद्यपि सोने की इच्छा थी पर सो नही सका। सोचता रहा और साढे-चार बजे यह पत्र आपको लिखने का विचार किया।

ऊपरोक्त कलाकार ने बातो के दौरान मे मुझ से पूछा—आपने कोणार्क देखा है? मैंने कहा—हाँ। वे एक एलबम निकाल कर दिखाने लगे और बोले—कोणार्क देखें। फिर भुवनेश्वर, काठमाडू तथा अन्य स्थानो की बात कहने लगे और कहा—भारत मिट रहा है। भारत के दर्शन करने हो तो उन स्थानो मे जो कुछ बचा है, उसके दर्शन करने चाहिये और उसकी रक्षा करने का पूरा-पूरा प्रबध होना चाहिये। उन्होने दुख प्रकट करते हुए कहा—काठमाडू मे अब हवाई जहाजो से लोग पहुँचने लगे हैं। वहा की मूर्तियाँ, जो कि अद्भुत नमूने है, अब वहाँ मे चोरी होकर चन्द पैसो मे बाहर जा रही हैं। इसी प्रकार कोणार्क की कितनी चीजें नष्ट हो चुकी हैं। उन्होने इन कलाओ की उत्पत्ति और उपासना का इतिहास बडे सुन्दर ढग से बतलाया। मुझे बहुत अच्छा लगा पर मैं चाहूँ तब भी उस वर्णन को यहाँ देने मे अपने को असमर्थ पाता हूँ।

काका साहब, मैं कलाविद नही, साहित्यकार नही, कवि नही, चित्रकार भी नही, पर मुझे ऐसा लगता है कि ईश्वर के सुन्दर रूप का दर्शन प्रकृति के सौंदर्य मे, ईश्वर की सत्यता का दर्शन चित्र, कविता, साहित्य और कला द्वारा उसकी अनुभूति मे है। ईश्वर के शिवत्व का दर्शन उन कलाओ की उपासना यानी मानव के कल्याण की प्रचेष्टा मे ही होती है, हो सकती है। ईश्वर यानी सौंदर्य, सत्य, और शिव (सबके कल्याण की इच्छा, भावना और प्रचेष्टा) ही कला का उपास्य बने। तब ही कला की, साहित्य की एव सगीत की सार्थकता है। ससार मे जो कुछ

वास्तविक है, वही तो ईश्वर है। गायक, कवि, साहित्यकार, चित्रकार भी तब ही सफल होता है, उस वास्तविक की अनुभूति को तभी व्यक्त करने की उपलब्धि प्राप्त कर सकता है। यह सब विचार जो उस समय मन मे आये, वे आपको लिख भेजे है।

सीताराम सेकसरिया के प्रणाम

(३)

ता० ३०-७-६३

पूज्य काका साहब,

सादर प्रणाम !

आपका ता० १२-७-६३ का पत्र मिला। निश्चय ही इस बार आपके अन्य स्थान मे ठहरने से अटपटा-सा लगा। और बहुत बाते न हो सकी और साथ भी न रह सका। फिर आपके पास समय भी बहुत कम था। सरोज बहिन साथ न होने से आपको शायद कष्ट भी हुआ।

विचारक-सम्मेलन मे आपका व्याख्यान ही हिन्दी मे हुआ, बाकी सब अग्रेजी मे। यह हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे विचारक कहे जाने वाले लोग अपने विचार अपने देश की किसी भाषा मे प्रकट नही कर सकते। देश के विचारक विदेशी भाषा के आधार पर, विदेशी भाषा के सहारे चिन्तन करते हैं और उसको प्रकट भी उसी भाषा मे करते है, यह शायद हमारे यहाँ ही है। यह बात तो समझ मे आती है कि हम अन्यान्य भाषाओ से, खासकर अग्रेजी या अन्य विदेशी भाषाओ से विचार ले। पर उन्हें प्रकट भी विदेशी भाषा मे ही करे तो इसको क्या कहा जाये ? हमारे चिन्तक इस बात की आशा करते हैं कि हमारे विचारो को सुनने और समझने वालो को अग्रेजी जाननी चाहिये। उनको इस बात की चिन्ता नही कि यह विचार हम लाखो, करोडो लोगो को देना चाहते हैं या कुछ थोडे से अग्रेजी जाननेवालो को ? वास्तव मे उनको अपने विचार फैलाने की चिन्ता नही है। कुछ तथा-कथित लिखे-पढे लोगो से ही प्रशसा प्राप्त करनी है। इस बात से बहुत दु ख होता है कि अग्रेजी पढा-लिखा आदमी यह क्यो मानता है कि वह साधारण जनता जैसा नही है। वह अपने को विशेष मानता है और अपनी बात विशेष लोगो को ही समझाना और बताना चाहता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि साधारण जनता से हमारा हृदय का सम्बन्ध नही जुडता और देश की वस्तु-स्थिति का भी हम पूरा-पूरा अनुभव नही करते है। और, यदि सच कहा जाये तो ऐसा भी लगता है कि इसकी हमे चिन्ता नही है कि हम वास्तविकता को समझे और करोडो लोगो के लिए कुछ करे। यदि हमे जनता मे पहुचना हैं और जनता मे काम करना है, जन-मानस को विकसित करना है तो हम विदेशी भाषा का आधार ले ही नही सकते। विदेशो से हम कितने भी विचार ले, विज्ञान से

हम कितनी भी सहायता लें, आधुनिक दुनिया मे हम कितना भी सम्पर्क बढावें, पर इस सारे ज्ञान को यदि वितरण करना हो और लोगो को बाटना हो तो हमें अपनी भाषाओ का ही सहारा लेना चाहिए। पता नही यह साधारण-सी बात हमारे देश के बुद्धिजीवी लोगो की समझ मे क्यो नही आती? जो हो, आपका व्याख्यान हिन्दी मे हुआ। मुझे यह अच्छा लगा।

विनीत,
सीताराम सेकसरिया

(४)

१२-८-७०

पूज्य काका साहब,

सादर प्रणाम!

३०-७ का पत्र देर से मिला। मारवाडी बालिका विद्यालय के लिये प्राप्त आपके दोनो लेख पूरे पढ गया। वे प्रकाशित होनेवाली स्मारिका के लिये सुरक्षित रख दिये गये हैं।

'मंगल-प्रभात' से आपके कार्यक्रमो के बारे मे थोडी जानकारी मिलती है। ईश्वर ने कृपा कर आपको यह शक्ति और मन दिया कि इस उम्र मे भी आप उसी तत्परता से यात्रायें करते है और इसका लाभ लोगो को मिलता है। मेरी प्रार्थना है कि आपके द्वारा सांस्कृतिक-सामाजिक विकास का लाभ इसी प्रकार चलता रहे। आपके स्वास्थ्य के बारे मे जानकारी रखने की इच्छा रहती है। प्रिय सरोज बहन कभी-कभी एक पोस्टकार्ड डाल दिया करे तो अच्छा लगेगा।

आप तो जानते हैं कि पू० बापूजी के रचनात्मक कामो मे मुझे स्त्री-उन्नति, हिन्दू-मुस्लिम एकता, हरिजन-सेवा, खादी-प्रचार और राष्ट्रभाषा-प्रचार—ये पाच काम करने मे ज्यादा अनुराग रहा और सब से पहले तो स्त्री-उन्नति का काम ही मुझे अधिक प्रिय लगा और अन्त तक या अभी तक मैं उसमे रस के साथ जुटा हुआ हूँ। वैसे सारे काम ही मुझे प्रिय लगते है पर आजकल हिन्दी की उन्नति का कोई काम हो तो उसमे मुझे ज्यादा रस आता है।

आपका सान्निध्य प्राप्त करने की इच्छा रखते हुए भी वह बन नही पा रहा है। आप ठहरे परिव्राजक और मैं ठहरा घर के बाहर न निकलने वाला या घर के बाहर निकलने से डरने वाला आदमी। तो यह संयोग कैसे बैठे? इसलिये मन से मिल लेते हैं या तो पत्रो मे या किसी-किसी मौके पर आप कलकत्ते आते हैं तब। और कलकत्ते आप आते भी है, तो व्यस्तता रहती है। खैर, आपका लिखा पढने मे ही एक प्रकार से आपके सान्निध्य का अनुभव होता है। आप मुझ पर इतनी कृपा रखते हैं, यह मेरा सौभाग्य है।

सीताराम के प्रणाम

—— ० ——

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी को

(१)

आदरणीय चतुर्वेदीजी,

सादर प्रणाम !

आपका पत्र यथा समय मिला था। दु ख है कि वह रख कर भूल गया।

रु० ५००) भिजवाने है, वह कहाँ भिजवाऊँ? आप लिखे तो दिल्ली भेज दूँ या आप लिखे तो फिरोजाबाद। आपका पत्र आते ही तुरन्त भिजवा दूँगा। ५-१० दिन की देरी हो गई। इसके लिये क्षमा करे।

आपके पास साहित्य का अनन्त मसाला है। अब तो आपका काम उसका उपयोग करना ही रह गया है। स्वास्थ्य बर्दाश्त करे, उतना परिश्रम करके इसी काम को करते रहे तो साहित्य और समाज के लिये आपकी बडी सेवा होगी। आपके पास जो अनन्त पत्र-भडार है, उसका उपयोग जैसे भी हो सके, करना चाहिए। और, उसकी सुरक्षा होनी चाहिए। वह किसी साहित्यिक सस्था की सम्पत्ति बननी चाहिए, जो प्रतिष्ठित सस्था हो और अच्छा काम कर सके। एक प्रकार से जैसे धनी या कोई भी बडा आदमी 'विल' बनाता है, उसी प्रकार आपको इस सम्पत्ति की व्यवस्था करनी चाहिये। आपने अपने जीवन मे कभी सग्रह की ओर ध्यान नही दिया। काम चलाऊ ही परिग्रह से आपका जीवन चलता रहा। अब शेष चरण मे तो आपका जीवन देश, समाज और साहित्य की ही बपौती है। इसी-लिये उसका उपयोग भी वैसा ही होना चाहिये।

स्वास्थ्य अवश्य ठीक रखना चाहिये, जिससे काम कर सके। कई बाते लिख गया हूँ।,अनुचित लगे तो क्षमा करे। 'स्मृतिकण' आपको अच्छी लगी है, यह मेरे लिये प्रसन्नता की बात है। आगे उसे छपवाना क्या? और जो नये लेख लिखे हैं उनका उसमे सग्रह करना ठीक हो सकता है पर मैं ऐसा करने मे हिचकता हूँ। मैं साहित्य के प्रति खूब आकर्षित हूँ। साहित्यकार की पूजा, सेवा, श्रद्धा करना चाहता हूँ। वह मुझे आदरणीय लगता है। मुझे लिखना अच्छा लगता है, पढना भी। पर मैं अपने-आपको लिखने के लायक नही मानता। किसी मौके कुछ लिख लिया—निजी सुख ही से तो वह स्वभावत लिख लिया पर लिखने की क्षमता मुझ मे हो, ऐसा विश्वास नही होता। जो भी हो आप जैसे बडे लोगो की बात पर मन चाहता है—कुछ करना चाहिये पर यो ही वह फिर रह जाता है। मेरी डायरी करीब पैंतीस वर्ष की लिखी पडी है और वह बराबर लिखी गई बिना नागा पर वह एक प्रकार से कागज काला करने की हालत मे ही पडी है। ऐसे ही कुछ अच्छे-बुरे पत्र मेरे पास भी है। पर सब काम ऐसे ही रह जाते हैं। सामाजिक, साहित्यिक और शैक्षणिक काम मे, प्रत्यक्ष काम करने मे जो हो सकता है, वह करने मे सतोष होता है और उसमे समय, शक्ति अनायास या चाहे जैसे

लगती रहती है। आपके साथ काम करने का मौका बहुत वर्षो मे नही मिला अब तो वह और भी दुर्लभ समझना चाहिये। पत्रो के द्वारा भी बहुत कुछ हो सकता है।

आपका,
सीताराम सेकसरिया

(२)

२६-२-१९५७

आदरणीय चतुर्वेदीजी,
सादर प्रणाम !

बहुत दिनो बाद आपको पत्र लिख रहा हूँ। लिखने का विचार तो न मालूम कितनी बार किया पर लिख न सका। सकोच भी रहा और आलस्य भी। यह भी सोचा कि आपका स्वास्थ्य जैसा चल रहा है, उसमे आप पर लिखने-लिखाने का भार डालना उचित नही। इधर आपकी कुछ कविताएँ 'नया समाज' मे पढी और एक लेख कही से उद्धृत किया हुआ 'तरुण' मे पढा जिसका शीर्षक है "लेखक अत्यन्त अरक्षित है"।

लगभग २०-२५ वर्ष से भी पूर्व 'भारतीय आत्मा' की 'फूल की चाह' कविता पढी थी। तब जो प्रेरणा, भावना और ओज प्राप्त होता था, वही और शायद उससे भी अधिक सात्विक तेज आज की रचनाओ मे मिलता है। 'नया समाज' मे 'बज उठी बासुरी, कि दु ख उठी पासुरी" कविता पढ कर मै कुछ देर के लिए खोया-खोया हो गया। आप जैसे लोगो की रचनाए ही साहित्य की उच्चता उद्दामता और श्रेष्ठता की परम्परा को सुरक्षित किये हुए है। और न मालूम कितने लोगो को उससे प्रेरणा मिलती है? ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आपके द्वारा इसी तरह के साहित्य की रचना अनेक दिन कराता रहे।

"लेखक अत्यन्त अरक्षित है" लेख मे आपने लेखक की स्थिति का जो वर्णन किया है और उसकी वस्तुस्थिति पर जो प्रकाश डाला है, वह सचमुच ही विचारणीय और शोचनीय है। लेखक को जो सम्मान, जो आदर और जो जीवन के साधन मिलने चाहिये, वे उसको न समाज से मिल रहे है और न शासन से। इसलिए लेखक जिस स्थिति मे आज जी रहा है, वह उसके लिए चाहे कैसी भी कष्टकर हो, समाज के लिए कल्याणकारी नही है। जो समाज अपने देश, अपने साहित्यकार की इज्जत नही करता उसके लिये जीने के सम्मानपूर्ण साधन नही जुटाता, वह समाज उन्नत और विकसित समाज नही कहा जा सकता। सुसस्कृत तो कहा ही कैसे जा सकता है? पराधीन देश मे जो कुछ यातनाए, कष्ट और अत्याचार साहित्य-कार, देशभक्त और समाजसुधारक को सहने पडते थे, वे आदर्श की पूजा मे सह लिये जा सकते थे। पर आज भी वैसी ही स्थिति रहे, वैसे ही दु खो और अभावो

का सामाना करना पडता रहे, तो वे सुख के साथ बरदाश्त नही किये जा सकते। इसीलिए हिन्दी के बहुत से साहित्यकार ग्राज रेडियो ग्रौर सरकारी सेवाग्रो की शरण ले रहे है। स्वर्गीय प्रेमचन्दजी कुछ दिनो के लिए जब फिल्म मे गये थे, तो उनके पाठको ग्रौर प्रशसको को ग्रत्यन्त ग्राश्चर्य एव दु ख हुग्रा था। वे वहॉ रह न सके ग्रौर ग्रभाव एव दु ख का जीवन जीते-जीते चल बसे। उनके पाठक ग्रौर प्रशसक उनके जीते जी कुछ कर न सके। ग्रब उनके ही साहित्य से उनके पुत्र सुख ग्रौर समृद्धि का जीवन जीते हैं।

कई बार जब यह सुनने ग्रौर पढने मे ग्राता है कि ग्रमुक कवि या लेखक रोगग्रस्त होकर दवा के ग्रभाव मे चल बसा तो ग्रत्यन्त दु ख होता है। ग्रभी तक सगठित रूप से ऐसी कोई सस्था नही बन सकी है कि ऐसे लोगो की सहायता कर उन्हे सुरक्षित कर दे। सरकार तक खबर पहुंचाना ग्रौर उससे कुछ सहायता कराने की स्थिति पैदा करना सहज नही। यदि कही कुछ सफलता मिले भी तो वह विफलता की सीमा पूरी होने पर ही मिलती है जिसका कोई ग्रर्थ नही होता। व्यक्ति-गत किसी से कुछ किया जाय तो वह वहुत ही सीमित ग्रौर कही-कही ही हो सकता है। इसलिये उसका वहुत महत्व नही माना जाना चाहिये।

कई वर्षो पूर्व वहिन महादेवीजी ने साहित्यकार ससद की स्थापना करके इस काम को करने का विचार किया था तो मुझे वह चीज वहुत महत्वपूर्ण लगी थी ग्रौर मै उस सस्था से इच्छा करके सबधित भी हुग्रा। थोडा वहुत काम हुग्रा पर वह भी ग्राज नही के बराबर रह गया है। इसी प्रकार की बाते मेरे मन मे चलती रही है ग्रौर चल रही है। पर क्या कर सकता हूँ? मै २८ वर्प से भी ग्रधिक समय से व्यापार से ग्रलग हूँ। इन २८ वर्षो मे ग्रार्थिक जगत मे वहुत वडे परिवर्तन हो चुके है। इसलिये वर्तमान ग्रार्थिक स्थिति मे मै ग्रपने-ग्रापको वहुत उचित स्थान पर नही रख पा रहा हूँ। पर मेरी चाह है कि लेखको के लिये यदि हो सके तो कुछ करूँ? ग्रापके लिखने से भी काम होने की वहुत सभावना है। ग्रापका कही ग्राना-जाना तो प्राय वन्द-सा ही है। ग्रापके स्वास्थ्य से ग्रापको जितनी ग्राशा है, उतने से ही सतोप मान कर काम करना उचित है। स्वास्थ्य सवधी तथा ग्रन्य सव समाचार जानने की इच्छा है।

राजनैतिक स्थिति पर मैने कुछ भी नही लिखा, जब कि ग्रापका ग्रौर मेरा भी राजनीति से गहरा सबध रहा है ग्रौर उसके दुखो ग्रौर सुखो के ग्रन्दर से खूब ग्रच्छी तरह गुजरे है। राजनीति की वाते ग्राज ग्रौर भी दुखदायी वन गई हैं। चुप रहना उचित नही लगता, कुछ कर सकना कठिन मालूम होता है। जिनके साथ-साथ काम किया, जिनसे वहुत वडी प्रेरणा पाई ग्रौर ग्राशा की, ग्राज यदि कुछ करना हो तो उनका ही विरोध करना पडे। ऐसा लगता है कि पू० वापूजी के चले जाने के वाद राजनीति मे हम ग्रनाथ हो गये है। उनका जाना एक लावारिस-सी स्थिति पैदा कर गया है। जवाहरलालजी निश्चय ही एक वडे व्यक्ति हैं। पर वे भी परिस्थितियो मे घिरे हुए लाचार से ही हैं। फिर

सरकार चलाने वाला आदमी मोह मे न पडे, यह सभव नही लगता। यह सब यो ही लिख गया। आशा है आप सानन्द होगे।

आपका,
सीताराम

(२)

आदरणीय श्री चतुर्वेदीजी,

आपका ता० २७-१२-६० का बहुत ही सुन्दर और विचारपूर्ण पत्र मिला। आपकी भावनाओ का मै आदर करता हूँ। बगाली-गैरबगाली समस्या निश्चित रूप से उलझनपूर्ण है और मौके-मौके पर इसका अनुभव होता रहता है। परसो बिहार के मुख्य मन्त्री श्री कृष्णबाबू को श्री शान्तिप्रसादजी जैन ने प्रीतिभोज दिया था, जिसमे बगाल काग्रेस के कर्त्तमकर्त्ता श्री अतुल्य घोष भी आये थे। बातचीत के सिलसिले मे बीसो-तीसो खास आदमियो के बीच उन्होने कहा कि ग्रेटर कलकत्ता की जनसख्या ६० लाख है, जिसमे ५ लाख नान-बगाली है, जबकि वास्तव मे २५ लाख से कम नही हैं। प्रतिवाद स्वरूप उनसे कहा गया तो बहुत जोर से कहने लगे—मै कहता हूँ, वह ठीक है। इसी प्रकार की अनेक बाते और मनोवृत्ति समय-समय पर प्रकट की जाती है। बगाली समाज का बुद्धजीवी मनुष्य आज जिस तरह सोचता है, वह न तो उसके लिये ही अच्छा है और न दूसरे के लिए ही। ऐसी स्थिति मे सुधार होना मुश्किल है। जिस समाज का बुद्धजीवी गलत सोचने और करने लगता है, उसका भगवान ही मालिक है। दुर्भाग्यवश बगाल मे यदि सघर्ष हुआ तो मारवाडी या हिन्दी-भाषी, जो कह लीजिये, सहज ही यहाँ से हट कर चले जाये, यह न सम्भव है और न उचित ही। गैर-बगालियो द्वारा अरबो रुपयो की सम्पत्ति और कारखाने बगाल मे चलाये जा रहे हैं और सख्या मे भी वे काफी हैं। बगालियो की अपेक्षा वे परिश्रमी और सूझबूझ वाले भी अधिक हैं। इसके अलावा बगाली भी काफी सख्या मे देश के दूसरे-दूसरे प्रातो मे बसे हुए है। यहा की प्रतिक्रिया अन्य प्रातो मे भी होगी। इसका भी बगालियो को खयाल रखना पडेगा। केन्द्रीय सरकार भी इन समस्याओ पर विचार करेगी। ऐसी स्थिति मे गैर-बगालियो का बगाल से हट जाना सभव नही जान पडता। लेकिन जरूरत तो इस बात की है कि जो लोग बगाल मे हैं, वे बगालियो के साथ सद्भाव, सहयोग और मैत्री के साथ रहे। और बगाली भी उनके साथ ऐसा ही माने, ताकि बगाल की समृद्धि और शक्ति बढती रहे। हम लोगो ने तीसो-चालीसो वर्षो से यह प्रयत्न किया है कि हम परस्पर मे एक कुटुम्ब की तरह रहे। बगाल के राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और शैक्षणिक कार्यकर्त्ताओ से हमारा गहरा मेल-जोल रहा है। और, उन्होने भी यह माना है कि हममे और उनमे अन्तर नही। पर मै देख रहा हूँ कि उनके मनोभाव भी आज वैसे ही नही है, जैसे आज से दस-बारह वर्ष पूर्व या स्वतत्रता-प्राप्ति के पहिले थे। स्वाधीनता-प्राप्ति के दो-एक

महीनो वाद ही सोदपुर मे एक दिन बाते करते हुए पू० बापूजी के मुह से निकला था कि स्वतत्रता नही आयी, बला आयी। बापूजी के ये शब्द कितने वेदना भरे थे, इसको बताया नही जा सकता। स्वतत्रता से बडी कोई चीज नही और वह बहुत प्यारी है पर हमारा देश स्वाधीन होने के बाद जिस तरह सोचने-विचारने लगा है, कार्य करने लगा है, वह सुखद नही लगता और श्रेयस्कर तो है ही नही।

आपका पत्र भाई भागीरथजी को पढा दिया था। उनको भी आपका पत्र मिल गया था, जिसका उत्तर उन्होने आपको दे दिया है। उनका कहना है कि रामानन्द बाबू का स्मृतिग्रथ निकालना ठीक है। पर, उससे बगाली-गैरबगाली सम्पर्क मे कुछ अन्तर आयेगा या कुछ सुधार होगा, ऐसा उन्हे नही लगता। आज तो स्थिति यह हो गई है कि वे हमारे हर भले काम को भी शका की दृष्टि से देखते हैं। जो हो, यदि आप प्रयत्नशील हो तो ग्रथ प्रकाशित हो सकता है।

हिन्दी भवन के बारे मे आपके मन मे जो विचार है, वे ही मेरे मन मे भी है। और मैं इसके लिए प्रयत्नशील हूँ। श्री सोहनलाल दूगड से मैंने बातचीत की है। कोई जमीन हम लोग खोज रहे हैं। किसी अच्छे स्थान पर मौके की जमीन मिल जायगी तो ले लेगे। इसके बाद काम बढाने मे सुविधा हो जायगी। कलकत्ता मे आजकल जमीन के जो दाम है, और जिस तरह जमीन का अभाव-सा होता जा रहा है, उसमे डेढ लाख से कम मे जमीन का मिलना मुश्किल-सा है क्योकि कम-से-कम १०-१२ कट्ठा जमीन तो चाहिये ही और १०-१५ हजार प्रति कट्ठा से कम मे मिलना असम्भव-सा ही है। मै पूरी कोशिश मे हूँ कि किसी तरह हिन्दी-भवन का काम किसी रूप मे शुरू हो जाये। आपका स्वास्थ्य यदि अच्छा होता तो आग्रहपूर्वक आपको यहाँ बुलाता और आपकी उपस्थिति इन सब कामो मे बडी सहायक और कारगर होती। पर यह सब आपके स्वास्थ्य पर ही निर्भर करता है।

आज की स्थिति मे और आपकी इस उम्र मे आप ऋणग्रस्त है, यह जानकर तो मुझे बहुत ही दुःख हुआ। मैं सोचता था कि अब आप आर्थिक दृष्टि से कष्ट मे नही हैं, पर लगता है कि हमारे देश के साहित्यकार और बुद्धिजीवियो मे शायद ही कोई आर्थिक दृष्टि से सुखी हो। एक-दो अपवाद हो सकते है। और तो क्या लिखू। आप जैसे लोगो से समाज की तथा समाज के उन अगो, जो अपेक्षित है, की जो सेवा होती है या उनको जो प्रकाश मिलता है, वह एक महान् कार्य है। आपने अपने जीवन का लक्ष्य शहीदो का श्राद्ध बनाया है, वह आपके योग्य ही हैं। आपके सारे सकल्प पूरे होते ही रहे है और होंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

पत्रो को सुरक्षित रखने की मेरी आदत नही रही है। तब भी आपके कई पत्र मेरे पास है और यह पत्र भी सुरक्षित रहेगा।

आपका,
सीताराम

— ० —

श्री हीरालाल शास्त्री को

कलकत्ता,
१६-७-७३

प्रिय शास्त्रीजी,

आपका १७-७-७३ का पत्र ममय पर मिल गया था और इसके बाद उसके दूसरे-तीसरे दिन ही "राजस्थान मे स्वतत्रता सग्राम के सेनानी" ग्रथ भी मिला। ग्रथ को सरसरी निगाह से देखा। ठीक ही है। जिनसे जो बनता है, वह करते है। सब काम सम्पूर्ण रूप से ठीक तो नही ही होते। जिससे जो बन सकता है, वह उतना करता है। आपने लिखा कि अपने यहाँ सार्वजनिक क्षेत्र मे बहुत कम लोग प्रामाणिक होते है, और अपने ठहरे भले और उदार। इस बात को मै पहले से ही जानता था और उसका परिणाम यह है कि इतनी बडी जिम्मेदारी आपने ले ली। भले भी नही कहलायेगे और सम्बन्ध भी शायद अच्छे न रहे। ऐसे लोग अव्यवहारिक ही नही होते, और भी बहुत-सी बाते होती है। ऐसी बाते अपने मे तो बीतती ही रहती है। मुझे भी दो-तीन बन्धन इसी प्रकार के लगे हुए है। उनके झझट चलते रहेगे और नये भी आ ही जाते है कारण बात सामने आने पर मन कहता है कि यह काम अपने को करना ही चाहिये। परिणामस्वरूप यह जिम्मेदारिया आ जाती है। आपकी जैसी बहादुरी और उदारता तो मुझ मे नही है क्योकि आप ब्राह्मण है और मैने शेष मे जन्म तो बनिये के घर ही लिया है न? एक बार बापूजी ने बात करते हुए कहा था कि काका ठगा जाय, इसमे कोई बडी बात नही क्योकि वह ब्राह्मण है, मै नही ठगाना चाहता क्योकि मै बनिया हूँ। एक बात और याद आ गई। सरला देवी चौधरानी ने एक दिन मुझ से पूछा—सीतारामजी, आप किस जाति के है? मैने कहा—"वैश्य"। उन्होने कहा कि आप बनिये जैसे लगते तो नही है आकृति से, स्वभाव से, व्यवहार से, बातचीत से। तो मैने कहा—जो भी हो जन्मा तो बनिये के घर ही हूँ। मुझे भी बनियापन अच्छा नही लगता। कमलनयन ने एक बार बनिये की व्याख्या की थी। व्याख्या शायद बडी थी पर मुझे एक बात याद है। उसने कहा था—बनावे सो बनिया। खैर, यह सब बातें तो है अपने स्थान पर। अपनी तो इतनी ही बात है कि जो कुछ अच्छा लगे, सही लगे, जिससे सब का भला हो, वह करने की कोशिश करते रहें।

आप इतनी सावधानी रखते हैं, नियमो से बधे चलते हैं, यह अच्छी बात है। आप स्वस्थ रहे और मन से भी काम करते रहें, वह भी क्या कम है। एक बात और याद आ गई। हम लोग इलाहाबाद गये। काका साहब भी थे। महादेवीजी ने हम लोगो को बुलाया था। कुछ लोग काका साहब के पास आये। बातचीत के सिलसिले मे कहने लगे कि महादेवी विद्यापीठ मे कुछ करती तो है नही, बैठी रहती है। काका साहब ने उनसे कहा कि क्या उसका बैठा रहना कम है, उसका बैठा रहना ही बहुत काम करता है, जो कई लोग बहुत करके भी नही कर सकते। वे चुप हो गये। मैने भी सोचा कि बात ठीक है। पूज्य गुरुदेव का शान्तिनिकेतन मे बैठे रहना, बापूजी का सेवाग्राम मे बैठा रहना क्या कम था? वास्तव मे बडे लोगो की उपस्थिति ही

अपना काम करती रहती है। इसी प्रकार मुझे ऐसा लगता है कि आप कुछ करे या न करे, बनस्थली के लिये आपकी उपस्थिति अधिक-से-अधिक महत्वपूर्ण है और उसका मूल्याकन नही किया जा सकता, न उसका हिसाब लगाया जा सकता है। मैं यह जानता हूँ कि आप वनस्थली के लिय बहुत चिन्तित है और यह होना स्वाभाविक है। एक बात फिर याद आ गई। गाधीजी गुरुदेव से मिलने के लिये गये शान्तिनिकेतन। यह उनकी अन्तिम भेट थी। उसके कुछ ही दिनो बाद गुरुदेव चल बसे। गुरुदेव ने एक पत्र अपने सेक्रटरी के हाथ बापूजी को बोलपुर स्टेशन भेजा। इस पत्र को लेकर नाना तरह की अटकले लगाई गई और पत्रो मे उन अटकलो का काफी जिक्र आया। वे अटकले राजनीतिक थी पर वे सब गलत थी। गुरुदेव ने विश्वभारती के लिये लिखा था कि आप इसे सभाले और अपनी बना ले। शायद ऐसा-सा ही। गुरुदेव अपने बेटे रथी बाबू या अन्य अपनी सम्पत्ति-जमीदारी या और कुछ किसी के लिये चिन्तित नही थे, चिन्तित थे तो विश्वभारती के लिये। यह स्वाभाविक है। जिन्होने जिस चीज को जन्म दिया है, उसके पालन-पोषण, उन्नत होने और सुरक्षित रहने की भावना सब से ज्यादा उनकी होती है क्योकि उन्होने उसके लिये तप किया है। ऐसी ही बात बनस्थली के लिये आपकी है। दूसरे कोई भी ऐसे आपको कहा से मिल सकते हैं ? आपने लिखा, जो जितना साथी है मित्र है, घर का है, उसको उतना ही हाथ बटाना चाहिये। बात सत्य है। पर अग्नि का ताप जो जितना नजदीक है, उसको उतना लगता है, जितना दूर है उतना ताप कम होता है। इसलिये वनस्थली की अग्निशिखा हरदम जलती रहेगी, कभी बुझेगी नही। जिससे जो बनेगा वह उसमे आहुति डालता रहेगा। आप तो उसमे एकरूप ही बन गये है। दूसरे समिधा है। रतनजी, सुशीला, श्याम आदि घर के सब लोग उसमे है ही। वे भी इस अनुष्ठान के अङ्ग ही नही, होता ही है। मैं अपनी क्या कहूँ? मै वास्तव मे उसका जो बनना चाहता था, वह बन नही पाया। परिस्थितिया ऐसी ही रही। इसलिये यह अनुष्ठान, यह यज्ञ चलता रहे, इसकी सुगन्ध और धुवे से लोग पवित्र होते रहे, वातावरण मे शुद्धता फैलती रहे, यह कामना मन मे, प्राण मे, बुद्धि मे, विचार मे हरदम चलती है, चलती रहती है। दर्शक तो नही हूँ और न दर्शक रहना चाहता हूँ पर कोई विशेष हूँ, यह भी कैसे कहूँ ?

आपका,
सीताराम

—— o ——

कनिष्ठ पुत्री चि० विजया को

(१)

प्रेमी भैरवी जैन
कलकत्ता २५-१२-८३

चि० विजया,

तुम्हारा पत्र मिला। कई दिनो बाद तुम्हारा पत्र मिला। उससे बहुत प्यारा-प्यारा मालूम हुआ। आशा है तुम्हारा परीक्षाफल निकल आया होगा और तुम अच्छी तरह से पास हुई होगी। नये वर्ष मे अच्छी तरह पढने की तैयारी करो।

यह पत्र रात को नौ बजे बन्द कोठरी के अन्दर मे लिख रहा हूँ। सामने ही मोटे-मोटे सीकचो का किवाड बन्द है जिसमे एक बडा-सा ताला लगा हुआ है। यहाँ से बहुत थोडा-सा आकाश दीखता है। यदि आकाश अच्छी तरह दीखता तो मै श्रवणकुमार, जो अपने माता-पिता को कांवड मे ले कर जा रहा था और राजा दशरथ के बान से मारा गया, का दर्शन करता। पू० काका साहब ने श्रवण कुमार और दशरथ के बाणो का दर्शन अपने लोगो को कराया था न? तुम्हें याद है कि नहीं, मुझे तो बहुत याद है। उन तीरो का दर्शन करके मै अपने मन को खुशी करता पर यहा से वे नही दीखते। काका साहब की लिखी दो-एक गुजराती की किताबे मने यहा पढी। उनमे तारो का बहुत विवरण है और तारो के विषय मे बहुत दिलचस्प बाते है। यदि रात मे खुले आकाश को देखे तो हम एक नई दुनिया की सैर कर सकते है जो हमारी इस दुनिया मे हजारो लाखो गुनी बडी है। तुम तो भूगोल पढती हो न? तुम्हारे भूगोल मे बहुत थोडी बाते इस दुनिया के बारे मे है पर यह एक बहुत बडा ससार है अगर इसके बारे मे तुम्हारी दिलचस्पी हो तो मै तुम्हें बताने की कोशिश कर सकता हूँ। यह पत्र पहुचने के पाच-सात दिन बाद ही तुम्हारा जन्मदिन पडेगा। इसके पहले अपनी मुलाकात भी हो जायेगी। जन्म दिन के उपलक्ष्य मे तो मै तुम्हे दूसरा पत्र लिखूगा। यह तो तुम्हारे पत्र के उत्तर मे है। मेरे अक्षर पढने मे तुम्हे तकलीफ होती होगी। वे निश्चय ही बहुत खराब है पर अभ्यास हो गया हो तो पढ लोगी। मुझे तो अपने अक्षरो के लिए शर्म आती है। तुम अक्षर बहुत अच्छे नही बनाओगी तो आगे जाकर तुम्हे भी शर्म आयेगी। लडकियो के अक्षर तो और भी सुन्दर होने चाहिए क्योकि उनके हाथ मे कला होती है। तुम मुझे पत्र लिखती रहो तो मै तुम्हे बराबर पत्र लिखू पर तुम लिखती ही नही। पत्र पोपी को भी पढाना।

बाबूजी

चि० अशोक

तुम्हारा पत्र मिला। छोटा तो बहुत था पर लिखा तो सही। तुम्हारा भी परीक्षाफल निकल आया होगा और अच्छे नम्बरो से पास हुए होगे।

इस बार जो पत्र दो, उसमे लिखना कि सुवह तुम किस समय उठते हो और रात को किस समय सोते हो, दिन भर क्या-क्या काम करते हो ? कितनी देर पढते हो, कितनी देर खेलते हो आदि सब बाते लिखना। क्या खाते-पीते हो या नही, यह भी लिखना। अखबार तो तुम बराबर पढा करते थे। अपनी गद्दी मे 'विश्वमित्र' आया करता है। वह तुम पढते ही होओगे ? तथा स्कूल की किताबो के अलावा बाहर की किताबे पढते हो या नही। पढते हो तो किस विषय पर पढते हो और किताबे कहाँ से लाते हो ? क्या-क्या किताबे इन दिनो खाली दो-चार महीनो मे पढी, यह सब भी लिखना। न पढी हो तो यह लिखना कि नही पढी। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारे बारे मे मैं अच्छी तरह जान सकू। मुलाकात मे तुम बाते करते नही। इसलिए पत्र मे ही लिखो तो अच्छा। चि० दिलीप बाबू पास तो हो ही गये होगे ? वे कौन-से क्लास मे रहे ? और उनके पढने का ढग क्या है ?

बाबूजी

(२)

प्रेसीडेसी जेल, कलकत्ता
५-२-४४

चि० विजया,

तुम्हारे नाम एक पत्र दिया था। वह मिला होगा। कल तुम मुलाकात मे आई, तब पूछना भूल गया। यह पत्र तो तुम्हारे जन्म-दिवस के उपलक्ष्य मे लिख रहा हूँ। गत वर्ष भी तुम्हारे जन्म-दिवस पर जेल मे ही था। ऐसी अवस्था मे पत्र लिख कर सतोष करने के सिवा और क्या चारा है ?

गत वर्ष भी मैंने पत्र लिखा था। पता नही, वह तुमने अपने पास रखा है या यो ही खो दिया। पता नही, तुम मेरे पत्रो को कितना प्यार करती हो ? जो हो, मैं तुम्हे यह पत्र खास उद्देश्य मे लिखता हूँ।

तुम चौदहवे वर्ष मे प्रवेश कर रही हो। कुछ दिनो बाद ही तुम्हारी गिनती सयानी लडकियो मे होने लगेगी। सयानी लडकी मे मा-बाप तथा समाज और देश आशा करता है कि वह हमारा सिर ऊँचा करेगी। उसकी जिम्मेदारी भी है कि जिस घर मे जन्म लिया, जिस समाज मे सस्कार लिये, जिस देश का अन्न-जल खाकर पली, उसका वह भला करे, उसकी इज्जत बढावे, उसको उन्नत करे, उसकी सेवा करे। यदि कोई समझे तो हर आदमी का यह कर्त्तव्य है कि वह समाज-सेवा, देश-सेवा मे अपना हिस्सा अदा करे। लेकिन किसी काम को करने के लिये सामग्री की जरूरत होती है और जिसके पास जितनी अच्छी सामग्री हो, वह उतना ही अच्छा और ज्यादा काम कर सकता है, सफलता पा सकता है। इसलिये जिन लोगो को अपने जीवन मे बडे और अच्छे काम करने है, वे अपने बाल्य-जीवन मे उसकी बुनियाद डालते है, तैयारी करते हैं। इसलिये तुम्हे चाहिये कि तुम अपने जीवन मे अच्छी आदते डालो, बुरी आदते हो तो उनको छोडो। आदमी को अपना

जीवन सफल बनाना हो, तो उसे तीन चीजो की खास जरूरत है—स्वास्थ्य, शिक्षा और सच्चरित्रता। सच्चरित्रता मे सचाई, सदाचार, किसी का बुरा न चाहना या न करना आदि-आदि बहुत-सी बाते हैं। ये तीनो चीजे जिस आदमी के पास है, और वह परिश्रमी है, तो सारी दुनिया उसकी है। सब उसे प्यार करेंगे, उसकी प्रशसा करेंगे तथा वह जो करेगा, उसी मे उसे सफलता मिलेगी।

तुम्हारा समय अभी शिक्षा और स्वास्थ्य प्राप्त करने का है। मुझे पूरी आशा है कि तुम शिक्षा प्राप्त करने मे मन लगाओगी तथा आहिस्ते-आहिस्ते अच्छी हिन्दी और अच्छी अग्रेजी लिखना-पढना सीख लोगी। इसके सिवा सब से मिठास से, प्रेम से बरताव करने की आदत डालोगी, परिश्रमी बनोगी, अपने कामो को नियमपूर्वक करने का अभ्यास करोगी और प्रसन्न वदन, प्रसन्न मन रहोगी। प्रसन्नता एक बहुत बडी चीज है। वह अपना और दूसरो का सब का भला करती है। जो लोग उदास रहते हैं, मुह लटकाये रहते है, मनहूस हैं, वे न अपना भला करते है, न किस और का। इसलिए सदा खुश रहना चाहिए। अच्छे काम करने की कोशिश करनी चाहिए। मैं बाहर होता तो तुमसे कई तरह की बाते करता। तुम्हारे मन की कोई चीज तुम्हे लाकर देता। पर यहाँ से तो मेरा यह पत्र ही सब कुछ है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह तुम्हे अपने जीवन मे सुख दे और सफल करे तथा तुम से भले काम करावे।

बाबूजी

—— ० ——

श्रीमती सुशीला सिघी को

कलकत्ता
२६-६-६०

चि० सुशीला,

तुम्हारा प्यारा-प्यारा पत्र मिला। दो बार पढा। चि० अन्नु और अजु तुम्हारे पास पहुँच गई है। इससे तुम्हे कुछ अच्छा लगता होगा तथा मन लगने मे सहायता मिली होगी। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा। अगर, स्वस्थ रहने के तरीके जान लो और अपनालो तो ये सब दिक्कते—खर्च और झझट तथा सबसे अलग रहना, अकेले रहना यह सब किया गया सफल तथा उपयोगी मान लिया जाय। आशा करनी चाहिये कि तुम स्वस्थ और प्रसन्न मन यहाँ आवोगी। अन्नु, अजु दोनो को जोरो से बुखार आ गई थी तथा भवरमलजी के भी। पर तुमको खबर नही दी गई। मैंने भी नही लिखा। सोचा कि तुम्हारे मन को अनस्थिर न करना ही अच्छा रहेगा। अब तो शायद पन्द्रह के आस-पास तुम आ ही जावोगी। शिक्षा-यतन स्कूल एव कालेज दोनो पूजा की छुट्टियो मे बन्द है। मेरे लिए तो कोई खास फर्क नही पडता। मकान का काम तथा दूसरा जो कुछ हो सकता है, वह करके मानसिक सतोप पाने का प्रयत्न करता रहता हूँ।

स्वतंत्रता-दिवस को शोक-दिवस मनाने वाले और काले झण्डे लगाने वालों ने पूजा का उत्सव खूब धूमधाम और शोरगुल, रोशनी, सजावट, आमोद-प्रमोद आदि के द्वारा शान से मनाया। आसाम के दुख के सारे घाव भर कर देश का शरीर स्वस्थ हो गया। पर हमारे मनो की, कार्यों की स्थिति की एक पहुँच है। मोहन राकेश का 'आषाढ का एक दिन' न्यू एम्पायर मे दो बार अभिनीत हो चुका। अभिनय की दृष्टि से यह आयोजन मेरी निगाह मे खूब सफल हुआ। अम्बिका की भूमिका मे प्रतिभा का, मल्लिका की भूमिका मे सुनीता का और विलोम की भूमिका मे बद्री तिवारी का अभिनय खूब सफल रहा। कालीदास की भूमिका मे श्यामानन्द कुछ कर सका हो, ऐसा नही लगा। ऊपर के तीन पात्रो ने अपना काम वहुत ही सुन्दरतापूर्वक किया है। सुनीता तो इस अभिनय मे वहुत ही निखर उठी। इसके पूर्व शायद ऐसा अभिनय—प्रदर्शन वह नहीं कर सकी। प्रतिभा का पार्ट उसकी प्रकृति के अनुकूल है। जो कला के प्रति दो-एक परम्परा उसको मिली है, उसमे उसका अभिनय भी बहुत अच्छा रहा। बद्री वावू का अभिनय भी सराहने लायक है। तुम देखती तो शायद अधिक अच्छी तरह देख सकती। काम करते-करते देखते-देखते तुम अच्छी पारखी हो गई हो। मुझे तो इन सब बातो का सिर-पूछ भी मालूम नही है। नाटक मे कोई सन्देश या प्रेरणा मुझे नही लगी। यह आज के साहित्य का स्वाभाविकपन है। आज किसी के पास भी सन्देश देने को क्या है वह क्या दे सकता है, कहा से दे सकता है? चारो ओर जो भ्रष्ट स्वार्थमय सकीर्ण-वातावरण बन गया है, बनता जा रहा है, उसमे सन्देश और प्रेरणा कहा से आयेंगे? बस सब ठीक चल रहा है। तुम्हारे साथ पिक्चर देखे जैसे कोई युग वीत गया ऐसा लगने लगा है। इस बार आने पर जरूर एक बार पिक्चर चलेंगे। स्वस्थ होकर लौटो। तुम्हारे पत्र मे और बहुत बाते हैं जिनका उत्तर नही दे रहा हूँ पर इतना लिख देता हूँ कि तुम्हारे वचपन मे मैंने जो अकुर तुम मे देखा, वह आज भी सुरक्षित है। हो सकता है, वह विचारो और समय की, जीवन की थपेडो से निखरा ही हो। कार्य होता है और होगा भी। खुश रहो। चि० अन्नु और अजु को बहुत प्यार।

शुभेच्छु ताऊजी,

श्री भँवरमल सिघी को

(१)

कलकत्ता, २२-८-४४

प्रिय भाई भवरमलजी,

सप्रेम बन्दे!

आपका १७ का पत्र मुझे कल मिला। मैंने कई वार आपको पत्र देने का विचार किया पर लिखने का मौका नही मिला। आपके पत्र की इतजारी भी रही। परीक्षा के वारे मे तो मैं जानता था। जो हो, परीक्षा हो गई, यह अच्छा ही हुआ।

यह तो मानी हुई बात है कि आप परीक्षाओं में फेल थोड़े ही होते हैं। आप तो पास ही है। सिर्फ परीक्षाफल सामने आने से पता भर लग जाता है।

चरखा कातने में ज्यादा समय लगा रहे हैं, यह ठीक है। जेल में समय काटने के जितने साधन हैं, उनमें यह सबसे अच्छा और उपयोगी मालूम होता है।

भाई साहब, इस बार आपका पत्र बहुत प्यारा लगा और अच्छा मालूम हुआ क्योंकि मुसलमानों के बारे में आपने जो बातें लिखी, वे सचमुच मुझे भी ऐसी ही लगती हैं। जैसा आपने लिखा है, पूज्य बापूजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए क्या नही किया। आज भी वे जो कर रहे हैं, करने जा रहे हैं, उसको एक तरह से हिन्दुओ के पापो का प्रायश्चित ही मानना चाहिये। पर हम अपनी मनोवृत्ति को बदलने के लिए राजी ही नही होते। हम मुसलमानों पर आज भी न तो विश्वास करते हैं और न उनके प्रति प्यार और उदारता दिखाना चाहते हैं। यही नही, बल्कि बापूजी के पवित्र प्रयत्न मे बाधा डालते है। मैं तो आपसे सच कहता हूँ कि इसे राजनीतिक दृष्टि से देखता ही नही। हिन्दू-मुसलमानो की एकता का बहुत बडा राजनीतिक मूल्य होते हुए भी मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि दो भाई एक घर मे, एक कुटुम्ब मे सुख से न रह सके तो अलग-अलग घर और कुटुम्ब बसाने मे क्या हर्ज है? इस तरह रहने पर भी जैसे आपत्ति-विपत्ति मे, विवाह-शादी मे तथा मौके-मौके पर वे एक मे हो ही जाते हैं। उसी तरह हम रह सकेंगे, तो हो सकता है आज से ज्यादा बेहतर हालत मे रहे। मुझे तो भवरमलजी, ऐसा लग रहा है कि एक समय मे मनुष्य अपना परिचय धर्म के नाम से देता था, धर्म का अभिमान करता था, उसके लिए पागल बन कर न मालूम क्या-क्या बुराई भी करता था, भलाई भी करता था, फिर देश के नाम पर इसी तरह करने लगा। आज जो युद्ध की विभीषिका हमारे सामने है, उसके भीतर इस राष्ट्रीयता का बहुत बडा हिस्सा है। क्या ऐसा समय नही आयेगा, जब मनुष्य इस धर्मो और देशो की परिधि से बाहर आकर आदमी को आदमी की दृष्टि से देखेगा। मुझे ऐसा लगता है कि एक दिन यह जरूर आना चाहिये। बापूजी ने सचमुच बहुत बडा कदम उठाया है और यदि वे सफल हो जायेंगे तो हमारी हालत बदल जायेगी। मैं आजकल इस प्रवृत्ति मे काफी रस ले रहा हूँ। अभी दरअसल कुछ हुआ नही लेकिन हवा बदल गई और मुसलमानो के दिलो मे एक नई भावना, एक नया विचार पैदा हो रहा है। देश का बहुत बडा भाग चाहता है कि हम किसी तरह एक हो जायें। मुसलमान भी एकता के लिये व्याकुल है, हिन्दू भी। पर ये भले लोग जिनको नेता कहा जाता है या इटेलिजेसीया कहते है, उनकी बुद्धि इतनी तेज है कि वे बहुत दूर तक की सोचते हैं। मन के भूतो से लडते रहते है। इतनी बातें याद आती है, इतनी बाते कहने को जी चाहता है कि दस-बीस पन्ने भर दूँ पर लिखू तो आप तक पहुँचे भी नही। इसलिये सिवा सब्र के चारा नही। आप बाहर होते तो कितना अच्छा होता? जो हो, बाहर भी आयेगे ही। भगवान देवी आपसे न मिल सकी, इसका उसे दुख तो हुआ पर हमारी जो स्थिति है, उसमे

क्या हो सकता है ? बस, आप तबियत ठीक रखें। और, सब तो ठीक ही है। पत्र समाप्त करने की इच्छा नही होती पर समाप्त तो करना ही है।

आपका,
सीताराम

(२)

मसूरी
९-१०-४४

प्रिय भाई भवरमलजी,

सप्रेम बन्दे !

आपका २७-९ का पत्र मिला। मै अभी तक यहॉ डटा हुआ हूँ, शायद एक हप्ते और भी रह जाऊँ। पहले हप्ते मे मसूरी मुझे बहुत ही खराब लगी और तबियत भी अच्छी नही रही पर मेरे दोस्त निहायत भले और सज्जन आदमी है। उनके प्रेम और आग्रह के कारण मै यहाँ रह गया। अब तो शायद बास-मे-बास मिल जाने वाली बात कहना चाहिये। उतना नही अखर रहा है। यहा कलकत्ते के बहुत से बडे-बडे लोग आये हुए है। वे सब आपके तथा मेरे परिचित ही हैं।

आपने सच लिखा है कि लोग इन स्थानो पर स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से कम और मौज-शोक तथा स्टेटस की निगाह से ही ज्यादा आते हैं। यदि साधारण स्थान पर जहा हर कोई जा सके, वहॉ ये भी जायें तो करोडपतिपन क्या रहा ? भवरमलजी, जब मै जेल से आया तो, आप समझिये, तीन-चार महीने मेरी चकाचौध नही मिटी। यहा का हाल ही दूसरा हो गया है। लोग व्यापार और रुपयो के पीछे पागल हैं जो। आता है इसमे बह जाता है। एक अजीब हालत हो रही है जीवन का न तो कोई उद्देश्य रह गया और न कोई कर्त्तव्य। आज जीवन का हर हिस्सा चोरी और छल से भरा हुआ है। और इसके लिए कोई ग्लानि या शर्म भी नही रही है। यह क़रप्शन जीवन का अग बनता जा रहा है। यदि इसी तरह चलता रहा तो मनुष्य से पशु अच्छा, जो विचारा अपने खाने के सिवा कुछ नही चाहता। आपने जेल मे खूब पढा है। अपन साथ थे तो कभी-कभी इसका थोडा हिस्सा या स्वाद मुझे मिल ही जाया करता था पर अब तो बाहर आवे, तब ही वह मिल सकता है। आप बाहर आये तब हो न ?

'विशाल भारत' तथा 'विश्ववाणी' मे मेरे दो-एक लेख छपे है। आपको पढाने की इच्छा होती है पर वे आप तक पहुच नही पाते हैं। सब बाते बाहर आने तक मुल्तवी करके रखना पड रहा है। पर कितनी होती जा रही है ? आपकी तबियत तो ठीक है न ? अब तो कलकत्ते जाने पर आपके समाचार मिल सकेंगे। सब साथियो को बहुत-बहुत प्रणाम, नमस्कार कहे।

स्नेही,
सीताराम

श्री पदमचंद्र सिंघी को

(१)

११-७-६३

प्रिय पदम,

तुम्हारा पत्र बहुत दिनो के बाद मिला। अच्छा है। समय-समय और मौके-मौके पर तुम्हारी याद आना स्वाभाविक है। तुम्हारे तथा लीला के समाचार भवरमलजी आदि से जितने मिल सकते हैं, उतने जान लेता हूँ।

बातें तो बहुत हैं पर पत्रो द्वारा कितनी और कैसे हो सकती है? फिर ऐसा भी लगता है कि बाते करके ही क्या फायदा जब हम कुछ कर न सकें। आज जरा भी सोचने-विचारने वाले आदमी के सामने उतने ज्यादा प्रश्न है, इतने गम्भीर प्रश्न हैं कि उनका समाधान किस तरह हो, यह अपने आप प्रश्न बन गया है। प्रश्नो के उत्तर भी प्रश्न ही बन जाये, तब क्या हालत हो। यह सोचा जा सकता है पर सवाल फिर भी करने का ही रह जाता है। हमारा देश और व्यक्ति सकट की स्थिति से गुजर रहा है और हमारे कामो द्वारा वह सकट ही बढता है। जवाहर-लालजी अशक्त होते नजर आते हैं। वे शरीर और काम दोनो मे, परिस्थिति से अन्य तरह से कमजोर हो रहे है। चाहे यह अच्छा हो, चाहे बुरा पर वस्तुस्थिति ऐसी ही लगती है।

देश के आक्रमण के समय जिस एकता के दर्शन हुए थे, वह सरकारी नीति और रवैये के कारण काफूर हो गई। फिर से कोई आक्रमण न हो तो ही अच्छा है। पराई सहायता और फौजो पर निर्भर करके देश की रक्षा करना मुश्किल है। जनता मे असतोष है पर यह असतोष प्राणवान लोगो का नही, बेजान लोगो का जैसा है जो कोसते रहते हैं पर कर कुछ नही सकते। काग्रेस के लोग अपने पदो की रक्षा और पदो की प्राप्ति की कोशिशो मे आपस मे खूब लड रहे हैं। यह सब स्थिति तथा अन्य बातें ऐसी है जो चिंता कराती हैं, बेचैन करती है पर रास्ता नही बताती, प्रेरणा नही देती। कुछ करने की साध नही जगती, जो हो, यह मानना चाहिये कि इसी स्थिति के अन्दर से कोई-न-कोई ऐसी बात पैदा होगी जो फिर से देश मे प्राण और स्वेच्छा तथा सजीवता पैदा कर सकेगी।

शुभेच्छु,
सीताराम

(२)

३१-१-६७

प्रिय पदम,

तुम्हारा २५-१ का पत्र कल शाम को मिला। पत्र मिलता है तो बहुत अच्छा लगता है। इस बार हम लोग बिलकुल ही बात न कर सके। बहुत दिनो बाद तुम आये और बाते कुछ भी नही हो सकी। यो ही कलकत्ता बहुत व्यस्त स्थान है। विवाह आदि के समय तो यह व्यस्तता बहुत बढ जाती है।

भारत मे विवाह एक विशेष रूप लिये हुये है। मुझे ऐसा लगता है कि विवाह के समय लोग पागल हो जाते है। सारे विचार, सारी कल्पनाएँ, सारी पहिले-पीछे की स्थिति को भूलकर विवाहो मे खर्च, आडम्बर और न मालूम क्या-क्या करते है। सब से बडी बात है कि विवाह इज्जत और पोजीशन का रूप भी धारण कर लेता है और इस इज्जत की रक्षा, पोजीशन बनाने की या दिखाने की फिक्र न मालूम कितने गलत सही काम करने के लिये बाध्य करती है। आज कलकत्ते मे विवाहो की बाढ-सी आई हुई है। इन विवाहो के कारण दूसरे लोगो को कितना कष्ट होता है तथा हमारा समाज कितना बदनाम और ईर्षा-भाजन बनता है, इसका किसी को ख्याल नही। अपने वैभव का प्रदर्शन तथा इज्जत या न मालूम क्या-क्या दिखाने बढाने के लिये लोग पागलो जैसे काम करते है। तुमने देश की स्थिति के लिये गरीबी और महगाई की बात लिखी है पर जिनके पास थोडे से भी साधन हैं या जो लोग जरा सम्पन्न हैं वहाँ इस महगी का या गरीबी का जरा भी आभास तक नही होता। पन्द्रह रुपये सेर का काजू, चालीस रुपये सेर का पिस्ता ऐसे खलता है जैसे आज के चालीस वर्ष पहिले चना (भूगडा), धानी भी नही खलते थे। चाय-काफी, शर्बत और नाना तरह के ड्रिंक भी इसी प्रकार से बर्ते जाते हैं। मोटरो मे जो पेट्रोल खर्च होता है, उसमे एक अच्छा-सा विवाह हो सकता है पर इस स्थिति मे भी यहा का गरीब, आधा पेट खाने वाला सोने के लिये जमीन के बिछौने और आकाश के तम्बू वाला भी विद्रोह नही करता। यहाँ अभाव का आदमी आदी है वह अभाव को ही पूजता है उसकी ही आराधना करता है और टुकर-टुकर आँखो से इस वैभव इस विशाल राग-रग को देख कर शायद मन-ही-मन कुछ सोच कर चुप-सा हो जाता है। वह अपने को किसी लायक नही समझता या यह मान लेता है कि यह सब इनको भगवान ने दिया है। हम देश एव समाज सुधार की बात करने वाले लोग भी भीतर से इस व्यवस्था के पोषक है। इसको चलाने मे, बनाये रखने मे हमारा हाथ ही नही हिस्सा भी है और हम कहते नही पर सोचने पर मन तो कहता है हम इस स्थिति के पोषक हैं। यह सब लिख गया, एक विवाह की बात को लेकर। पर बहुत-सी बाते हैं ऐसी, जिनकी जरा-सी चर्चा विकल कर देती हैं। मन कहने लगता है कि क्या कर रहे हो केवल बाते करके सतोष कर लेना सहज है। यह भी एक तुष्टि है जो सहज मिल जाती है।

आज हिन्दुस्तान का औसत आदमी कष्ट अभाव और तगी का जीवन जीता है। मध्यम श्रेणी जिसको कहा जाता है, उसके कष्ट चरम सीमा पर पहुँच गये हैं लेकिन यह स्थिति सहज ही बदलने वाली नही। इसका दायित्व हम पर ही है। सरकार या व्यक्ति किसी को दोष देकर हम अपने आपको निर्दोषी नही मान सकते। इसमे कोई शक नही कि आज का शासन अयोग्य और बेईमान आदमियो के हाथ मे है पर शासन ही क्यो हर बात ऐसी ही है देश मे। मैं राजनीति से अलग हो गया या परिस्थिति ने मुझे अलग कर दिया पर इस स्थिति को चुपचाप देखते रहना क्या गुनाह नही है? ऊमर और स्वास्थ्य का वहाना ठीक नही। मुख्य बात है आज नेतृत्व नही मिलता और जितना बडा काम है, उतना बडा ही नेतृत्व चाहिये।

हो सकता है समय अपने आप काम करता है और इस स्थिति के अंदर में ही कोई नेतृत्व और जनता को वाणी मिल जाय।

शिक्षायतन का काम करके मन को इतना ही संतोष दिया जा सकता है कि चुप नहीं बैठे है। या यों कह लें कि पड़े-पड़े नहीं खाते हैं, हाथ-पैर हिला रहे हैं। कुछ सार्वजनिक काम करने की भूख को भोजन दे रहे हैं। आज की जो स्थिति है, उसमें भावी निर्माण की बात नहीं। जो निर्माण हो रहा है, वह भी इस स्थिति के पालन का ही है।

आज का आदमी एक बार तो भावना, विचार और देश-समाज की बात सोचने से बिलकुल रिक्त हो गया है। वह स्थिति-पालक है। अपने सुख-आराम के सिवा उसे कोई चिन्ता नहीं। तुमको पत्र लिखते समय एक मानस बनता है, बहुत बातें मन में आती हैं। उनको कहां तक लिखा जाय? शांतिपूर्वक लिखने का समय और मौका भी कहां मिलता है? भाग-दौड़ और व्यस्तता शहरी जीवन की अपनी देन है। चाहे काम कुछ भी नहीं पर हर आदमी व्यस्त है।

शुभेच्छु,
सीताराम

(३)

१३-१०-६६

प्रिय पदम,

तुम्हारा ७-१० का पत्र दो-तीन दिन पहिले मिला। इधर दो तीन वर्षों से अपना पत्र-व्यवहार पहले की तरह नहीं चलता। मैं तुमको जब पत्र लिखता हूँ, तब वह अपेक्षाकृत लम्बा हो जाता है। तुम काम में व्यस्त रहते हो। इसलिये शायद उत्तर नहीं दे पाते या बहुत विलम्ब से देते हो। तो सिलसिला टूटा हुआ-सा रहता है। फिर आजकल विचारों की झनझनाहट और उलझन भी मन को घेरे रहती है। जो भी हो, विचार तो चलते ही है।

गांधीजी के नाम पर जो कुछ हुआ या हो रहा है, वह मुझे भी कतई पसन्द नहीं है और उसके साथ मानसिक विरोध भी है। तब भी एक शृंखला में बंधे रहने के कारण उसके साथ सम्बन्ध है ही। कई बार ऐसा लगता है कि यह आत्म-प्रवंचना तो नहीं है। तब भी कोई क्रांतिकारी कदम उठाने की हिम्मत या स्थिति या मानसिक क्रिया, तुम जो कह लो, वह नहीं होती। ऐसा लगता है कि इसका कारण उम्र का बढ़ जाना है जैसे गांधीजी ने देश का विभाजन स्वीकार कर लिया एक ऐसी लाचारी में जो शायद दस वर्ष पहले होता तो नहीं करते। मैं समझता हूँ कि नये लोगों में गांधीजी के प्रति वह आस्था नहीं है और उसका न होना अस्वाभाविक नहीं है। २५-३० वर्ष के युवक ने गांधीजी को नजदीक से नहीं देखा और उनके सम्पर्क में

भी नहीं ग्राया। उसके सामने जो कुछ हुग्रा, उसने जो देखा ग्रौर वह जिस वातावरण मे पला ग्रौर सस्कार लिये, वह स्वार्थो से भरा ग्रौर ग्रसस्कारी वातावरण है। इसलिये उसने यह भी मान लिया कि जो लोग गाधीजी के साथ थे, जिनमे से कुछ चले गये ग्रौर कुछ बचे हैं, वे भी इसी तरह के थे। उसकी ग्रास्था किसी पर जमती ही नही। उस ग्रास्था का न जमना उसका कसूर नही है। वह पहले ग्रौर ग्रबके लोगो मे बहुत विभेद नही करता। जो भी हो, इस समय जो स्थिति है, वह साइकिल के चक्के की तरह घूम कर ऊपर न ग्रा जाय, तब तक के लिये इतजार करना पडेगा क्या? दीपशिखा की तरह ग्रन्धकार मे बैठ कर उसकी ग्रोर ताकते रहना पडेगा। ग्रौर प्रतीक्षा करनी होगी प्रभात की। इसमे मुझे कोई शक नही है कि यह स्थिति सदा नही रह सकती।

एक बात है कि गाधी-शतवार्षिकी के ग्रवसर पर बहुत बडा प्रकाशन हुग्रा है, हो रहा है। भारतीय भाषाग्रो मे तथा विदेश मे भी, जिसमे ग्रधिकाश साधारण होने पर भी कुछ बहुत ग्रच्छा भी है ग्रौर वह एक प्रकार से सदा के लिये काम का भी होगा। गाधीजी का खुद का लिखा ग्रौर उनके साथियो का लिखा जैसे महादेव भाई, नरहरि भाई, प्यारेलालजी, तथा पू० काका साहब, किशोरलाल भाई ग्रादि का लिखा हुग्रा भी स्थायी रूप लेगा। मुझे ऐसा लगता है कि गाधी की महत्ता एक दिन मानव-जाति स्वीकार करेगी ही। हो सकता है, यह बात हसी की या ग्रसम्भव लगती हो। जो होगा हो जायेगा। जहाँ तक सोचने का सवध ग्रौर करने का सबध है, वह कम से कम ग्रपने ग्रापसे सबधित है। यदि हम ग्रपने ग्राप तक सीमित होकर यह भी सोच ले कि हम क्या कर रहे हैं, ग्रौर हमे क्या करना चाहिये ग्रौर उस करने के प्रति हमारे ग्रन्दर सच्चाई हो ग्रौर न करने के प्रति भी सचाई हो तो हमने गाधीजी के लिये सब कुछ कर लिया, पर दुख है कि हम ग्रपने प्रति सच्चे नही हैं। गाधीजी मे कोई विशेषता थी तो, मुझे यह लगता है, यही कि वे ग्रपने प्रति ग्रधिक-से-ग्रधिक सच्चे थे। ग्रधिक-से-ग्रधिक क्या, वे सच्चे ही थे। वास्तव मे, सत्य मे ग्रधिक ग्रौर कम हो ही नही सकता। इसका एक व्यक्तिगत उदाहरण दूँ।

सन् १९४५ मे मौलाना ग्राजाद साहब ने कहा—"ग्रमुक ग्रादमी के सवध मे ग्रापसे पूछा जा रहा है। मै जानता हूँ वह ग्रापका दोस्त है। इसलिये भाई, सच कहना।" पदम, मै तुमसे सच कहता हूँ। मौलाना को मैने ग्रपने मन मे जिस ग्रासन पर बैठा रखा था, दुख है कि वे उस ग्रासन से नीचे उतर गये ग्रौर लाख कोशिश करने पर भी मै उनको फिर इस ग्रासन पर न बैठा सका। मैने उनको क्या उत्तर दिया, सुनोगे? मैने कहा—मौलाना, सच कहने का प्रसग ग्रपने ग्रापसे सबधित है। यदि ग्रादमी सच कहता है तो सच ही कहेगा ग्रौर यदि वह सच नही कहता तो किसी के कहने से सत्य कैसे कह सकता है? इसी तरह वास्तव मे व्यक्ति जो कुछ हे वह ग्रपने ग्राप मे हे। तुमने सुना होगा उस कहावत को—"ग्राप भला तो जग भला।"

पत्र बढता जा रहा है। बहुत बढ सकता है। तुम्हारा पत्र मिलता है और उसका उत्तर लिखता हूँ तो वह बढता ही जाता है। यह मैंने ऊपर भी लिखा है। इसलिये समाप्त करता हूँ।

शुभेच्छु,
सीताराम

ज्येष्ठ पुत्र चि० अशोक सेकसरिया को

(१)

२५-२-६५

चि० अशोक,

तुम्हारे दो पत्र यथासमय मिले। विद्या ने उत्तर नही दिया। मैं भी नही लिख सका। यहाँ सब ठीक है। तुम जैसी देख गये थे, वही स्थिति है।

हिन्दी को लेकर मद्रास मे जो कुछ हुआ, उसकी जिम्मेदारी उन राजनीतिज्ञो पर है, जो जनता को भडका कर करवाते हैं। देश-हित की बात तो आजकल सोचना ही अपराध है। देश के हित के नाम पर या अन्य छोटी भावनाओं का सहारा लेकर नाना तरह की खुराफात करना-करवाना सहज है, जिनके परिणाम बहुत ही घातक और भयकर होते है। बगाल में कृत्रिम शाति है, यह शाति बनी रहे तो भी काम चल सकता है। यदि इस स्थिति मे कही चिनगारी लग जायेगी, तो बहुत भयकर विस्फोट हो सकता है। पर ऐसा लगता है कि शायद एक बार तो स्थिति सम्हलने की ओर है।

अग्रेजी का प्रश्न बिलकुल खडा किया हुआ है। जवाहरलालजी ने पिछले दिनो ससद मे जो बिल पास कराया था, उसके बाद बोलने की कोई बात रहनी ही नही। अग्रेजी तो सदा के लिये ही रह गई है। ये अग्रेजी-भक्त अपनी मातृभाषा का जो अहित कर रहे हैं, आज उनकी समझ मे नही आता। बडा दुख होता है, आज की स्थिति पर, उपाय कुछ है नहीं। सरकार केन्द्र मे निहायत कमजोर साबित होती जा रही है। प्रातो के मुख्य मत्रियो मे भी ऐसा कोई आदमी नही, जो स्थिति सम्हाल सके और देश को, अपने प्रात को ठीक से चला सके। लोग अपने विरोधियो को एक प्रकार की रिश्वत और साथियो को लोभ देकर अपने साथ रख कर किसी तरह काम चला रहे हैं। सही स्थिति को समझना और गलत बातो को ठीक करने की क्षमता आज इन लोगो मे नही मालूम होती। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि देश मे ताकतवर और योग्य आदमी का अभाव भयकर रूप में है। यह सब कुछ चलने वाला है। इसके लिए क्रातिकारी कार्यक्रम चलाने या पैदा करने वाले लोग विरोधियो मे भी नही हैं।

दिल्ली मे क्या हाल है? वहाँ के लोग क्या सोच-विचारते है? लोगो ने आज के चालीस-पचास या इससे भी पहले जो स्वप्न लिये थे, वे आज सब छिन्न-भिन्न हुए जाते देख कर दुख होता है। जेल मे था तो लोग बाजा बजा-बजा कर

देश-भक्ति, देश की एकता के गीत गाते थे। आज उन कानो को जो सुनाई पडता है, आखो को देखना पडता है, मन को सोचना पडता है, वह बर्दाश्त करने मे बहुत जोर आता है। ये दिन भी हमेशा थोडे ही रहेगे। रात के बाद दिन का आना अनिवार्य है। शेष मे सब अच्छा ही होगा।

सीताराम

(२)

२०-१२-६५

चि० अशोक

तुम्हारा १६ का पत्र मिला।

कथा-समारोह के काम मे नये-नये अनुभव आ रहे है। इसमे कोई शक नही कि हम बहुत हल्के लोग हैं और हमारा स्तर बहुत नीचा है। पर जो हैं, उनको लेकर ही काम करना पडेगा। यदि काम करना हो तो निराशा का होना उचित नही लगता। उद्देश्य अच्छा हो तो देर-जल्दी परिणाम अच्छे ही आने वाले है। जितनी इमानदारी से जीवन जिया जा सके, काम किया जा सके, वह करते रहना—यही जीवन देश-समाज के लिए आवश्यक मालूम होता है। कथा-समारोह के लिये खूब परिश्रम हो रहा है। परिणाम क्या होगा, ईश्वर जाने। काफी अच्छी तैयारी है। आशा भी अच्छी है। लोग जिस तरह का व्यवहार करते हैं, वह अच्छा नही लगता, पर सब बर्दाश्त करके काम करना है। हम व्यापारियो को दोप देते रहते हैं, पर यह साहित्यिक कहे जाने वाले लोग उनसे भी बहुत हल्के है। इसका पता लगता है, जब व्यवहार का मौका आता है। यह बात सब के लिए तो नही, पर ज्यादा लोगो के लिए कही जा सकती है। हाँ, कुछ लोग बहुत निष्ठावान तथा सरल है और सचमुच साहित्यकार है।

सीताराम

(३)

१८-१-६६

चि० अशोक

तुम्हारा १४-१ का पत्र कल शाम को मिला। श्री शास्त्रीजी चले गये। वे अपने जीवन मे जितने सफल थे, मृत्यु ने उनको उससे ज्यादा सफल बना दिया। ऐसी सफल और महत्वपूर्ण मृत्यु बहुत ही कम लोगो को नसीब होती है। यदि ताशकन्द वार्ता असफल हो जाती और शास्त्रीजी सब की तरह चले जाते तो उनकी मृत्यु दुखद ही होती और पाकिस्तान एव हिन्दुस्तान के बीच खाई गहरी, चौडी हो जाती। मुझे ऐसा लगता है कि ताशकन्द का समझौता चाहे जैसा हो और चाहे जिस तरह हुआ हो, शास्त्रीजी के जीवन की सब से बडी और सब से श्रेष्ठ उपलब्धि है। इस समझौते ने उनको शाति के दूत का रूप दे दिया और, उनका

नाम शाति-पुरस्कार के लिए प्रस्तावित हो गया। पता नही, यह पुरस्कार किसको मिलेगा? पर उनके नाम का प्रस्ताव काफी महत्व रखता है। यह महत्व उनको ताशकन्द के समझौते के कारण ही मिला। मै चार जगह बोला उनके बारे मे। रेडियो पर भी बोला तो मैने उनके जीवन मे और मृत्यु मे यह जो ताशकन्द का काम है, इसको महान् बताया। उसको पालन करना, उसको आगे बढाना ही उनके प्रति श्रद्धा-निवेदन करना है। शाति के लिए, देश की सुख-समृद्धि के लिए पाकिस्तान–हिदुस्तान के सारे सवालो को तै करने के लिए दोनो ओर से ईमानदारी के साथ यह समझौता कार्य मे परिणत करना चाहिए। मुझे बिल्कुल ऐसा लगता है कि पाकिस्तान-हिन्दुस्तान की लडाई दोनो देशो के लिए बरबादी का रास्ता है। राजनीतिक स्वार्थ-साधक लोग इस तरह का वातावरण बनाये रखना पसद करते है, जिससे जनता को गुमराह करके वे अपने स्वार्थ सिद्ध करते रहे। यह दुर्भाग्य है दोनो देशो का। जो भी कोई आदमी इन दोनो देशो को मित्र बनाने का प्रयत्न करता है, वह सचमुच मानवता की बडी सेवा करता है। कोसीगन ताशकन्द समझौते मे मेरी निगाह मे बडे बने है और राजनीति मे भी सफल हुए है।

अब तो पत्रो से ऐसा लगता है कि इन्दिरा भारत की प्रधान मत्री बन जायेगी। मेरी निगाह मे यह चुनाव बहुत उत्तम नही होगा। पर, हमारे पास जो आदमी है, उसमे इसके सिवा और क्या हो सकता है? मुझे ऐसा लगता है कि देश का स्तर नीचा जा रहा है—ज्ञान मे, राजनीति मे, चरित्र मे और दायित्व-पालन मे। धन मे, फौजी ताकत मे, विज्ञान मे आराम-सुख के साधनो मे हमे अन्य देशो के बराबर होने मे बहुत समय लगेगा और क्या कर सकेंगे, यह कहना मुश्किल है। पर हमारी अपनी विशेषता ही समाप्त हो रही है। उसमे हम कमजोर होते जायँ तो फिर देश एक प्रकार से गरीब हो जायेगा। खैर, यह तो दूसरी तरह की बात करने लगा।

डा० देवीशकर अवस्थी का अवसान बहुत ही दुखद है। मै उनको बिलकुल नही जानता था। जो कुछ परिचय है, वह इस कथा-समारोह मे वे आये थे और, बोले थे, इसका ही है। उनके परिवार की तथा आर्थिक कष्ट की बात लिखी, वह ठीक है, पर इसके लिए कैसे किया जाय—क्या किया जाय? यह सोचने लायक है। दो-पाच सौ रुपये से क्या हो सकता है? ससद ने मेरे कहने से या योग देने से या उनको प्रभावित करने से एक पाच वर्ष की योजना बनाई है, जिसमे पाच सौ रुपया महीना या ६ हजार रुपया प्रति वर्ष हिन्दी के साहित्यकारो की बीमारी आदि कष्ट के समय सहायता स्वरूप दिये जा सकते है। इस योजना मे एक सौ रुपये महीना पाच वर्ष तक देकर ६ हजार रुपया देना मैने स्वीकार किया है। दो वर्ष के चौबीस सौ रुपये प्रथम वर्ष के आरम्भ मे ही देना है। अभी तक ६ हजार अपने और बारह हजार माधोदास मूधडा के हुए है। बारह हजार और करना है। वह हो जायेगा। इस योजना की कमेटी अभी तक नही बनी है तथा रूप-रेखा भी नही बन सकी है। इससे कुछ किया जा सकता है क्या? तुम जरा

सोच कर लिखो कि क्या किया जाय, किस तरह किया जाय ? जो भी हो सके, वह करना मुझे अच्छा लगेगा और आवश्यक भी है ही।

ससद के आयोजन को बहुत अच्छी पबलीसीटी मिली है पर साहित्यकारो की सेवा या सहायता, जो कहो, इसका किसी ने भी जिक्र नही किया। साथ ही, जो कुछ लिखा गया, वह कहानी-लेखको की जो बाते हुई और गलत-सही जो वाद-विवाद-सा हुआ, उसको लेकर ही लिखा है। ससद के उद्देश्य और सद्प्रयत्न तथा व्यवस्था और परिश्रम का उल्लेख नही हुआ। खर्च लगा, उसकी कोई बात नही पर सस्था के काम की सराहना या उसके उद्देश्य के प्रति कुछ कहना एक स्वस्थ परम्परा को बढाने का काम लगता है। 'धर्मयुग' ने लिखा है—सम्पन्न सस्था ससद। सम्पन्नता आज के युग मे एक ऐसा शब्द है जो आदर के साथ नही लिया जा सकता पर यह एक दुर्भाग्य है कि कोई आदमी भी कुछ करे तो उसमे काम करने वाले यदि बिलकुल भूखे हो तो वे या तो काम कर नही सकते या उनमे प्रामाणिकता बहुत कम रह पाती है, परिस्थितिवश। जरा ठीक-सा जीवन जीनेवाला आदमी या जिस सस्था के पास थोडे बहुत साधन हो वह आदर की पात्र न होकर एक ऐसी सस्था बन जाती है, जो पूजीपति जैसी गाली की शिकार होती है। जो लोग ऐसी बाते करते या मानते है, उनमे ईमानदार आदमी कम होते है। एक बात कहूँ कि ससद ने जिन लोगो को बुलाया, और आने के लिए रुपया भेजा और वे न आ सके या न आना पसद किया, या उदासीन रहे, उनमे साहित्य के दो-चार बडे लेखक या प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। इनको जो रुपया भेजा गया, वह ६५०) से कुछ ज्यादा है। अभी तक एक ने भी रुपये लौटाने की बात न लिखी है, न लौटाया है। जो अपनी आवश्यकता के लिये दूसरो पर निर्भर न करके अपने साधनो से चला लेता है, उसको धनी मान लेते हैं। वह किसी तरह सौ-पचास रुपया अपने साधनो को अपने सुख को कम करके दे तो भी वह आदमी धनी लोगो की गिनती मे आता है, इनकी निगाह मे। और, यह धन के लिए या धन से जो कुछ मिलता है, उसे लेने के लिए इतने ज्यादा लालायित तथा इतने हल्के भी हो सकते हैं कि शायद जिसको यह धनी कहे, या जिस सस्था को सम्पन्न बताये या उसके कार्यो को मूल्यवान इसलिए न माने कि उसके पास कुछ खर्च करने के साधन हैं, तो क्या किया जाय ? पर वस्तुस्थिति जो है, उसे स्वीकार कर के जो हो सके, वह करते रहना जरूरी है। जो आदमी केवल विचार करता है, उसके सामने कोई कठिनाई या दिक्कत नही पर कुछ भी करना हो, आकाश की अपेक्षा जमीन पर चलना हो, जमीन को झाडना-बुहारना हो, कही पर हो सके तो दो फूलो के पौधे भी लगा सके, तो लगाना हो, उसको सब सोच कर, जानकर सब सहते हुए चलना पडता है, काम करना पडता है। बहुत बाते है, कितना लिखा जाय ? विचार बहुत चलते है, सुख-दुख भी होता है पर मैं सच कहता हूँ कि एक बात सोच कर सतोष हो जाता है कि चलो, कुछ कर रहे है और अपनी जान मे किसी का बुरा नही कर रहे हैं, द्वेषवश कुछ नही कर रहे हैं। भूल से या

ज्ञान से जो भी करते हैं, अपनी समझ मे भला काम करते है, सबके हित का करते है। इससे शाति सी मिल जाती है।

खुश रहो।

शुभेच्छु,
सीताराम

(४)

चि० अशोक

तुम्हारा १८ का पत्र कल ही मिल गया।

इधर कलकत्ते मे काफी गोलमाल रहने के कारण पत्रों के जाने-आने मे वहुत देर होती रही। अव यों देखने मे स्थिति साधारण सी लगने लगी है पर भीतर-भीतर तो वहुत असतोष और द्वेष है ही। वामपथी ताकत इधर वढी है। उसका उद्देश्य और तरीका चाहे कितना भी गलत हो, पर काग्रेस के और सरकार के कार्यो ने तो जनता मे असतोष और दुखभरा रोष तो है ही। अभी कुछ वडी वात होगी ऐसा तो नही लगता, पर जो कुछ हुआ है या हो रहा है या हो सकने की आशका है, वह भी क्या कम है? जो भी हो, यदि देश के लिये कोई अच्छी वात वने तो सव दुख-कष्ट सहे जा सकते है। पर सवाल तो यह है कि आज ऐसी कोई पार्टी या व्यक्ति सामने नही दीखता जिस पर यह विश्वास किया जाय कि इनके द्वारा देश सुखी हो सकता है या कोई ऐसा कार्यक्रम है जो समाज के लिए सुख की वृद्धि कर सके। रूस और चीन तथा अन्य साम्यवादी देशो के समाचार, वहां की भीतरी हालत का रूप सामने नही है। वहां भी कुछ लोग सारी जनता को अपनी इच्छानुसार चलाते है और वे जैसा चाहे वैसा करते हैं। उनके सुख-सुविधा की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था है। सफलता जो दिखाई देती है, वह सामरिक है या वैज्ञानिक। जो हो, अपना सवध तो अपने देश से है। वह किसी प्रकार भी उन्नत हो, सुखी हो, विकसित हो। वह जिसके द्वारा भी हो, अच्छा है। प्रफुल्ल वावू के इन दिनो जो थोडा अभिमान आ गया था और वे कडाई पर जो विश्वास करने लगे थे, वह इस वार थोडा ढीला पडा या असफल रहा। और भी ऐसे ही लोग है, जिनसे कोई आशा नही की जा सकती।

तुम्हारा पत्र काफी विचारने लायक है। चौधरी खलीकुजा साहव को मै जानता हूँ। कई वाते तो याद नही, पर वे काफी लिखे-पढे आदमी थे। शायद वे यहाँ एसेम्वली के स्पीकर भी रहे थे। खिलाफत के दिनो मे तो मौलाना अक्रम खाँ हम लोगो के साथी ही नही, हमारे नेता भी थे। खिलाफत के आन्दोलन के दिनो मे हिन्दू-मुसलमान का भेद उठ गया था। शायद तुमको मैने कहा भी हो कि वसतलालजी के भाई के विवाह मे अक्रम खाँ साहव और अन्य मुसलमान दोस्तो को जिमाया था। नौकरो ने उनकी जूठी पत्तले उठाने से इन्कार कर दिया था। जव मैने और भाई वसतलालजी ने वे पत्तले उठाई, तव नौकर भी उठाने लगे। इस तरह की अनेक वातें हैं। मुल्लाजान मेरे उन्ही दिनो का परिचित

है, साथी भी कहा जा सकता है। वह जेल मे है करीब आठ महीने से। अठहत्तर वर्ष का है। उसके अपने स्त्री-बच्चे नही है, घर-वार कुछ नही है। बुरा भी उसे बहुत बताते हैं। जो भी हो, वह आदमी है शक्तिशाली और काम करनेवाला। उसका गरीब और साधारण मुसलमानो पर असर है। खैर, यह तो एक दूसरी बात है। तुमने जो लिखी है, वह काम की बात है। शायद इस प्रकार एक अच्छी चीज बन भी सकती है। मुझे जो याद है, वह मुझ तक ही है। अब इन चीजो को देखे हुए आदमी या उस स्थिति से गुजरे हुए आदमी बहुत कम रह गये हैं। और, पाच-दस वर्ष मे शायद कोई भी नही रहेगा। पर, बाबू, तुम कुछ योजनापूर्वक काम कर सको, यह सोचना है। तुम कोई भी काम करो, मुझे इससे ज्यादा क्या खुशी हो सकती है? मेरी यह चाह बिलकुल भी नही रही है कि तुम बडे व्यापारी बनो, बहुत रुपये कमा लो पर यह चाह तो है और रही है कि तुम किसी क्षेत्र मे भी कुछ बनो तो सही। आहिस्ते-आहिस्ते यह विचार, यह इच्छा मरती जा रही है और यह सोच कर सतोष करने की कोशिश करता हूँ कि जो ईश्वर करता है, वह अच्छा ही करता है। पर मन तो मन ही है। मेरी तबियत इन दिनो अच्छी नही रहती है। मै बल की कमी महसूस करता हूँ। सब का कहना है कि बाहर जाना बहुत आवश्यक है पर बाहर जाना मेरा होता ही नही। सोचता हूँ दस-पन्द्रह दिन के लिए दिल्ली ही आ जाऊँ पर यह भी एक विचार ही है। वहाँ अभी गरमी तो नही पडने लगी होगी। तुमने जो लिखा वह काम तुम ही कर सकते हो। मेरी डायरी बीस वर्ष से ज्यादा हजारी प्रसादजी के पास पडी रही। अब वे भवरमलजी के पास पडी हैं। शायद उनका उपयोग इस तरह इन किसी से होनेवाला नही। शायद तुमको याद हो, मैंने एक बार लिखा था कि तुम या बाई ही उनके बारे मे कुछ कर सकते हो। पर बाई अब कुछ करने लायक नही रही। वह बिचारी अपने भोलेपन और भलेपन का परिणाम मानसिक रूप मे पा रही है। उसका स्वास्थ्य मन और शरीर सबसे ढीला पड गया है। खोखन तुम्हारे पास आया गया होगा। वह बहुत समझदार तो नही है। आज का आदमी भीतर से बहुत छोटा है। खैर, आदेश को अच्छी तरह देखने-समझने का मौका मिला क्या? मै तो उसको बहुत नही समझ सका या देख सका। डा० अवस्थी की पत्नी को ससद द्वारा पाच सौ रुपये भेजना तै किया है, कथा समारोह के समय जो तीस हजार की योजना पाँच सौ रुपये महीने की बनी है, उसीमे से यह रुपये दिल्ली उनकी स्त्री को भेजने का सोचा है। वह शायद दिल्ली ही है न? पता लिख सको तो अच्छा रहेगा।

शुभेच्छु,
सीताराम

(५)

२०-६-६७

चि० अशोक

तुम्हारा १७-६ का पत्र कल मिला।

इस वार तुम्हारा पत्र बहुत देर से आया, इसलिए जरा चिंता भी रही। 'समवाय' दो-तीन सप्ताह से नही मिल रहा है। विहार अक निकालने की बात थी। वह काफी लेट हो गया। अब परिस्थिति कुछ बदल-सी गई है। सत्यनारायण ने शायद पांच सौ रुपये 'समवाय' के लिए भेजे हैं। यहां से शायद पन्द्रह सौ से ज्यादा रुपये गये होगे। पत्र मे घाटा तो लगता ही है। कैसे क्या कर रहे हो?

कलकत्ते की हालत तो बहुत ही ज्यादा खराब है। बगाल की भी ऐसी ही है। क्या होगा, कुछ कहा नही जा सकता। इसमे कोई शक नहीं कि महगी इतनी अधिक है कि हर आदमी उसका शिकार है, और आदमी उसके बोझ से दवा जा रहा है। चीजे कम हैं, आदमी बढ रहे हैं। इसका इलाज बहुत ही मुश्किल है। राजनीतिक स्थिति निहायत नाजुक है। यदि ऐसे वक्त कोई युद्ध हो जाये तो देश खतम हो जायेगा। जितना सोचे, उतना कष्ट बढता है और उपाय सूझता नही। जो लोग शासक है, वे अपने-अपने स्वार्थों मे, दलवन्दी मे लगे हुए है। राजनीतिक पार्टियां इस स्थिति से लाभ उठाना चाहती हैं। कम्यूनिस्ट पार्टी को देश रूस और चीन के प्रभाव या अधिकार मे देने मे खुशी है। उसका प्रयत्न भी शायद यही है। वाद मे माओत्से तुङ्ग की तरह अपने देश मे अपने विचारो और ढग का राज्य चलाने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। शायद ऐसा ही स्वप्न वे लेते होगे। पर फिलहाल वे देश को उनके प्रभाव मे चलाना चाहते हैं। काग्रेस आज भी अपने-आपको स्वस्थ नही वना सकी। शायद अब वह स्वस्थ नही हो सकती। तव फिर और कौन-सी शक्ति है? जनसघ या एक दो और है। वे भी देश को सकीर्णता, साम्प्रदायिकता आदि विचारो की घातक राजनीति से चलाना चाहते हैं। उससे भी भला नही होगा। इस प्रकार की जटिल परिस्थि-स्थितियो मे जो होगा, उसकी कल्पना दुखद है। पर आशा करनी चाहिए और अपने से हो सके, वह प्रयत्न करके सतोष करना चाहिए, जो देश के लिए अच्छा लगे।

हिन्दी-भवन के वारे मे बहुत-सी वातें है। यह मेरी इच्छा और भावना का काम है। इसलिए मै इसमे पडा हूँ। बहुत-सी वातें गलत-सही हो सकती हैं। मन कहता है कि यह काम शेष का काम है और इसे करना चाहिए।

आठ-दस दिन पहले सोहनलाल दूगड ने मुझे वुलाया और हिन्दी-भवन के वारे मे कहा कि पाँच लाख रुपये और पांच लाख की मेरी एक जमीन है, वह मै दे दूँगा। हिन्दी-भवन वना लीजिये। उसका नाम गांधी हिन्दी भवन पुस्तकालय रखना मुझे ठीक लगता है। मै उस भवन मे एक वडा पुस्तकालय खोलना चाहता

हूँ, आदि अनेक बाते हुई। सोहनलाल बीमार है और ऐसा लगता है कि शायद वह बहुत दिन नही जीयेगा। बहुत-सी बाते मेरे सामने है। भारतीय सस्कृति ससद के साथ भी यह भवन बनाने की बात चल रही है। हिन्दी वालो की मनोवृत्ति और उनके कार्यो से मेरा बहुत परिचय है। सम्मेलन तक सब एक से है। गोविन्ददासजी भी उसी वातावरण मे घूमने वाले है। इस तरह एक दिक्कत भरा काम मैंने ले लिया है, पर मै ऐसा करता ही हूँ। और, फिर उसके सुख-दुख भोगता हूँ। मै यह जानता हूँ या सोचता हूँ कि मै अपने स्वार्थों से काम नही करता। मेरे मन मे समाज की भलाई की बात है। फिर जो हो, वह हो जाय। चिंता क्यो? पर आदमी तो आदमी ही है। एक बात और है कि अब मन-शरीर मे चोट सहने की शक्ति नही के बराबर है। जो होगा, हो जायेगा। जीना तब तक जीना।

शुभेच्छु,
सीताराम

(६)

५-८-६७

चि० अशोक,

तुम्हारा २-८ का पत्र कल मिला। कलकत्ते का हाल तुम देख कर गये थे, वैसा-सा ही है। पर अच्छे की ओर नही। यहाँ के लोग बहुत भयभीत है। इसका कारण है कि यहाँ का व्यापार बहुत बडे रूप मे गैर-बगालियो के हाथ मे, उसमे भी ज्यादा मारवाडियो के ही हाथ मे है। अरबो रुपये की सम्पत्ति है यहाँ मारवाडी समाज की। इसके अलावा गुजराती, पजाबी और यू० पी०—बिहार के लोगो का भी यहाँ बहुत बडा कारबार है तथा नाना रूपो मे वे यहाँ अपने-आपको फसा हुआ मानते है। कलकत्ता पिछले डेढ-सौ वर्षो से बढता रहा है। उसमे व्यापार तो बाहर के लोगो का ही रहा, मजदूर भी बाहर के ही आये। बगाल के लोगो की सम्पत्ति जमीन के रूप मे खूब बढी है। पर उसका उन्हे विशेष खयाल नही। खास कर साधारण आदमियो के पास तो जमीन थी नही। इसलिये साधारण बगाली की अवस्था निहायत गरीबी की है। मत्रीमडल मे काफी गडबड चल रही है। कम्युनिस्टो के पारस्परिक दलो मे भी काफी मतभेद हैं। इस प्रकार स्थिति जटिल ही है। कम्युनिस्टो का साथ कैसे दिया जाय और किस बात मे दिया जाय? फिर, किस दल का साथ दिया जाये? ये सब सवाल साधारण नही है। जो भी होनेवाला है, वह होगा। कुछ अच्छा होगा, ऐसा फिलहाल तो नही लगता पर ऐसा बराबर चल भी नही सकता। यहाँ के गरीब आदमी को सुख मिलना सहज ही सभव नही, चाहे राज्य किसी का रहे। मेरा मन तो आज-कल कही जाने-आने या मिलने-जुलने का नही रहा। कुछ करने लायक है या कर सके, ऐसा नही लगता। इसलिये बुरा लगता है। निराशा कभी अच्छी नही होती, चाहे वह किसी कारण पैदा हो गई हो। उत्साह और आशा का जीवन ही जीवन है।

'समवाय' के बारे में निश्चय करना चाहिये। निश्चय तो करना ही पड़ेगा। यदि देर होगी तो उससे लाभ नहीं होगा। वस्तुस्थिति को देख कर जो काम किया जाता है, वही ठीक होता है। पर जो लोग काम करनेवाले हैं, वे ही ठीक सोच सकते हैं। मेरा अनुभव पत्रों के बारे में कटु ही रहा है। रुपये ही रुपये पाये पर पत्रों की नींव रखी जाती है और उसके परिणाम भी वैसे ही आते हैं। जो हो, तुम जो भी करोगे और जो भी चाहोगे, उसमें जीवन पड़ेगा। यह करना है, अपने तथा तुम्हारे सन्तोष के लिए। सत्यनारायण को तुम पत्र आदि लिखते रहना। इस बार की यात्रा में उस पर ऐसा असर रहा कि तुमने उससे बात नहीं की। जो करो या जो सोचो, उससे उसे अवगत कराना चाहिए। वह तुम्हारे प्रति अच्छे विचार रखता है, पर वह सनकी तो है ही।

विजया ने अपनी साड़ियों की एक प्रदर्शनी की थी तीन दिन की। कोई तीस-चालीस हजार का माल बिका। विजया इसमें लग गई है। वह बड़ी मेहनत करती है।

और तो कोई बात नहीं। सब चल रहा है। मेरा मन यहाँ लग नहीं रहा है। शिक्षायतन के काम में भी पहिलेवाला रस नहीं आता। और कोई नया काम करने का न मौका है, न परिस्थिति। जो होगा, वह सब अच्छा ही होगा। प्रसन्न रहो।

शुभेच्छु,
सीताराम

— ० —

बन्दी-अवस्था में लिखा गया श्री सुभाष चन्द्र बोस का पत्र

Ichallenge C/o D.C., S.B., C.I.D.
14 Lord Sinha Road
27/12 Calcutta
26.12.36

My dear Sitaramji,

I am very glad to receive your letter of the 15th inst. and appreciate its contents. It is only the affection of friends like yourself that has sustained me through all my unhappy experiences. I am afraid that I shall still have to wait long for the day when I can meet you as a free man. Meanwhile, I shall have to put up patiently with what comes my way. You know probably the usual conditions under which an interview is ordinarily granted to a state prisoner. An interview with friends under such conditions is no attraction for me or for anyone and I think you will agree with me on this point. Why then trouble about seeking an interview with me?

As you probably know from the papers, I am now under treatment in the Calcutta Medical College Hospital.

With affectionate 'namaskar' to all friends and yourself

I am
Yours very sincerely
Subhas Chandra Bose

Sjt. Sitaram Sakseria,
Calcutta.

(हिन्दी अनुवाद पीछे की ओर)

सैसर्ड
(ह०) एस० चटर्जी
२७-१२

द्वारा—डी० सी०, एस० बी०, सी०आई० डी०
१४, लार्ड सिन्हा रोड,
कलकत्ता, २६-१२-३६

प्रियवर सीतारामजी,

आपका ता० १५ का पत्र पाकर मुझे वडी प्रसन्नता हुई और उसमे आपने जो कुछ लिखा है, वह अच्छा लगा। आप जैसे मित्रो के स्नेह ने ही मुझे अपने जीवन मे सारे अप्रीतिकर अनुभवो के दौरान वल प्रदान किया है। मुझे भय है, अभी भी मुझे उस दिन के लिये वडी लवी प्रतीक्षा करनी होगी, जव मै आपसे एक स्वतत्र व्यक्ति की तरह मिल सकूगा। इस वीच मेरे मार्ग मे जो भी कठिनाइयाँ आयेगी, मुझे धैर्यपूर्वक उन सब का सामना करना है। सभवत आपको उन शर्तो के वारे मे मालूम ही है, जिनकी वदिश मे यहाँ एक राजवन्दी को भेंट की सुविधा दी जाती है। उन वदिशो मे किसी भी मित्र से भेंट करने का मुझे कोई आकर्षण नही, शायद किसी को भी नही हो। आप भी मेरी इस वात से सहमत होगे। तव मेरे साथ मुलाकात करने की कोशिश करने के कष्ट मे क्यो पडें ?

आपने शायद समाचार-पत्रो मे पढा होगा कि अभी कलकत्ता मेडीकल कालेज के अस्पताल मे मेरी चिकित्सा चल रही है।

आपको और सब मित्रो को स्नेहपूर्ण नमस्कार के साथ,

मै हूँ,
आपका परम शुभैषी,
(ह०) सुभाषचन्द्र बोस

श्री सीताराम सेकसरिया
कलकत्ता

—— ० ——

पंचम खण्ड

साहित्य

श्री सीतारामजी ने कहा है—"मैंने कभी लिखने के लिये नहीं लिखा। जो लिखा, वह किसी-न-किसी प्रकार की बाध्यता और दबाव के कारण लिखा। इसलिये इन लेखो मे मेरे मन की बात है। भाषा-शैली और साहित्यिकता का दावा तो हो ही नहीं सकता क्योंकि इसमे मेरी कोई गति नहीं। मैंने इनमे अपने मन की बात, अपनी बोलचाल की भाषा मे, लिखकर अपने आपको सतोष कराने का प्रयत्न किया है। एक बात यह है कि परिस्थितिजन्य विचार मन मे आये और उस स्थिति मे क्या करना चाहिये, यह सब मैंने लिख दिया, जो एक तरह से प्राणो की बात है—मन की उथल-पुथल का सही तानाबाना है। हो सकता है, ऐसा ही स्पन्दन किसी के मन मे हो, तो उसको ये लेख अच्छे लग जायें।" वास्तव मे ऐसा हो सकता ही नहीं, हुआ है। और इसीमे तो असली साहित्यिकता है। जितनी बातें उनके लेखन मे हैं, वे साहित्य की हर परिभाषा के अनुसार उनको साहित्यिक सिद्ध करती हैं। स्वर्गीय महापण्डित राहुल-सांकृत्यायन ने उनकी 'स्मृतिकण' पुस्तक के लेखो को पढ़ कर जो स्पन्दन अनुभव किया, उसीसे तो उन्होंने लिखा कि "कणो से पेट नहीं भरता, और बहुत ज्यादा सा दीजिये।" इसी प्रकार की प्रतिक्रिया श्रीमती महादेवी वर्मा और श्री बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने भी व्यक्त की है।

यह सही है कि श्री सीतारामजी ने न कभी विधिवत् कोई शिक्षा प्राप्त की, न लेखन उनका ध्येय और धर्म रहा। तथापि जीवन की पाठशाला या शोधशाला मे उन्होंने जो कुछ पढ़ा और पाया, वह सारा-का-सारा साहित्य हो गया। उनकी सहज अनुभूति ने सहज अभि-व्यक्ति पा ली और विभिन्न घटनाओ से, पात्रो से उन्होने जो स्पदन पाया, उसके सप्रेषण की तीव्र आत्मिक इच्छा से साहित्य अपने-आप पैदा हो गया। और, जो उनका 'स्वान्तः सुखाय' था वह 'सर्वान्त सुखाय' बन गया।

महान् विचारक श्री काका कालेलकर की यही दृष्टि तो रही होगी, जब उन्होने लिखा—"साहित्यिक होने का दावा सीतारामजी ने कभी नहीं किया है। लेकिन साहित्य-सम्राट रवीन्द्रनाथ के वे प्रीति-पात्र अवश्य बने। हिन्दी की सेवा उन्होने काफी की है और हिन्दी साहित्य

का परिशीलन भी। इस परिशीलन की सुगंधि उनके हरएक निबंध मे पाई जाती है। 'घूरे का घर', 'दो चित्र', 'अंधेरे का कैदी', 'दो दृश्य', 'दो लडकियाँ', 'रामलाल' आदि प्रकरणो मे रेखा-चित्रण की मार्मिकता, स्वाभाविकता और संयम––ये तीनो गुण उनकी साहित्य-शक्ति का अच्छा परिचय देते हैं। खास खूबी यह है कि वर्णन या कथन मे कितना कहना चाहिये, क्या छोड़ देना चाहिये और कहाँ ठहर जाना चाहिये, इन बातो की सूक्ष्म अभिरुचि और वास्तव-वर्णन मे आवश्यक संयम की नज़ाकत यहाँ पर उच्च कोटि की पाई जाती है।"। इसी प्रसंग मे उन्होने श्री सीतारामजी को एक पत्र मे यह भी लिखा––"आपके पास मानव-दृष्टि है, साहित्यिक कृत्रिमता नहीं है। इसीलिये मुझे आपके लेखन मे विशेष रस मिलता है।" स्वर्गीय माखनलालजी चतुर्वेदी ने भी इसी बात की ओर इंगित किया, जब उन्होने अपने एक पत्र मे 'स्मृतिकण' के विषय मे लिखा––"आपकी पूरी ही पुस्तक मुझे प्रताड़ित के प्रति स्नेह-भावना से लिखी मालूम हुई।"

सचमुच, संस्मरण–साहित्य मे तो सीतारामजी का स्थान बहुत ही ऊँचा है। श्रीमती ऊषा मित्रा के इस कथन में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं लगती कि 'संस्मरण कितने ही लिखे गये और लिखे जायेंगे परतु 'स्मृतिकण' के कण मेरे मन मे जो महावर-रंजित पद-चिन्ह छोड़ गये, उन पद-चिन्हो का जोड कहा है?" और हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक डा० भगवतशरण उपाध्याय ने भी यही बात कही है—"उपन्यास की भाँति सस्मरण रोचक हैं।........आपकी भाषा इतनी सरल और कोमल है कि उसमे सत्साहित्य का आनन्द आता है। भाषा के प्रसाद ने उसमे असाधारण माधुर्य भर दिया है। संस्मरण के लिये इससे अधिक उपयुक्त भाषा और हो ही नहीं सकती। अत्यंत रोमाचक, मधुर और आदर्श-निर्मल संस्मरणो के सफल रेखांकन के लिये अमित बधाई।"

श्री सेकसरियाजी के लेखन की विस्तारपूर्वक समीक्षा करते हुए सुप्रसिद्ध लेखक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने अपने 'सेकसरियाजी : एक लेखक' शीर्षक लेख मे लिखा है:–

"श्री सीतारामजी सेकसरिया ने लिखने के लिए कुछ नहीं लिखा; लिखने के शौक के लिए या लिख कर नाम-

दाम कमाने के लिए कुछ नहीं लिखा और कल्पना के द्वारा भी कुछ नहीं लिखा।

सेकसरियाजी की लेखन-शैली का जब मैं विश्लेषण करता हूँ, तो मुझे लगता है कि उनका लेखन-शिल्प यह है कि कोई शिल्प नहीं, कोई कारीगरी नहीं; बस सीधे-सादे ढग से अपनी बात कह देना। उनके इस शिल्प की पृष्ठभूमि स्वय उनका अपना व्यक्तित्व है। उनके लेखन की विशेषता उनकी सृष्टि नहीं, उनकी दृष्टि है।

उनकी दृष्टि की भी एक विशेषता है। उन्होंने महानताओ को तर्क से नहीं, श्रद्धा-समादर से देखा है और छोटो को, दीनो-हीनो को सहानुभूति-समवेदना से। यही कारण है कि वे जहां अपनी पीढी के सर्वश्रेष्ठ पुरुषो के चित्र हमारे साहित्य को भेंट कर सके हैं, वहां 'रामलाल', 'निर्मला की मा', 'घूरे का घर' और 'अधेरे का कैदी' भी दे पाये हैं। आकाश और पृथ्वी को एक साथ, एक भाव, एक रस से देखना कोई साधारण बात तो नहीं है? इस असाधारणता का रहस्य भी उनके अपने जीवन मे ही है। उनकी दृष्टि अणु और विराट दोनो को समभाव से और समप्रभाव से देख पाती है।

सेकसरियाजी जीवन-साधक हैं, अतएव स्वाभाविक है कि वे दूसरो के जीवन-तत्वो का गहरा अध्ययन करने मे दक्ष हो, सहज सफल हो। जहां-जहां उन्होंने उस अध्ययन को घटनाओ के माध्यम से नहीं, निष्कर्ष के माध्यम से अकित किया है, वहां-वहां उनकी सूक्तियां साहित्य के मोती बन कर चमक उठी हैं।

इसमे सन्देह नहीं कि एक जीवन-साधक और समाज-सेवी के साथ श्री सीताराम सेकसरिया को आने-वाली पीढिया एक लेखक के रूप मे भी आदर के साथ याद करेगी।"

श्री सीतारामजी के सवेदनाशील सस्मरण-लेखो, आत्म-निरीक्षण की पारदर्शी सचाई से स्पन्दित डायरियो और विचारोत्तेजक एव प्रेरक लेखो को पढ़ कर कोई भी पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। निस्सदेह उनके विषय मे यह उक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है कि लेखक बनता या बनाया नहीं जाता, होता है।

—सम्पादक

प्रकाशन :

१. स्मृतिकण (१९५०)
२. बीता युग : नई याद (१९७०)
३ एक कार्यकर्ता की डायरी (दो भाग) (१९७२)

१

अंधेरे का कैदी

भाद्र का महीना था। रात के करीब ११ बजे होगे। प्रेसिडेसी जेल के यूरोपियन वार्ड मे मै अपनी कोठरी मे बन्द था। खिडकी से मुझे आकाश अच्छी तरह तो नही दिखलाई पडता था, पर जितना भी दिखलाई पडता था, काले बादलो से घिरा था। थोडी देर मे बूदे पडने लगी। किसी अस्थिर-चित्त मनुष्य के विचारो या क्षण-क्षण मे होने और टूटनेवाली मित्रता की तरह विद्युत् अपना प्रकाश मेरी इस अंधेरी कोठरी मे फैलाने लगी। मै पडा-पडा तरह-तरह के विचारो मे निमग्न था, क्योकि नीद नही आ रही थी।

सहसा एक सुन्दर गाने की आवाज सुनाई पडी। यह गान कविवर रवीन्द्रनाथ का निम्न पद था

मेघेर पर मेघ जमेछे आंधार करे आसे,
आमाय केनो बसिए राखो एका द्वारेर पासे।

यह गाना मुझे इतना सुन्दर लगा कि मैं अपने विचारो की उलझन से निकल कर इसके राग और भावो मे अपने-आपको भूल गया। गान समाप्त होने पर मै सोचने लगा कि जेल मे इस आधी रात को गानेवाला कौन है? इस वार्ड मे हम दस राजनैतिक कैदी है। उनमे से तो कोई गा नही रहा है और दूसरा वार्ड यहा से काफी दूर है। तब फिर आखिर यह कौन गा रहा है?

पास ही मे एक हाजत थी, जिसमे करीब तीन-साढे तीन सौ आदमियो को भेड-बकरियो की तरह शाम को छ बजे बन्द कर दिया जाता था। मै जब कभी किसी काम से वार्ड से बाहर निकलता था, तो इन मनुष्य तनधारी पशुओ को देखता था। उनकी हालत देखकर सहसा यह विश्वास कर लेने को जी नही चाहता था कि हाजत के इन बनमानुषो मे किसी ने यह गाना गाया है। वर्षा से थोडी ठडक-सी हो गई थी, अत गानेवाले की बात सोचते-सोचते ही न जाने कब मुझे नीद आ गई।

सुबह उठते ही मेरे मन मे यह प्रश्न जग उठा कि रात मे वह गान किसने गाया था? बगल की कोठरी के भाई से बात की तो उत्तर मिला कि वे तो रात-भर खर्राटे लेते रहे। उन्हें तो यह भी पता नही कि कब बादल छाये और कब वर्षा हुई। किसी काम के बहाने मैं वार्ड से बाहर निकला। देखा कि पास मे ही सैकडो अधनगे मैले-कुचैले लोग सुबह का नाश्ता कर रहे हैं। नाश्ता भी उनका बस था, सो ही था। जेल मे सुबह के नाश्ते मे कैदियो को एक लपसी दी जाती है, जिसमे चावल, नमक और कुछ मसाले मिले होते हैं तथा पानी की बहुतायत

रहती है। मैने एक से पूछा, "भाई, तुम लोगो मे मे किसने रात को इतना अच्छा गाना गाया था ?"

वह बोला, "बाबूजी, कौन-सा गाना ? हम गाने की बात क्या जाने !"

मैं सोचने लगा, मैं भी कैसा पागल हूँ, जो इस तरह की बात करता हूँ !

दस-पाच दिन गुजर गये, पर मेरे मन मे यह चाह बनी रही कि उस गाने-वाले का पता लगता, तो अच्छा था। एक दिन शाम को पाच बजे मेरी मुलाकात थी। हम लोगो को पन्द्रह दिन मे एक बार घर के लोगो से या जिनमे हमारा खास सम्बन्ध हो और पुलिस को उनसे मिलने देने मे कोई आपत्ति न हो, उनमे हमारी मुलाकात कराई जाती थी। मैं जब मुलाकात करके लौट रहा था, तो उसी हाजत के पास एक आदमी बैठा अपनी थाली पर हाथ से कुछ बजाने का-सा प्रयत्न करता हुआ दिखलाई पडा। मेरे मन मे उस रात के गाने की स्मृति जाग उठी। मैंने उसके पास जाकर पूछा, "क्या बजा रहे हो ?"

वह शरमा गया और बोला, "बाबूजी, कुछ नही बजाता।"

मैंने कहा, "मालूम पडता है, तुम गाना जानते हो।"

"नही बाबूजी, योही जरा कभी ऊ-आ कर लिया करता हूँ।"

"पाच-छ दिन पहले रात मे मैंने एक बहुत सुन्दर गाना सुना था। पता नही, वह किसने गाया ? मैं उस आदमी को खोज रहा हूँ। कौन जाने, किस वार्ड मे है।"

"यहाँ हम तीन सौ आदमी बन्द होते हैं। रात मे काफी शोर होता है। नीद नही आती, तब कई लोग यो ही कुछ गाया करते हैं। आपने वही सुना होगा। दूसरे वार्ड मे मे गाया हुआ गाना यहा क्या सुनाई पडेगा ?"

"तुम यहा कितने दिनो से हो ?"

"दो वर्ष हो रहे हैं।"

"कितनी सजा है तुम्हारी ?"

"सजा कहाँ ? ब्लैक-आउट मे (अंधेरे का कैदी) हूँ।"

"ओह, तुम ब्लैक-आउट हो ! तो पहले कई बार सजा पा चुके हो न ?"

"पहले की बात मत पूछिये, बाबूजी ! हाँ, सजा तो काटी ही है।"

उसकी आवाज मे दर्द था। वह भर्राई हुई थी। वह आदमी भी जरा दूसरो मे भला-सा लगता था। मैंने कहा, "तुमको यहा कोई तकलीफ तो नही है !"

"तकलीफ किस बात की, बाबूजी ! हम चोर जो ठहरे ! हमारा तो यह घर ही है। एक बीडी हो, तो कृपा करें।"

"भाई, बीडी तो मैं नही पीता।"

"तो कोई साबुन का टुकडा हो, तो "

"हाँ, भीतर वार्ड मे आना, साबुन जरूर मिलेगा।"

"भीतर बाबूजी, सिपाही नही जाने देते। यदि रिपोर्ट कर दें तो यहाँ बेडी लग जायगी।"

"अच्छा, यदि हम तुम्हें अपने वार्ड मे काम करने के लिए ले ले, तब ?"

"तब तो बडी कृपा होगी, बाबूजी !"

"देखो भाई, हम सब है राजनैतिक बन्दी और उसमे भी सिक्यूरिटी-प्रिजनर। हम लोगो के पास बहुत-सी चीजे भी है। कीमती चीजे भी है। तुम कही चोरी कर लो, तव? तुम लोगो का क्या भरोसा!"

"हाँ, हमारा विश्वास कौन करता है!"—एक लम्बी सास खीचते हुए उसने कहा।

मैंने कहा, "अच्छा, मैं जेलर से बात करूँगा। तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम धीरेन्द्रदास है।"

"और नम्बर?"

"नम्बर ३४५-वी है।"

मैं अपने वार्ड मे आ गया। सोचने लगा, आदमी आदमी मे इतना फर्क क्यो है? क्या यह फर्क होना जरूरी है? क्या यह स्वय निर्मित है? नही, यह फर्क जवरदस्त आदमी ने अपनी सुविधा के लिए बनाया है। अपने स्वार्थ के लिए उसने कमजोर आदमी पैदा किये है। यह फर्क एक बहुत लम्बे समय से चला आ रहा है। क्या यह बराबर इसी तरह चलता रहेगा? यही सोचता-सोचता मैं अपने कार्यों मे लग गया। दूसरे दिन जेलर से कहकर हम लोगो ने उस आदमी को अपना काम करने के लिये ले लिया। दो-चार दिन तो उसको काम से परिचय करने मे लगे, फिर वह सब काम बडी सफाई और चतुराई से करने लगा। हमे कभी किसी तरह की शिकायत करने का मौका उसने नही दिया। यदि ऐसा आदमी हम शहर मे नौकर रखे, तो इस महगी के जमाने मे बीस रुपया मासिक और खाना तो देना ही पडे। और आजकल खाने पर भी कम-से-कम पौन-एक रुपया तो रोज खर्च होता ही है। पर यह आदमी रात-दिन कडी मेहनत और होशियारी से काम करता है और सिवा दो-चार बीडियो के इसकी कोई माग नही। पर यह कैदी जो है, चोर जो है, कौन इसे काम देगा, कौन इसे अपने घर मे रखेगा? बोलवाला है आज इस समाज-रचना का, जिसने हम-जैसे सफेद-पोशो के लिए सब सुभीते कर रखे हैं। शरीर से कोई परिश्रम करना हम पसन्द नही करते—पसन्द ही नही, उस परिश्रम करने मे अपनी हेठी भी समझते हैं और हाथ ही 'कल्चर' की कमी भी।

एक दिन हम लोगो का रसोइया बीमार पड गया, तो धीरेन्द्र ने कहा, "बाबूजी, क्या खाना बना दूँ?"

"तुम खाना कैसे बनाओगे? तुम तो खाना बनाना जानते नही।"

"नही बाबूजी, मै जानता हूँ। एक दिन मुझसे बनवा कर तो देखिये।"

और उस दिन धीरेन्द्र ने जो खाना बनाया वह उस रसोइये के खाने से कही अच्छा था। उसने एक-दो चीजे नई भी बनाई थी। अब तो वह हम लोगो का खाना भी बनाने लगा और नित्य एक-न-एक नई चीज बनाता, जो लोगो को बहुत पसन्द भी होती। मैं सोचता कि यह आदमी पीर-बावर्ची-भिश्ती-खर बडा अच्छा मिला। यदि यह आदमी किसी तरह इस ब्लैक-आउट से छूटे, तो इसको अपने घर पर रख ले। यह चोर जरूर है, पर यदि सोचकर देखा जाय, तो इसका इसमे

वहुत कम कसूर है। बेचारा क्या करे? जब इसका कोई विश्वास ही नही करता, तो पेट के गढे को भरने के लिए कुछ-न-कुछ करेगा ही। आज की समाज-रचना ने न मालूम कितनो को अपना पतन करने के लिए विवश किया है।

अब धीरेन को पहले की अपेक्षा काम कम करना पडता था, पर कभी खुश नही दीख पडता। उसे देखकर मैं वरावर यही सोचा करता कि इस आदमी के मन मे कोई गम-दर्द जरूर है। एक दिन मैंने उससे पूछा, "धीरेन, तुम्हें यहा कोई तकलीफ तो नही है?"

"नही वावूजी, यहा तो वहुत आराम है। आप लोगो की सेवा का मौका मिलता है। आप लोग देश के लिए तकलीफ सहते है। हम तो चोर है। आपका साथ मिल गया, यही क्या हमारे लिए कम है। यहा भला तकलीफ किस वात की?"

"तो तुम इतने सुस्त क्यो रहते हो? तुमको कभी हसते नही देखा। वताओ भाई, यदि हमसे कुछ हो सकेगा, तो तुम्हारे लिए करने की कोशिश करेंगे।"

इतना सुनकर वह रोने लगा। कुछ देर वाद सभला तो मैंने आश्वासन के स्वर मे पूछा, "यह क्या वात है?"

"वात कुछ नही है, वावूजी, मैं सदा से ऐसा नही था।"

यह सुनकर उससे पिछला हाल जानने की मेरी उत्कण्ठा और भी वढी और मैंने उससे पूछा, "अच्छा, तुम्हारी कहानी क्या है?"

"क्या फायदा है उसे कहने मे? योही आदमी किसी अज्ञात के इशारे से क्या हो जाता है!"

"नही, तुम इस फन्दे मे कैसे फस गये? तुम तो थोडा लिखना-पढना भी जानते हो, मेहनती भी हो, काम करने का शऊर भी है, फिर तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ?"

"अच्छा, जव आप पूछते ही है, तो मैं कहे देता हूँ। मेदिनीपुर जिले के सूता-हाटा गाँव मे मेरा घर है। मा-वाप हैं, दो वहनें हैं, जगह-जमीन है, गाय-वैल हैं। अच्छी खाती-पीती अवस्था है, किसी वात की कमी नही। पिता-माता का इकलौता पुत्र और वह भी वडी उम्र मे पैदा होने के कारण मैं वहुत लाड-प्यार से पाला गया। गाव के स्कूल मे मिडिल तक पढा भी। आगे पढने की खूव इच्छा थी, पर हमारे गाव मे इससे आगे की पढाई नही होती थी और शहर के स्कूल मे भेजने के लिए माता-पिता राजी नही हुए। मैंने वहुत कोशिश की, पर मा मुझे अपने से अलग करना नही चाहती थी। फलत मैं घर की खेती-वारी का काम देखने लगा।"

वह जरा चुप हुआ और ठिठका। उसके चेहरे पर किसी विपाद-भरे भाव की रेखाएँ चमकने लगी। मैंने पूछा, "क्यो, चुप कैसे हो गये?"

"वावूजी, और वाते आज नहो, किसी दूसरे दिन वताऊँगा।"

"नही भाई, अव तो मेरी उत्सुकता और वढ गई है। कहो—कहो, घवराना नही चाहिए।"

वह वोलना ही चाहता था कि किसी ने पुकारा, "धीरेन!" और वह उठकर चला गया। देखा, सिपाही आया है और कह रहा है कि उसकी दूसरे वार्ड मे

वदली हो गई है। सुनते ही बेचारा सहम गया। मेरे पास आकर बोला, "वाबूजी, मुझे आठ नम्बर खाते मे जाना पडेगा।"

"क्यो ?"

"सिपाही आया है। जेलर साहब का हुकुम है।"

मैंने सिपाही से कहा, "भाई, इसे यही रहने दो। हम लोग जेलर से वात कर लेगे।"

सिपाही ने कहा, "वावूजी, हम क्या कर सकते है ? एक बार तो जाना ही पडेगा। फिर आप जेलर साहव से वात करके इसको वापस वुला सकते है।"

धीरेन वोला, "वावूजी, दुर्भाग्य मेरा साथ नही छोडता। आपकी कोशिश व्यर्थ है। मुझे उसके भरोसे छोड दीजिए। आप जैसे लोगो के साथ मै कैसे रह सकता हूँ।"

दूसरे दिन जव जेलर आया, तो हम लोगो ने उससे धीरेन को हमारे पास रहने देने के लिए कहा, पर वह राजी नही हुआ। कहने लगा, "वडे जमादार ने उसकी यहा पर रहने की शिकायत की है। मै उसको यहा नही रख सकता।"

जेल मे एक वार्ड और दूसरे वार्ड मे ४०-५० गज का ही फासला होता है, पर वह फासला भी कितना अधिक है, इसे भुक्तभोगी ही जान सकता है। इसलिए इसके वाद धीरेन मुझसे न मिला और न मै ही कभी धीरेन से। रात को जव नीद टूट जाती या कम आती तो मन मे तरह-तरह के विचार उठते। उनमे धीरेन की कहानी को लेकर अनेक कल्पनाए तथा हम लोगो से विदा होते समय की उसकी आकृति मन और आँखो मे घूमा करती। आज भी उसकी पूरी कहानी जानने की प्रवल इच्छा है, और वह क्या हो सकती है, इस सम्वन्ध मे नाना कल्पनाए उठा करती है। धीरेन ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य किसी अज्ञात के इशारे से क्या से क्या हो जाता है!

अक्टूबर, १९४४

२

रामलाल

नाटे कद का एकहरा वदन और काला रग, एक आँख मे फुलडी, सिर पर राजनैतिक वन्दियो के सुवह के नाश्ते का वोझ और हाथ मे चाय की पतीली लिये उसे मैने आते देखा। नाश्ता देकर वह चलता वना। थोडी देर वाद फिर किसी काम से आया, ग्यारह वजे खाना लेकर आया और फिर शाम को खाना लाया। सव मिला कर हमारी हाजत मे वह सात-आठ वार आया होगा। इसी तरह वह वरावर आया करता।

तीन-चार दिन वाद हम कुछ आदमी वडी हाजत मे वदलकर यूरोपियन वार्ड मे लाये गये। यही हम लोगो का खाना वनता और यही से वह हम लोगो की चीजे लेकर वडी हाजत मे दिन मे कई वार जाया करता। अव तो उसको हम लोगो के सव काम करने का भार सौंपा गया। हम लोग कुल दस आदमी थे और वहाँ दस के ही रहने की जगह थी। इसमे से तीन आदमी निरामिष भोजी थे, इसलिए उनका इन्तजाम अलग था, वाकी सात की सेवा का भार उस पर पडा। रसोई वनानेवाले और भी आदमी थे, पर इन सात आदमियो के सारे काम उसे ही सौंपे गये। उसको यहा के लोगो मे से कोई तो 'काना' नाम से पुकारता और कोई 'वुड्ढा' कहकर। उसके साथी कैदी भी उसे इन्ही नामो से पुकारते। पर उसको चाहे जिस नाम से पुकारो, वह वहा आता था।

मुझे उसका 'काना' नाम वहुत ही वुरा लगा और उसे 'वुड्ढा' कहकर पुकारना भी ठीक नही जचा, इसलिए एक दिन मैने उससे पूछा,

"तुम्हारा नाम क्या है?"

वह हँसा और वोला, "जी, समझ लीजिए। 'काना' भी कहते है 'वुड्ढा' भी कहते हैं।"

"नही, यह तो तुम्हारी उम्र से या आख की वजह से कहते है। तुम्हारा असली नाम क्या है?"

"नाम? नाम तो रामलाल है।"

"कहाँ के हो?"

"यही का।"

"नही, तुम्हारा देश कहा है?"

"देश तो उडीसा है।"

"तुम्हारे घर पर कौन-कौन है ?"

"एक भौजाई है और एक उसका बेटा।"

"उसका बेटा कितना बडा है ? क्या तुमने विवाह नही किया ?"

"मैं विवाह कैसे करता ? भौजाई तो बेचारी विधवा है।"

"तो इससे क्या ? तुमने विवाह क्यो नही किया ?"

"नही, यह मेरा धर्म नही। उसको तथा उसके बेटे को खाना देना मेरा धर्म है। मैं विवाह करता, तब तो बस मैं उनको भूल ही जाता।"

"तुम्हारे भाई को मरे कितने दिन हुए ?"

"पन्द्रह-बीस वर्ष हो गये होगे।"

"उसका लडका कितना बडा है ?"

"होगा कोई ग्यारह-बारह साल का।"

"तो क्या वह तुम्हारे भाई के मरने के बाद पैदा हुआ ?"

"राम-राम, वह बहुत अच्छी है। ऐसी बात मुह से मत निकालिए।"

"तुम तो कहते हो, भाई को मरे पन्द्रह-बीस वर्ष हुए होगे और लडका ग्यारह-बारह साल का है। तब भाई को मरे इतने वर्ष नही हुए होगे। तुमने उससे विवाह क्यो नही कर लिया ? तुम लोगो मे तो ऐसे विवाह होते हैं।"

"उससे विवाह करता ? वह तो माँ है, माँ !"

"अच्छा, तुम्हारी उम्र कितनी है ?"

"तीन कुडी[1] से ज्यादा होगी।"

मैंने मजाक किया, "चार-पाँच कुडो होगी।"

"पाच कुडी तो पूरे सौ होते हैं। इतनी नही। चार कुडी तो ज्यादा है, हो भी सकती है।"

रामलाल सुबह छ बजे आता है और शाम को छ बजे चला जाता है। इन बारह घटो मे वह कभी बैठता नही। जिस तरह तेली बैल को घानी मे जोत देता है और उसकी आँखे बाध देता है, फिर वह फिरता ही रहता है, उसी तरह रामलाल भी है। पर उसको भौजाई की रक्षा मे धर्म मालूम होता है, न जाने यह क्या बात है !

जेल मे दो हजार से ज्यादा ही कैदी है। इनमे शायद ही कोई हो, जो तमाखू-बीडी न खाता-पीता हो। और यहाँ तमाखू पीना गुनाह है।

रामलाल भी तमाखू खाता है और इतनी खाता है, जितनी मिल सके। फिर भी यदि उसके पास से कोई मागता है, तो वह यह खयाल नही करता कि जब उसे जरूरत होगी, तो कहाँ से आयगी। वह मागनेवालो को दे ही देता है। इस मामले मे वह कर्ण से कम नही है।

रामलाल यह खयाल नही करता कि अमुक चीज अमुक आदमी की है। वह जिसको जिस चीज की जरूरत हो, दे देता है। जब उससे पूछा जाता है कि अमुक

---

१ कोडी (अर्थात् २०) का उच्चारण बगाल-उडीसा मे 'कुडी' ही किया जाता है।

चीज जो वहा थी, कहा गई, तो वह कहता है कि वह तो अमुक को दे दी। उससे पूछा जाय कि विना हमसे पूछे क्यो दे दी, तो वह कहता है कि उसने मागी थी, उसे जरूरत थी, इसीलिए दे दी। यदि उससे कहा जाय कि हमे भी उसकी जरूरत है, तो वह कहता है, तव तो वडी 'मुश्किल की वात' है। यह 'मुश्किल की वात' उसका तकिया-कलाम-सी हो गई है। कोई उस पर नाराज हो, वह बुरा नही मानता, और खुश हो, तो भी उस पर कोई खास असर नही होता।

१० फरवरी, १९४३ को जब गाधीजी ने २१ दिन का उपवास शुरू किया तो रामलाल पूछा करता, "गाधी महात्मा की क्या खबर आई है?" जब महात्माजी की अवस्था खराब होने लगी और हम लोग चिन्तित हुए, तो उसने कहा, "गाधी महात्मा तो भगवान है, उनका कुछ विगडेगा नही। वह अच्छे हो जायगे। उनको कौन मार सकता है?" लेकिन वावजूद इस आत्मविश्वास के उसको गाधीजी की खबर जानने की उत्सुकता बराबर रहती थी।

सात आदमियो की कोठरियो की सफाई करना, सामने का वरामदा साफ करना, किसी को गरम पानी-नीवू, तो किसीको ठडा पानी, किसी को चाय, तो किसी को दूध, किसी को कुछ, तो किसी को कुछ—यह सब वह सुबह से शाम तक करता रहता है। इसके अलावा सबके कपडे धोता है, जूठे बरतन साफ करता है, नहाने के लिए ठण्डा या गरम पानी देता है। मतलव यह कि वह कभी जरा भी विश्राम करते नही देखा गया। भोला इतना है कि उसे जो कोई जैसा कहे, सब सच ही मानता है। लगभग सभी उससे मजाक किया करते है। कभी कोई आदमी बीमार होता है, तो वह उसकी बेहद सेवा-सुश्रूषा करता है। वह साथी कैदियो के सुख और सुविधा का सदा खयाल रखता है। यदि हम लोग कभी उसे कोई चीज देते, वह साथी कैदियो को देकर खाता तथा उनकी तकलीफो के लिए हम लोगो से सिफारिश भी करता। उसे अपनी उतनी फिक्र नही, जितनी दूसरो की।

एक दिन हमारे वार्ड के राजवन्दियो ने दूसरे वार्ड के कुछ वन्दियो को दावत दी। इससे रामलाल का काम बहुत वढ गया—पहले ही वह कौन कम था। दिन-भर वह खूब दौडता रहा। शाम को खाकर दूसरे वार्ड मे वन्द होने गया और वहाँ वीमार पड गया। उसे एक कै हुई और कुछ दस्त आये। सुवह होते-होते उसे वुखार चढ आया। पर ज्योही वह हमारे वार्ड मे आया, तो फिर उसी तरह काम करने लगा। मैने उससे कहा, "तुम यह क्या करते हो? कुछ विश्राम करो।" वोला, "अच्छा विश्राम करूगा।"

एक जगह वह सो गया और अपने-आप वात करने लगा, "विश्राम करो, वस विश्राम करो, पर विश्राम कैसा? विश्राम करने से तो फिर विश्राम ही हो जायगा। नही, मै मूर्ख हूँ। मुझे विश्राम नही, काम करना चाहिए। रात मे अच्छा लगा, ज्यादा खा लिया। मूर्ख हो गया, अब फिर मूर्ख हूँ, विश्राम जो करता हूँ। नही, मुझे काम करना चाहिए। काम करने से आदमी ठीक रहता है।"

थोडी देर वाद देखा, तो वह अपना सारा काम फिर सदा की भाति कर रहा है। यह रामलाल 'शीतोष्णसुखदु खदा' है, 'मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रा-

रिपक्षयो ' है और है 'निर्ममो निरहकार ।' यदि हम सफेदपोश लोग सोचकर देखे, तो उसने किसका क्या बिगाडा है? वह ससार से क्या लेता है? उसकी जरूरते कितनी है? वह पूरा आत्मत्यागी है। दिन-भर मेहनत करता है और सिर्फ पेट भरने के सिवा उसकी कोई माग नही। वह दूसरो को कितना अधिक देता है और स्वय कितना कम लेता है, यह सोचने की बात है।

सितम्बर, १९४४

—— ० ——

३

दो लड़कियां

सन् १९३४ की बात है। हम लोग जमनालालजी के पास वर्धा गये हुए थे। पूज्य बापूजी सत्याग्रह-आश्रम मे रह रहे थे। अब तक मगनवाडी और सेवाग्राम की स्थापना नही हुई थी। बापूजी के यहां रहने से जमनालालजी का अतिथि-गृह मेहमानो से भरा रहता। देश के हर क्षेत्र के लोग बापूजी के पास अपने-अपने काम से आते ही रहते। इस तरह देश के विशिष्ट लोगो और कार्यकर्त्ताओं से मिलने का मौका मिलता तथा देश की नाना तरह की समस्याओ से जानकारी होती। फिर जमनालालजी के स्नेहशील स्वभाव का भी आकर्षण था। इसलिए मैं तथा मेरे परिवार के लोग वर्ष मे एक-आध महीने वहां जाकर रहते थे। एक बार की एक घटना का वर्णन मैं करना चाहता हूं।

सुबह चार बजे हम लोग प्रार्थना करते। कुछ चुने हुए श्लोक और नामोच्चारण के बाद एक भजन गाया जाता। एक दिन भजन के समय जमनालालजी ने किसी को सम्बोधन करके कहा—रामेश्वरी, तुम एक भजन गाओ न। तो उस बहन ने मीरा का एक भजन गाया। शायद भजन की टेक थी—'सुनी री मैंने हरि आवन की आवाज।' इस बहन का गला निहायत सुन्दर था और गाने का ज्ञान भी उन्हे अच्छा था। इसके साथ गानेवाली की तन्मयता ने एक समा बांध दिया और उस दिन की प्राथना का आज तक स्मरण है। प्रार्थना समाप्त होने पर सब कोई अपने-अपने काम मे लग गये। मेरे मन मे रहा कि यह बहन कौन है और यहां किस काम से आई है? मैंने जमनालालजी से उन बहन का परिचय पूछा। वह बोले कि इनसे तो मैं तुम्हारा परिचय करानेवाला ही था। ये कल ही आई हैं। इनकी मा और दो-तीन बहनें भी आई हैं। उन सबसे भी तुम परिचय करो। इनका नाम रामेश्वरी गोयल है। एम० ए० हैं, लेखिका हैं, कवयित्री हैं और गाना तो अभी सुना ही है। इलाहाबाद मे एक स्कूल की प्रधानाध्यापिका हैं। और बातें तुम स्वय कर सकते हो। मेरा नाम और परिचय भी उन्होंने बता दिया। सब सुनने के बाद मेरी उत्सुकता बढी, उनसे बात करने की। पर किसी अनजान महिला से बातें करने मे स्वाभाविक सकोच तो होता ही है। उन बहन ने कहा कि आपका नाम मैं जानती हूँ। खैर, दो एक दिन मे ही हम लोगो की अच्छी घनिष्ठता हो गई। रामेश्वरी बहन की माताजी तथा बहनो से भी अच्छा परिचय हो गया।

श्री रामेश्वरी देवी से सबधित और बातो को छोडकर मैं एक खास बात, जो इस लेख के लिखने का उद्देश्य है, लिख रहा हूँ। रामेश्वरीजी की मा उनको लेकर यहां इसलिए आई थी कि सेठजी (जमनालालजी) से परिचय हो जाने पर किसी

योग्य आदमी से उनका विवाह कराने में वह मदद करें। जमनालालजी के पास नाना तरह की समस्याए लेकर लोग आते थे और कुछ को बापूजी भी भेजते थे। उन समस्याओ मे इन विवाह-शादियो की समस्याओ का भी काफी हिस्सा था। इस बारे मे जमनालालजी के जीवन के बारे मे लिखना हो, तो उनके जीवन के इस विषय को छोडा नही जा सकता। एक व्यगात्मक बात तो कह ही दूँ। प्रभावती वहन (श्री जयप्रकाशजी की पत्नी) उन दिनो ज्यादातर बापूजी के पास रहती थी। एक दिन बापूजी से बाते करके हम लोग वहाँ से उठे, तो प्रभावती वहन साथ-साथ आई और जमनालालजी से कहने लगी कि काकाजी, अब आपको जमनालाजी न कह कर शादीलालजी कहना चाहिए, क्योकि आजकल आप बहुत शादियाँ कराते हैं। शायद उस समय सोफिया खान की शादी के बाबत बापूजी से बात चल रही थी, जो बम्बई की एक प्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्री (उस समय की सोफिया सोमजी) थी और जिनकी शादी जमनालालजी ने ही डा० खान के बडे लडके सादुल्ला खान से कराई थी। इस सम्बन्ध को बापूजी ने बहुत पसन्द किया था। और भी लोगो ने इस सम्बन्ध के लिए जमनालालजी को बहुत शाबाशी दी थी। यह सब लम्बी बाते।

रामेश्वरीजी से जमनालालजी ने विवाह के बारे मे बाते की तथा जानना चाहा कि कैसे क्या वह सोच रही हैं? इस पर उन्होने एक ही शब्द मे कह दिया कि मैं अपनी मा के कहने से विवाह कर रही हूँ, इसलिए इस बारे मे मुझे कुछ कहना या सोचना नही है। जिसको मेरी मा पसन्द करे, वह मुझे पसन्द है, क्योकि मैं मा को सन्तुष्ट करना चाहती हूँ। मेरी मा का मुझ पर बहुत उपकार है। उसने बहुत तकलीफ सह कर, बडी कठिनाइयो का मुकाबला करके मुझे लिखाया-पढाया तथा आदमी बनाया है। अब मा मेरा विवाह करना चाहती है, तो मैं उसकी आज्ञा का पालन कर रही हूँ। आज्ञा-पालन मे अपना सवाल नही रहता। इसलिए मुझे कुछ नही कहना है, कुछ नही सोचना है।

बाते तो बहुत हुई, पर उन्होने तो एक ही बात कही कि जिसमे मेरी मा राजी हो, वही मुझे करना है। इन सब बातो का कम-ज्यादा रूप मे वहा हम सबको पता लग ही गया। रामेश्वरीजी के हमउम्र लोगो मे से, जो जमनालालजी के कुटुम्ब के थे, बहुत-से व्यग्य भी करने लगे। श्रीमती जानकी बहन (जमनालालजी की पत्नी) ने मुझसे कहा कि यह लडकी तो खूब है! इतनी पढी-लिखी, सब बातो को जाननेवाली, कहती है कि मुझे अपने विवाह के बारे मे कुछ नही सोचना है, जो मेरी मा करे, वही मुझे मजूर है! मैंने कहा कि जानकी बहन, मुझसे उसकी बहुत बाते होती है। उसकी विवाह करने की ही इच्छा नही है। वह तो समाज-सेवा, देश-सेवा करना चाहती है, पर वह यह मानती है कि मुझे अपनी मा को सन्तोप कराना है। उसकी इच्छा मे अपनी इच्छा का समर्पण करना है। इसलिए वह कहती है कि मा जो करे, जो सोचे, उसमे मैं उज्र कैसे कर सकती हूँ? जानकी बहन ने कहा कि अपनी ओम तो बहुत बाते करनेवाली है ही। उसने रामेश्वरी को बहुत तग किया, तो उसने यहा तक कह डाला कि मा मुझे किसी पत्थर के गले मे भी बाध दे तो मुझे कोई उज्र नही होगा। आज के जमाने मे

इतनी पढी-लिखी, इतनी स्वतंत्र रहनेवाली और स्कूल चलानेवाली लडकी इस तरह सोचे, यह तो आश्चर्य ही है।

रामेश्वरी देवी का विवाह हुआ और उसके कुछ ही दिनो वाद उनकी मृत्यु हो गई। उन्होने अपनी मा की इच्छा को पूरा किया, पर उनकी अपनी इच्छा उनके साथ ही चली गई।

० ० ०

एक दूसरी लडकी का चित्र देखिए, जो इसके विलकुल विपरीत है। एक माता-पिता ने अपनी लडकी को जमनालालजी के पास भेजा कि इस लडकी को समझाइए कि यह क्या करने जा रही है। यह जिस लडके से विवाह करना चाहती है, उसे हम लोग पसन्द नही करते। वह हमारे धर्म का नही, हमारी जाति का नही और हमारी बरावरी का नही। इस लडके के साथ यदि उसका सम्बन्ध होगा, तो हम अपनी जाति मे, समाज मे, मुह दिखाने लायक नही रह जायगे। यदि आप इस लडकी को समझा कर इस लडके से इसका मन हटा सकें, तो हमारा और इस लडकी का वडा उपकार होगा। आप हमारे पुराने मित्र हैं और देशसेवक हैं। हमे उम्मीद है कि लडकी आपकी वात मान लेगी।

लडकी वर्धा आई। हम लोग भी वर्धा मे ही थे। जमनालालजी ने उस लडकी से मेरा परिचय कराया और उसकी सब वातें कही। वम्बई के उपनगर सान्ताक्रूज के आनन्दीलाल पोद्दार हाईस्कूल मे लडकी पढती थी। इस स्कूल मे सहशिक्षा है। एक लडके से लडकी की विवाह के वारे मे वात हो गई और दोनो ने निश्चय कर लिया कि यदि विवाह करेंगे तो हम दोनो करेंगे, नही तो आजीवन क्वारे रहेंगे। लडकी जैन धर्मावलम्बी है, लडका वैष्णव। लडकी के माता-पिता धनी हैं, लडका साधारण स्थिति का। लडकी वैश्य है, लडका शायद और जाति का। लडकी ने आई० ए० मे पढना छोड दिया, लडका एम० ए० है। लडकी के माता-पिता विलकुल नाराज हैं, इस लडके से विवाह करने मे। लडकी किसी तरह राजी नही होती। वह कहती है कि मैं तो इसी लडके से विवाह करूंगी।

जमनालालजी ने लडकी से वाते की और कहा कि तुम्हे अपने माता-पिता की वात माननी चाहिए। वे जो-कुछ करेंगे, तुम्हारे भले के लिए ही करेंगे। फिर वह लडका तो तुम्हारे धर्म और जाति का भी नही है तथा गरीव भी है। तुमने धनी घर मे जन्म लिया है। तुम वहुत लाड-प्यार से पाली-पोसी गई हो। तुम्हें धनी घर का लडका मिल सकता है, जिसके साथ तुम आराम से रह सकोगी, आदि-आदि वहुत-सी वातें उन्होंने लडकी को समझाईं। लडकी चुप रही और उसकी आकृति से प्रकट हो रहा था कि वह जमनालालजी की वातो से वहुत दुखी हो रही है। जमनालालजी ने कहा कि मेरी वातो पर विचार करो। उस लडके से तुम्हारा प्रेम है, पर उसके घर मे जाकर तुम्हें न रहने को वगला मिलेगा, न चढने के लिए मोटर मिलेगी, न पहनने को अच्छे कपडे और जेवर भी नही मिलेंगे। काम भी सारा हाथ से ही करना होगा। इससे तुम्हें तकलीफ होगी। आज तुम्हे इन सब वातो का प्रत्यक्ष अनुभव नही है। हो सकता है, वस्तुस्थिति का सामना

करना पडे तो तुम अपने मन में निराश और दुखी होओ। फिर तुम्हारा सम्बन्ध मधुर नही रह सकता, जिसकी आज तुम कल्पना कर रही हो। लडकी चुपचाप जमीन कुरेदती सब सुनती रही। जमनालालजी ने फिर कहा कि ये सब बाते मैं तुम्हारे पिता की तरफ से नही कह रहा हूँ, अपनी तरफ से कह रहा हूँ और तुम्हारे लिए कह रहा हूँ।

अब लडकी का मौन भग हुआ। उसने कहा, "ताऊजी, आपने मुझे बचपन से देखा है। मैं समझने लगी तब से आप पर श्रद्धा करती आ रही हूँ। आप क्या कह रहे है, मैं समझ नही पाती। आप कहते कि लडका मूर्ख है, पढा-लिखा नही है, स्वस्थ नही है या चरित्र का अच्छा नही है, तो मै सोचती और आपकी आज्ञा से तथा माता-पिता की आज्ञा से ही चलती। पर आप लोग तो कहते हैं, वह तुम्हारे धर्म का नही है, तुम्हारी जाति का नही है, गरीब है। ताऊजी, इसकी क्या गारटी है कि अन्य धनी लडके के साथ आप लोग मेरा विवाह कर देंगे, तो वह बराबर धनी ही रहेगा और यह लडका सदा गरीब ही रहेगा। फिर यह भी सोचने की बात है कि बहुत धन से धनी का क्या लाभ हो रहा है? धनी जिस विलास का, प्रमाद का जीवन जीता है, वह तो मेरी निगाह मे समाज के लिए घातक ही है। यदि मोटर और बगले की चाह होती तो मै ऐसे लडके को पसन्द ही क्यो करती? मैं तो मानती हूँ कि आदमी की साधारण जरूरत पूरी हो जाय, तो उसे समाज मे विषमता क्यो फैलानी चाहिए। एक तरफ बहुत-सा ढेर लगेगा, तो दूसरी तरफ गड्ढे का होना स्वाभाविक है। गड्ढे और ढेर का रास्ता कोई अच्छा रास्ता नही। इस रास्ते चलने मे चलनेवाले को कोई आराम या सुख नही मिलता। समतल रास्ते पर ही चलने मे सुख मिलता है। ताऊजी, मुझे माफ करे, मेरी धृष्टता बहुत बढ गई। मुझे आपको ये सब बाते नही कहनी चाहिए थीं। मैं आपसे यह प्रार्थना करती हूँ कि आप पिताजी को समझा दे। मुझे आपका और उनका आशीर्वाद चाहिए।"

जमनालालजी ने कहा, "तुम्हारी बाते मुझे अच्छी लगी। मैं तो तुम्हारे मन की हालत जानना चाहता था। तुम्हारी दृढता का पता लगाये बिना मैं तुम्हारे पिता को क्या राय देता?"

उन्होने लडकी के पिता को लिख दिया कि मैंने सुलोचना से बाते की और उसको समझाने-बुझाने की चेष्टा भी की। मेरी सलाह है कि लडकी जिस लडके से विवाह करना चाहती है, उसीके साथ विवाह करने मे भलाई है। हमे यह सोचना चाहिए कि हम लडकियो को स्कूल-कालेजो मे पढायेंगे और बडी उम्र मे उनकी शादी करेंगे तो फिर वे बिलकुल हमारी ही इच्छा से शादी करे, यह न तो सम्भव है और न उचित ही।

लडकी बम्बई चली गई। माता-पिता ने लाचार होकर लडकी की इच्छानुसार विवाह करना मजूर किया। पर लडकी से उन्होने कहा कि हम तुम्हे एक पैसा भी नही देंगे और विवाह के बाद तुम्हारा हम लोगो से कोई सम्बन्ध नही रहेगा। तुम इस घर मे बिलकुल आ भी नही सकोगी। लडकी ने विनय के साथ

कहा कि आपकी पहली बात तो बिलकुल सही है। जब मैं आपकी आज्ञा नही मान रही हूँ, तो आपसे पैसा या किसी तरह की सहूलियत कैसे चाह सकती हूँ? पर आपसे मेरा सम्बन्ध कैसे छूट सकता है? मै आपके घर मे जन्मी हूँ। आपके रक्त-मास से बनी हूँ। आप सबको मै कैसे भूल सकती हूँ? आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मै घर मे आकर आपके दर्शन कर सकू, मा और भाई-बहनो से मिल सकू। पिताजी, मैने अपनी जान मे कोई अन्याय नही किया है। मै किसी लोभ और प्रलोभन की इच्छा से यह नही कह रही हूँ। क्या इसके लिए आप मुझे क्षमा नही करेगे? क्या आप मेरा यह अधिकार भी छीन लेगे कि मै आपको तथा घर के और लोगो को देख भी न सकू? पर पिता का क्रोध शान्त नही हुआ। विवाह हो गया। पिता ने सख्त मनाही कर दी कि सुलोचना अब से घर मे न आने पावे।

लडकी बम्बई के उपनगर दादर मे दो कमरो का एक छोटा-सा फ्लैट लेकर रहने लगी। उसका पति लिखा-पढा, स्वस्थ, मेहनती और ईमानदार था। इसलिए तुरन्त उसको काम मिल गया और पति-पत्नी दोनो आनन्द से रहने लगे।

ए० आई० सी० सी० की मीटिंग मे शामिल होने के लिए मै बम्बई गया। वहाँ देखा कि सुलोचना देशसेविका बनी केसरिया साडी और हरा ब्लाउज पहने काम कर रही है। बहुत ही खुश, स्वस्थ, प्रसन्न दिखाई पडती थी वह। बडी खुशी हुई उसे देखकर। उससे मिलने की, बाते करने की इच्छा का होना तो स्वाभाविक ही था। पहला प्रश्न मैंने उससे यह किया कि पिताजी के दिल को तुम जीत सकी कि नही? उसने कहा कि जीत तो सकी, पर बहुत तपश्चर्या करनी पडी उनको राजी करने के लिए। सारी बातें बताने के लिए कहने पर उसने घर आने का निमन्त्रण दिया और वही पर बातें करना तय किया।

दूसरे दिन शाम को मीटिंग खत्म होने पर मैं उसके साथ ही उसके घर गया। छोटा-सा घर था, पर बहुत साफ-सुथरा, सुन्दर, व्यवस्थित मालूम हो रहा था। उसके पति भी आ गये। उनसे मिल कर बडी खुशी हुई। थोडी देर की बात-चीत से ही वह एक अच्छे विचार के युवक हैं, यह मालूम होने लगा। यह भी पता लगा कि दम्पत्ति बडे प्रेम से रहते हैं तथा अपनी सामाजिक और सार्वजनिक जिम्मेदारियो का ज्ञान रखते है। सुलोचना भगिनी-समाज की मन्त्रिणी है। ए० आई० सी० सी० की मीटिंग के लिए भगिनी-समाज से बीस देशसेविकाएँ काम करने के लिए जाती हैं, आदि-आदि बाते भी हुई। पर मेरी इच्छा सुलोचना के पिताजी के समाचार जानने की ज्यादा थी।

सुलोचना ने बताया कि मै मा और भाइयो से मिलती थी। वे भी कभी-कभी मेरे पास आ जाया करते थे। पर पिताजी के पास जाने और उनसे मिलने की मेरी हिम्मत नही होती थी। माँ से मुझे मालूम होता था कि पिताजी का क्रोध अभी शान्त नही हुआ। मा पहले तो नाराज़ थी, पर बाद मे आहिस्ता-आहिस्ता राजी हो गई। भैया तो मेरे विचारो के ही थे, पर वह पिताजी को कुछ कह नही सकते थे। पिताजी की नाराजगी का असर हमारे सारे कामो पर रहता

था। हम लोग अपने-आप मे सुखी है, आप देख ही रहे है। पर पिताजी को राजी न कर सकने की वेदना मेरे दिल मे बनी रहती थी। अचानक वह बीमार पड़े और अपने जुहू के बगले पर जाकर रहने लगे। जब यह समाचार मिला तो मुझे बडी चिन्ता हुई और मै सोचने लगी कि ऐसी हालत मे भी, जब वह बीमार हो तब भी, मुझे उनके क्रोध या नाराजगी के डर से उनके पास नही जाना चाहिए? मैने तय किया कि चाहे जो हो, मै उनके पास जाऊँगी और उनकी सेवा करूँगी। पिताजी मेरा यह अधिकार नही छीन सकते कि मै बीमारी मे उनकी सेवा भी न कर सकू। मै जुहू गई और पिताजी के पैरो से चिपट गई। मै बोल तो नही सकी, पर मेरे लाख कोशिश करने पर भी मेरे आसू नही रुक सके। पिताजी भी चुप रहे। कुछ देर मे मेरे दु ख का आवेग कम हुआ, तो मैने कहा, "पिताजी, मुझे माफ कर दीजिए।" उनका भी गला भर आया और उन्होने मेरे सिर पर हाथ रखा। न मालूम पिताजी ने कितनी बार मेरे सिर पर हाथ रखा था, कितने प्यार से, कितने दुलार से उन्होने मुझे पुचकारा था, पर सच कहती हूँ, पिताजी के आज के सिर पर हाथ रखने मे जिस सुख, जिस शान्ति और जिस प्यार का अनुभव हुआ, वैसा पहले कभी नही हुआ था। मा भी पास ही थी। उनकी आँखो मे भी आसू थे। भैया भी आ गये। भाभी भी आ गई। मेरे सारे परिवार के लोग आज करीब दो वर्ष के बाद इस तरह मिले। इसकी खुशी का वर्णन मै आपसे कर नही सकती। उस दृश्य को याद करने मे, आपसे कहने मे जो खुशी हो रही है, उसका तो आप स्वय अनुभव करते होगे। मैने इनको फोन से खबर की, तो ये भी बहुत खुश हुए। पिताजी तीन-चार महीने बीमार रहे। मै बराबर उनके पलग से लगी रही। रात मे, दिन मे, बराबर उनकी सेवा करती रही। मै भगवान से प्रार्थना करती थी कि मैंने पिताजी की आत्मा को जो कष्ट दिया है, उसका प्रायश्चित्त मै अपनी सेवा द्वारा कर सकू। इन तीन-चार महीनो मे पिताजी से काफी बातें करने का मौका मिला। वह विचारो से तो कम-ज्यादा रूप मे हम लोगो के विचारो के कायल थे, पर उनमे वह साहस नही था, जो एक युवक मे, एक युवती मे, होता है। यह स्वाभाविक भी है। जब पिताजी अच्छे होकर बम्बई जाने-आने लगे, तब मै घर आई। आज हम लोगो का पिताजी के साथ मधुर सम्बन्ध है। अब पिताजी के विचारो मे काफी परिवर्तन भी हो गया है और वह मुझे पहले से भी ज्यादा प्यार करते हैं।

सचमुच आज मुझे भी बडी खुशी हो रही है। सुलोचना के यहा से लौटते समय मै रास्ते मे सोच रहा था कि सच्चाई एक ऐसी चीज है, जो अपने-आप प्रकट होती है। सुलोचना ने अपनी सच्चाई से, अपने त्याग से, पिता का दिल जीता है। आज जो युवक और युवती समाज मे क्रान्ति करना चाहते है, उनके लिए सुलोचना की कहानी एक अच्छा उदाहरण है, जिसकी आज निहायत जरूरत है। आज के युवक यह जात-पात के, धर्म के और रूढि के बन्धन मान नही सकते, मानना चाहिए भी नही, पर उनको अपनी विनय, अपना शील नही छोडना है।

सिद्धातो की रक्षा के लिए हमे सब-कुछ सहना होगा। हमारे कष्ट, हमारी वेदना, हमारा त्याग, हमारे कार्यों मे बोलना चाहिए। हमे किसी भी हालत मे समर्पण नही करना है, उद्दण्ड भी नही होना है। यह सोचते-सोचते मै अपने-आप मे खो-सा गया। सुलोचना सुखी रहे, यह प्रार्थना है।

—— ० ——

४

निर्मला की मां

हमारे विद्यालय मे महिलाओ की सभा थी। अनेक महिलाए आई थी सभा मे। यह सभा शायद शारदा कानून का समर्थन करने के लिए उसके समर्थको ने आयोजित की थी। सभा समाप्त होने पर एक बहन मुझसे मिलने आई—निहायत सुन्दर, उम्र लगभग २५ की, गौर वर्ण, पुष्ट शरीर, हँसीभरा मुख। मैंने उसको नमस्कार किया और पूछा, "कहो, बहन ?"

वह बोली, "मेरी लडकी आपके स्कूल मे पढती है।"

मैंने पूछा, "क्या नाम है ?"

"निर्मला।"

"आप निर्मला की माताजी हैं ?"

"जी हा।"

"निर्मला तो बहुत अच्छी लडकी है।"

"मैंने सोचा, यहाँ आई हूँ तो आपसे मिलती चलू। निर्मला आपके बारे मे कहा करती है कि हमारे मन्त्रीजी हमे बहुत बाते बताया करते है।"

उन दिनो हिन्दी भाषा-भाषी लडकियाँ पाचवे दर्जे से ज्यादा नही पढा करती थी। मैं कोशिश किया करता था कि लडकियो के अभिभावक अपनी लडकियो को ज्यादा पढाये। इसीके अनुसार मैंने उस बहन से भी जब यह कहा कि आप निर्मला को ज्यादा दिन तक पढाइयेगा तो उसके चेहरे पर मैंने जो भाव पढे, वे मुझे आज भी याद है।

उसने कहा, "देखिये।"

मैंने कहा, "देखिये नही, उसको हम स्कूल नही छोडने देगे।"

"अच्छी बात है, यह आपकी बडी कृपा है।" कह कर वह चली गई।

दूसरे दिन निर्मला से मैंने कहा, "कल तुम्हारी मा मिली थी। मैंने उनसे कह दिया है कि वह तुम्हे खूब पढावे।"

निर्मला ने कहा, "मा ने मुझे बताया था, मन्त्रीजी।"

निर्मला सुन्दर मा की सुन्दर लडकी थी। बडे अच्छे स्वभाव की, क्लास मे तेज, मिलनसार और स्कूल के सारे कामो मे उत्साह से भाग लिया करती थी, इसलिए वह हमारी विशेष प्यारी लडकियो मे से थी। जब वह पाचवी से छठी श्रेणी मे गई तो उसमे पहले वाली स्फूर्ति नही दिखाई दी। मैंने कई बार उससे पूछा, पर उसने कुछ नही बताया। अन्त मे मैंने उससे कहा कि तुम अपनी मा से कहना, एक बार वह मुझसे मिल ले। पर निर्मला की मा मुझसे मिलने नही आई। दो-

एक दिन बाद मैंने निर्मला से पूछा, "तुम्हारी मा आई नही, क्या तुमने उनसे कहा नही था ?"

"कहा तो था, मत्रीजी।"

"तो फिर क्यो नही आई ? पहले तो वह स्वय मुझसे मिला करती थी।"

निर्मला ने कोई उत्तर नही दिया। मैने कुछ ज्यादा पूछना-ताछना ठीक नही समझा।

लेकिन निर्मला की मा तो आई नही और वह दिन-पर-दिन कमजोर, सुस्त और ढीली दिखाई देने लगी। उसका फूल-सा मुह कुम्हलाया-कुम्हलाया रहने लगा। दो-एक बार फिर पूछने पर भी उसने कुछ नही बतलाया। अन्त मे एक दिन मै निर्मला के साथ उसके घर गया। वह बडी डरती-डरती मुझे अपने घर ले जा रही थी। मुझे एक जगह खडा करके उसने कमरे मे जाकर मा से कहा कि मत्रीजी आये है। यह सुन कर वह बाहर आई और नमस्कार करके मुझे भीतर चलने के लिए कहा। मै उनके चेहरे की ओर आश्चर्य से देख रहा था। वह बोली, "आपने क्यो तकलीफ की ? निर्मला ने तो कहा ही था कि आपने मुझे बुलाया है।"

मैने बीच ही मे रोककर कहा, "यह मै क्या देख रहा हूँ, आप इतनी कमजोर कैसे हो गई ?"

एक कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए उन्होने भर्राई हुई आवाज मे कहा, "मत्रीजी, हमारा भाग्य ही ऐसा है।" इसके बाद तो वह सिसकिया भर कर रोने लगी। मै कुछ समझ तो न सका, पर उनकी हालत मे मेरा भी दुखित होना स्वाभाविक ही था। दो-चार मिनट बाद दुख का आवेग कुछ कम हुआ और उनकी हालत कुछ बोलने लायक हुई। मै सोच ही रहा था कि कोई-न-कोई ऐसी बात हुई है, जिसे कहने मे इनको सकोच हो रहा है। वह बोली, "निर्मला के बाबूजी पकडे गये और जेल मे हैं। उनकी तबीयत भी अच्छी नही है।"

मुझे सकोच तो बहुत हुआ, फिर भी मैने पूछा, "क्या बात हुई, क्यो पकडे गये ?"

"यह तो मै नही जानती, वह बैंक मे काम करते थे, वहा कुछ गोलमाल हुआ बताते हैं, वह ऐसे आदमी नही है, मत्रीजी, पर हमारा नसीब खोटा है।" मैने उनको धीरज रखने और छूट जाने आदि की बात कही। वह बोली, "यदि आप लोगो और ईश्वर की कृपा रही, तो वह छूट जायगे।"

मैने कहा, "बहन, इन सब बाधाओ से निर्मला की शिक्षा मे बाधा नही पडने देनी चाहिए।"

वह बोली, "अब तो निर्मला ही मेरा सहारा है, आपके हाथ है इसकी शिक्षा, मेरा जो कुछ होनेवाला है, वह तो होगा ही, पर निर्मला को आप आदमी बना देंगे तो मै आपका उपकार कभी नही भूलूगी, मेरे भाग्य तो ऐसे ही थे, इस लडकी को भगवान् सुखी रखे और वह अपने पैरो पर खडी होने लायक बन जाय, यही मेरी चाह है।"

"मेरे लायक कोई काम हो, तो निर्मला द्वारा मुझे कहला देने मे सकोच न करे, विपत्ति मे तो हिम्मत से ही काम चलता है, निर्मला के पिताजी आ जायगे"—यह

कह कर मैं बहुत ही दुखित मन से खडा हुआ। मेरा मन तो भारी था ही, पैर भी इतने भारी हो गये थे कि वहाँ से चलने मे उठ ही नही रहे थे।

प्रणाम करते हुए उन्होने कहा, "हम किसीको मुह दिखाने लायक नही रहे।"

फिर वह खडे होने की कोशिश करने लगी। मैं देख रहा था उनके शैथिल्य को। वह गुलाव के फूल-सी बहन आज निस्तेज, क्लान्त, क्षीण और झडे हुए पत्तो की डाल-सी लग रही थी।

मैं निर्मला से वरावर उनका हाल-चाल पूछता रहता। मुकदमा चल रहा था। काफी रुपये खर्च हो गये। निर्मला की मा के पास जो थोडा-बहुत जेवर था, वह भी खतम हो गया। अन्त मे आठ महीने के बाद निर्मला के पिता उस मामले मे निर्दोष सावित हुए। पर अव वह इतने थक गये थे कि कही काम करना नही चाहते थे। पहले भी उनका स्वास्थ्य अच्छा नही था, अब तो बिल्कुल ही खराब हो गया था। आर्थिक दशा शोचनीय हो गई थी। अन्त मे निर्मला की मा ने एक स्कूल मे नौकरी करना तय किया। वह ज्यादा पढी-लिखी नही थी, पर सिलाई अच्छी जानती थी। वहुत ही कठिनाई से काम चल रहा था। अब निर्मला किसी तरह स्कूल मे पास हो जाती थी, पहले की तरह क्लास मे फर्स्ट नही होती थी। जब कभी मैं निर्मला की मा से मिलता तो वह कहती कि अव तो मेरी यदि कोई इच्छा है और जो कुछ मैं कर रही हूँ, वह निर्मला को लिखा-पढा कर अपने पैरो पर खडी करने के लिए ही कर रही हूँ।

एक दिन उन्होने मुझसे पूछा, "निर्मला को डाक्टरी पढाना कैसा रहेगा?"

मैंने कहा, "अच्छा तो है, पर रुपया वहुत लगेगा, क्योकि डाक्टरी पढने मे खर्च अधिक होता है और समय भी ज्यादा लगता है।"

"मैं किसी कष्ट की परवा नही करती। मैं चाहती हूँ कि निर्मला किसी की मोहताज न रहे। वह सम्मान का, स्वावलम्बन का और सेवा का जीवन जीये। मैं ट्यूशन आदि करके किसी तरह काम चला लूगी, पर निर्मला को सफल देखना चाहती हूँ। उसके पिताजी तो अव शायद ही कुछ कर सके।"

निर्मला मैट्रिक पास करके कालेज मे आई० एस-सी० मे भर्ती हो गई। स्कूल मे तो खर्च साधारण था। अब कितावो का, फीस का तथा अन्य खर्च भी वढा। निर्मला की मा स्कूल के काम के बाद ट्यूशन करती थी। अव वह अक्सर मुझे आते-जाते अपना सिलाई का झोला लिये मिल जाया करती। वह वडी कठिनाई से अपना काम चला रही थी, फिर भी उन्हे दीनता का भाव छू तक नही गया था। वह न तो किसी से सहायता मागती थी और न यही चाहती थी कि कोई उनकी आर्थिक सहायता करे। वह यदि कुछ चाहती थी तो बस सहानुभूति, जिससे वह इस दुख की नाव को खेकर पार उतार सके। निर्मला किसी तरह आई० एस-सी० मे पास हुई, पर डिवीजन अच्छा नही ला सकी, इसलिए डाक्टरी मे भर्ती होने मे कठिनाई होने लगी। यो भी मेडिकल के छात्रो के लिए जगह की कमी का सवाल रहता ही है। निर्मला डाक्टरी मे भर्ती न हो सकेगी, यह उसकी मा ने सोचा ही नही था। इसलिए वह इतनी दुखी और निराश दिखाई दी, जैसी

पहले कभी नही हुई थी। उन्हे रोती देख मैं काप उठा। मैंने वडी कोशिश की और वडी मुश्किल से निर्मला मेडिकल कालेज मे प्रवेश पा सकी। अभी तो ६ वर्ष पडे थे डाक्टरी पास करने के लिए। फिर भी उसकी मा किसी तरह यह वोझा ढोये जा रही थी। पर इस वोझ से वह ऐसी दव गई थी कि पैंतीस वर्ष की उम्र मे पचास की-सी लगने लगी। वाल सफेद होने लगे। दो-एक दात भी गिर गये। वह सुवह ५ वजे से रात के १०-११ वजे तक अथक परिश्रम कर रही थी। उनके सामने सिर्फ एक ही लक्ष्य था निर्मला को डाक्टर वनाना। वीमार पति की तीमारदारी, घर का काम, स्कूल मे पढाना, ट्यूशन पर जाना, जो कुछ मिले उसमे से निर्मला का खर्च निकाल कर वचे हुए मे काम चलाना—इस तरह वह वहुत मूक तपश्चर्या कर रही थी, समाज के एक घर मे एक कोने मे जिसको शायद वहुत कम लोग जानते थे।

निर्मला मेडिकल फाइनल वर्ष मे थी। एक आपरेशन मे वह सहायक के रूप मे लगी थी। वह कुछ सामान लाने नीचे जा रही थी कि सीढी पर पैर फिसल जाने से गिर पडी और घुटने के वीच की हड्डी टूट गई। हड्डी जोड कर प्लास्टर किया गया। दो महीने तो विछौने पर वीते ही, पर जव एक्स-रे करके देखा गया, तो मालूम हुआ कि पैर के साथ की उड्डी मे वोन टी० वी० हो गई है। यह वात निर्मला की मा से कुछ दिन छिपाने की कोशिश की गई। इस वीमारी मे तो लम्वा समय लगनेवाला था। मरे को मारे शाह मदार। इस वार निर्मला की मा मिली। मैंने उनको उदास देख कर पूछा, "वहन, अव तो दो-चार महीने की वात है, निर्मला पास कर लेगी, तो तुमको इतना सकट नही रहेगा।"

वह वोली, "भाईजी, यह होगा? भगवान न जाने हमारे भाग्य मे क्या-क्या लिखा है!" यह कहते हुए वह वहुत ही अस्थिर लगी। मैंने जव उनसे सहायता की वात की तो वोली, "आपकी कृपा से किसी तरह निभ रहा है। जव जरूरत होगी, तो कहूँगी।"

मैंने कहा, "निर्मला, आपकी जैसी ही मेरी भी लडकी है। क्या मेरा उसके लिए कोई अधिकार या कर्त्तव्य नही!"

इस पर वह कहने लगी, "आप हमे आशीर्वाद दीजिये, हमारे लिए प्रार्थना कीजिये कि हम अपना मार्ग तय कर सके।"

मैं सोचने लगा कि मैं किसी मानवी से वात कर रहा हूँ या किसी देवी से! मैंने मन-ही-मन उस वहन को नमस्कार किया। निर्मला आहिस्ता-आहिस्ता अच्छी हो रही थी। उसके सरल स्वभाव तथा निर्दोष व्यवहार से कालेज के डाक्टर आदि प्रभावित थे। वे पूरी तरह उसके इलाज की व्यवस्था कर रहे थे।

निर्मला कालेज जाने लगी। उसका एक वर्ष तो नष्ट हो ही चुका था। इस वर्ष भी वह सर्जरी व्यावहारिक ज्ञान मे कुछ नम्वरो से फेल हो गई। इसका सभी लोगो को वहुत दुख हुआ। पर उपाय क्या था? निर्मला को तो इतनी निराशा हुई कि वह पढना ही छोड देना चाहती थी। उसके साथ की लडकिया प्रेक्टिस कर रही थी, और वह योही अपनी मा का भार वन कर पढे, यह उसे

बर्दाश्त न था। पर उसकी मा निराश नही थी। उसने निर्मला को प्रोत्साहन देते हुए कहा, "मुझे किसी भी दुःख की परवा नही है। यदि तुम पास न कर सकी या डाक्टरनी न बन सकी, तो मैं जी न सकूगी। क्या तुम मेरे सारे जीवन की साध नष्ट करना चाहती हो? चाहे जितना भी रुपया लगे, चाहे फिर फेल हो जाओ, पर तुम्हे डाक्टरनी बनना ही होगा।"

निर्मला ने फिर पढना शुरू किया और उसकी मा एक घर से दूसरे, दूसरे से तीसरे घर मे ट्यूशन करती रही। उसे न अपने शरीर का ख्याल था न किसी सुख-दुःख का। उसके सामने तो बस एक ही लक्ष्य था निर्मला को डाक्टरनी बनाना। वह चाहती थी कि निर्मला समाज के सामने इज्जत का, स्वावलम्बन का और सेवा का भला जीवन बितावे।

इस वर्ष निर्मला सभी विषयो मे पास हुई और उसे छ महीने के लिए अपने कालेज मे हाउस सर्जन का काम मिला। निर्मला को लेकर वह बहन मेरे पास आई। मैं महिलाओ का एक अस्पताल चलाता था। उन्होने कहा, "भाई साहब, आपकी निर्मला ने एम० बी० पास किया है। मेरी जिम्मेदारी तो पूरी हो गई, अब मैं इसे आपको सौप रही हूँ।" यह कहते हुए उनका गला रुधा जा रहा था।

मैंने कहा, "बहन, आपकी तपश्चर्या पूरी हुई। आपको तो प्रसन्न होना चाहिए।"

उन्होंने कहा, "मैं प्रसन्न तो हूँ, पर अब मैं ऐसी थकावट अनुभव कर रही हूँ, जो मिट नही सकती। मैं चली जा रही थी, मेरे सामने सिर्फ एक ही लक्ष्य था। मैंने जीवन के सुख-दुखो को भुला कर अपना तन-मन एक चीज के लिए लगाया। ईश्वर ने मुझे जो काम सौपा था, उसे पूरा करने मे मैंने कुछ उठा नही रखा। आज मैं मजिल के पास सोच रही हूँ, पिछले पन्द्रह वर्षो के सघर्ष की घडियो को। भाईजी, लक्ष्य की पूर्ति मे जीवन कहा है? लक्ष्य के लिए साधना करते-करते मिट जाने की इच्छा या सकल्प मे जो बल है, वह कितना बडा बल है, उसके अभाव का मुझे अनुभव हो रहा है। इसलिए अब मैं आप सबसे विदा लेना चाहती हूँ।"

जब यह बहन पहले-पहल मुझसे मिली थी, तब इनके चेहरे पर एक भाव पढा था, आज बिल्कुल दूसरा भाव मैं देख रहा हूँ। उस समय इनकी उम्र पच्चीस वर्ष की थी और लावण्य, आभा, उत्साह, उमग थी। आज यह बहन चालीस वर्ष की है, पर इनकी हालत साठ वर्ष की बुढिया जैसी है। पन्द्रह वर्ष के निरन्तर सघर्ष मे इनके सारे मनसूबो, सारी इच्छाओ और सारे उत्साह को एक ही दिशा मिली। यह बहन तिल-तिल अपने-आपको मिटा कर सच्चाई और नेकी का जीवन जीकर, समार की अनेक विघ्न-बाधाओ का सामना करती रही, सिर्फ इसलिए कि वह हमे एक सुयोग्य नागरिक प्रदान कर सके।

अब निर्मला माताओ-बहनो की सेवा कर रही थी। निर्मला की मा बीमार रहने लगी। एक दिन मैं उससे मिलने गया, तो मालूम हुआ कि अब वह पूर्ण रूप से शान्त है। उसे न किसीसे कुछ कहना है, न कुछ करना। पर उसके

चरित्र से जो सुगन्ध चारो ग्रोर फैल रही थी, उसकी गन्ध से कोई भी ग्रादमी मुग्ध हो सकता है। एक दिन मालूम हुग्रा कि निर्मला बिना माँ की हो गई है। पर ऐसी मा तो सबकी मा है। वह क्या मर सकती है!

मैंने निर्मला से कहा, "तुम्हारी मा ने जो जीवन की पवित्रता, ग्रच्छाई ग्रौर ग्रादर्श रखा है, वही तुम्हारी सच्ची मा है ग्रौर उसी मा की पूजा करो। पार्थिव मा तो ग्राज नही तो कल जानेवाली ही थी। पर तुम्हें जो विरासत मिली है, वह किस भाग्यवान बेटी को मिल सकती है!"

निर्मला बूढे बाप की सेवा करते हुए मा के ग्रादर्श को सामने रख कर चलने की कोशिश कर रही है। निर्मला की मा बेटी के रूप मे ग्राज भी मेरे सामने है, ग्रौर जो लोग इस स्थिति से कुछ भी सम्बन्धित रहे हैं, उन सबके सामने रहनी चाहिए। स्व० सुभद्रा कुमारी चौहान ने कहा था, "बचपन बेटी बन ग्राया।" बेटी मे मा ग्रौर मा मे बेटी समायी हुई है।

५

दो चित्र

सम्भल (मुरादावाद) मे हम लोगो का एक खादी उत्पत्ति केन्द्र था। कभी-कभी मैं उसे देखने जाया करता था। एक वार का जिक्र है, वहाँ काम करते हुए मैंने एक औरत को देखा। दुवली, पतली, ठिगनी-सी थी वह। गेहुआ रग, वडी-वडी आखे, चिपके गाल और लम्वी-सी ठुड्डी। एक फटा-सा पाजामा और कुरती पहने तथा जगह-जगह मे सिली हुई ओढनी ओढे वह अपना काम कर रही थी। मेरी निगाह उस पर पडी, तो न मालूम क्यो, वह मुझे नेक और भली औरत मालूम हुई। मैंने अपने कार्यकर्त्ताओ से दरियाफ्त किया, "यह वहन यहाँ कितने दिनो से काम करती है?" उन्होने बताया, कोई वारह-एक महीने हो रहे होगे।

"क्या देते हो इसे?"

"जितना काम करती है, उतना पाती है। काम होता है, तो चार आने, छ, आने और कभी-कभी आठ आने तक पा जाती है। जव काम नही रहता, तव कुछ नही पाती।"

मेरी दिलचस्पी कुछ वढ गई। मैंने उस वहन को वुलाया और पूछा, "क्या कमा लेती हो?"

"कमा क्या लेती हूँ, किसी तरह पेट पालते हैं, लालाजी!"

मैंने पूछा, "घर मे कमानेवाले कौन है?"

"वस, मैं जो दाल-दलिया ले जाती हूँ, उसी पर पाँच प्राणी गुजर करते है। एक वूढा अन्धा ससुर है, एक ननद है, दो बच्चे है—एक आठ साल का, एक पाँच साल का।"

"और खाविन्द?" मैंने पूछा।

"खाविन्द को तो खुदा के घर गये चार साल हो रहे है?"

"इन चार सालो से कुनवे को तुम्ही सभाले हुए हो?"

"खुदा सवको सभालता है, लालाजी! जितना मुझसे हो पाता है, अपना फर्ज अदा करने की कोशिश करती हूँ। जव काम कम होता है, हमे मजदूरी कम मिलती है। उस हालत मे हम सव-के-सव आदमी पूरा खाना नही पा सकते, पर मैं भरसक अपने वूढे ससुर को कभी भूखा नही सुलाती। उनके वाद बच्चो और ननद का नम्बर आता है, फिर मेरा। आप लोगो की मेहरवानी से गुजर हो रही है।"

उसके एक-एक शब्द से सच्चाई और कर्त्तव्यनिष्ठा प्रकट हो रही थी। मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि हम समाज-सेवा, देश-सेवा का दम भरनेवालो मे और इस वहन मे कितना अन्तर है! इतने मे हमारे एक कार्यकर्त्ता ने आकर कहा

कि हाट मे चलने के लिए कहते थे आप। समय तो हो गया है। उस बहन मे बाते तो और करनी थी, पर वह कल पर छोड मैं हाट चला गया, जो वहाँ से चार-पॉच मील दूर देहात मे लगती थी। वहाँ हम लोग सूत खरीदा करते थे। जो कत्तिने सूत लाती, उनको हम सूत के बराबर धुनी हुई रूई देते और कताई के पैसे दे देते। बहुत-से भाई-बहन वहाँ सूत सरा रहे थे। मैं ध्यानपूर्वक सब देखता रहा। भीड कम होने पर मैंने एक बुड्ढी औरत से, जो देखने मे साठ वर्ष की मालूम होती थी, पूछा, "माताजी, क्या मिला कताई का?"

"साढे पाच आने पैसे मिले हैं।"

"कितने दिन की कताई है यह?"

"लाला, इतवार को हाट लगती है, तब कभी पाच आने, कभी चार आने और कभी तीन आने के करीब मिल जाते है। सूत तो हम रोज ही कातते हैं।"

"आपका गाँव यहाँ से कितनी दूर है?"

"होगा ढाई-तीन कोस।"

मैं सोचने लगा कि दो-तीन पैसे रोज की मजदूरी, चार-पाँच कोस पैदल चल कर आना तथा रोज तीन-चार घण्टे कातना! यह है हिन्दुस्तान की गरीबी का असली रूप! हमारा देश कितना कगाल है, यहाँ के देहातो के लोगो के लिए दो-तीन पैसे की कितनी कीमत है, उसको हम कलकत्ता, बम्बई आदि शहरो के रहनेवाले कैसे समझ सकते है? भारत माता की सूखी हड्डियो का ढाचा, रूखे-बिखरे सादे बाल, फटे-चिथडो से ढका तन, झुर्रियो से भरा मुह, मुझे इस माता में दिखाई दिया और आखे सजल हो आईं। उस बहन के फटे कपडो को देखकर मैंने अपने कार्यकर्ता से कहा, "इस माता को दो पाजामे, दो ओढनी, दो कुरती भडार की तरफ से दे देना।"

उस सूखे पोपले, झुर्रियो से भरे मुह पर लाली छा गई, आँखो मे सुर्खी आ गई, भौंहे तन गईं और वह तमककर बोली, "भिखारी समझा है हमको, लाला ने! हम गरीब हैं, मजदूरी करके पेट पालते है, हमे आपकी दया नही चाहिए। आपके कारिन्दे हमारा सूत खरीद लिया करे, तो हम इसीको आपका बहुत बडा अहसान मानेगी। हम रोज सूत कातते वक्त हाट के दिन गिना करती हैं, तीन कोस से चलकर आती है, पर कभी-कभी जब ये लोग कह दिया करते है कि हमारे पास सूत और कपडो का स्टाक ज्यादा हो गया है, उसके बिके बिना हम सूत नही खरीद सकेंगे, तो हमारे ऊपर जैसे वज्र गिर पडता है। आप मेहरबानी करना चाहते हैं तो बस इतनी कर दीजिये कि हमारा सूत बिक जाया करे। लाला, हम गरीब है तो क्या हुआ। खुदा ने हाथ-पाव दिये हैं, मेहनत करके खाते हैं, हम खैरात नही लेते।"

मेरे अभिमान को चूर कर दिया इस बहन ने। हम रात-दिन गरीबो के श्रम पर पलनेवाले दया करने चले है इन स्वाभिमानी आदमियो पर। हमे शर्म आनी चाहिए इस ढोग, दया, धर्म और पाखण्ड-भरे जीवन पर! दूसरे दिन वह कल वाली बहन काम करने आई, तो मेरी फिर इच्छा हुई कि उससे बातें करूँ। मैंने

कहा कि तुम लोग तकलीफ मे हो, भण्डार की तरफ से तुमको बीस-तीस रुपये की मदद दी जा सकती है।

"लालाजी, काम करती हूँ, उसकी मजदूरी पाती हूँ। फिर ये रुपये मैं किस बात के लूँ? यदि आप यह प्रबध कर दे कि मुझे बराबर काम मिलता रहे, तो आपकी बडी मेहरबानी हो।"

"तुम्हारी उम्र कितनी है?"

"होगी कोई पच्चीस की।"

"तो तुम निकाह क्यो नही कर लेती? तुम लोगो मे तो निकाह होता ही है।"

"हाँ, होता तो है, पर मैं निकाह कैसे कर सकती हूँ? इन अन्धे बुड्ढे ससुर को यो छोडकर मैं निकाह करूँ, तो क्या खुदा मेरा भला करेगा? मेरा फर्ज है कि *मैं अपने मन को काबू मे रखू और खुदा ने जो काम मुझे सौपा है, उसे* करती रहूँ। यदि मेरे नसीब मे सुख बदा होता, तो शादी की थी न, वह क्यो चले जाते? अब निकाह करने से ही क्या होगा? मुझसे जहाँ तक बन पडे, इन बुड्ढे की सेवा करती रहूँ और इन बच्चो को आदमी बनाने की कोशिश करूँ। खुदा की मेहरबानी होगी, ये बच्चे आदमी बन जायगे, तो सब हो जायगा।"

* * *

आज से करीब बारह-चौदह वर्ष पहले के इन दो बहनो के दो चित्र आज भी मेरी आँखो के सामने घूम रहे हैं। ये चित्र ऐसे हैं, जो कभी भुलाये नही जा सकते। ये चित्र हिन्दुस्तान की भयकर गरीबी को और गरीबी मे भी स्वाभिमान, कुल-मर्यादा, कर्त्तव्यनिष्ठा और कष्टसहन तथा सच्चाई को छिपाये है। हम सभ्य और पढे-लिखे सुसस्कृत कहे और समझे जानेवाले लोग यदि छाती पर हाथ रखकर सोचे, तो जो हालत ऊपर वर्णन की गई है, उसकी जिम्मेदारी हम पर ही है।

६

घूरे का घर

सन् १९३४ की जनवरी मे उत्तर विहार मे भीषण भूकम्प हुआ। इस भूकम्प ने विहार के लोगो को तो हिला ही दिया, साथ ही सारे भारत के लोग भी विहार की दैवी विपत्ति मे व्याकुल हो उठे। उन दिनो आन्दोलन चल रहा था। देशरत्न राजेन्द्रवावू मे लेकर विहार काग्रेस के सारे कार्यकर्त्ता जेल मे वन्द थे। सरकार ने भूकम्प की तकलीफो को महसूस किया और कार्यकर्त्ता मुक्त कर दिये गए। राजेन्द्र वावू की सदारत मे भूकम्प-अचलो मे सहायता पहुचाने के लिए एक कमेटी वनी। इस कमेटी को अपनी-अपनी सस्थाओ की तरफ मे सहायता पहुँचाने के लिए हिन्दुस्तान के हर प्रात के लोग आये थे। मुजफ्फरपुर, दरभगा, मुगेर—ये तीन जिले भूकम्प से अधिक पीडित थे। इन तीनो जगह मे सहायता करनेवालो की वाढ-सी आ गई। कलकत्ता तो विहार के वहुत नजदीक ठहरा, फिर विहार के लोग यहाँ रहते भी वहुत है। इसलिए कलकत्ता से इतने ज्यादा लोग और सस्थाएँ गई कि उनके खेमे लगाने तथा रहने का प्रवन्ध करना भी एक सवाल-जैसा ही वन गया।

मै भी पाच सवारो मे नाम लिखाने वहाँ जा पहुँचा। सभी जगह घूम-फिर कर भूकम्प के दृश्य देखे, सहायता करनेवाली सस्थाओ तथा कार्यकर्त्ताओ को भी देखा। भूकम्प से धराशायी होनेवाले मकानो का मलवा हटाना काफी वडा काम था। आशका हो रही थी कि इस मलवे के नीचे शायद आदमी दवे पडे है। ऐसी दर्द-भरी हालत थी वहाँ की। ऐसे मौके पर भी देखा कि हमारे प्रचारक अपना काम कर रहे हैं। एक जुलूस निकला कार्यकर्त्ताओ का—नेताओ का—जिनके हाथो मे कुदालिया और झुडियाँ थी मलवा हटाने के लिए। जुलूस सजाकर खडा किया गया और फोटो उतारे गये। मैने एक नेता से पूछा कि ये फोटो क्यो उतारे जा रहे है? मलवा हटाने के काम मे तो इससे देर ही हो रही है। इस पर नेता महोदय ने कहा कि इसका वहुत प्रभाव पडेगा। जव ये फोटो अखवार मे छपेगे तो लोग समझेगे कि कितना काम हो रहा है। मै कुछ समझ न सका। सोचा, अच्छी वात है, प्रभाव पड सकता है। पर देखा कि फोटो उतर जाने के वाद वे कुदालियाँ और झुडियाँ वही रह गई। यदि मलवा हटाया गया, तो उसे हटानेवाले लोग दूसरे ही थे।

मुजफ्फरपुर के एक गाँव की तकलीफ की वात सुन कर हम लोग उस गाँव को देखने और वहाँ के लोगो मे मिल कर वाते करने के लिए चल पड़े। कुछ दूर तक तो मोटर से गये, पर आगे पानी भरा था और उसमे एक छोटी-सी नाव चल रही थी। उस नाव पर कुछ दूर गये, पर नाव किनारे तक नही जा सकती

थी, क्योंकि आगे पानी बहुत कम था। उस पानी को पार कर हम लोग समतल जमीन पर पहुँचे। यह पानी भूकम्प के कारण फटी जमीन से निकला था और एक छोटी-मोटी नदी-जैसा बन गया था। आगे जाकर देखा, तो जमीन मे इतनी वडी दरार फटी पडी है कि यदि उसमे हाथी भी समा जाय, तो कुछ पता न चले। मै सोचने लगा कि पृथ्वी माता का पेट इतनी भयकरता से क्यो फट गया? गाधीजी ने कहा था कि हरिजनो के साथ हमने जो अन्याय किया है, उसके पाप का यह परिणाम है। कुछ समझ मे नही आया कि इसी पृथ्वी के फटने का कोई ऐसा भी कारण हो सकता है, जिसका हमारे जीवन से, हमारे आचरण से सम्बन्ध हो। तुलसीदास की एक चौपाई याद आई—"अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।" क्या सचमुच धरा हमारे पापो से अकुला गई है?

यह सव सोचते तथा रास्ते मे भूकम्प के दृश्य देखते हुए कोई दो मील पैदल चल कर हम लोग एक गाँव मे पहुँचे। यह गाँव राजपूतो का था। भूकम्प ने वुरा हाल कर दिया था इस गाँव का। एक घर मे गये। घर के हाल देखे, सारे छप्पर जमीन पर लोट रहे थे। कुआँ वालू से भर गया था। खेतो की जमीन पानी से भर गई थी। ये लोग दस-पाँच दिन पहले तक खुशहाल किसान थे। आज इनके पास न खाने के लिए अन्न है, न रहने के लिए घर है और न पानी पीने का कुआँ है। ये लोग करीव-करीव भूखे ही रह जाते हैं। एक जगह दस-वीस आदमियो को इकट्ठा किया, वातें की, तो उन्होने कहा कि हम लोग राजपूत हैं। हम धर्म यानी खैरात लेकर नही खा सकते और न खैरात का कपडा ही ले सकते हैं। मजदूरी करने की वात कही, तो कहने लगे कि हमने मजदूरी कराई है, की नही। यदि मजदूरी की है, तो धरती माता की की है। आज धरती माता ही जव फट पडी, तो फिर हम क्या करे? जिस दिन धरती माता राजी होगी, उसी दिन सव कुछ होगा, नही तो फिर कोई उपाय नही। इस भूख मे, इस कष्ट मे भी यह स्वाभिमान, यह आत्मविश्वास हमे चकित करनेवाला था। अन्त मे हमने उनको उधार लेने पर राजी किया और साथ के स्वयसेवको से कहा कि वे पास के केन्द्र से इनकी सारी व्यवस्था करे।

घूमते-घामते गाँव के वाहर निकले, तो थोडी दूर पर एक टूटी-सी घास की झोपडी दिखाई दी। वहाँ गये, तो देखा कि यह जगह गाँव का कूडा फेंकने की है। वही पर दो-एक लकडियो के सहारे थोडी-सी घास डाल कर एक झोपडी खडी की गई है। हवा और शीत को रोकने के लिए चारो ओर टूटी चटाई लगाने की व्यर्थ-सी चेष्टा की गई है। नज़दीक गये, तो इस घूरे के घर के अन्दर आदमी की आँखे-सी दिखाई दी। इन आँखो मे ऐसी चमक थी कि हमे याद आया, उस राजकुमारी को भी उस मिट्टी के टीले के अन्दर इसी तरह कही च्वयन ऋषि की आखो की चमक तो नही दिखाई दी थी!

उस झोपडी के पिछले हिस्से मे जव यह देखा, तो सामने जाकर सारी स्थिति समझने की इच्छा हुई। वहाँ जाकर जो देखा, उसका वर्णन करना हमारी बुद्धि के वश का नही। एक स्त्री, जिसकी उम्र कोई तीस के करीव होगी, भयकर

काली, सूखा मुंह, उलझी-रूखी लटे, दुबला शरीर, एक चिथडे-जैसी मैली साडी पहने दो बच्चो को छाती से चिपकाये बैठी थी, वहाँ। एक बच्चा, जो सात-आठ वर्ष का होगा, पास मे बैठा था। दो मिट्टी की हाडियाँ और थोडी-सी घास, जिसे उन लोगो ने बिछा रखा था, यही सारी सामग्री थी उस घर की या उस गृहस्थी की। बच्चे तो तीनो नगे थे ही। हमे देख कर वह बहन खडी हो गई, तो वह फटी साडी उसकी लाज खोने के लिए तैयार! वह उसको कभी इधर खीचती, कभी उधर खीचती। हमे वहाँ खडे रहने मे भी सकोच होने लगा। इस यात्रा मे अभी तक ऐसी हालत कही नही देखी थी। भूकम्प के जो दृश्य देखे, उनसे ऐसा लगता था कि जिनके मकान थे, वे गिर गये है। बाढ मे जैसे गरीबो के घर बह जाते हैं, पशु बह जाते है, चारा नष्ट हो जाता है, खेती बिगड जाती है, ऐसी हालत वहा नही देखी थी। यहाँ के दृश्य भी काफी कष्टदायक थे, पर बाढ मे जैसे लोगो की हानि होती है, उसकी अपेक्षा यहाँ सम्पन्न लोगो की हानि हुई-सी लगती रही, इसलिए ऐसा दर्द नही हुआ जो विकल कर दे। पर जब इस बहन को देखा, तो वहाँ खडा रहना भी मुश्किल हो गया। जो हो, उससे बातें करना जरूरी था। हमने पूछा, "इस कूडे के पास तुमने घर क्यो बनाया? जरा आगे गाँव मे बनाती।"

"बाबूजी, हम हरिजन (डोम) हैं। हम लोग घूरे पर ही रहते है, गाँव मे नही रह सकते।"

"तो क्या बराबर ऐसे ही घर मे रहती हो?"

"नही बाबूजी, पहलेवाला घर तो गिर गया। अब यही जगल से घास-फूस इकट्ठा करके यह खडा किया है। सामान खरीद कर हम घर नही बना सकते।"

"ये बच्चे तुम्हारे ही है, फिर खाने-पीने का क्या करती हो?"

इस पर वह कुछ बोली नही। मैंने फिर पूछा, "खाने-पीने का क्या इन्तजाम करती हो?"

"इन्तजाम क्या बाबूजी, कल से तो ये ऐसे ही हैं। इन बच्चो के पिता मजदूरी करने गये हैं। उनको मजदूरी मिलेगी और वे कुछ लायेंगे, तो खायगे, नही तो भगवान मालिक है ही।"

"तो क्या कल वह कुछ लाये नही?"

"नही, बाबूजी! दिन-भर खट कर यह यो ही लौटे थे। थोडा-सा बचा हुआ सत्तू खिला कर आज सुबह उनको भेजा है। आशा है, आज तो वह कुछ जरूर लायगे।"

"यहाँ तुम्हारे पास सहायक समिति के लोग नही आये? यहाँ तो बहुत-से लोग आये है, गरीबो की सहायता करने।"

"नही, बाबूजी, यहाँ तो कोई नही आया। जिनको भगवान ने ही नीच बना दिया, उनके पास बडे लोग कैसे आ सकते हैं?'

"गाँव के लोग भी तुम्हारी कोई मदद नही करते?"

"हम नीच जो है, हमारे घर वे कैसे आ सकते हैं? और फिर वे बेचारे तो खुद तकलीफ मे है।"

"क्या तुम्हारे पति को रोज मजदूरी नही मिलती?"

"रोज मिल जाय तब तो फिर कष्ट किस बात का?"

शाम को सात बजे के करीब हम लोग लौट कर अपने खेमे मे आ गये। पर इस घूरे के घर का दृश्य और इस हरिजन बहन की हालत पर मन मे नाना तरह के विचार चलते रहे। कैसी हालत है हमारे देश मे मानवता की! हमने अपने लोगो की कितनी भयकर अवहेलना की है और कितनी पीडा पहुँचाई है, हमारी भ्रान्त धार्मिक भावना ने इस बहन-जैसी अनेको को! एक तरफ है हमारी धार्मिकता, हमारा अभिमान और हमारा ऊँचे बनने का दावा! एक यह बहन है, जो कहती हैं कि गांव के लोग बहुत कष्ट मे है, वे हमारी सहायता कैसे कर सकते हैं! इस पीडा मे, इस अपमान मे भी गाँव के लोगो का दु ख-दर्द है उसके मन मे। कोई उसकी सहायता नही करता। वह भूखी है, नगी है, उसके बच्चे शीत मे काँप और भूख से बिलबिला रहे है, पर वह किसी अडोसी-पडोसी पर, सहायता करने के लिए यहाँ आई हुई सभा-समितियो पर—किसी पर रोष नही करती। वह स्वत कहती है, हम नीच जो है!

शायद यह अवस्था दुनिया मे और कही नही है। यह सब तो हमारे इस धर्म-प्रधान देश की ही विडम्बना है। आज भी वह घूरे का घर आँखो मे ज्यो-का-त्यो फिर रहा है। क्या स्वतत्र भारत मे भी ऐसे घर और ऐसी अवस्था हम बर्दाश्त करेगे?

जुलाई, १९४९

—— o ——

७

दो दृश्य

कल रात को यहाँ खूब वर्षा हुई। गंगा के किनारे की ज़मीन कीचड मे भर गई, इसीलिए मुझे अपने प्रातःकाल के वायु-सेवन के लिए सदर रास्ते पर चलना पडा। नाना प्रकार के विचारो मे निमग्न मैं करीब दो मील निकल गया। मैं अपने पथ पर अकेला था और मेरी चाल तेज थी। एकाएक एक आवाज आई और मेरे पैर रुक गये। सामने एक आदमी खडा था और उसके सामने भीगे हुए कम्बल का एक पुलन्दा। वह आदमी उस पुलिन्दे की तरफ मुह किये कुछ बातें कर रहा था। एक निर्जीव चीज से बातचीत! मैं उस आदमी के नजदीक गया और मैंने जो कुछ देखा, उसकी याद आज तक मेरे रोम-रोम को कपा रही है। मैं उसे भूलने की कोशिश कर रहा हूँ, किन्तु उसकी तस्वीर इतनी ताकतवर है कि मेरी दुर्बल आँखो का पानी बार-बार कोशिश करने पर भी उसे मिटा नहीं पाता।

मैंने देखा, उस कम्बल के पुलिन्दे मे जान थी। वह कम्बल का पुलिन्दा एक मनुष्य था, मेरे ही समान चेतनामय। वह गरीब था। किसी ने दया कर वह सूती कम्बल दे दिया था। वही उसका एकमात्र कपडा था। दुर्भाग्य से उसमें आग लग गई थी! उस कम्बल मे कई छेद हो गये थे और उन छेदो मे से आग की लपटें उसके शरीर को भी जला गई थी। जलने पर भी वह उसी कम्बल को लपेटे शरीर के दर्द, वर्षा की बौछारें और रात की ठड को सहता रहा। वह एक वृक्ष के नीचे पडा था। शायद वह वृक्ष को अपनी रक्षा का साधन समझे हुए था। उसका चेहरा देखने से मालूम होता था कि वह कराहने की कोशिश कर रहा है, किन्तु उसके मुह से आवाज नही निकल पाती थी। मैंने उसके पास खडे हुए आदमी से उसके जलने का कारण पूछा तो मालूम हुआ कि उस अभागे ने कपडे की कमी के कारण आग मे अपनी सर्दी मिटाने की कोशिश की थी और इसीलिए वह जल गया है। अस्पताल मे उसके लिए जगह नही थी। दुनिया मे उसका कोई सगा-सम्बन्धी नही था। मैंने जब जले हुए घावो को दिखाने के लिए कहा, तो उस आदमी ने जरा-सा वह कम्बल सरका दिया, और मैंने देखा मनुष्य के शरीर का वह भयकर रूप, जिसकी याद ने मेरे प्राणो मे एक घाव बना दिया है। उस आदमी ने बताया था कि उस अभागे का कोई नही है। मुझे एकाएक ईश्वर की याद आ गई, क्योकि जब दूसरा नही होता, तब भगवान की याद आ ही जाती है। मेरे मन ने सवाल किया, "क्या जगत-पिता कहलानेवाला परमात्मा भी उस अभागे का कोई नही है? क्या उस ईश्वर की सृष्टि मे ऐसे भी जीव हैं, जो वस्त्रहीन, अन्नहीन, भूखे-प्यासे, बीमार और दर्द से

कातर होकर यह महसूस करते है कि उनका कोई नही है? और, वह भी उस विशाल सम्पत्ति के केन्द्र कलकत्ता से केवल ३५ मील की दूरी पर! मन की एक अजीब हालत हो गई। उस ग्रामीण भाई से सलाह की कि उसके लिए क्या किया जा सकता है। वह इस देहात का एक भयकर दृश्य था। मै आगे बढा। अचानक मेरी नजर पडी दो उछलते-कूदते बछडो पर। उन्हे ससार मे आये पन्द्रह-बीस ही दिन हुए थे। रग बिलकुल सफेद था। मस्तक कुछ-कुछ लाल और पीला था। चारो तरफ वे दौड रहे थे। वे खुद बहुत सुन्दर थे। ससार भी उन्हे बहुत सुन्दर मालूम होता था, इसीलिए वे खुश भी बहुत थे। वे भी राहगीरो को आकर्षित करते थे। उस अभागे गरीब ने भी आकर्षित किया था, पर दोनो के ससार मे कितना अतर था!

—— o ——

षष्ठम खण्ड

स्त्री-शिक्षा

संस्कृता नारी पराशक्ति

सुप्रसिद्ध समाज-सेविका और शिक्षा-विद,
भारत सरकार के योजना-आयोग की भूतपूर्व सदस्या,
स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षा

श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख

भारत में स्त्री-शिक्षा : एक विश्लेषण

अगर शिक्षा प्राप्त करना मनुष्य का जन्म-जात अधिकार है तो वह अधिकार स्त्री का भी उतना ही है, जितना पुरुष का। स्त्री और पुरुष दोनो मे ही जीवन-शक्ति का समान प्रवाह है, दोनो एक ही तरह की दैवी ज्योति से दीप्त है। इस हालत मे मानव-जाति के सास्कृतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य स्त्री और पुरुष के लिए भिन्न-भिन्न नही हो सकते। चाहे स्त्री हो या पुरुष, व्यक्तित्व के विकास की अनिवार्यता विलकुल स्पष्ट है। तब स्वाभाविक ही है कि शिक्षा के क्षेत्र मे स्त्री को भी वही जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त है, जो पुरुप को प्राप्त है। यह दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि इतनी सहज और स्पष्ट वात भी आज तक उपेक्षित रही है, विचारो या शब्दो मे नही भी, तो कार्यो मे निश्चित ही।

अत स्त्री-शिक्षा के सबध मे विचार करते समय हम स्त्री और पुरुप की इस मूलभूत और महत्वपूर्ण समानता पर जोर देना चाहेगे। यह मान लेने पर कि व्यक्ति के रूप मे स्त्री की स्थिति, गौरव और महत्ता पुरुषो जैसी ही है, समाज, परिवार, जाति, राष्ट्र और मानव-जाति की एक सदस्या के रूप मे उसकी स्थिति के वारे मे हमारे पास कहने को क्या है? इस वात को अगर दूसरे ढग से कहना हो तो प्रश्न यह उठता है कि समाज मे स्त्री की कौन सी भूमिका है? इस वारे मे आज भी परस्पर-विरोधी मत है। एक राय यह है कि स्त्री गृह-स्वामिनी पहले है और दूसरी कुछ भी बाद मे। इस वारे मे तर्क यह दिया जाता है कि उसकी भूमिका घर के अन्दर ही है, घर के वाहर कोई भूमिका नही है, अगर है भी तो वहुत छोटी है या जो कुछ है, वह निश्चित रूप से गौण है और वह भी घर के भीतर उसकी माग और जरूरत पर निर्भर करती है। दूसरी राय यह है कि घर के प्रति सिर्फ स्त्री की ही जिम्मेदारी नही है, अगर वह सच्चे अर्थो मे पुरुप की सगिनी है तो उसका क्षेत्र घर के दायरे मे ही खत्म नही हो जाता। मर्दो की तरह ही औरत के लिये भी जीवन की तमाम राहे खुली हुई है।

समानता और ममता मे भेद करना मुश्किल है। इतिहास के विद्यार्थी यह बात अच्छी तरह जानते है कि पश्चिम मे आधुनिक समाज के आविर्भाव, बौद्धिक क्राति, सुधार-आदोलन और औद्योगिक क्राति ने नारी के लिए महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रादुर्भूत की है। बौद्धिक क्राति की वजह से सिर्फ सास्कृतिक जागरण ही नही हुआ है, बल्कि लोगो मे ज्ञान और सच्चाई की प्यास भी जगी है। साथ ही, बौद्धिक मत अधिक पैने हुए है, जो उसके लिए जरूरी थे। सुधार-आन्दोलन मे व्यक्ति की महत्ता को स्वीकृति दी गई। यह स्वाभाविक भी था। जो बात धर्म के साथ शुरू हुई, वह उसके साथ ही खत्म नही हो सकती थी। फ्रास की क्राति ने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व-भावना के सिद्धान्तो के माध्यम से राज-नीतिक मामलो मे व्यक्ति को महत्वपूर्ण माना और औद्योगिक क्राति, जिसके साथ स्वतत्र उद्योग-व्यवस्था भी सलग्न थे, ने आर्थिक क्षेत्रो मे भी यही सिद्धान्त बार-बार लागू किया। इसे स्वीकार करने मे कोई हिचक नही होनी चाहिये कि स्वतत्रता और समानता का सिद्धान्त के रूप मे तो प्रतिपादन किया गया, लेकिन कार्य रूप मे उसे बहुत कम परिणत किया गया। व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन, जिसे स्टुअर्ट मिल और हरबर्ट स्पेन्सर जैसे मनीषियो का समर्थन प्राप्त था, ने १९ वी शती मे व्यक्ति की स्वतत्रता और गरिमा को पुनर्स्थापित किया। इसके अनुसार मनुष्य किसी तरह का माध्यम बनने के बजाय अपने-आप मे एक लक्ष्य है। मार्क्स और लेनिन के तथाकथित वैज्ञानिक भौतिकवाद, कान्ट और टी० एच० ग्रीन के दार्शनिक आदर्शवाद, महात्मा गाधी के आदर्शवाद और रस्किन या टाल्स्टाय के काल्पनिक आदर्शवाद की इस बात को सब ने स्वीकार किया कि आदमी आदमी मे कोई फर्क नही है— सैक्स का प्रश्न भी कोई भिन्नता नही ला सकता। सामाजिक विचारधारा की दृष्टि से यह एक बहुत बडी उपलब्धि है, जिसे सुरक्षित रखना, विकसित करना और गहरा अर्थ देते हुए समृद्ध करना नितान्त जरूरी है। समाज मे स्त्री का स्थान क्या है और क्या होना चाहिए, इस पर इस मूलभूत सामाजिक जीवन-दृष्टि की रोशनी मे ही विचार करना चाहिए।

जो लोग यह कहते है कि स्त्री की मुख्य भूमिका घर की चहारदीवारी के अन्दर है, बाहर नही, उनके दो तर्क है—(१) मातृत्व के कर्त्तव्य और जिम्मेदारियो की स्वीकृति और (२) उस भौतिक मानदण्ड की सुरक्षा, जो स्त्री-जाति को विरासत मे श्रेष्ठ तथा गौरवपूर्ण परम्परा के रूप मे प्राप्त है। जहाँ तक मातृत्व के कर्त्तव्य और जिम्मेदारियो का सवाल है, उनकी महत्ता को कोई अस्वीकार नही करता लेकिन सवाल यह है कि श्रेष्ठ माताओ का निर्माण कौन करता है? मेरे खयाल से सच्चे अर्थ मे वे स्त्रियाँ हरगिज नही, जो अपने बच्चो पर प्यार की बरसात करती हैं, उन्हे हर वक्त छाती से चिपका कर लाड-प्यार करती रहती है। उन स्त्रियो को निर्माता नही माना जा सकता, जो बच्चो को शारीरिक सुख-सुविधा ही देती है, उनकी देखभाल ही करती है। सचमुच अच्छी मा एकमात्र वही स्त्री है, जो अपने बच्चो के व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास मे मदद देती है, जीवन के प्रति सही दृष्टि और जीने की सही आदतो के निर्माण मे मदद देती है यानी

जिन्दगी की वास्तविक ट्रेनिंग देती है। हमारे खयाल से ऐसा कर पाना सिर्फ उसी औरत के लिए सभव है, जो सच्चे अर्थो मे शिक्षित है, जिसे जीवन का पूर्ण ज्ञान और विविध अनुभव है और जो जीवन की समस्याओ और चुनौतियो से पूरी तरह परिचित है। इन मानदण्डो की कसौटी पर वह स्त्री हरगिज पूरी नही उतर सकती, जिसने अपने को वाहरी दुनिया से काट लिया है या तटस्थ हो कर अपने को घर की चहारदीवारी मे कैद कर लिया है। इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मातृत्व के कर्त्तव्य और जिम्मेदारी को वेहतर तरीको से निभाने के लिए भी औरत को सिर्फ घर की दुनिया मे कैद हो कर रहना जरूरी नही हे। उसे निश्चित रूप से वृहत्तर दुनिया मे आना चाहिए और उसकी जिम्मेदारियो मे भी हिस्सा लेना चाहिए। यह उसे वेहतर मा भी वनायेगा।

नैतिक मानदण्डो के प्रश्न को ले तो यह मानना ही होगा कि इन मानदण्डो की वास्तविक सफलता इसी मे होगी कि हम पलायन के वजाय जीवन के तमाम तनावो, मुश्किलो और उलझनो के वीच भी जीवित और सुरक्षित रह पाये। ऐसी नैतिकता, जो छूने भर से टूट-फूट कर विखर जाय और जिसे सुरक्षित रखने के लिये निर्जनता या निषेध की जरूरत हो, निरर्थक है। तब यह वात विलकुल स्पष्ट हो जाती है कि मातृत्व के लिये औरत को घर की चहारदीवारी मे कैद रहने की जरूरत नही हे। व्यक्तित्व के समुचित विकास, शक्ति और प्रतिभा के वेहतर उपयोग और समाज की अपेक्षा-पूर्ति के लिए स्त्री को जीवन के समस्त क्षेत्रो मे भरपूर हिस्सा लेना चाहिए। दूसरी बात व्यावहारिकता से सवधित है। स्त्री को घर से वाहर निकल कर इसलिये भी काम करना पडता है कि वह परिवार की आमदनी मे सहयोग दे सके। हमारे अधिकतर घरो मे जीवन की मूल जरूरतो को पूरी करने के लिए भी औरतो को काम करना जरूरी हो जाता है। यहाँ हम उस आम आशका की भी चर्चा करना चाहेगे, जिसके अनुसार स्त्री अगर अपने को घर की देखभाल के सकुचित घेरे मे नही वाधेगी, तो पारिवारिक जीवन विनष्ट हो जायगा। यह वात स्पष्ट कर देना भी जरूरी है कि हम पारिवारिक जीवन के महत्व को किसी तरह कम नही मानते और उसे विनष्ट करने का हमारा कतई कोई इरादा नही है। स्त्री के वृहत्तर जीवन मे हिस्सा लेने के समर्थन मे हम जो तर्क दे रहे है, उसका यह मतलव भी न निकाला जाय कि हर औरत नौकरी करे ही या यह कि नौकरी के विना औरत का वृहत्तर जीवन मे हिस्सा लेना असम्भव है। समाज-कल्याण के लिये स्वेच्छित समाज-सेवा भी अत्यधिक जरूरी है और ऐसी समाज-सेवा मे सक्रिय सहयोग देना वृहत्तर जीवन की जिम्मेदारियो मे हाथ वँटाने का श्रेष्ठ और अनुपम तरीका है। इस प्रकार से पारिवारिक जीवन की महत्ता को समझते हुए, हमारी राय मे, समाज को चाहिए कि वह स्त्रियो को सामाजिक सेवा के माध्यम से सभी काम करने की सुविधाए दे, ताकि मातृत्व के तमाम कर्त्तव्यो को निभाते और गृहस्थी की देखभाल करते हुए (जिसकी महत्ता हम पहले ही स्वीकार कर चुके है), वे दुनिया की समस्याओ और जरूरतो की पूर्ति मे अपना यथोचित योगदान दे सके, लेकिन यहाँ यह वात और स्पष्ट कर देना ठीक होगा

कि घर के प्रति औरतो की जिम्मेदारी की माग पर किसी तरह का समझौता करने से पहले यह भी जरूरी है कि परिवार के लोग समाज की जरूरत और स्त्री के व्यक्तित्व के विकास की दिशा मे थोडे से एडजस्टमेंट के लिए भी तैयार हो। पुरुषो के लिए भी यह जरूरी है कि वे घर के कामो मे औरतो का हाथ बटाए, यदि औरत से यह अपेक्षा की जाती है कि वह घर की चहारदीवारी से बाहर निकल कर पुरुषो के काम मे सहयोग दे।

कहने का मतलब यह है कि व्यक्तिगत इकाई के रूप मे भी और समाज के अग के रूप मे भी औरत को मर्द के साथ बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए और दोनो को एक-दूसरे का जीवनभर का साथी होना चाहिए। स्त्री समस्त योग्य जीवन-साथी बन सके, उसके लिए उसके व्यक्तित्व के विकास की सारी सुविधाएँ और अवसर उसको प्रदान करना चाहिये। इस मूलभूत जीवन-दृष्टि और मानदण्ड के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि लडकियो को लडको की तरह ही उपयुक्त कामगर शिक्षा भी देनी चाहिए, ताकि वे घर और बाहर दोनो जगह अपनी जिम्मेदारिया ठीक तरह से निभा सकें।

यहाँ एक सवाल उठ खडा होता है कि वह किस तरह का समाज हो, जिसके लिये हम अपनी महिलाओ को तैयार करे? उस समाज की प्रवृत्तियो क्या और कैसी है? और वे कौन सी मूलभूत समस्याएँ है, जिनका आधुनिक नारी को सामना करना होगा? जब तक इन सवालो का स्पष्ट उत्तर नही मिल जाता, हम अपना शैक्षणिक कार्यक्रम निर्धारित नही कर सकते, न ही हम उन दृष्टिकोणो और पद्धतियो के बारे मे कोई राय कायम कर सकते हैं, जिनका अनुकरण स्त्रियो के लिए अपेक्षित है। हमारी राय मे विज्ञान, शिल्प और श्रम के मामलो मे विशेषज्ञता, कार्य-विभाजन, कर्त्तव्य-निर्धारण, यान्त्रिकता और केन्द्रीकरण आदि तत्व आधुनिक समाज मे तर्क-सगत तरीके से क्रमिक रूप मे एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। आधुनिक विज्ञान और शिल्प ने हमारे समाज के समूचे ढाचे और व्यवस्था को बदल दिया है। बडे-बडे कल-कारखाने, जो आधुनिक सभ्यता के महत्वपूर्ण अग है, सभव ही नही हो पाते अगर आधुनिक विज्ञान, शिल्प, विशेषज्ञता और श्रम-विभाजन का सतुलित सहयोग न होता। विज्ञान के बढते हुए प्रभाव के कारण आज आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण होता जा रहा है। चाहे वह शक्ति कुछ पूजीपतियो के हाथ मे हो या सारे देश के हाथ मे, इन प्रमुख सामाजिक तत्वो ने जीवन के प्रति एक खास दृष्टिकोण अपनाने को हमे विवश कर दिया है। इस दृष्टिकोण ने भौतिक सुख और हसी-खुशी को ही जीवन का बुनियादी और चरम लक्ष्य मान लेने पर जोर दिया है। आधुनिक पुरुष और स्त्री शायद भौतिक सुख-सुविधा मे ही अत्यधिक डूब गये है। जीवन का स्तर उठाने के बहाने, जो लोग दर असल व्यय का स्तर बढाते जा रहे हैं, वे भौतिक सुख-सुविधाओ मे किसी प्रकार की कटौती करने को राजी नही है। उन्होंने जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया है, वह भौतिक ही है। यह बात बिलकुल सही है कि हमने शारीरिक आखो को बचाने के चक्कर मे आत्मा की आखे खो दी।

हम भौतिक सुख-सुविधाओ के महत्व को इन्कार नही करते, न ही हमारा यह सुझाव है कि गरीवी अच्छी चीज है या दुख की कामना सुखकर है। हम सिर्फ यही कहना चाहते है कि आज आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यो की प्रमुखता कम हो गई है, सादगी जैसे गायव ही हो गई है। आदमी महज़ एक मशीन वन गया है। दूसरे शव्दो मे, मूल्यो का अवमूल्यन हो गया है। हमारे पास निश्चित रूप से सुन्दर और उच्चस्तरीय जीवन की सुख-सुविधाएँ है और जीवन मे सास्कृतिक आदर्शो के लिए भी समय हे। परन्तु इसके लिए हमे भौतिक समृद्धि की ही जरूरत नही है। आज हमारे सामने यही प्रमुख समस्या है, जिसका समाधान जरूरी है। लेकिन यही आखिरी समस्या नही है। मनुष्य की सर्वोच्च और अतिम गरिमा शारीरिक नही, आत्मिक है। अत हम जिस वात को जोर देकर कहना चाहते है, वह यह है कि आधुनिक समाज जीवन मे भौतिक मूल्यो से अतिरिक्त माला मे प्रभावित है और यही हमारे वर्तमान सास्कृतिक सकट का कारण है।

आज आवश्यकता यह है कि हमारे युवक-युवतियाँ सही जीवन-दृष्टि अख्तियार करे, जीवन के आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यो पर जोर दे और उनको आत्मसात करे। हम उनके सामने ऐसे दृष्टान्त और उदाहरण प्रस्तुत करे, जिनके द्वारा 'सादा जीवन और उच्च विचार', दूसरो की निस्वार्थ सेवा और त्याग के आदर्श प्रस्तुत हो, प्रभावशाली हो। हमारी राय मे शिक्षा-सस्थाओ के वातावरण मे इसी मूलभूत जीवन-दृष्टि की महत्ता पर जोर दिया जाना चाहिए। हम चाहते है कि छात्रो को नैतिक शिक्षा भी दी जाय और शिक्षा का ऐसा ज्ञानवर्धक कार्यक्रम रखा जाय, जिसमे सामाजिक-सेवा का व्यावहारिक ज्ञान शामिल हो।

भारत मे वौद्धिक जागरण का काम १९ वी शती से प्रारम्भ हुआ, जो विदेशी शासन को चुनौती देते हुए स्वतव्रता की ओर सहज स्वाभाविक माग के रूप मे अभिव्यक्त हुआ। इस जागरण मे स्त्रियाँ भी पुरुषो के साथ हाथ मिला कर आगे वढी। स्वतव्रता-सग्राम मे उनके इस योगदान की गौरव-गाथा सिर्फ भारतीय इतिहास मे ही नही, विश्व के इतिहास मे अकित है। पिछले सौ-डेढसौ सालो मे हमारे समाज-सुधार आन्दोलन के अन्तर्गत स्त्री-स्वतव्रता का कार्यक्रम अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। इस काल के तमाम सुधारको ने समाज मे नारी का स्थान महत्वपूर्ण वनाने पर ही अत्यधिक जोर दिया।

यद्यपि इस वौद्धिक जागरण की शुरूआत सामाजिक और धार्मिक पीठिका पर हुई, लेकिन शीघ्र ही अन्य क्षेत्रो मे भी यह आन्दोलन सिर्फ विस्तृत और व्यापक ही नही, वल्कि आन्तरिक सजगता के क्षेत्र मे भी गहरा और दृढ हो उठा। यह आदोलन क्रमश विराट जन-आन्दोलन मे परिणत हो गया और देश के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी क्षेत्रो को इसने प्रभावित किया—पुरुषो और स्त्रियो दोनो को समान रूप से प्रभावित किया। हम विदेशी शासन के खिलाफ लडते रहे और गाँधीजी के महान् नेतृत्व मे एक पर एक लडाइयाँ जीतते रहे। अत मे हमे उस सुवह के दर्शन हुए, जो हमारे लिए स्वतव्रता का सदेश लेकर आयी। स्वतव्रता-प्राप्ति ने हमे वह सुअवसर प्रदान किया, जव हम अपनी उन राष्ट्रीय

प्रेरणाओ को साकार रूप दे सके जिनमे स्त्रियो के समानाधिकार और सुख-सुविधाओ को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समता के औचित्य के सिद्धातो पर हमारे सविधान ने स्त्रियो और पुरुषो को समानाधिकार प्रदान किए।

हमने ऊपर यह बताया है कि आधुनिक समाज एक सकट मे से गुजर रहा है। हमने उस सकट की स्थिति को समझाने की कोशिश की है तथा उसके उचित समाधान की ओर भी सकेत किया है। जीवन मे नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के विकास की आवश्यकता है। आज दुनिया मे न्याय, समानता और स्वतत्रता के जो विचार विकसित हो रहे हैं, उनका प्रभाव हमारे देश और समाज पर भी पड रहा है। घडी का पेण्डुलम जब एक सिरे से दूसरे सिरे तक झूलता रहा हो, तो उसके स्थिर होने मे थोडा वक्त लगता है। हमारे समाज का पेण्डुलम भी आज बिगड गया है। यह स्वाभाविक भी है। परिवर्तन लाने की कोशिश मे समाज का केन्द्र डगमगाने लगा है और चूकि परिवर्तन का कार्य अभी पूरा नही हुआ है, अत उसमे स्थिरता नही आ पाई है। सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता और राजनीतिक स्वतत्रता के क्षेत्र मे इसी स्थिरता के अभाव ने कईएक गलत-फहमियाँ और अतिशयोक्तियाँ पैदा कर दी है। कभी-कभी हमे लगता है कि स्वय न्याय के नाम पर उदारता और सहिष्णुता के नियमो का उल्लघन हो रहा है, समानता ने योग्यता के अन्तर को अस्वीकार कर दिया है और स्वतत्रता महज एक लायसेस बन गई है। इसी तरह अधिकारो का अतिशय अभिमान कर्त्तव्य की अवहेलना मे परिणत हो सकता है और निरन्तर प्रगति की धुन मे हम स्वीकृत आदर्शो पर चलने से इन्कार भी कर सकते हैं। लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह बहुत कुछ बदले हुए समाज मे आज उपलब्ध सुविधा की कीमत है, जो हमे चुकानी ही होगी। इन तमाम बाधाओ और खतरो का मुकाबला करना ही होगा, जो बदलते हुए समाज के सन्दर्भ मे स्वाभाविक तौर से आ खडे हुए हैं। कभी-कभी ये खतरे हमे भयभीत कर देते है और हम परिवर्तन के प्रति अनास्थावादी रुख अख्तियार करने लगते हैं। ऐसी अनास्था से हमे अपने-आपको बचाना होगा, क्योकि ऐसे विचार सामाजिक परिवर्तन मे सहायक होने के बजाय बाधक बन जाते है। यह एक अस्वस्थ और जड दृष्टिकोण होगा, खासकर जबकि एक नया समाज जन्म ले रहा है। इसका यह अर्थ भी नही है कि ऐसे खतरो की ओर बिलकुल ध्यान ही नही देना चाहिए अथवा उन पर काबू पाने या उनको घटाने की कोशिश ही नही करनी चाहिए। किस रूप मे यह करना चाहिए, इसकी एकमात्र राह यही है कि एक रस्सी की तरह हम उसे कस कर पकडे रहे। आदमी का अपना विवेक ही वह मजबूत रस्सी है, जिसे आधुनिक समाज कस कर थामे रहे। इस दूसरे दृष्टि-कोण से भी जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो पर समुचित जोर दिया जाना चाहिए। अगर हम ऐसा कर पाये, तो अपनी राह हम कभी नही भूलेगे जिस पर हमे चलना है। एक दिन हम उस स्थिति मे पहुच ही जायेगे, जहाँ न्याय और उदारता, समानता और योग्यता, स्वतत्रता और स्थिरता मे कोई फर्क नही रहेगा।

हम चाहते है कि आधुनिक शिक्षा हमारे लडके और लडकियो मे जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के प्रति मूलभूत सम्मान और स्वीकृति की भावना पैदा करे।

जीवन के मूलभूत नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यो के प्रति समुचित आस्था रखते हुए ही हमे अपने कर्त्तव्य और जिम्मेदारिया निर्धारित करनी चाहिए। अपने सविधान को भी हमे इसी दृष्टि से महत्व देना होगा। आदर्श केवल पवित्र आशाये बन कर ही न रह जाये बल्कि मनुष्य के दैनिक जीवन मे प्रतिफलित भी हो। स्वतत्रता की यही चुनौती है। ये तमाम आदर्श डके की चोट पर इसान को आवाज दे रहे है कि वह समस्याओ से जूझे, कडी मेहनत करे और इन पवित्र उद्देश्यो को पूरा करे। निस्वार्थ कर्मशीलता ही कुछ ऐसी उपलब्धि है, जो सचमुच सार्थक और महान् होती है। हम लोगो को भय या घृणा से मुक्त होकर निरतर कार्य करना होगा। हमारा विकास हमारे शैक्षणिक क्रिया-कलापो पर निर्भर करता है। और, इस दृष्टि से स्त्री-शिक्षा का जबर्दस्त महत्त्व है। अत अपेक्षित है कि भारत की सरकार और जनता दूरदर्शिता से काम लेते हुए उन जोखिमो को महसूस करे, जिनसे लडते हुए स्त्री-शिक्षा ने अपने को दाव पर लगा रखा है।

—— ० ——

श्री शिक्षायतन कालेज मे
शिक्षा-प्रशिक्षण की प्राध्यापिका

श्रीमती सोमा चटर्जी

भारत में स्त्री-शिक्षा के विकास-चरण

भारतीय इतिहास के विख्यात विद्वान् डा० ए० एस० ग्राल्तेकर ने लिखा है—"किसी सभ्यता की जीवनी शक्ति, उसकी विशिष्टता तथा उसकी सीमाओ के ज्ञान के लिये उसके स्त्री-जीवन के इतिहास, स्तर और स्थिति का ज्ञान ही सर्वोत्तम साधन होता है।"

भारतीय नारी को समाज मे उचित स्थान प्राप्त करने के लिये जिस मार्ग मे चलना पडा है, वह सरल नही कहा जा सकता। हजारो वर्षो की रूढियो और परम्पराओ मे जकडे रहने के वाद आज वह स्वतन्त्रता और समानता की वर्तमान स्थिति तक पहुँची है। उसके विकास की प्रक्रिया और स्थिति से ही सही मूल्याकन हो सकता है कि स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे हमारे देश की स्थिति किस प्रकार रही है।

प्राचीन काल

प्राचीन भारत मे स्त्री-शिक्षा के स्वरूप और स्थिति के वारे मे न तो अभी तक ठीक-ठीक पता ही चल पाया है और न इतने लम्बे समय का क्रमानुसार वर्णन करना सभव ही है।

हमारी सभ्यता का आरम्भ वैदिक काल (२५०० ई० पू० से १५०० ई० पू०) से हुआ। उस युग मे स्त्री-जाति का स्थान प्रत्येक दृष्टिकोण से सतोषप्रद था। लडको की भाति ही लडकिया भी शिक्षा प्राप्त करती थी। वहुत सी स्त्रियाँ असाधारण प्रतिभा की कवियत्रियाँ भी हुईं, जिनकी कविताओ को तत्कालीन साहित्य मे उचित सम्मान प्राप्त हुआ। १६ और १७ वर्ष की आयु मे लडकियो का विवाह होता था। विवाह के लिये जीवन-साथी चुनने मे उनसे भी सलाह ली जाती थी। समाज मे उनका सम्मान था और उन्हे राजनीतिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रता भी प्राप्त थी।

सहिता, ब्राह्मण और उपनिषद के काल (१५०० ई० पू० से ५०० ई० पू०) मे स्त्री-जाति की स्थिति मे परिवर्तन हुआ दिखाई देता है। यद्यपि समाज के उच्च वर्ग मे अभी भी लडकियो का उपनयन सस्कार होता था और वे शिक्षा प्राप्त

करती थी और उनमे से कुछ तो दर्शन और नीति शास्त्र की व्याख्याता और विद्वान भी होती थी लेकिन उनकी शिक्षा मे धीरे-धीरे ह्रास होने लगा था। उनको अब प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्रो मे या गुरुओ के पास जा कर शिक्षा प्राप्त करने के लिये उत्साहित नही किया जाता था। उनके लिये शिक्षा की व्यवस्था अब घर मे ही होने लगी थी। पिता, भाई, चाचा या निकट के दूसरे सबधी ही उन्हे अब घर पर शिक्षा प्रदान करते थे। इससे यह स्वाभाविक हो गया कि केवल धनी और उच्च वर्ग की ही लडकिया धार्मिक तथा अन्य शिक्षा प्राप्त कर पाती थी, जिसके परिणाम स्वरूप वहुसख्यक स्त्रियो की धार्मिक एव अन्य सुविधाओ तथा अधिकारो मे ह्रास होने लगा। बहुत से ऐसे यज्ञ-समारोहो, जिन्हे सम्पन्न करने का अकेले उन्हे अधिकार प्राप्त था, मे पुरुषो का भी प्रवेश होने लगा। सभ्रान्त परिवारो मे ही स्त्रियाँ प्रात और सायकालीन वैदिक प्रार्थनाये कर पाती थी, अन्य वर्गो मे पति की उपस्थिति मे ही यह कार्य सम्पन्न हो पाता था।

सूत्र, महाकाव्य और स्मृतियो के प्रारम्भिक काल (५०० ई० पू० से ५०० ई० तक) मे स्त्रियो की दशा और भी गिरने लगी। इस युग के प्रारम्भ मे छोटी उम्र मे ही लडकियो का विवाह होने लगा तथा उनकी शिक्षा और उपनयन-सस्कार के विचारो मे ह्रास होने लगा। उनकी वैदिक शिक्षा भी निषिद्ध हो चली। फिर भी, उस काल के आधे युग तक लडकियाँ वैदिक शिक्षा मे दक्षता प्राप्त करती रही और वेदोच्चारण का कार्य भी करती रही। बाद मे क्रमश अधिकाश लडकियाँ इससे वचित होती रही। विवाह के पहले औपचारिकता वश उनका उपनयन सस्कार कर दिया जाता था। इसमे सदेह ही है कि इस काल मे वे प्रात और साय-कालीन वैदिक प्रार्थना करती रही होगी। २०० ई० के पश्चात् इस प्रकार की औपचारिकता भी समाप्त कर दी गई। इस काल मे उपनयन सस्कार की समाप्ति, शिक्षा के प्रति उपेक्षा, और बाल-विवाह की परम्परा के आरम्भ ने स्त्रियो की अवस्था और स्थिति को अत्यधिक गिरा दिया। वाल-विवाह के आरम्भ ने उनकी उच्च शिक्षा पद्धति को भी शिथिल बना दिया। स्मृति-काल (५०० ई० पू० के पश्चात् से १८० ई०) मे स्त्रियो के लिये उपनयन सस्कार की परम्परा समाप्त ही हो गई। क्षत्रियो के अतिरिक्त अन्य जातियो मे लडकियो का विवाह १०-११ वर्ष की आयु मे ही कर दिया जाने लगा। विवाह के पहले उनके लिये किसी प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था नही थी। १० वी शताब्दी के अत से १२ वी शताब्दी के प्रारम्भ तक कुछ सम्पन्न परिवारो की लडकियो ही कुछ विशेष अध्यापको से साहित्यिक शिक्षा प्राप्त कर पाती थी, जिनमे से कुछ तो प्रसिद्ध कवियत्री और समीक्षक भी होती थी। जैसे-जैसे प्राचीन राज्यो की निरकुशता की समाप्ति होने लगी और मुस्लिम राज्यो की स्थापना होने लगी, वैसे-वैसे यह परम्परा भी धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। स्त्रियाँ को शूद्रो के बराबर समझा जाने लगा और धीरे-धीरे उन्हें नीति तथा दर्शन शास्त्र के अध्ययन से सर्वथा वचित कर दिया गया। हाँ, आवश्यकतानुसार उन्हें एक नये ढग का धार्मिक साहित्य पढने की प्रेरणा दी गई। इसे पुराण साहित्य कहते है। इस साहित्य मे हिन्दू धर्म के सिद्धातो का

वर्णन नितान्त घरेलू और आकर्षक तथा सरल ढंग की कहानियो में होता था। धर्म-प्रचार तथा धार्मिक अनुशासन के लिये इसी माध्यम से देश भर मे पुराणो का प्रचार किया गया। इस प्रकार के साहित्य को पढ कर स्त्रियाँ अपनी जाति और सभ्यता के प्रति श्रद्धालु बनी रहती थी। इस प्रकार पुराणो ने उनमे अधिक विश्वास पैदा किया।

बौद्ध धर्म के उत्थान ने स्त्रियो मे एक नई आशा पैदा की। ब्राह्मणो ने नारियो की वैयक्तिकता और प्रचलित वर्ण-व्यवस्था के आधार पर उन पर शोषण का जो चक्र चला रखा था, बौद्ध धर्म उसके विरुद्ध एक क्रांतिकारी विचारधारा के रूप मे प्रकट हुआ। ब्राह्मणवाद की सामाजिक निरकुशता के कारण स्त्रियो के लिये ज्ञान का प्रकाश देख पाना असभव हो गया था। बौद्ध धर्म ने इस सामाजिक निरकुशता को शिथिल करके ज्ञान प्राप्त करने की दिशा मे स्त्रियो को एक नई प्रेरणा प्रदान की। गौतम बुद्ध कहते थे—"मुझे ऐसी स्त्रियो की आवश्यकता है, जो दर्शन मे दक्ष हो, कविताए लिख सके, तथा शास्त्रो की नीतियो की व्याख्याता हो।" बौद्ध धर्म के अनुसार अशिक्षा अपराध थी।

इस प्रकार बौद्ध धर्म के अनुसार शिक्षा-क्षेत्र मे स्त्रियो के निर्बाध प्रवेश ने उच्च और सभ्रान्त परिवारो की स्त्रियो के मन मे शिक्षा के लिये फिर से निष्ठा को जन्म दिया। उत्तर-वैदिक काल मे जिस तरह ब्राह्मण–धर्म के क्षेत्र मे ब्रह्मवादिनी होती थी, उसी प्रकार बौद्ध धर्म मे भी धर्म और दर्शन के मूल तत्व को समझने और उसका पालन करने के लिये ब्रह्मचारिणी होती थी। उनमे से बहुत सी तो धर्मोपदेश के लिये विदेश-यात्राये भी करती थी। सम्राट अशोक की बहन सघमित्रा स्वय बौद्ध धर्म के प्रचार के लिय लका गई थी। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रथ थेरिगाथा की ३२ लेखिकाओ मे से मात्र १० विवाहिता थी और वे सब मोक्ष प्राप्त करने मे विश्वास रखती थी। शुभा, अनुपमा और सुमेधा नामक ऐसी बौद्ध भिक्षुणियो का भी उल्लेख मिलता है, जो सम्पन्न परिवारो की थी और आजीवन ब्रह्मचर्य रख कर मोक्ष प्राप्त करने का सकल्प ले चुकी थी। इस काल मे उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ शिक्षण का कार्य करती थी। उन्हे उपाध्याया के नाम से जाना जाता था। पाणिनी ने छात्राओ के लिये छात्रशालाओ का भी उल्लेख किया है। शील भट्टारिका, प्रभुदेवी, तथा विजयाका इत्यादि उच्च कोटि की कवियत्रियाँ थी। कालिदास के बाद विजायाका का नाम ही आता था।

बौद्ध धर्म ने स्त्रियो को धार्मिक व्याख्यान सुनने, सीखने और उच्चारण करने तथा साधु-वेष मे जीवन व्यतीत करने की अनुमति दे रखी थी। नालन्दा और तक्षशिला विश्वविद्यालयो मे सभी जाति, वर्ग, धर्म एव सम्प्रदाय के स्त्री-पुरुष समान रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। विहारो और स्तूपो मे भी स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। प्रसिद्ध चीनी यात्री स्याग (६७३ ई०–६८७ ई०) के विवरण से हमे ज्ञात होता है कि नालन्दा विश्वविद्यालय मे उस काल मे पाच विषयो की पढाई होती थी जिनमे से स्त्रियाँ क्रमश दो विषयो मे मुख्य रूप से शिक्षा प्राप्त करती थी—शिल्पस्थान विद्या (कला) और अध्यात्म विद्या (दर्शन)। बौद्ध धर्म

ने स्त्रियों के लिये जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में साहित्य-शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था की थी लेकिन यह साहित्य-शिक्षा कठोर नैतिक सिद्धांतों पर आधारित थी। यही कारण रहा कि शिक्षित महिलाओं ने समाज में किसी प्रकार की असामाजिकता नहीं फैलाई। बौद्ध धर्म के अनुसार स्त्रियों की शिक्षा धार्मिक सिद्धांतों की अपेक्षा नैतिक सिद्धांतों पर ही आधारित होनी चाहिये।

बौद्ध राजाओं में अशोक से लेकर हर्षवर्द्धन तक ने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन दिया था और इस सम्बन्ध में सभी प्रकार की वैधानिक अड़चनों को दूर करने का भी प्रयत्न किया था। बौद्ध भिक्षुणियां लेखन-कला के ज्ञान से अवश्य वंचित थीं लेकिन पढ़ने, उच्चारण करने और श्रवण करने की उन्हें छूट थी।

तीसरी शताब्दी के अन्तिम चरण में बौद्ध भिक्षुणियों का वर्णन तो मिलता है लेकिन उस काल में किसी भी स्त्री के लेखिका या उपदेशिका होने का पता नहीं लगता। चौथी शताब्दी में बौद्ध भिक्षुणियों का बनना या होना भी नहीं पाया जाता है। इस काल में जो भी शिक्षा स्त्रियों को प्राप्त हुई, उसमें केवल उनकी स्थिति और स्तर का ही सुधार नहीं हुआ, वरन् उसमें उनमें चरित्र-निर्माण और बौद्धिकता का भी विकास हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप उनमें उच्च स्तर की प्रतिभा विकसित हुई और उन्होंने दर्शन, धर्म एवं समाज-सुधार तथा जन-कल्याण की दिशा में जन-मानस का निर्देशन किया। ३०० ई० से लेकर ८०० ई० तक इतना होने के बावजूद भी बौद्ध धर्म ने स्त्री-शिक्षा के विकास में कोई विशेष सहायता नहीं की।

मध्यकाल

मुसलमान काल में स्त्रियों की शिक्षा का ह्रास बड़ी तेजी से हुआ। नई राजनीतिक क्रांति के कारण उच्च और सुसंस्कृत हिन्दू परिवार अस्त-व्यस्त हो गये, इसलिये अपनी बालिकाओं के लिये वे शिक्षा की कोई विशेष व्यवस्था नहीं कर सके। राजपूत, नैयर और जमींदारों के परिवार के लोग ही पढ़-लिख सकते थे। इसी प्रकार की स्थिति जैन भिक्षुणियों की भी हुई जो साधारणतया अपना धर्म और दर्शन ही पढ़ पाती थीं। स्त्री-शिक्षा के प्रति इस निराशा का कारण सामाजिक था। ऐसा भ्रम फैला हुआ था कि पढ़ने-लिखने से स्त्रियाँ विधवा बन जाती हैं। साधारणतः वेश्यायें और नृत्य करने वाली लड़कियाँ ही पढ़-लिख पाती थीं। मध्यम-वर्ग की स्त्रियाँ केवल साधारण रूप से अपने धर्म और अपने क्षेत्र के साहित्य की शिक्षा ही प्राप्त कर पाती थीं। बाल-विवाह लड़कियों की शिक्षा के मार्ग में बड़ी बाधा बन गया था। स्त्री-शिक्षा का इतनी तेजी से ह्रास हुआ कि १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में मद्रास या मालवा में शायद ही कहीं पढ़ी-लिखी स्त्रियां दिखलाई पड़े। इन राज्यों में सन् १८२६ ई० में कुल १,५७,६६४ पढ़नेवालों में मात्र १०२३ लड़कियां शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। इस काल में ललित कला की शिक्षा में भी ह्रास हुआ। हिन्दू परिवारों के लोग इतने सम्पन्न नहीं होते थे कि संगीत के शिक्षक भी रख सकें। इन कारणों से १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में संगीत,

नृत्य आदि भी मात्र नृत्य करने वाली लडकियों तक ही सीमित रह गया। ब्रिटिश शासन के आते-आते स्त्री-शिक्षा हिन्दू समाज से पूर्ण रूप से समाप्त हो गई। इन बाधाओ के बावजूद पर्याप्त स्त्रियो ने अपने दृढ सकल्प और निश्चय से थोडी-बहुत शिक्षा प्राप्त करने मे सफलता पाई। मीरा बाई के नाम का उल्लेख किया जा सकता है। अबुल फजल नामक मुगलकालीन इतिहासकार ने गोडवाना राज्य की चन्देला राजकुमारी रानी दुर्गावती की प्रतिभा की सराहना की है। ऐसा कहा जाता है कि उसका शासन बहुत अच्छी तरह प्रशासित होता था और अकबर महान् के शासन की तुलना मे भी ज्यादा सुखी था।

मुसलमानो मे शरियत के अनुसार स्त्री के लिये शिक्षा और जागरूकता वर्जित थी। कुछ मुस्लिम कन्याये १०-११ वर्ष की अवस्था तक मकतवो मे शिक्षा अवश्य प्राप्त कर लेती थी लेकिन उच्च शिक्षा से वे पूर्णतया अविज्ञ थी। मुसलमान सम्राट हरम मे रहने वाली स्त्रियो की शिक्षा के लिये शिक्षिकाओ की नियुक्ति करते थे। युवा लडकिया अपने अभिभावको से प्रारभिक शिक्षा प्राप्त किया करती थी। उनके लिए अलग शिक्षण-सस्थाए नही होती थी। वे लडको के साथ ही शिक्षा प्राप्त किया करती थी। मुस्लिम लडकिया कुरान पढा करती थी और हिन्दू लडकिया अपने धर्म का साहित्य पढती थी। प्रसिद्ध इतिहासकार इब्नबतूता ने हिनूरवहर का वर्णन करते हुए लिखा हे कि वहाँ लडको के लिये २३ स्कूल थे और लडकियो के लिये मात्र १३ स्कूल ही थे। उस शहर मे प्राय सभी स्त्रियाँ कुरान जानती थी।

इतिहासकारो के वर्णन से ज्ञात होता है कि मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन (१४६९ ई०—१५०० ई०) के अपने महल मे १५ हजार स्त्रिया थी, जिनमे स्कूल-अध्यापिकाएँ, सगीतज्ञा प्रार्थना करनेवाली तथा सभी प्रकार के व्यवसाय व वाणिज्य के क्षेत्र मे कार्य करनेवाली थी। कुछ मुसलमान शहजादियो के रोचक पत्र अभी भी मिलते हैं। सम्राट अकबर ने फतेहपुर सीकरी के अपने महल मे राज्य परिवार की स्त्रियो के लिये शिक्षा का अलग विभाग खोल रखा था।

१६ वी और १७ वी शताब्दी मे कुछ मुस्लिम स्त्रियो की साहित्यिक प्रतिभा का भी पता चलता है। हुमायू की भतीजी सलीमा, अकबर की दाई मोहम आगा, नूरजहाँ, जहानारा, मुमताजमहल, सुतिनिशा, जविन्दा आदि के नाम साहित्य और कला के क्षेत्र मे प्रसिद्ध थे।

सम्राट बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने "हुमायूनामा" नामक प्रसिद्ध ग्रथ की रचना की थी। सुल्ताना रजिया भी इस काल की एक प्रसिद्ध बुद्धिमान और समर्थ स्त्री थी। वह युद्ध-कला, राजनीति और प्रशासन मे दक्ष थी। नूरजहाँ भी एक समर्थ स्त्री थी, जो अपने पति की अनुपस्थिति मे प्रशासन का कार्य-भार सभालती थी। चादबीबी, जिसने अकबर की शक्तिशाली सेना के मुकाबले अहमद-नगर किले की रक्षा की थी, अपने राज्य का शासन किया करती थी। औरगजेब की पुत्री जेबुन्निसा अरबी और फारसी भाषा की प्रसिद्ध कवियत्री थी। दीवाने मक्खफी उसकी कविताओ की अमर कृति है।

निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम काल के प्रशासन में भारत मे स्त्री-शिक्षा के लिये न तो कोई व्यवस्थित कार्यक्रम था और न ही व्यवस्थित ढग के स्कूल थे, जिसके कारण समाज मे नारी उपेक्षित और अशिक्षित ही रही। इसी कारण कठोर पर्दा प्रथा, बाल-विवाह और अनैतिकता भी फैल गई। निम्न वर्ग के मुसलमानो मे तो शरियत (प्रसिद्ध मुस्लिम ग्रथ) की भक्ति के कारण और भी सकीर्णताएँ थी।

आधुनिक काल

सन् १८२० ई० के आसपास नारी-शिक्षा के क्षेत्र मे अग्रेज मिशनरियो ने मद्रास और बगाल राज्य मे कार्य शुरू किया। लन्दन के एक मिशन की सदस्या श्रीमती ट्रैवलर तथा मिशनरी समिति ने वेपरी मे लडकियो के लिए एक स्कूल अवश्य खोला था लेकिन वह अग्रेजो की अवैध सन्तानो के लिये था। उसमे कोई भी भारतीय लडकी शिक्षा नही प्राप्त करती थी। उन्ही दिनो चिन्सुरा मे रावर्ट मे, जो लन्दन के मिशनरी समाज के सदस्य थे, ने लडकियो का एक स्कूल खोल रखा था। सन् १८२० ई० के प्रारम्भ मे ही ईसाई मिशनरी समिति की ओर से कम्पनी के पादरी जेम्स हग ने पालमकोटा के दक्षिण मे लडकियो के दो स्कूल खोल रखे थे। इस कार्य मे ईसाई मिशन की सदस्याओ का महत्वपूर्ण योगदान था। श्रीमती वारेन ब्रक ने मद्रास मे लडकियो के लिये एक तमिल स्कूल भी खोला था। श्रीमती डावसन, जिनके पति एल० एम० एस० मे एजेन्ट का कार्य करते थे, ने २० भारतीय लडकियो को शिक्षण देने के लिये इकट्ठा किया था। श्रीमती स्टीफेन ट्रविन और श्रीमती जी० मुण्डी, जो उसी मिशन समिति की सदस्याएँ थी, खिदिरपुर और चिन्सुरा मे तथा विलियम कैरी (जूनियर) की पत्नी कटवा मे १४ लडकियो को लेकर इसी प्रकार की शिक्षा का कार्य करती थी। सन् १८३२ ई० मे ईसाई मिशनरी समिति की सदस्या श्रीमती सी० फरेर ने बम्बई राज्य के बादा नामक स्थान पर लडकियो के लिये एक स्कूल खोला था पर बाद मे बाध्य होकर उसे बन्द कर देना पडा। इसी वर्ष अपने पति के साथ जब वे नासिक गई तो उन्होने फिर वहाँ शिक्षण का कार्य आरम्भ किया। दीघा की एक ईसाई साम्मरिक मिशन की सदस्या श्रीमती जे० रो ने अपने पति की मृत्यु के बाद लडकियो के लिये स्कूलो की स्थापना तथा उनका निरीक्षण करने का कार्य आरम्भ किया। सन् १८३३ ई० तक इस प्रकार के अनेक प्रयत्न चलते रहे।

ईसाई मिशनरियो के सारे प्रयत्नो के बावजूद स्त्री-शिक्षा की गति बहुत धीमी ही रही। बगाल मे बहुत कम प्रगति हुई लेकिन मद्रास और बम्बई राज्यो मे बगाल की अपेक्षा अधिक प्रगति हुई। जो कुछ भी हो, जब कि भारतीय स्त्रियो के मन मे स्वय विकास के मार्ग पर बढने की कोई भावना नही थी, तब भी इन थोडे से प्रयत्नो से उनकी स्थिति मे थोडा सुधार हुआ ही। इसलिए मिशनरियो के प्रयत्नो को महत्वपूर्ण मानना ही होगा। उन लोगो ने ही सब से पहले और सब से अधिक समय तक भारतीय स्त्रियो की शिक्षा के विकास का प्रयत्न किया था।

आधुनिक भारत मे सर्वप्रथम स्त्रियो के अधिकारो के सब से कट्टर समर्थक थे राजा राममोहन राय। स्त्रियो की स्थिति को सुधारने तथा उनको जागरूक बनाने के हेतु उन्होंने स्त्री-शिक्षा पर ही सब से अधिक जोर दिया। वे स्त्री और पुरुष को समान समझते थे। राममोहन राय के सहयोगियो मे डेविड हेयर, द्वारकानाथ टैगोर, प्रसन्न कुमार टैगोर, चन्द्रशेखर देव तथा ताराचन्द्र चक्रवर्ती आदि थे।

इसी समय के आसपास सरकार की ओर से इन्सपेक्टर पद पर नियुक्त किये जाने के बाद अपनी प्रशासनिक कुशलता और सक्षमता के द्वारा पडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने लडकियो के लिये ३५ सम्पूर्ण विद्यालयो और २० आदर्श विद्यालयो की स्थापना की। वे नारियो की उच्च-शिक्षा मे बहुत रुचि लेते थे। यही नही, अपने उसी दृष्टिकोण के कारण वे कुछ समय तक बेथून विद्यालय के मत्री भी रहे। वे सब से पहले व्यक्ति थे, जिन्होने शास्त्रो के आधार पर विधवा-विवाह के विचार को सप्रमाण लोगो के सामने प्रस्तुत किया था और आदोलन भी सगठित किया था। उन्ही के प्रयत्न से सन् १८५६ ई० मे सारे विरोधो के बावजूद विधवा-विवाह का विधेयक पास हुआ था।

सन् १८१७ से लेकर १८५८ ई० तक विद्यासागर के प्रमुख सहयोगियो के रूप मे मदनमोहन तारकालकार थे। वे भी विद्यासागर की ही भाति जॉन ड्रिक वाटर बेथून द्वारा प्रभावित स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी योजना से सबधित रहे। इस योजना का जन्म १८४९ ई० मे हुआ था। सन् १८५० ई० मे उन्होंने स्त्री-शिक्षा के लिये प्रबल तर्कयुक्त निबध लिखा था।

उसी समय महाराष्ट्र मे नारी-जागरण का काम प्रबल दिखाई दिया जिसमे महर्षि कर्वे का नाम प्रथम और सर्वोपरि था। महादेव गोविन्द रानाडे एव उनकी धर्मपत्नी पडिता रमाबाई से भी उनको बडा सहयोग मिला।

उनका शिक्षा सबधी घोषणा-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक विशेष महत्व रखता है। इस घोषणा-पत्र में स्त्री-शिक्षा के प्रति कहा गया था —"हमने पहले ही कह दिया है कि जिन सस्थाओ को सहायता मिलेगी, उनमे लडकियो के स्कूल भी हैं। इस दिशा मे जो प्रयत्न किये जा रहे है, उनके प्रति हम अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट किये बिना नही रह सकते। गवर्नर जनरल की इस घोषणा से हम पूर्णतया सहमत हैं कि स्त्री-शिक्षा को सरकार का स्पष्ट तथा मैत्रीपूर्ण सहयोग मिलना चाहिए।" इसके बाद से स्त्री-शिक्षा की दिशा मे भारत में एक नये युग का आरम्भ हुआ।

तत्पश्चात् भारतीय शिक्षा आयोग (१८८४-१९०४ ई०) ने भी क्रमश स्त्री-शिक्षा, मुसलमानो की शिक्षा तथा धार्मिक शिक्षा आदि पर अपने विचार प्रकट किये। स्त्री-शिक्षा के लिए आयोग ने लडकियो के स्कूलो को उदारतापूर्वक सहायता देने, अध्यापिकाओ के लिये वेतन-अनुदान देने, उनके लिये नार्मल स्कूल खोलने, लडकियो के लिये प्राथमिक शिक्षा का सरल पाठ्य-क्रम बनाने तथा उनकी शिक्षा के निरीक्षण के लिये अलग निरीक्षकाये नियुक्त करने की सिफारिशें की। इस घोषणा-पत्र मे यह भी कहा गया कि लडको के स्कूलो की तरह लडकियो के स्कूलो के लिये भी समान

रूप से जिला-स्तर पर तथा प्रातीय स्तर पर जनता से अर्थ-संग्रह का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

२१ फरवरी १९१३ ई० को भारत सरकार ने अपना प्रसिद्ध प्रस्ताव पास किया जिसमे शिक्षा की अन्यान्य समस्याओ के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा पर भी प्रकाश डाला गया। बालिकाओ के लिये विशेष तथा व्यावहारिक उपयोगिता वाला पाठ्य-क्रम तैयार करने का सुझाव रखा गया। प्रस्ताव मे यह स्पष्ट कर दिया गया कि लडकियो की शिक्षा मे परीक्षा का महत्व अधिक न बढने पाये। अध्यापिकाओ और निरीक्षकाओ की सख्या बढाने पर भी जोर दिया गया।

फिर १४ सितम्बर १९१७ ई० को भारत सरकार ने लीड्स विश्वविद्यालय के कुलपति डा० माइकेल सेडलर के नेतृत्व मे एक आयोग नियुक्त किया था, जिसने १९१९ मे स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध मे अपने प्रतिवेदन मे कहा था—"उन हिन्दू और मुसलमान बालिकाओ के लिये पर्दा वाले विद्यालयो की स्थापना की जानी चाहिए, जिनकी आयु १५–१६ वर्ष से ऊपर की है और जो आगे शिक्षा प्राप्त करना चाहती है।" प्रतिवेदन मे स्त्री-शिक्षा के लिये कलकत्ता विश्वविद्यालय मे एक स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी विशेष बोर्ड की स्थापना भी की जानी चाहिये, जो स्त्रियो की आवश्यकतानुसार विशेष पाठ्यक्रम तैयार करे तथा जिसमे स्त्री-कालेजो के सचालन की दिशा मे परस्पर ऐसे सहयोग की व्यवस्था हो, जो अध्यापिका-प्रशिक्षण और चिकित्सा-विज्ञान के अध्ययन की उनके लिये व्यवस्था करे।

१९१९ ई० मे शासन-विधान मे उत्पन्न हुई राजनीतिक तथा वैधानिक परिस्थितियो का अध्ययन करने के लिये १९२७ ई० मे "साइमन कमीशन" की नियुक्ति हुई। इस कमीशन को भारतीय शिक्षा के विषय मे भी अपना प्रतिवेदन देने का निर्देशन हुआ था। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए कमीशन ने एक सहायक समिति नियुक्त की, जिसके सभापति सर हर्टाग थे जो सैडलर-कमीशन के भी सदस्य रह चुके थे और १९२१ ई० मे ढाका विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी। यह समिति "हर्टाग समिति" के नाम से विख्यात है।

हर्टाग समिति ने सितम्बर १९२९ ई० मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमे तत्कालीन भारतीय शिक्षा की सभी अवस्थाओ का विशद वर्णन है। समिति ने इस बात को स्वीकार किया कि १९१७ और १९२७ ई० के दशक के दौरान स्त्री-शिक्षा की बहुत उन्नति हुई थी। साथ ही इस समिति के प्रतिवेदन मे स्कूल जानेवाली लडकियो और लडको मे बढते हुए अन्तर, ग्रामीण क्षेत्रो मे लडकियो की प्रारभिक शिक्षा के लिये अपर्याप्त और सीमित क्षेत्र, माध्यमिक विद्यालयो मे लडकियो की अपर्याप्त शिक्षा-व्यवस्था तथा अध्यापिकाओ की कमी पर चिन्ता प्रकट की गई। इन सब को दूर करने के लिये लडकियो की शिक्षा के लिये विशेष पाठ्यक्रम का निर्धारण करने, पर्याप्त वेतन पर अध्यापिकाओ और निरीक्षकाओ की नियुक्ति करने, धीरे-धीरे लडकियो की शिक्षा को अनिवार्य बनाने तथा प्रत्येक प्रात मे स्त्री-शिक्षा के विकास के लिये एक-एक उपनिर्देशिका की नियुक्ति पर जोर दिया गया।

प्रातीय स्वायत्तता (१९३७–१९४०) के काल मे स्त्री-शिक्षा का विकास वहुत अपर्याप्त तथा धीमी गति से हुआ। लडकियो के स्कूलो की सख्या मे भी इस काल मे कमी हुई। सन् १९३७ ई० मे ३२,८७५ मान्यता-प्राप्त तथा ३,९९६ विना मान्यता के चलने वाले स्कूल थे, वे घट कर क्रमश २४,८५२ तथा ३,३४४ ही रह गये। यद्यपि इस युग मे लडकियो की शिक्षा की माँग मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही, लेकिन उनको उचित विद्यालय तथा अन्य सवधित सुविधाये नही प्राप्त हुई। इस काल मे उनकी शिक्षा का खर्च ३० १२ लाख से वढ कर ४२ ९८ लाख तक हो गया था। इसमे साधारण शिक्षा-प्राप्त लडकियो की सख्या १९३७ मे २५,५३९ तक तथा १९४६-४७ मे ५८९९३ तक थी। १९ वी शताब्दी के मध्य तक स्त्री-शिक्षा का सामान्य प्रचार हो चुका था।

१९४५-४७ मे कुल ४३ लाख लडकियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी, जब कि विशेप और कामगर शिक्षा प्राप्त लडकियो की सख्या मात्र ५९ हजार थी। १९३७ तक पूर्ण रूप से लडकियो को शिक्षा प्रदान करने वाले कालेजो की सख्या ४१ थी, जो १९४६-४७ मे ९१ तक पहुँच चुकी थी। वहुत-सी लडकिया लडको के स्कूलो मे भी शिक्षा प्राप्त कर रही थी। स्त्री-शिक्षा के ऊपर १९३७ तक ४ १० करोड रुपये व्यय किये गये थे, जो १९४६-४७ मे वढ कर ६ ६६ करोड रुपये हो गये।

सन् १९४८ ई० मे डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता मे एक आयोग की स्थापना की गई थी जिसने २५ अगस्त १९४९ को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस आयोग ने स्त्री-शिक्षा के सम्वन्ध मे यह मत प्रकट किया कि पुरुपो के कालेजो मे स्त्रियो को सभी सामान्य सुविधाये प्रदान करनी चाहिए। इनके लिए शिक्षा प्राप्त करने के अवसर भी वढने चाहिये। आयोग ने स्त्रियो के पाठ्यक्रम के विषय मे स्पष्ट कहा—स्त्रियो को अपने नारीत्व की आवश्यकताओ, रुचियो व क्षमताओ को ध्यान मे रखते हुए उपयुक्त पाठ्यक्रम चुनना चाहिए। इसके लिए उन्हें पर्याप्त पथ-प्रदर्शन व सलाह प्राप्त करने की सुविधाये प्रदान की जानी चाहिये। स्त्रियो की आवश्यकताओ पर भी उतना ही ध्यान दिया जाय, जितना पुरुषो की आवश्यकताओ पर। समान कार्य के लिए अध्यापिकाओ के वेतन-क्रम भी अध्यापको के वरावर हो। सह-शिक्षा के विषय मे आयोग का मत था कि माध्यमिक स्तर पर किशोरियो के लिये पृथक शिक्षा का प्रवध होना चाहिये और वेसिक तथा विश्व-विद्यालय स्तर पर सह-शिक्षा होनी चाहिये।

भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा के सभी पक्षो की जाँच करने के लिए सितम्वर १९५२ ई० मे मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० लक्ष्मणस्वामी मुदालियर की अध्यक्षता मे एक शिक्षा-आयोग की नियुक्ति की, जिसने सन् १९५३ मे अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इस आयोग ने स्त्री-शिक्षा को पर्याप्त महत्व नही दिया।

सन् १९५८ मे भारत सरकार ने श्रीमती दुर्गावाई देशमुख की अध्यक्षता मे स्त्री-शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय समिति की स्थापना की थी। इस समिति ने जनवरी

१९५९ मे अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए बताया कि ७ से ११ साल तक की लडकियो के लिए प्रारम्भिक शिक्षा को भारत की शिक्षा योजनाओ मे प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। इस सम्बन्ध मे समिति ने कहा कि हमे अगले कुछ वर्षो तक शिक्षा-विकास के लिए स्त्री-शिक्षा को शिक्षा की मुख्य समस्या के रूप मे स्वीकार करना होगा तथा सभी दृष्टियो से उसे महत्वपूर्ण मान कर उसके लिए समुचित आर्थिक व्यय की व्यवस्था करनी होगी। प्रतिवेदन मे यह भी कहा गया कि स्त्री-शिक्षा के विकास के लिये हमे विशेष प्रकार की कार्य-प्रणाली अपनानी चाहिए। केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय मे स्त्री-शिक्षा के लिए एक विशेष विभाग की स्थापना पर वल दिया गया तथा इसी प्रकार प्रत्येक राज्य के शिक्षा निर्देशालय मे स्त्री-शिक्षा के विकास के लिये एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति करने की आवश्यकता वताई गई। स्त्री-शिक्षा के विकास के लिए सभी प्रकार के आर्थिक अनुदानो की जिम्मेदारी भारत सरकार के ऊपर होनी चाहिए।

समिति ने यह भी कहा कि केन्द्रीय सरकार की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वह लडको और लडकियो की शिक्षा के बीच की दूरी को समाप्त करे और देश के सभी भागो मे लडकियो और स्त्रियो की शिक्षा के विकास की शीघ्र ही समुचित व्यवस्था करे। समिति ने केन्द्रीय सरकार को सुझाव दिया कि वह स्त्री-शिक्षा के विकास के लिये सभी राज्यो को समुचित योजनाएँ वनाने का निर्देशन देने की ओर कदम उठाये।

इस समिति की सिफारिशो को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार ने १९५९ ई० मे श्रीमती दुर्गावाई देशमुख की अध्यक्षता मे केन्द्रीय शिक्षा मत्रालय मे एक राष्ट्रीय स्त्री-शिक्षा परिषद की स्थापना की और स्त्री-शिक्षा के लिए एक विशेष विभाग भी खोला। परिषद ने अध्यापिकाओ के लिए भी वहुत-सी योजनाए तैयार की। स्त्री-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय सस्थान की स्थापना भी की गई, जिसे राष्ट्रीय स्त्री-शिक्षा परिषद ने मान्यता प्रदान की। तीसरी पचवर्षीय योजना मे स्त्रियो के विभिन्न प्रकार के उच्च प्रशिक्षण के लिए भी एक राष्ट्रीय सस्थान की स्थापना की गई।

सन् १९६४ मे गठित कोठारी आयोग ने शिक्षा के सम्बन्ध मे सुझाव प्रस्तुत करते हुए कहा—हमे स्त्री-शिक्षा को कुछ वर्षो तक के लिए शिक्षा के एक विशेष कार्यक्रम के रूप मे स्वीकार करना चाहिए। इसके सम्बन्ध मे जो भी कठिनाइयाँ हो, उनको साहस और निश्चय के साथ दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। पुरुषो और स्त्रियो की शिक्षा मे जो असमानतायें है, उनको जल्दी-से-जल्दी दूर करना चाहिए। इस कार्यक्रम के लिए विशेष योजनाओ का निर्माण करना चाहिए और उसके लिए आवश्यक धन-राशि मिलनी चाहिए। स्त्रियो की शिक्षा के लिए केन्द्र तथा राज्यो के अन्तर्गत विशेष प्रशासनिक केन्द्रो का गठन होना चाहिए। सरकारी और गैर-सरकारी लोगो को मिल कर स्त्री-शिक्षा के लिए योजनाओ का निर्माण तथा कार्यक्रमो का क्रियान्वयन करना चाहिए। सभी स्तर और आयु की लडकियो के लिए शिक्षा की व्यवस्था पर सभी लोगो को पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है।

स्त्रियो के लिए प्रशिक्षण और कामगर-शिक्षा की समस्या पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। उनके लिए अशकालीन रोजगार के अवसरो के विस्तार की भी आवश्यकता है। स्त्रियो को अध्यापन, नर्सिंग और समाज-सेवा के उन क्षेत्रो मे मान्यता प्रदान की जानी चाहिए, जहाँ वे लाभप्रद कार्य कर सकें।

सन् १९४७ मे जब देश स्वाधीन हुआ, तब से स्त्री-शिक्षा का विकास प्रमुख रूप से हुआ माना जाता है। तब से लडको और लडकियो के बीच शिक्षा का अन्तर धीरे-धीरे कम होता रहा है। जहाँ सन् १९०१ ई० मे १०० लडको के मुकाबले मे शिक्षा प्राप्त करनेवाली लडकियो की सख्या केवल १२ थी, वहाँ सन् १९५० मे वह सख्या ४६ और १९६५ मे ५५ हो गयी। माध्यमिक स्तर पर १९०१ मे इनकी जो सख्या प्रति १०० लडको पर ४ थी, वह १९५० मे १५ और १९६५ मे २६ हो गयी। उच्चतर शिक्षा के क्षेत्र मे १९०१ मे लडकियो की कुल सख्या देश भर मे २६४ थी, वह १९५० मे ४०,००० और १९६५ मे २,४०,००० हो गई।

म्यूरियल वासी ने अपने 'शिक्षण पद्धति और भारतीय शिक्षित स्त्रिया उपलब्धिया" शीर्षक लेख मे लिखा है कि १९६६ ई० मे लगभग दो लाख युवा स्त्रिया कालेजो और विश्वविद्यालयो मे उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही थी। एक लाख अट्ठालीस हजार लडकिया कला, विज्ञान और कामर्स की स्नातक-पूर्व शिक्षा प्राप्त कर रही थी, १७,००० कला, विज्ञान तथा अनुसधान की स्नातकोत्तर शिक्षा का अध्ययन कर रही थी और ३५,००० लडकियाँ कामगर तथा तकनीकी शिक्षा पा रही थी।

सन् १९५०-१९६६ काल मे लडकियो की कामगर तथा तकनीकी शिक्षा सहित उच्चतर शिक्षा मे थोडा-बहुत विकास तो हुआ लेकिन अनुपात की दृष्टि मे इसकी गति बहुत धीमी रही। १८ वर्ष से २३ वर्ष तक की आयु की लडकियो की शिक्षा मे कमी हुई। जो हो, इसी युग की शिक्षित स्त्रियाँ आज विभिन्न क्षेत्रो मे नेतृत्व कर रही हैं। इनमे २३ वर्ष से ऊपर और ५९ वर्ष के नीचे की वे उच्च शिक्षा प्राप्त महिलायें भी है, जिन्होने १९७० के दशक तक नारी-शक्ति और प्रतिभा का भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे गौरवमय प्रतिमान स्थापित किया। स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे इस प्रकार जो विकास अब तक हुआ है, उसे सतोषप्रद नही कहा जा सकता है। अभी भी इस क्षेत्र मे बहुत विकास करना बाकी है।

भारतीय नारी की स्थिति मे जो परिवर्तन आये, वे विशेष रूप से रूढिवाद तथा उदारवाद के सघर्ष के कारण आये, न कि पाश्चात्य देशो की तरह स्त्री-पुरुषो के मध्य वर्ग-सघर्ष के कारण। उदारवाद और रूढिवाद के सघर्ष ने समय-समय पर भारतीय नारी के लिए विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणो को प्रस्तुत किया। प्रारम्भ मे उदारवादियो ने नारी को पवित्रता की देवी की सज्ञा दी, फिर उन्हे पति और परिवार की पूर्ण आज्ञाकारिणी तथा अनुगामिनी बताया और सीता, सावित्री की कोटि मे रख कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की, जब कि रूढिवादियो ने उनको सदा शोषित और पर-निर्भर ही माना। इस प्रकार की विचारधाराओ ने भारतीय नारीत्व की केवल सीमित पहचान ही की और करवाई, उनका पूर्ण चित्रण कभी नही किया।

वर्तमान दशक मे आधुनिक शिक्षित भारतीय नारी की जो स्थिति हमारे सन्मुख उभरती है, वह उत्साहपूर्ण है क्योंकि वह मात्र डिग्रियो का ही सम्मान नही पा रही है, वरन् हर क्षेत्र मे योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत कर रही है। गृहणी के रूप मे जहाँ वह सफलता से अपने कर्त्तव्य का पालन कर रही है, वही सामाजिक, सास्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रो मे भी अपनी प्रतिभा और गौरव का निर्माण कर रही है।

——.०——

महिला राष्ट्रीय सघ की प्रतिष्ठात्री

श्रीमती लतिका घोष

बंगाल में स्त्री-शिक्षा का विकास

भारतीय नारी का अतीत चाहे कितना ही गौरवशाली क्यो न रहा हो विशेष कर पौराणिक तथा वैदिक युग मे, कालान्तर से उसकी महिमा क्रमश घटती गई और समाज मे उसका स्थान नगण्य माना जाने लगा। पिता, पति या पुत्र की अधीनता मे उसका जीवन वन्द हो गया, उसका अलग अस्तित्व मानो रहा ही नही। बाल्यावस्था मे ही उसका विवाह सम्पन्न करना गऊ-दान के सदृश माना जाता था। वाल-विवाह की यह प्रथा स्त्री-शिक्षा के प्रचार मे वाधक सिद्ध हुई। विवाह होते ही वह घर की चहारदीवारी मे वन्द मान ली जाती थी। उससे इतनी ही अपेक्षा की जाती थी कि वह अपने पुरुष अभिभावक—पिता, पति या पुत्र—की इच्छाओ का पालन करे और भूल जाय कि उसका स्वतत्र अस्तित्व भी है। इसी मे उसका कल्याण और सुख निहित वताया गया। नारी की शिक्षा के प्रति उदासीनता का एक कारण उस समय प्रचलित यह धारणा भी थी कि वैधव्य का कारण भी उसकी शिक्षा है। स्त्री-शिक्षा के प्रचार मे इस भ्रमात्मक धारणा ने भी अनेक कठिनाइया उपस्थित की।

इस दयनीय स्थिति को सर्वप्रथम चुनौती दी राजा राममोहन राय ने। ई० १८२२ मे प्रकाशित उनके द्वारा लिखित "माडर्न एनक्रोचमेन्ट्स आन द ऐनसियेन्ट राइट्स आफ फीमेल" शीर्षक लेख नारी-स्वतत्रता के विषय मे प्रथम अधिकार-पत्र है। उसकी भूमिका मे यह कथन है—"यदि हम भारत की पुरातन सभ्यता का सिंहावलोकन करे तो पायेंगे कि उस युग मे नारी अधिक सुखी और सम्पन्न थी। परवर्ती निरकुश स्वेच्छाचारी अधिकारी वर्ग ने ही सामाजिक एव राजनीतिक स्तर पर उसे नगण्य मान कर उसके अधिकारो से वचित किया। प्राचीन काल मे ऐसा नही था। नारी-जाति को अधिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त थी। आज यद्यपि नारी को कुछ सुविधाये प्राप्त हो रही है लेकिन फिर भी वह उन सव सुविधाओ से वचित है, जो जीवन को सुखमय वनाती हैं।"

राजा राममोहन राय के इस वक्तव्य से समाज मे एक नयी चेतना उत्पन्न हुई थी और समाज-सुधार की नई लहर आई थी। ६ अक्टूवर सन् १८३९ ई० मे महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर द्वारा तत्ववोधिनी सभा की स्थापना की गई। उसकी 'तत्ववोधिनी'

पत्रिका मे महान् विचारको और लेखको की शक्तिशाली लेखनी ने पूरे बंगाल मे समाज-सुधार आन्दोलन को बढाने मे अपूर्व सहयोग दिया। अंग्रेजी शिक्षा से प्रभावित युवक वर्ग को इस आन्दोलन ने अधिक प्रभावित किया। नवजागृति के अग्रदूत डिरोजियो के अनेक छात्र इस संस्था के सदस्य बने, जिनमे दक्षिणारंजन मुखर्जी और रामगोपाल घोष (जिनका सम्बन्ध बाद मे बेथून कालेज से रहा), ताराचन्द चक्रवर्ती, राधानाथ सिकदार, चन्द्रशेखर देव, हरचन्द्र घोष, रामतनु लाहिरी और विशाल-हृदय पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिये जिन अनुभवी कार्यकर्ताओ का सहयोग मिला, उनमे प्यारेचन्द्र और अक्षयकुमार दत्त प्रमुख है। नारी-स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक अक्षय कुमार ने नयी पीढी को इस क्षेत्र मे कार्य करने का प्रोत्साहन दिया। सन् १८५२ मे प्रकाशित उनकी पुस्तक "मानवेर सहित बाह्य वस्तुर सम्बन्ध विचार" मे पुरातन संकीर्ण विचार-धारा को छिन्न-भिन्न करते हुए उन्होने अन्तर्जातीय विवाह, विधवा-विवाह तथा स्त्री-शिक्षा का प्रबल समर्थन किया और बहु-पत्नीत्व, बाल-विवाह एव दहेज प्रथा का विरोध किया।

महान् साहित्यिक, प्रभावशाली वक्ता एव सक्षम व्यवस्थापक केशवचन्द्र सेन का सहयोग इस क्षेत्र मे अपूर्व रहा। श्यामाचरण सरकार के सभापतित्व मे ब्राह्म समाज हाल मे आयोजित एक सभा मे भाषण देते हुए केशवचन्द्र ने स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। सन् १८६२ मे केशवचन्द्र के नेतृत्व मे ब्राह्म बन्धु सभा की स्थापना हुई। अन्य सुधारो के साथ-साथ इस संस्था ने "अन्त -पुर स्त्री-शिक्षा" का कार्य प्रारम्भ किया, अर्थात् घरो मे जा कर स्त्रियो की शिक्षा का प्रचार शुरू किया। उस समय तक किये गये प्रयत्नो के फलस्वरूप स्कूलो मे केवल ११ वर्ष तक की उम्र की बालिकाएँ ही प्रवेश पाती थीं। बडी लडकियो की शिक्षा का यह प्रथम प्रयास था। व्यवस्थापक हीरालाल राय ने अन्त पुर स्त्री-शिक्षा के उद्देश्य को इन शब्दो मे स्पष्ट किया है—"भगवान् की कृपा से स्त्री-शिक्षा के लिए कुछ स्कूलो की स्थापना हो चुकी है पर चूंकि बालिकाएँ दो-तीन वर्षों से अधिक स्कूलो मे शिक्षा नही पा रही हैं, इसलिए उचित परिणाम का अभाव है। ब्राह्म बन्धु सभा की योजना के अनुसार बालिकाएँ निश्चय ही सुशिक्षित हो सकेंगी। इस योजना के अनुसार बिना स्कूल गये शिक्षिकाओ अथवा परिवार के अन्य सदस्यों के द्वारा बालिकाए घर पर ही उपयुक्त शिक्षा प्राप्त कर सकती है। वर्ष मे चार बार संस्था की रिपोर्ट भेजी जायेगी, और वर्ष मे दो बार परीक्षा ली जायेगी तथा योग्य बालिकाओ को पुरस्कार भी दिये जायेगे।"

इस योजना के अनुसार छात्राओ को पाँच कक्षाओ मे विभाजित किया गया। अलग-अलग कक्षाओ में अलग-अलग पुस्तकें पढाने की व्यवस्था हुई। अप्रैल १८६३ मे १२ छात्राओ को इस संस्था से पुरस्कार प्राप्त हुए।

सन् १८६३ के अन्त मे ब्राह्म बन्धु सभा ने अन्त पुर स्त्री-शिक्षा का कार्य-भार वामा बोधिनी सभा को सौंप दिया। तब से वामा बोधिनी सभा ने पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया। अन्तःपुर स्त्री-शिक्षा के कार्य

का विभाजन पाँच वर्षों के लिये इस प्रकार हुआ। सन् १८६२ और १८६३ दो वर्षों का कार्य-भार ब्राह्म वन्धु सभा ने सम्भाला तथा वाद के तीन वर्षो (सन् १८६५-६६-६७) का कार्यभार वामा वोधिनी सभा ने। घरो मे जा कर शिक्षा प्रचार का कार्य करने की दिशा मे कुछ एक दूसरी सस्थाओ ने भी अच्छा प्रयास किया।

उत्तरपाडा के जमीदारो के प्रयत्नो के फलस्वरूप सन् १८६४ मे उत्तरपाडा हितकारी सभा की स्थापना हुई। कुमारी मेरी कारपेन्टर लिखती है—"उस सभा का मूल लक्ष्य स्त्री-शिक्षा का प्रचार ही था। हितकारी सभा वालो ने इस कार्य को वडे ही मनोयोग से किया है।" आगे वे फिर लिखती हैं—"धीरे-धीरे हितकारी सभा ने अपना कार्य-क्षेत्र वर्दवान तक वढा लिया।" वगाल मे स्त्री-शिक्षा के प्रचार मे इस सस्था की वास्तविक देन है। सन् १९०२-१९०३ की पब्लिक इन्सट्रक्शन की रिपोर्ट मे कहा गया है—"हितकारी सभा वडी लगन से स्त्री-शिक्षा प्रचार का कार्य कर रही है। भारत सरकार तथा जन-समुदाय इसके इस महत् कार्य के लिए आभारी हैं।" इस सस्था का कार्य यथावत् चल रहा था कि सन् १९२२ मे सरकारी सहायता के अभाव मे इसका कार्य-क्षेत्र हवडा और हुगली जिलो तक ही सीमित रह गया। सभा का यह कार्य स्कूल की वालिकाओ तक ही सीमित नहीं था, वरन् वयस्क स्त्रियो मे भी इस सस्था ने कार्य किया। वाद मे वगाल के अनेक दूसरे जिलो मे भी ऐसी ही अनेक सस्थाए पनपी, जिनका कार्य-क्षेत्र विशेषत गाँवो मे था। इन सस्थाओ ने १२ वर्ष से वडी वालिकाओ की शिक्षा की ओर ध्यान केन्द्रित किया। पूर्वी वगाल मे भी इस प्रकार की अनेक सस्थाएँ वनी, जिनका उल्लेख वामा वोधिनी पत्रिका मे है।

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी इस सभा के कार्य की प्रशसा करते हुए सन् १९२८ मे कहा—"पिछले १७ वर्षों से यह सभा किसी तरह के जातिगत भेदभाव के विना पिछडी जातियो मे शिक्षा का प्रचार कर रही है। इसकी देखभाल मे ४०० स्कूल चलते है, जो २० विभिन्न जिलो मे स्थापित हैं और जिनमे १६ हजार से अधिक वच्चे-वच्चियाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे है। अव तक २५ हजार से अधिक वच्चे समुचित ज्ञान उपार्जित कर उत्तीर्ण हो चुके है। सभा अत्यन्त निपुणता के साथ सारा कार्य सम्भाल रही है। इसकी आय का एक पैसा भी व्यर्थ नही जाता। यह सस्था इस योग्य है कि जनता हर सम्भव रूप से मासिक अथवा वार्षिक चन्दा दे कर इसकी सहायता करे।"

१ मई सन् १८८२ मे १०, अपर सरकूलर रोड पर केशवचन्द्र के सभापतित्व मे विक्टोरिया कालेज की स्थापना हुई। यह कालेज केशवचन्द्र सेन के द्वारा प्रतिपादित स्त्रियो और पुरुषो के लिये समान शिक्षा-पद्धति का परिणाम था। वैसे सन् १८६८ मे ही वेथून स्कूल और वग महिला विद्यालय के सम्मिश्रण से लडकियो के लिए हाई स्कूल वन चुका था। वहाँ अगले वर्ष आर्ट्स (प्रथम वर्ष) की कक्षा भी खुल गई थी। केशवचन्द्र सेन ने विक्टोरिया कालेज की विवरण पत्रिका मे ३१ मार्च १८८२ को लिखा था—"भारतीय स्त्रियो के लिये वर्तमान मे जो शिक्षा दी जा रही है, वह अपूर्ण है। इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता

कि स्त्रियो को अपने कर्त्तव्यो की पूर्ति एव अपने क्षेत्र के अनुकूल कार्य के लिए विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। पुरुषो के समानानन्तर ही स्त्रियो को शिक्षा दे कर उनके हृदय मे यश और उपाधियाँ पाने की उत्कण्ठा का परिणाम हानिकारक और गलत भी हो सकता है। अत. स्त्रियो को पुरुषो के समान शिक्षा देना उनकी प्रकृति के प्रतिकूल होगा अथवा इस प्रकार की शिक्षा फैशन आदि सभ्यता का ऊपरी रग चढा कर उनके दुर्भाग्य का कारण बनेगी। इसलिए यह कालेज इस प्रकार की शिक्षा की अपेक्षा उन्हे अच्छी हिन्दू पत्नी और हिन्दू माता बनने की शिक्षा देगा। . इस कालेज मे विज्ञान, स्वास्थ्य, सफाई, भाषा, व्याकरण, इतिहास, भूगोल, गृह-विज्ञान तथा हिन्दू नारी के आदर्शों की शिक्षा दी जायेगी। धर्म-शास्त्र, चित्रकला और सिलाई भी सिखाई जायेगी।"

इधर स्वामी विवेकानन्द एक ऐसी सस्था की स्थापना करना चाहते थे, जहाँ पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता की अच्छाइयो को लेकर पढने को इच्छुक स्त्रियाँ आ सके। भगिनी निवेदिता को इस योजना के सम्बन्ध मे बताया गया और वे १८९८ मे भारतवर्ष आई। १६, बोसपाडा लेन मे एक छोटा-सा मकान लेकर विवेकानन्दजी के परामर्श से वे एक साधारण हिन्दू स्त्री की तरह रहने लगी तथा उन्होंने प्रयोगात्मक दृष्टि से बालिकाओं के लिए शिशु विद्यालय की स्थापना की सन् १९०२ में मिस्टर क्रिस्टीना भी आ गई और स्त्रियो के लिए स्कूल-स्थापना की योजना का विस्तार किया गया।

सन् १९१० मे श्रीमती सरलादेवी चौधरानी द्वारा भारत स्त्री महामडल की स्थापना की गई। सरलादेवी राजनीति के क्षेत्र में पहले से ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। उनके नेतृत्व मे भारत स्त्री महामडल अखिल भारतीय सस्था मानी गई, जिसकी शाखाएँ भारत के सभी प्रातो मे खुली। महामडल का मुख्य उद्देश्य स्त्री-शिक्षा का प्रचार-प्रसार था जिसमे बाल-विवाह एव पर्दे की प्रथाएँ बहुत बडी बाधाये उत्पन्न करती थी। प्रत्येक प्रात मे ऐसी सस्थाएँ बनाई गई, जो धन एकत्रित करे, अध्यापिकाओ को नियुक्त करे और उन लोगो के घरो मे जा कर शिक्षा दे, जो अपनी पत्नियो एव पुत्रियो को शिक्षित करना चाहते थे। पाठ्यक्रम की पुस्तके भारतीय स्त्रियो के उपयुक्त लिखी जाये अथवा उद्देश्य के अनुरूप पुस्तको का चुनाव हो। स्त्रियो द्वारा बनाई गई वस्तुओ के बेचने की भी समुचित व्यवस्था हो और स्त्रियो को, जितना हो सके, चिकित्सा सम्बन्धी सहयोग देने का भी प्रयत्न करे।

सौभाग्य से बगाल की शाखा का कार्य-भार कृष्णयामिनी दास ने सम्भाला, जो १४ वर्षो तक कैम्ब्रिज मे रही थी। उनके पति वहाँ प्राध्यापक थे। उन्होने अपना सारा जीवन महामडल को अर्पित कर दिया था। स्त्री-शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति के लिए पर्दे मे रहने वाली बगाली स्त्रियो के मनो को जीतने की दृष्टि से वे नगे पाव कलकत्ता की गलियो मे द्वार-द्वार घूमती थी। शीघ्र ही शहर के उत्तर, दक्षिण और मध्य अचलो मे तीन केन्द्र बन गये। महामडल द्वारा नियुक्त अध्या-

छिपाए पैदल अथवा किराये पर ली हुई गाड़ियों में आ कर किसी एक स्थान पर या किसी एक के घर पर एकत्रित होती थीं, जहां [illegible] बंगला, [illegible], अंग्रेजी, भूगोल, गणित, सिलाई, हस्त-शिल्प, [illegible] और [illegible] की शिक्षा दी जाती थी।

तदनन्तर सन् १६१६ में एक नारी शिक्षा समिति की स्थापना की गई जिसके उद्देश्य थे—(१) बंगाल के गांवों में प्राथमिक स्कूलों की स्थापना (२) प्रसूति-गृह और शिशु-कल्याण केन्द्रों की स्थापना तथा [illegible] में [illegible] की स्थापना, जहां उन्हें सन्तानोत्पत्ति, सन्तान पालन-पोषण, [illegible]-शिक्षा, धार्मिक [illegible] तथा गृह-परिचर्या का प्रशिक्षण दिया जा सके, (३) ऐसे उद्योग केन्द्रों की स्थापना, जहां कला और हस्त-शिल्प की शिक्षा दी जाये, ताकि गृह-उद्योग विकसित हों, (४) गांवों की स्कूलों में पढ़ाने के लिए अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना, (५) उपयुक्त पाठ्यक्रमों की पुस्तकें तैयार करना। इस समिति की स्थापना के दो वर्षों के भीतर ही कलकत्ता में अनेक प्राथमिक स्कूलों की स्थापना हो गई जिनमें से दो आज कालेज बन गए हैं—[illegible] और बेलतल्ला गर्ल्स कालेज।

जो लोग अन्य प्रांतों से आकर बंगाल में रहते थे, उन पर भी इन घटनाओं का प्रभाव पड़ा, जो स्वाभाविक ही था। लड़कियों की शिक्षा सम्बन्धी समस्याएं उन लोगों के सामने भी आईं। वे लोग अपेक्षाकृत अधिक परम्परावादी और पुरातनपंथी थे। पर्दा तथा अन्य पुरानी प्रथाओं और परम्पराओं की जकड़ उनके समाज में विशेष थी। स्त्री-शिक्षा के प्रति नितान्त उदासीनता ही नहीं, विरोध भी था। लेकिन उनमें एक वर्ग ऐसा भी था, जिसने इस क्षेत्र में कुछ ठोस कार्य करने की आवश्यकता अनुभव की। परिणामस्वरूप बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में सावित्री कन्या पाठशाला की स्थापना हुई, जहां शिक्षा का माध्यम हिन्दी रखा गया। गैर-बंगाली समाज के लिए यह पहली संस्था थी, जहां केवल लड़कियों को ही शिक्षा दी जाने लगी। परन्तु इस पाठशाला में अंग्रेजी नहीं पढ़ाई जाती थी। सन् १६२१ में मारवाड़ी बालिका विद्यालय की स्थापना की गई जो सावित्री पाठशाला की अपेक्षा प्रगतिशील संस्था मानी गई। अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए उसके मंत्री श्री सीताराम सेकसरिया तथा कुछ अन्य समाज-सेवकों ने वहां अंग्रेजी की पढ़ाई भी आरम्भ की।

प्राचीन विचारों का पोषक मारवाड़ी समाज अपनी पुत्रियों को स्कूलों में भेजने को ही राजी नहीं होता था। स्कूलों के लिए छात्र जुटाना भी कठिन कार्य था। श्री सेकसरिया आदि समाज-सेवकों द्वारा परिवारों में जा कर आश्वासन दिये जाने पर ही माता-पिता अपनी बालिकाओं को स्कूल भेजने पर राजी होते थे। इन स्कूलों में ऐसी दाइयों या नौकरानियों की व्यवस्था होती थी, जो बालिकाओं को नियत समय पर घर से ले आती थीं और वापस पहुँचाती थीं। इन समाज-सेवियों के अथक प्रयत्न एवं लगन से ही ये संस्थायें चल पाईं। उसी समय आर्य कन्या विद्यालय की भी स्थापना हुई। सन् १६५० के बाद तो हिन्दी माध्यम की अनेक स्कूलें स्थापित हुईं। ११, लार्डसिन्हा रोड पर स्थापित श्री शिक्षायतन स्कूल

तथा कालेज मारवाडी बालिका विद्यालय का ही विकसित रूप है। इसके पीछे श्री सीताराम सेकसरिया की अनन्य साधना और दीर्घ तपस्या है। अब तो सावित्री पाठशाला तथा सेठ सूरजमल जालान बालिका विद्यालय मे भी कालेज विभाग खोले गये हैं। आज शिक्षा के क्षेत्र मे ये सस्थाये गैर-बगाली समाज की कन्याओ के लिए ही नही बल्कि सभी समाजो और वर्गों की लडकियो के लिये सफलतापूर्वक कार्य रही हैं। श्री सेकसरियाजी तथा उनके साथियो ने जिस निष्ठा एव लगन से इस क्षेत्र मे कार्य किया है, उसके लिए समाज उनका चिर-ऋणी रहेगा।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बोस की पत्नी तथा परम उत्साही समाज-सेवक श्री दुर्गामोहन दास की पुत्री लेडी अबला बोस का उल्लेख आवश्यक है, जिनके अथक उत्साह, कार्य-क्षमता, निस्वार्थ सेवा-भाव ने नारी शिक्षा समिति के अन्तर्गत अनेक सस्थाओ की स्थापना करवाई। बगाल का नारी समाज उनका चिर-ऋणी रहेगा।

इधर ब्रताचारी आन्दोलन के प्रवर्तक श्री गुरुसदय दत्त की पत्नी श्रीमती सरोजनलिनी मे ग्रामीण स्त्रियो की दशा सुधारने की अदम्य इच्छा और लगन थी। इसी इच्छा की पूर्ति के लिए सरोजनलिनी की मृत्यु के बाद उनके पति श्री गुरुसदय दत्त ने सरोज नलिनी दत्त मेमोरियल एसोसियशन की स्थापना की।

इस सस्था के द्वारा जगह-जगह स्थापित समितियो ने बगाल मे स्त्री-समाज के जीवन को अधिक सुखी, आशापूर्ण एव उपयोगी बना दिया। सामाजिक जीवन का नया ही रूप देखने को मिलने लगा।

केवल शिक्षा-कार्य मे रत इस सस्था ने अनवरत रूप से शिक्षा-क्षेत्र मे ठोस कार्य किया।

सन् १९२७ मे अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना हुई जिसका श्रेय श्रीमती मारगरेट कजिन्स को था। इसका उद्देश्य जीवन के सभी क्षेत्रो मे, विशेषकर शिक्षा के क्षेत्र मे, नारी का समुचित विकास करना था। श्रीमती कजिन्स का सम्बन्ध प्राय सभी प्रान्तो से था। भारतीय सस्कृति को पूर्णत स्वीकार कर लेने के कारण वे भारतीय ही हो गई थी। श्रीमती कजिन्स ने भारत की विभिन्न महिला-सस्थाओ एव प्रमुख महिलाओ को एक पत्र भेजा जिसमे लिखा था—
"निसन्देह आज के युग मे ऐसी महिलाओ की आवश्यकता है, जो बालको की, विशषकर बालिकाओ की शिक्षा सम्बन्धी अपने विचारो को व्यक्त करे। महिलाओ द्वारा दिये गये सुझाव शिक्षा-विधायको के लिए उपयोगी सिद्ध होगे। स्त्रियो का सहयोग इस दिशा मे प्राप्त किया जा सकता है। मेरा आप लोगो से निवेदन है कि भारत के समस्त भागो मे स्त्रियाँ इस सहयोग-योजना को सफल बनाए।"

इसके बाद बगाल मे वेश्यावृत्ति के नियन्त्रण के लिये एक दूसरी सस्था का निर्माण हुआ जिसका नाम निखिल बग नारी सघ रखा गया। इस सघ ने वेश्या-वृत्ति के विरुद्ध काफी सक्रिय होकर सफलतापूर्वक कार्य किया। इसके द्वारा वेश्यालयो से निष्कासित महिलाओ के लिये एक सुरक्षागृह भी चलाया जाता था। द्वितीय

महायुद्ध इस संघ के कार्य में बाधक बना। सुरक्षा-गृह का आवास-स्थान सरकार द्वारा ले लिया गया, जिसके कारण वहाँ से लडकियो को दूसरी सस्थाओ मे भेजना पडा। यह सुरक्षा-गृह बाद मे बन्द ही हो गया। इस सघ के प्रयत्नो से अखिल भारत महिला सम्मेलन, बगाल प्रदेश महिला समिति, नारी सुरक्षा सघ तथा कुछ अन्य महिला सस्थाओ की सामूहिक बैठकें जुलाई, १९४४ तथा मई, १९४५ मे क्रमश डा० राधाविनोद पाल और श्रीमती सरोजिनी नायडू के सभापतित्व मे हुई। उन बैठको मे यह कहा गया कि बगाल वेश्यावृत्ति दमन विधेयक, जो अब तक उपेक्षित ही है, मे उचित सुधार कर उसे काम मे लाया जाना चाहिये। सघ ने पुलिस कमिश्नर से स्त्री-सुरक्षा दल के लिए भी आज्ञा ले ली लेकिन इस योजना को कार्यान्वित करना कठिन साबित हुआ। फिर भी इस सघ को वेश्यालयो के दमन मे सफलता मिली और १९४६ तक अनेक वेश्यालय बन्द हो गये। इसी बीच मई, १९४४ मे १५, डोवर रोड मे औद्योगिक सस्था फिर से शुरू की गई जहाँ छात्राओ को अन्य सस्थाओं मे कामगर शिक्षण पाने के निमित्त भेजने से पूर्व प्राथमिक शिक्षण दिया जाता था। सुरक्षा-गृह के अधिकारियों ने चार लडकियो की शादी की व्यवस्था भी की।

सन् १९४७-४९ की रिपोर्ट के अनुसार इस सस्था का कार्य १९४३ के अकाल के बाद काफी बढ गया, जब कि सस्था को निराश्रित स्त्रियो एव बच्चो को आश्रय देना पडा। साम्प्रदायिक झगडे तथा देश-विभाजन के कारण अनेक शरणार्थियो को भी स्थान देना पडा। १९४९ मे इस सुरक्षागृह मे १२० स्त्रिया और बच्चे थे, जिनके तीन विभाग थे—अनाथो का विभाग, शिक्षण-विभाग (जहाँ सिलाई, बुनाई, चरखा, गृह-परिचर्या, पाक-विद्या, गृहकार्य, उद्यान-कार्य, बच्चो की देखरेख तथा टीका लगाने का शिक्षण दिया जाता था तथा स्वतत्र विभाग जहाँ बाहर काम कर जीविकोपार्जन करने वाली स्त्रियाँ रहती थी। प्रत्येक मास १८ रु० प्रत्येक शिक्षणरत छात्रा के लिए, २५० रु० की आवर्तक सहायता औद्योगिक विभाग से तथा ७५ रु० प्रतिमास शिक्षा विभाग से मिलने के कारण ही यह सुरक्षा-गृह इस प्रकार का उपयोगी कार्य करने मे समर्थ हुआ।

विगत एक सौ वर्षो मे बगाल मे महिलाओं द्वारा महिलाओ के लिए किये गये कार्यो का यह इतिहास जितना गौरवमय है, उतना ही प्रेरणाप्रद। स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद देश मे एक नया युग शुरू हुआ है। सामाजिक एव शैक्षणिक क्षेत्रो मे वे शृखलाएँ टूट गई हैं, जिन्होंने नारी को बाध कर उसकी उपयोगिता के क्षेत्र को सीमित कर दिया था। नारी को सामाजिक रूढियो एव मध्ययुगीन अन्धविश्वासो से मुक्त करने मे पश्चिमी शिक्षा की देन अमूल्य है। पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव से नये आदर्शों एव नैतिकता के नये मानदण्डो का विकास हुआ है।

समाज-सेवा का जो कार्य अब तक हुआ है, वह व्यक्ति की सहायता के निमित्त मानव-कल्याण की भावना से किया गया था। लेकिन मानव-कल्याण की यह भावना जहाँ सहायता पाने वाले के मन मे अपमान-बोध का भाव जगा कर उसे पीडित

करती है, उसके मन मे अस्वस्थ कुंठाओ को जन्म देती है, वही सहायता करनेवाले के हृदय मे भी अह का भाव भर उसकी आध्यात्मिक उन्नति मे वाधक वन जाती है। आज आवश्यकता इस वात की है कि ऐसे समाज का निर्माण किया जाय जो उन दोषो का निराकरण करे, जिनमे हम ग्रसित है।

अतीत को जीवित करने की वात आज निरर्थक है। पुरानी सामाजिक मान्यताओ को पुनर्जीवित कर उन्हे फिर से स्थापित करना न सभव है, न आवश्यक है। आज के जीवन को आज के ही समस्त मूल्यो, मानदण्डो और दिन-प्रतिदिन प्रस्फुटित होती हुई नई सभावनाओ के साथ लेना होगा। निस्सदेह स्त्री ने सघर्ष की एक लम्बी अवधि पार कर सफलता प्राप्त की है, स्वतत्रता और समता के सारे अधिकार प्राप्त कर जीवन की सम्पूर्ण सार्थकता पाई है, पर यात्रा का अत यही नही है। यह यात्रा तो अनन्त है। नये मूल्यो के अनुसार नये विचार लेकर भारतीय नारी को पुरुष के साथ ही देश और जगत् की भावी प्रगति के लिये नये दिगन्तो की ओर यात्रा करनी है।

—'o'—

प्राध्यापिका

श्रीमती प्रतिभा आचार्य

राजा राममोहन राय का योगदान

राजा राममोहन राय पूर्णत धार्मिक व्यक्ति थे। उनके लिये सभी धर्मो का सार मानवता की सेवा था। भारत के निराशापूर्ण दिनो मे इसी मानवतावादी दृष्टि को लेकर राजा राममोहन राय का आविर्भाव हुआ। उनका एकमात्र उद्देश्य मानव को बधनो से मुक्त करना था, चाहे वे बधन राजनीतिक हो या सामाजिक या धार्मिक। उन्होने अनुभव किया था कि स्वतन्त्रता मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है और उसकी इस स्वतन्त्रता को नकारना उसके मानवीय अधिकारो को नकारना है। इसीलिए वे सभी बधनो को तोडने का सदेश लेकर आगे बढे। एक सत्यान्वेषक के रूप मे वे कभी किसी अविवेकपूर्ण सवेग से परिचालित नही हुए। उन्होने प्रचलित अधविश्वासो को दूर कर उन सब बुराइयो को दूर करना चाहा, जो भारत की उन्नति तथा सुख मे बाधक थी। आदि से अत तक स्वतन्त्रता ही उनका ध्येय था। मानव मात्र मे स्वतन्त्रता की चेतना जागृत हो, यह उनकी प्रबल इच्छा थी।

भारत की पतनावस्था के अधकार मे नवभारत के निर्माता राजा राममोहन राय एक प्रकाशवान नक्षत्र के रूप मे उदित हुए। उन्होंने हिन्दू धर्म पर युगो-युगो से जमी हुई विकारो की परतो को हटाया। उन्होने कुरूढियो के विरुद्ध सघर्ष किया, जिन्हें उस समय का मानव, विशेष रूप से नारी-वर्ग, सह रहा था। समाज मे आमूल परिवर्तन कर उसका पुनर्निर्माण उस युग की माँग थी। राजा राममोहन राय मानवता की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा तथा दूरदर्शिता से विकास के सभी तथ्यो का दृढ इच्छा-शक्ति के साथ उद्घाटन किया।

आज नारी-वर्ग ने समाज मे जो स्थान और सम्मान अधिकृत किया है, उसके मूल मे राजा राममोहन राय का वह अथक प्रयत्न है, जो उन्होंने स्त्री-जाति को सामाजिक अन्याय से मुक्त करने के लिए किया था। उन्होने सती प्रथा के उन्मूलन के लिए, बाल-विवाह तथा बहु-विवाह के उन्मूलन के लिए, विधवा-विवाह के प्रचलन के लिए तथा स्त्री-जाति के समस्त कष्टो को दूर करने के लिए सघर्ष किया। उनके हृदय मे स्त्री-जाति के लिए महान् आदर-भाव था। उस समय जब स्त्रियो को कोई भी सुविधा और सम्मान प्राप्त नही था, राजा राममोहन ने विधवा-

राजा राममोहन राय

केशवचन्द्र सेन

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

स्त्री-शिक्षा के तीन आधुनिक महान् मन्त्र-दाता
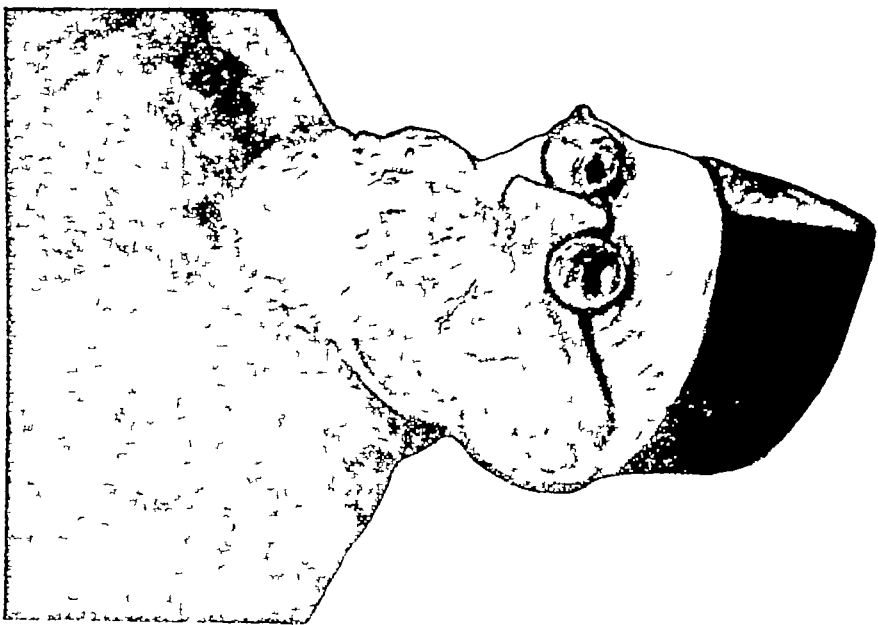
महर्षि कर्वे

लाला देवराज
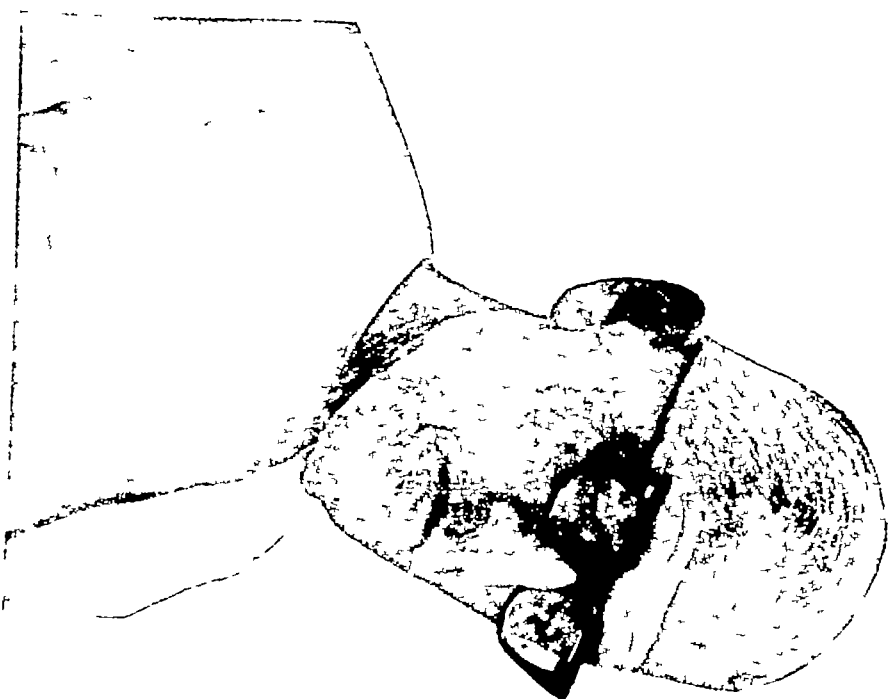
सीताराम सेकसरिया

विवाह का समर्थन किया तथा बहु-विवाह एव बाल-विवाह का सशक्त विरोध किया।

वे अबलाओ के हित के लिए बराबर लडते रहे। मुक्ति का जो सदेश वे दे गये, उसका सुखद फल आज के नारी-वर्ग को मिल रहा है। उस समय स्त्रियो पर भाँति-भाँति के आरोप लगाए जाते थे। राजा राममोहन का हृदय मानवता के इस प्रताडित वर्ग के लिए द्रवित हो उठा था। उनकी दृष्टि मे स्त्री-पुरुष के मानवीय अधिकारो मे कोई भेद नही था। अत इन आरोपो से उन्हे बहुत दुख हुआ तथा उन्होंने उनका सशक्त शब्दो मे प्रतिरोध किया।

राजा राममोहन राय ने इन आरोपो का उत्तर देते हुए कहा—"नारी-जाति पर जो दोषारोपण किए गए है, वे उन्हे प्रकृति से प्राप्त नही हैं। उन पर अनुचित दोषारोपण कर के आप लोगो ने उन्हे घृणित और कुकर्मी प्राणियो के रूप मे देखने को बाध्य किया है। वे निरतर दु ख झेलती रही है। इस विषय मे मैं कहना चाहता हूँ कि स्त्री सामान्य रूप से शारीरिक शक्ति की दृष्टि से दुर्बल होती है। पुरुष वर्ग ने उनकी शारीरिक दुर्बलता का लाभ उठा कर उन समस्त श्रेष्ठ उपलब्धियो से उन्हे वचित कर दिया है, जिनकी वे अधिकारिणी है। बाद मे यह भी कहना प्रारम्भ कर दिया गया कि वे कोई भी योग्यता प्राप्त करने मे असमर्थ है। यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करे तो सरलता से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि उन पर किये गये ये दोषारोपण न्यायपूर्ण नही है। जहाँ तक उनमे बुद्धि की हीनता का प्रश्न है, आपने उन्हे अपना स्वाभाविक सामर्थ्य दिखाने का अवसर ही कब दिया है? इस हालत मे आप उन पर बुद्धि-हीनता का आरोप कैसे लगा सकते है? यदि किसी को ज्ञान और विवेक प्रदान किया जाय और वह उसे समझने या स्मरण करने मे असमर्थ हो तो ही उसे बुद्धि-हीन समझा जा सकता है। किन्तु स्त्री-वर्ग को विद्या और अन्य उपलब्धियो का अवसर दिए बिना ही उन्हे इस दृष्टि से हीन घोषित करना उनके प्रति अन्याय है। विदित ही है कि लीलावती, कर्नाट के राजा की पत्नी भानुमती और कालीदास की पत्नी अपने शास्त्रीय ज्ञान के लिए प्रसिद्ध है। यजुर्वेद के बृहदारण्यक उपनिषद् मे यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि याज्ञवल्क्य ऋषि ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को कठिनतम दिव्य ज्ञान प्रदान किया, जिसे वह पूर्ण रूप से ग्रहण कर सकी।

"यदि भोजन बनाने या परोसने मे कोई छोटी-सी भी त्रुटि हो जाय तो उन्हे पति से, सास से और देवरो से कितना अनादर सहना पडता है? और फिर सब के अच्छी तरह खा लेने पर जितना भोजन बचे या न बचे, उसी मे स्त्रियो को सतोष करना पडता है। यदि पति के पास धन हो जाता है तो वह पत्नी की आँखो के सामने ही व्यभिचार करने लगता है, यहाँ तक कि अपनी पत्नी से महीने मे एक बार भी नही मिलता। जब तक पति गरीब रहता है, पत्नी को अनेक प्रकार के कष्ट सहने पडते है और जब वह अमीर हो जाता है, तब तो पत्नी का हृदय ही टूट जाता है। इन सब व्यथाओ और दु खो का सामना करने की शक्ति स्त्रियो को उनका नैतिक बल ही देता है।"

"मुझे इस बात का दुख है कि स्त्रियो की इतनी पराधीनता और यंत्रणाओ को देख कर भी उनके बधनो के प्रति सवेदना नही होती एव जीवित जल मरने की यत्रणा से मुक्ति दिलाने का भी कोई प्रयास नही हो रहा है।"

इससे यह स्पष्ट है कि राजा राममोहन राय सामाजिक दोषो को दूर करने के लिए निरतर सघर्परत रहे। वे चाहते थे कि हम आत्मा की स्वतत्रता के प्रति सचेत हो—न केवल बाहरी वरन् आन्तरिक स्वतत्रता, जो हमारे जीवन की केन्द्रीय शक्ति है। उन्होने जो ज्योति जलाई थी, वह आज भी जल रही है। आज हमने उनके उद्देश्य का महत्व समझा है। उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप नारी, आज पुरुषो की सहयोगी बन कार्य कर रही है, उसे समानाधिकार, न्याय एव सम्मान प्राप्त है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है—"राजा राममोहन राय भारत मे आधुनिक युग के प्रवर्तक थे। वे एक महान् पथान्वेपी थे, जिन्होंने उन सब बाधाओ को दूर कर दिया, जो प्रत्येक कदम पर स्त्रियो को प्रगति से रोके हुए थी। उन्होने नारियो को मानवता के विश्व-सहयोग के वर्तमान युग के प्रति दीक्षित किया।" नारियो को रूढियो से मुक्ति दिला कर उन्होने स्त्री-शिक्षा की उन्नति के लिये समुचित भूमिका का निर्माण किया।

वे वास्तव मे नारी-स्वतत्रता के अग्रणी नेता थे।

—— o ——

प्राध्यापिका

श्रीमती कल्याणी सेन

पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर का महान् अवदान

अठारहवी शताब्दी के शेषार्द्ध तक तत्कालीन भारत-सरकार के लिखित अथवा अलिखित किसी अधिनियम के अन्तर्गत स्त्री-शिक्षा का कोई स्थान नही था। स्त्री-शिक्षा का महत्व अनुभव करते हुए किसी उदार महत् व्यक्ति को महिलाओ के लिए किसी विद्यालय की आवश्यकता लगती तो वह विद्यालय की स्थापना कर सकता था, किन्तु उस विद्यालय की स्थापना अथवा उसकी परिचालना के हेतु अर्थ-व्यय उसे खुद को ही करना पडता था। ऐसे उदार एक विद्यालय-निरीक्षक थे—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर। उन्होंने विद्यालय-निरीक्षक के रूप मे चालीस प्राथमिक वालिका-विद्यालयो की प्रतिष्ठा करवाई। इन विद्यालयो मे छात्राओ की सख्या थी १,३४८ जिनके लिए वुडरो साहब के अनुसार विद्यासागर को ३,००० से ४,००० रुपये तक का व्यय भार वहन करना पडता था।

उन्ही दिनो देश-विदेश मे शिक्षा-विस्तार हेतु लन्दन मे 'ब्रिटिश एण्ड फारेन स्कूल सोसाइटी' नामक एक सस्था स्थापित हुई थी। उस सस्था की ओर से कुमारी मेरी कुक ने कलकत्ता आ कर एक ही वर्ष के अन्दर देश के विभिन्न भागो मे आठ वालिका-विद्यालयो की स्थापना की और कुछएक दिनो के अन्दर ही यह सख्या पन्द्रह तक जा पहुँची, जिनमे से ग्यारह के लिए अलग निजी भवनो की व्यवस्था भी कर दी गई। इस कार्य के लिए उन्हे "चर्च मिशनरी सोसाइटी" एव जन-समाज से पर्याप्त आर्थिक सहायता प्राप्त हुई।

वगाल मे स्त्री-शिक्षा के इतिहास मे श्रीरामपुर के वैपटिस्ट मिशन की भी एक विशिष्ट भूमिका रही है। विलियम वार्ड द्वारा नारी-शिक्षा विभाग का दायित्व-भार ग्रहण करने के पश्चात् श्रीरामपुर मे चतुर्दिक अनेक वालिका-विद्यालय स्थापित हुए। किन्तु इनमे दी जानेवाली शिक्षा खास उद्देश्य-परक थी। वैपटिस्ट मिशन, लेडीज़ एसोसिएशन, लेडीज़ सोसाइटी, फिमेल जुवेनाइल सोसाइटी, सभी का उद्देश्य था स्त्री-शिक्षा के माध्यम से इस देश मे ईसाई धर्म का प्रचार और प्रसार। जहाँ शिक्षा का मूल उद्देश्य धर्मान्धता की सकीर्णता के मध्य सीमित हो, वहा शिक्षा के प्रसार और व्यापकता की आशा नही की जा सकती थी। इसी कारण उस युग के हमारे मनीषि स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे सहयोगी नही, वरन् घोर विरोधी हो उठे। स्त्री-

शिक्षा के महत्व को समझते हुए भी वे शिक्षा-हेतु परिवार की लडकियो को विद्यालय न भेज कर घर पर शिक्षा दिलाने के पक्ष मे अधिक आग्रहशील थे। इसी कारण विद्यालय-स्थापना के क्षेत्र मे समाज की परम्पराशील उच्च श्रेणी का कोई सहयोग नही था।

ऐसी हालत मे विद्यासागर के असीम उत्साह और सुनिश्चित कार्य-क्षमता ने तत्कालीन सरकार को इस दिशा मे सोचने को विवश कर दिया। विद्यासागर ने स्त्री-शिक्षा को केवल विद्यालय की पृष्ठभूमि मे रख कर देखने की चेष्टा की। इस क्षेत्र मे बगाल की लडकियो का मुह देख कर एक विपुल व्यय-भार आजीवन उन्हें ही वहन करना पडा था।

सन् १८५७ की ३० मई को विद्यालय-निरीक्षक के रूप मे उन्होने डिरेक्टर आफ पब्लिक इसट्रक्शन के नाम वर्दवान जिले के जोरग्राम के एक नवप्रतिष्ठित बालिका विद्यालय को सरकारी सहायता देने के लिए एक आवेदन भेजा। उक्त विद्यालय की छात्राओ की कुल सख्या यद्यपि २८ ही थी, तथापि सरकारी सहायता के रूप मे प्रति मास ३२ रुपये की मजूरी प्राप्त हुई। विद्यासागर के आशावादी हृदय मे इस घटना का महत्व सीमातीत था। उनको सहज ही यह विश्वास हो गया कि स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे सरकार का समर्थन और उचित सहायता प्राप्त होगी। इस विश्वास के सहारे उन्होने एक के बाद एक बालिका-विद्यालय की प्रतिष्ठा करनी प्रारम्भ कर दी। सन् १८५७ की २४ मई से सन् १८५८ की १५ मई की अल्पावधि मे हुगली, वर्दवान, मेदिनीपुर और नदिया चार जिलो मे पैंतीस बालिका-विद्यालयो की स्थापना हो गई, जिनका कुल मासिक खर्च ८४५ रुपये पडता था।

विद्यासागर ने लिखा है—"मैने अपनी दृष्टि प्रधानत अपने प्रदेश मे महिला-विद्यालयो की स्थापना पर केन्द्रित की। उस सेशन मे तथा परवर्त्ती कुछ महीनो मे मै ४० विद्यालय खोलने मे सफल हो गया। विद्यालयो मे बालिकाओ की कुल उपस्थिति १,३४८ थी। अनेक समुदायो ने मुझे इस कार्य से रोका, क्योकि उनकी धारणा थी कि यहाँ के निवासी कभी भी अपनी लडकियो को सार्वजनिक विद्यालयो मे भेजने के लिए सहमत न होगे, किन्तु मैने मन-ही-मन अनुभव किया कि अपनी प्रबल चेष्टा द्वारा मै अवश्य सफलता प्राप्त करूँगा।" तत्कालीन माननीय छोटे लाठ ने इस स्थिति का अनुमोदन किया और दृढ शब्दो मे इसकी प्रशसा की, किन्तु दुर्भाग्यवश सरकार ने दूसरा ही रुख अपनाया और अपनी सहमति देने से इन्कार कर दिया। अत यह सारा परिश्रम व्यर्थ गया और विद्यालयो को तत्काल बन्द कर देना पडेगा।"

अन्त मे डी० पी० आई० की तत्परता से छोटे लाठ (तत्कालीन प्रातीय गवर्नर) ने विद्यासागर के आवेदन पर पुनर्विचार करने के लिये भारत सरकार को कहा और भारत सरकार ने २२ दिसम्बर सन् १८५८ को एक पत्र द्वारा सूचित किया कि विद्यासागर द्वारा प्रतिष्ठित बालिका-विद्यालयो के लिए जो रुपये व्यय हुए हैं, उसके दायित्व से उन्हें मुक्त किया जाता है, किन्तु पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

महर्षि कर्वे द्वारा स्थापित,
श्रीमती नाथीबाई दामोदर थैकरसी महिला-विश्वविद्यालय, बम्बई मे
समाज-विज्ञान विभाग की अध्यक्षा

डॉ० नीरा देसाई

शिक्षित महिलाओं का आन्दोलन : अपेक्षा और उपलब्धि

शिक्षा-आयोग (१९६४-६६) के प्रतिवेदन मे कहा गया है कि आगामी कुछ वर्षों के लिये शिक्षा के क्षेत्र मे स्त्री-शिक्षा को ही बडे कार्यक्रम के रूप मे लेना चाहिये तथा स्त्री और पुरुष की शिक्षा के बीच का वर्तमान अतर जल्दी से जल्दी मिटाने के लिये दृढ और साहसपूर्ण प्रयास किया जाना चाहिये तथा वैसा करने के मार्ग मे जो भी कठिनाइयाँ आयें, उनका दृढता के साथ सामना करना जरूरी है।

आधुनिक युग मे भारतीय नारी की भूमिका और अवदान के सबध मे जो बडा परिवर्तन हुआ है, उसके साथ अनगिनत अतर्विरोध भी पैदा हुए हैं। हमारी सास्कृतिक मान्यताएँ अक्सर नई सामाजिक परिस्थितियो से मेल नही खाती। आज की तेजी से बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियो मे स्त्रियो को एक साथ अनेक प्रकार की प्रवृत्तियाँ चलानी पडती हैं और इसके लिये भिन्न-भिन्न सास्कृतिक मान्यताओ और पद्धतियो को लेकर चलना पडता है। पुरानी मान्यताओ से चिपके रहने से ऐसा कर सकने मे बाधा और कठिनाई ही उत्पन्न होती है। इस अतर्विरोध की बात को मिरा कोमारोवास्की ने यह बतला कर बहुत स्पष्ट किया है कि ये मान्यताएँ व्यक्ति को उस प्रवृत्ति से रोकती हैं, जिसको अपना कर वह अपना और समाज का अधिक से अधिक हित-वर्धन कर सकता है। यदि उसका व्यवहार उन मान्यताओ के विपरीत होता है, तो व्यक्ति के मन मे इस कारण अपराध-भावना उत्पन्न हो जाती है कि वह उन मान्यताओ का पालन नही करता। कभी-कभी व्यक्ति अपनी सास्कृतिक परम्परा से मिली हुई भूमिका को उस हालत मे भी निभाये चलता है, जब कि परिस्थितियाँ बिलकुल बदल गई है और वह उन कमियो और बाधाओ को नही समझता, जो ऐसा करने से पैदा होती हैं। परम्परागत भूमिका के अनुसार जो काम किये जाते है, वे वस्तुस्थिति के अनुसार जो होना और किया जाना चाहिये, उससे भिन्न हो जाते है। इसके परिणामस्वरूप या तो कर्त्तव्यो और अधिकारो के बीच असतुलन पैदा हो जाता है या मूलभूत हितो के बारे मे ही निराशा होने लगती है।

ज्यो-ज्यो स्त्रियो मे शिक्षा का प्रसार बढ रहा है, शिक्षित स्त्री की एक प्रतिमा का निर्माण हो रहा है। शिक्षित स्त्री से सामाजिक दायित्व की आशाएँ बढ़ती चली जा रही है और उसके उत्तरदायित्व पर निरन्तर जोर दिया जा रहा है। क्या शिक्षित स्त्री उससे की जानेवाली उन उम्मीदो को पूरा कर सकती है? यदि नही तो कौनसी सामाजिक परिस्थितियाँ है, जिनके कारण वह वैसा नही कर पाती।

शिक्षा के तीन उद्देश्य माने गये है। शिक्षा विद्यार्थियो को ज्ञान और क्षमता प्रदान करती है, शिक्षा माध्यमिक समाजीकरण के तरीके के रूप मे उत्पन्न हुई जरूरतो के क्षेत्र के अन्तर्गत मानव-जीवन की भूमिका के संबध मे जानकारी और प्रशिक्षण प्रदान करती है और अन्त मे शिक्षा युवा पीढी को जीवन के नये मूल्यो और मानदण्डो के विषय मे संप्रेषण करने का महत्त्वपूर्ण माध्यम होती है। इन्ही उद्देश्यो के सन्दर्भ मे शिक्षा आयोग ने शिक्षा को परिवर्तन का यंत्र कहा है। आयोग ने कहा है—"हमारी राय मे शिक्षा मे परिवर्तन कर के उसे जीवन के साथ अन्त-र्संयुक्त करने, उसे आवश्यकताओं और आशाओ के अनुरूप ढालने तथा राष्ट्रीय उद्देश्यो की पूर्ति के लिये आवश्यक सामाजिक, आर्थिक एव सास्कृतिक परिवर्तन लाने के लिये शिक्षा को एक सशक्त यंत्र बनाने मे अधिक दूसरा कोई सुधार अधिक महत्त्वपूर्ण नही है। इस प्रकार से सामाजिक परिवर्तन के यत्र के रूप मे शिक्षा का काम विद्यार्थियो मे नये मूल्यो और नये दृष्टिकोणो का ज्ञान और प्रेरणा देना है। विद्या-र्थिनियो से भी यह आशा की जाती है कि जीवन-मूल्यो के सबध मे उन्होंने जो कुछ जाना और सीखा है तथा बुद्धि और योग्यता का जो विकास किया है, उसका वे सामाजिक जीवन के बृहद् क्षेत्र मे नाना प्रकार की भूमिकाओ के निर्वाह मे प्रयोग करे। जहां तक स्त्रियो का प्रश्न है, शिक्षा का बुनियादी कार्य उनको प्राथमिक संस्थाओ के माध्यम से पर्याप्त समाजीकरण के कार्यकारी एजेण्ट बनाना है। चूकि परिवार और शिक्षा-पद्धति दोनो को मिल कर समाजीकरण के कार्य को पूरा करना होता है, कुटुम्ब मे समाजीकरण का एक बड़ा भार बच्चे को समाजीकरण की शिक्षा प्रदान करने का दायित्व स्त्री पर होता है। यही कारण है कि शिक्षा, जिसके माध्यम से भावी पीढी मे नये मूल्यो और नये दृष्टिकोणो के विचार पैदा किये जाते है, सामाजिक परिवर्तन का साधन बन जाती है। यह माना जाता है कि एक शिक्षित स्त्री बच्चे के लालन-पालन का बहुत योग्य यत्र साबित होती है। वह काटुम्बिक संबधो मे काफी अच्छी एकता और समन्वय रख सकती है, चाहे कुटुम्ब एक इकाई का हो या सयुक्त हो। साथ ही यह भी माना जाता है कि स्त्री कुटुम्ब और समाज के बीच सही-सही तालमेल बैठाने मे अधिक सक्षम है। साधारण तौर से यह समझा जाता है कि एक शिक्षित स्त्री समाजीकरण की प्रवृत्तियो के माध्यम से मौलिक रूप मे उन दृष्टिकोणो और मान्यताओ का निर्माण कर सकती है, जो व्यक्ति को ऐसा बना सकेगी कि वह जीवन की विभिन्न भूमिकाओ का योग्यतापूर्वक निर्वाह कर सके। कहने का मतलब यह है कि स्त्री के लिये शिक्षा का उद्देश्य मूलत उसके समाजीकरण सबधी दायित्व को पूरा करने मे सहा-

यता देना है। इसके बावजूद कि आज अधिकाधिक स्त्रियाँ लाभ की आर्थिक प्रवृत्तियो मे हिस्सा ले रही हैं, माना सामान्यतया यही जाता है कि रोजगार के क्षेत्र मे स्त्रियो का प्रवेश अस्थायी ढग का ही है।

प्रारभिक अवस्था मे स्त्री-शिक्षा का महत्व इस विश्वास पर आधारित था कि एक साक्षर पुरुष की अपेक्षा साक्षर स्त्री भावी पीढी की शिक्षा का कार्य अधिक सफलतापूर्वक कर सकती है। राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रानाडे, वहरामजी मलाबारी तथा अन्य समाज-सुधारको की यही धारणा थी कि भारतीय महिलाओ की शिक्षा से सामाजिक प्रगति का मार्ग खुलेगा। महर्षि कर्वे ने ही पहले-पहल यह समझा कि शिक्षा के क्षेत्र मे प्रवेश कर के ही स्त्रिया अपनी पर-निर्भरता और अधीनता की वेडिया काट सकेगी। दयानन्द सरस्वती और विवेकानन्द जैसे पुनरुत्थानवादी धर्मनेताओ ने भी भारतीय समाज के पुर्ननिर्माण के अपने कार्य-क्रम मे भी स्त्री-शिक्षा पर काफी जोर दिया। उदारतावादी सुधारक श्री गोपाल-कृष्ण गोखले ने कहा था कि भारतीय महिलाओ के मानस और विचारो को सैंकडो—हजारो वर्षों की पुरानी परम्पराओ की गुलामी मे मुक्त किया जाना आवश्यक है। यह मुक्ति न सिर्फ स्त्री-समाज को पुन उस सम्मानित स्थान पर विठा सकेगी, जहाँ एक दिन वह था, वल्कि पाश्चात्य सभ्यता के मूलगामी तत्वो को समझने और ग्रहण करने की दिशा मे किसी भी दूसरी चीज की अपेक्षा अधिक सहायक रहेगी। इसके विना भारतीय पुनर्जागरण के सारे विचार खोखले सपने ही रहेंगे और इस दिशा मे किये गये सारे प्रयत्न विफल ही होते रहेंगे। हरटॉग कमिटी ने भी यही आशा प्रकाश की थी। उसकी रिपोर्ट मे कहा गया था कि शिक्षित स्त्री से ज्यादा दूसरा कोई इस वात को पूरी तरह नही समझ सकता कि शिक्षा भारत की वडी सामाजिक समस्या है और जव तक स्त्री शिक्षा के क्षेत्र मे उस स्थिति को पुन नही प्राप्त कर लेगी, जो हमारी सामाजिक परम्पराओ और रुढियो के वधनो के कारण उसने खो दी है, तव तक भारतवर्ष उस स्थान को नही प्राप्त कर सकता, जिसे प्राप्त करने की एक आधुनिक राष्ट्र के नाते उसकी आकाक्षा है।

हमारे उक्त अग्रगन्य नेताओ ने यह भी अनुभव किया कि महिलाओ मे शिक्षा की कमी समाजोत्थान के मार्ग मे वहुत वडी वाधा थी। सती-प्रथा, शिशु-हत्या, वाल-विवाह, आजीवन वैधव्य आदि सामाजिक कुरीतियो का विच्छेद स्त्रियो के शिक्षित होने पर ही वडे रूप मे हो सकता है। यह भी माना जाता था कि सयुक्त परिवार मे रहते हुए जो सामाजिक सवध-समझौते आवश्यक हैं, वे भी तभी ज्यादा अच्छी तरह हो पाते हैं, जब पत्नी शिक्षित हो। एक शिक्षित स्त्री सामाजिक जीवन मे अपने पति की ज्यादा अच्छी सगिनी हो सकती है और एक शिक्षित माता अपने वच्चे का ज्यादा अच्छी तरह पालन-पोषण कर सकती है। विगत शताब्दी मे जिन्होंने स्त्री-शिक्षा का प्रचार किया, उनकी यह भी आशा थी कि स्त्रियो की शिक्षा पुरुषो की शिक्षा की अपेक्षा सस्कृति के निर्माण की दिशा मे अधिक प्रभावकारी होगी। यहाँ यह वता देना आवश्यक है कि शिक्षित स्त्रियो मे की जाने वाली आशाओ के पीछे कुछ खास वाते थी—एक तो यह कि स्त्री का क्षेत्र

मुख्यतया घर है और उसका कार्य गृहस्थी चलाना है, दूसरे यह कि आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र मे एक नागरिक या स्वतन्त्र व्यक्ति की तरह स्त्री की भूमिका गौण है। सक्षेप मे, स्त्री अपने विशेष कार्यो और भूमिकाओ के साथ एक स्त्रैण व्यक्ति के रूप मे ही मानी गई, न कि पुरुष की तरह ही मानवीय व्यक्तित्व के साथ एक नागरिक की तरह।

स्वाधीनता के बाद शिक्षित स्त्री से और भी बहुत सी नई-नई आशाए की जाने लगी है। वह भी स्वतन्त्र भारत की नागरिक है और उसको भी राष्ट्रीय उत्पादन मे अपना योग देना है। ठीक ही है कि हमारे सविधान मे स्त्री और पुरुष का दर्जा बिल्कुल समान माना गया है। शिक्षा-आयोग ने भी स्त्री के घर के बाहर आर्थिक प्रवृत्तियो मे हिस्सा लेने पर जोर दिया है। वास्तव मे, आज स्त्री से यह आशा की जाती है कि जहाँ वह घर के काम मे प्रमुख दायित्व ग्रहण करे, वही युवा पीढी को पूर्णतर जीवन-मूल्यो की चेतना और शिक्षा भी प्रदान करे और साथ ही काम-काज करने वाले समूह मे भी शामिल हो। मगर यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि यद्यपि शिक्षा के सभी कार्य स्त्री के लिये वैध माने गये है, ज्यादा जोर उसकी समाजीकरण की भूमिका पर दिया जाना जरूरी है।

जैसे-जैसे बडी सख्या मे स्त्रियाँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर के निकल रही है, यह पता लगाना जरूरी हो गया है—क्या वे अपनी इन भूमिकाओ को स्वीकार कर रही है और उनके अनुसार काम कर रही है? यदि यह मान भी ले कि स्त्रियो ने अपनी भूमिका समझ ली है और उसके प्रति सचेत हो कर उसका निर्वाह कर रही है, तब भी यह देखना होगा कि क्या वे इन सब भूमिकाओ को सफलतापूर्वक निभा रही है? यदि शिक्षित स्त्री पूरी तरह सफल नही है, तो यह पता लगाना पडेगा कि उसकी विफलता शिक्षा-प्रणाली के दोष के कारण है अथवा हमारे सामाजिक ढाँचे मे अभी भी विद्यमान प्रतिबन्धो के कारण? शिक्षा के इन सवालो पर पुनर्विचार करना जरूरी है।

यह मान लेने पर भी कि शिक्षा के तौर-तरीके उसको आवश्यक मूल्य और योग्यता प्रदान करते है, हमे उन विशेष सामाजिक परिस्थितियो को ध्यान मे रखना ही होगा, जिनमे लडकियाँ शिक्षा पाती है। लडके और लडकी मे मूल्यो को समझने और जीवन मे उनको लेने की शिक्षा द्वारा दी गई योग्यता समान है तो भी जहाँ एक स्वस्थ और सामान्य युवक की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य उसको उस काम की शिक्षा देना है, जिसके योग्य वह माना जाता है, वहाँ लडकी के मामले मे विवाह और मातृत्व की बात से उसके जीवन का सब कुछ बदल जा सकता है। इस बात को महत्व देने की आवश्यकता इसलिए है कि देश-विदेश के शिक्षा-विशेषज्ञ बुनियादी तौर से विवाह को लडकियो के लिये जीवन का मूल उद्देश्य समझते हैं। कहते ही है कि लडकी क्या करती है, इसका कोई विशेष महत्व नही है, क्योकि विवाह हो जाने के बाद इन बातो का उसके लिये कोई महत्व नही रहेगा। मिरा कोमारोवास्की ने कहा है—"समाज लडकी के सामने बडी-बडी चुनौतियाँ रखता है और जोर के साथ कहता है कि अपने भाइयो के साथ वह भी हर दिशा और काम मे प्रतिद्वन्द्विता

करे, किन्तु इन चुनौतियो को झेलने मे उसकी सफलता ही अचानक चिन्ता का कारण भी बन जाती है।"

तदुपरान्त आज एक विशेष प्रकार की अन्तर्विरोधात्मक स्थिति उत्पन्न हो गई है। जहाँ लडकियो की शिक्षा का महत्व गौण माना जाता है, वही विवाह के लिये भी एक स्तर तक की शिक्षा उसके वास्ते अनिवार्य बतलाई जाती है। भावी वधू के लिये शिक्षा का स्तर अलग-अलग क्षेत्रो, जातियो और वर्गो मे अलग-अलग होता है। वधू के मैट्रिकुलेट, ग्रेजुएट, और कही-कही एम० ए० होने की भी आशा की जाती है। प्रोफेसर जी० डी० पारीख का यह कहना कितना अर्थपूर्ण है कि एक गृहस्वामिनी के लिये ग्रेजुएट होना जरूरी नही है, किंतु जो लडकी ग्रेजुएट नही है, उसे एक अच्छी गृहस्थिन होने मे कठिनाई होती है। घर के कामकाज की जिम्मेदारी ज्यादातर स्त्री पर पडती है। प्राय देखा जाता है कि जब एक ही परिवार के लडके और लडकिया साथ-साथ पढते है, तो लडकी को पढाई के साथ-साथ माँ को घर के कामकाज मे मदद देनी होती है और छोटे भाई-बहिनो की देख-भाल भी करनी होती है।

यद्यपि स्वराज्य के बाद शिक्षा लडके और लडकियो के लिये समान रूप से और सब तरह से सुलभ हो गई है, तथापि यह तो है ही कि लडको और लडकियो के मध्य जीवन-मूल्यो और योग्यताओ की दृष्टि से अन्तर अभी भी विद्यमान है। स्वराज्य के बाद हमारा समाज पुरानी परम्पराओ के घेरे से निकल कर आधुनिक बनता जा रहा है। शिक्षा, जो कि सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण माध्यम है, को हमारे लोकतंत्रात्मक मूल्यो की चेतना प्रदान करने का जरिया माना जाता है। साथ ही, शिक्षा के द्वारा ऐसी योग्यता और ज्ञान की भी अपेक्षा की जाती है, जिससे वैसे काम भी किये जाये जो हमारी परम्परा की दृष्टि से नये है। शिक्षा से ऐसे मूल्यो के विकास की अपेक्षा की जाती है, जैसे आत्म-सम्मान, विवेक, निर्वैयक्तिकता, और मनोवाछित सामाजिक परिवर्तन का ज्ञान। शिक्षा आदमी मे अपने बारे मे एक नया विश्वास और नई आस्था पैदा करती है और नागरिक उत्तरदायित्व की भावना के विकास मे मदद करती है। फिर भी, लडके और लडकी मे सामाजिक प्रेरणाओ की दृष्टि से अतर रहता ही है, और इसके कारण शिक्षा से प्राप्त मूल्य-चेतना और योग्यता के ग्रहण की शक्ति भी समान नही रहती। जो लडकी स्कूल मे जाती है, उसके कानो मे बार-बार यही आवाज बुलन्द की जाती है कि स्कूल जाना उसके लिये गौण बात है, अस्थायी प्रवृत्ति है या कि एक घटना मात्र है। उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य तो विवाह करके बच्चे पैदा करना है। पढाई करने के दौरान, जब कि उसे शिक्षा की तैयारी मे अपना समय लगाना चाहिये, वह घर के कामकाज की जिम्मेदारी निभा चुकने के बाद ही ऐसा कर सकती है। इस सब के फलस्वरूप लडकी के लिये पूरी एकाग्रता रख पाना बहुत ही कठिन होता है, क्योकि उसका ध्यान कितने ही दूसरे कार्यों मे लगना जरूरी होता है। उक्त कठिनाइयो के साथ-साथ एक और अडचन भी उसके मार्ग मे आती है। अपवाद स्वरूप कुछएक उदाहरणो को छोड दे तो अक्सर लडकी की शिक्षा का क्रम

पूरा ही नही हो पाता। अधिकाश लडकियो को शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर बीच मे ही पढाई छोड देने के लिये विवश हो जाना पडता है। जहाँ प्राथमिक स्तर पर १०० लडके है तो लडकियाँ ५५ ही होती है। छठवी या आठवी कक्षा मे आने पर यह सख्या ३५ ही रह जाती हे और माध्यमिक स्तर पर आने पर लडकियो की सख्या घट कर २६ हो जाती है और विश्वविद्यालय के स्तर पर २४ ही। इस प्रकार से लडकियो के मामले मे शिक्षा की व्यर्थता प्राथमिक स्तर पर ६२ प्रतिशत होती है, जबकि उच्च प्राथमिक स्तर पर पहुँच कर ३४ प्रतिशत रह जाती है। बहुत-सी लडकियो को बिना स्कूल और कालेज की शिक्षा का लाभ लिये ही परीक्षाओ मे बैठना होता है। इस बात का पता लगाना बहुत लाभप्रद होगा कि उन लडकियो की आशा, आकाक्षा और निराशा के कारण क्या स्थिति होगी, जिन्होने शिक्षा का स्वाद तो चखा हे परन्तु बाद मे जाकर उसे छोड देने को विवश होना पडा है।

सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि जो लडकियाँ भिन्न-भिन्न मूल्य-मान्यताओ को लेकर एक-समान पढाई करती है उनमे से कुछ को शिक्षणोत्तर कामो मे ज्यादा समय देना पडता है, कुछ को शैक्षणिक सफलताओ को गौण मानना होता है और कुछ के सामने शिक्षा के क्रम को जारी रखने का कोई भरोसा नही होता। उनके शिक्षा-पद्धति से प्रतिफलित समस्त मूल्यो के लाभ पाने मे बाधा-सृष्टि होती है। इन सब कारणो से लडकी जीवन मे जिस भूमिका के लिये शिक्षा के माध्यम से तैयारी करना चाहती है और आशा बाधती है, उसकी पूर्त्ति नही हो पाती। यदि हम शिक्षा की उत्पादन-शक्ति के बारे मे पूरी-पूरी जानकारी हासिल करना चाहे, तो पढनेवाली लडकियो की इन तमाम स्थितियो के बारे मे सोचना-समझना जरूरी है।

यदि यह कहा जाय कि इन समस्त कठिनाइयो और बाधाओ के बावजूद कुछ स्त्रियो ने अपनी शिक्षा पूरी करके उन मूल्यो का समाहार कर लिया है, जिनके आधार पर उन्हे अपने जीवन मे आवश्यक भूमिका का निर्वाह करना है तो भी यह समझ लेना जरूरी हे कि ऐसी लडकियो को समुचित रीति से अपना काम करने मे सामाजिक कठिनाइया फिर भी आती रहती है। हर शिक्षित लडकी, जिसे आधुनिक, स्वतत्र, जनतत्रात्मक एव बौद्धिक विचारो की शिक्षा और प्रेरणा मिली है, का यह अनुभव है कि जो कुछ उसने शिक्षा द्वारा जाना और पाया है, उसे जीवन मे उतारना बडा कठिन होता है। उदाहरण के लिये, यदि कोई शिक्षित महिला अपने लिये पति पसद करने के मामले मे भी आधुनिक विचारो और मान्यताओ के अनुसार चलना चाहती है, तो समाज मे उसकी निन्दा होती है, बहिष्कार होता है और आर्थिक कठिनाइयो मे भी उसे पडना होता है। इतना ही नही, अगर उस लडकी को अपना कैरियर बनाना हो तो अविवाहित अवस्था के कारण उसको निन्दा और लाछन झेलना पडता है। चाहे वह कितनी ही योग्य क्यो न हो, यह बात उसके पथ मे बाधा पैदा करती है। इसी प्रकार विवाहिता शिक्षित लडकी जब अपने विचारो और मूल्य-मान्यताओ के अनुसार अपना घर चलाना चाहती है, तो उसके

इन परिस्थितियो मे उसे या तो झुक कर सब कुछ मान लेना पडता है या बिलकुल अकेले खडे होकर बहिष्कार तक झेलने के लिये तैयार हो जाना पडता है। अन्यथा उसके पास कोई उपाय नही है। वास्तव मे, उसको दो परस्पर-विरोधी स्थितियों मे रहना-चलना पडता है। एक तरफ तो उसे अपने-आपको भूल-भुलाकर हमेशा परिवार मे दूसरो की खुशी के लिये अपनी जरूरतो और इच्छाओं को गौण कर लेने के परम्परागत आदर्श को मान कर चलना होता है और दूसरी तरफ उसने जो शिक्षा पाई है, उसके अनुसार इन परम्परागत मूल्यो के औचित्य पर वह बार-बार अपने आप से प्रश्न करने लगती है। उसे अपने गृह के व्यक्तित्व एव अधिकारों की बात ज्यादा समझ मे आती है और परिवार के हित के लिये अपने-आपको खत्म कर देने की बात कम।

इस सब का परिणाम यह होता है कि परम्परागत कौटुम्बिक मूल्यो एव धारणाओ तथा शिक्षा द्वारा प्रेरित और प्रदत्त नये विचारो एव मूल्यों के बीच निरन्तर सघर्ष होता रहता है। डा० जोगेन्द्र सिंह ने ठीक ही कहा है—"परम्परागत समाजीकरण और शिक्षा के आदर्श के बीच का व्यवधान अभी बहुत दिनो तक कायम रहेगा।" ज्यादातर घरो मे बच्चे को आधुनिक विचारो और मूल्य-मान्यताओं के अनुसार पूरे सम्मान के साथ लालन-पालन प्रदान करने की सुविधायें नही है, पारिवारिक जीवन मे अनगिनत धार्मिक और सामाजिक पुरानी धारणाओ और मान्यताओं के आधार पर परम्परागत क्रियाकाण्ड स्त्री को घेरे हुए है, जिनके कारण शिक्षित स्त्री को अपने सारे बौद्धिक विचारो और दृष्टिकोणो को छोड कर विवेकहीन रीति-रिवाजो के सागर मे गोते लगाते रहना पडता है। इस विवशतापूर्ण और दमघोट स्थिति मे शिक्षित स्त्री अत्यत निराश हो कर बैठ जाती है या चारो तरफ जो हो रहा है, उससे तालमेल बिठाने की दृष्टि से उस ढग-ढांचे से समझौता कर लेती है, जो उसके अपने विचारो और आदर्शो के विपरीत और विरोधी है। कुछ शिक्षित स्त्रिया इस स्थिति का विरोध भी करती है, परन्तु उनका विरोध और सघर्ष ऐसा स्वस्थ विरोध नही होता, जिससे समाज के सारे वातावरण को बदलने मे मदद मिले। यही कारण है कि कुछ अपवादो को छोड कर ज्यादातर शिक्षित स्त्रियो को दैनिक सामाजिक जीवन मे अपने विचारो और मान्यताओ के अनुसार रहने-जीने मे बडी कठिनाइयो का सामना करना होता है। तनाव, मानसिक रोग, तलाक और परित्याग, आत्महत्याओ की बढती हुई सख्या, भोग-विलास के रूप मे सस्ते मनोरजन की दिशा मे बढती हुई ललक (जो खास तौर से शहरो मे रहने वाले ऊँचे तपके के कुटुम्बो मे देखी जाती है) आदि से लगता है कि किस प्रकार पढी-लिखी स्त्रियाँ वर्तमान सामाजिक तत्र और व्यवस्था के प्रति अपना नैराश्य प्रकट कर रही हैं। अधिकाश पढी-लिखी स्त्रियाँ यही मान बैठती है कि जब अपने विचारो की बात नही चल पाती, तो जो स्थिति है, उसको मान लिया जाय और उसके अनुसार ही अपने को बना कर चला जाय। मर्टन ने इस बात को यो कहा है—"ऐसा करना वृहद सास्कृतिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिये निरन्तर बढती हुई प्रतिद्वन्द्विता, जो खतरे और निराशा से भरी हुई है, मे से व्यक्तिगत रूप से गुपचुप निकल

भागना है और चालू परम्पराओ के बन्धनो को पकड़े रख कर इन खतरो से बच जाना है।"

वास्तव मे, यह जानने और समझने की जरूरत है—क्या शिक्षित स्त्री आज अन्य स्त्रियो से भिन्न है, और अगर है, तो कितनी और किन बातो मे? सिवाय इस बात के कि वह कुछ वर्षो तक स्कूल या कालेज मे गई है, उसमे या अन्य साधारण स्त्री मे क्या कोई फर्क है? क्या आधुनिक बौद्धिक विचारो ने उसे एक भिन्न व्यक्तित्व प्रदान किया है और क्या उसमे वर्तमान स्थिति के सुधार का उत्साह है? इसी से हम समझ पायेंगे—क्या शिक्षा समाजीकरण की भूमिका को अदा कर रही है और समाज के सारे जीवन को प्रभावित और परिवर्तित करने मे प्रभाव-कारी ढग से क्रियाशील है? तभी यह भी पता चलेगा कि पत्नी, माता, मित्र, नागरिक और आर्थिक सदस्य के रूप मे शिक्षित स्त्री से जो बलवती आशाएं रखी जाती है, वे क्या सिर्फ काल्पनिक आदर्श की ही नही है? यह बात उन स्त्रियो मे अपराध-भावना उत्पन्न करती है, जो इन आशाओ के अनुरूप जीवन नही गढ पाती। क्या यह सच नही है कि अगर शिक्षित स्त्री को जीवन मे सावधानीपूर्वक अपना मार्ग तय करना है तो दोनो तरफ के ही कठोर आग्रहो की चट्टानो की चपेट से बचना है—एक ओर अपने व्यक्तित्व और पद-मर्यादा का आग्रह और दूसरी ओर आत्म-प्रवचना के घरौंदो की कल्पना। शिक्षित स्त्री खुद ही बता सकती है कि उसकी शिक्षा के बारे मे वह क्या अनुभव करती है?

—— o ——

विश्वकवि

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

स्त्री-शिक्षा

श्रीमती लीला मित्र ने मुझे स्त्री-शिक्षा के सबध मे एक पत्र लिखा है। यह विचार करने लायक है। उन्होने लिखा है—"कुछ लोग कहते है कि स्त्री-शिक्षा की कोई आवश्यकता नही है क्योकि स्त्रियो के शिक्षित हो जाने पर पुरुषो को कई बातो मे बडी असुविधाएँ हो जायेगी। शिक्षित स्त्री पति को देवता नही मानती, पति-सेवा मे उसका उतना मन नही रहता, वह पढने-गुनने मे ही लगी रहती है, आदि आदि। दूसरे कुछ लोग कहते है कि स्त्री-शिक्षा की बहुत आवश्यकता है क्योकि यदि पत्नियाँ शिक्षित नही होगी तो वे शिक्षित पतियो के विचार, भावना, आशा और आकाक्षा समझ ही नही पायेगी और हमारे पारिवारिक सुख मे बाधाएँ आयेगी।"

"पुरुष की तरह ही नारी का भी व्यक्तित्व है। उसका निर्माण केवल दूसरो के लिये नही हुआ है। उसके अपने जीवन की भी सार्थकता है। वह स्त्री-शिक्षा के पक्ष या विपक्ष मे किसी वकील को स्वीकार नही करती। वकीलो द्वारा पक्ष-समर्थन वास्तव मे वकीलो का ही पक्ष-समर्थन है। मामले के फलाफल का जिन पर असर पडेगा, उनकी बात किसी के मन मे उठी ही नही। यह आश्चर्य ही है।"

"विद्या-लाभ यदि मनुष्यमात्र का जन्मजात अधिकार है, तो नारी को किस नीति की दुहाई देकर उस अधिकार से वचित किया जा सकता है, समझ मे नही आता।"

"जो लोग स्त्रियो को अपने लिये निर्मित हुआ माने बैठे है, वे भी जितनी विद्या स्त्री के लिये झूठन की तरह देना चाहते हैं, उससे स्त्रियो के मनुष्यत्व की यथोचित पुष्टि होने की आशा करना बेकार बात है।"

"जो लोग स्त्री-पुरुष दोनो को समभाव से शिक्षा-दान करने को प्रस्तुत है, वे साधारण पुरुषो की पक्ति मे नही आते। उनका आसन बहुत ऊँचा है। अत उनकी बात तो छोड देना ही उचित है।"

"अतएव यह जिनकी अपनी बात है, उन्हे ही कार्य-क्षेत्र मे उतरना पडेगा। खुद अपने परिश्रम और उद्यम से ही वास्तविक मुक्ति मिलेगी, दूसरा कोई मुक्ति नही दे सकता। पुरुष मुक्ति कह कर जो देंगे, वह बधन का ही दूसरा रूप होगा। पुरुषो ने स्त्री-शिक्षा की जो मूर्ति गढी है, वह पुरुषो के खेलने की गुडिया का ही रूप है।"

"जो स्त्रियाँ इस कार्य मे उतरेगी, उनके साधारण स्त्रियो की तरह परम्परागत होने से नही चलेगा। संसार जिसे सुख कहता है, उनका आदर्श वह नही होगा। उन्हे यह बात याद रखनी होगी कि संतान धारण करना ही उनकी चरम सार्थकता नही है। वे पुरुषो की आश्रिता, लाजभरी लीलाङ्गना और सामान्य नारियाँ नही हैं वे तो पुरुष को संकट मे सहायता करने वाली, उनकी दुरूह चिन्ता की हिस्सेदार और सुख-दुख की सहचरी बन कर संसार-पथ की सहयात्री होगी।"

इस पत्र की मूल बात को मै मानता हूँ। जो कुछ भी जानने योग्य है, वही विद्या है। मनुष्य जानना चाहता है, यह उसका धर्म है। इसलिये जगत के आवश्यक-अनावश्यक सभी तत्व विद्या बन गये हैं। जानने की इच्छा को यदि खुराक न मिले या उसे कुपथ्य देकर बहला रखा जाये, तो मानव-प्रकृति को कमजोर बनाना है, यह कहने की जरूरत नही।

जब सर्वसाधारण को शिक्षा देने का प्रस्ताव उठता है, तो शिक्षित लोग कह उठते है —"तब हमे नौकर कहा से मिलेंगे।' लगता है, जल्दी ही इस सम्बन्ध मे रसिक लेखक हास्य-नाटक लिखेंगे, जिनमे दिखायेंगे कि बाबूजी का नौकर कविता लिख रहा है, या नक्षत्रलोक की ज्योतिष-गणना करने के लिये बडे-बडे सवाल हल कर रहा है। बाबूजी धोती धोने के लिये उसे बुलाने का साहस नही कर पायेंगे जिससे उसके ध्यान मे बाधा पहुचे। स्त्रियों के बारे मे भी यही बात है। यदि वे लिखाई-पढाई सीखेंगी तो झाडू, हँसिया और सिल-लोढा बाबुओ के हिस्से मे आ जायेगा।"

जिन लोगो का यह तर्क है कि नारी स्वभावत स्वतन्त्र है, उनके लिये, अगर यह बात सच है तो, फिर भय किस बात का है? पृथ्वी को हम चपटा समझते हैं, पर है वह गोल, यह जानने मे पुरुषो का गौरव कम नही होता। उसी तरह पृथ्वी साँप के माथे पर नही है, यह खबर पा कर यदि स्त्रियो का स्त्रीत्व-भाव नष्ट हो जायेगा, तो समझना पडेगा कि स्त्रिया स्त्रिया नही है, बल्कि हम लोगो ने उन्हे अज्ञान के ढाचे मे ढाल कर गढ दिया है।

विधाता ने पुरुष को पुरुष और स्त्री को स्त्री बना कर सृष्टि की है। यह एक आश्चर्यजनक उद्भावना ही है। यह बात कवि से ले कर जीवतत्व-विज्ञ सब ने स्वीकार की है। स्कूल मास्टर या टेस्टबुक कमिटि अपनी कापियो या पाठ्य और अपाठ्य पुस्तको के बोझ से शक्ति और सौंदर्य के प्रवाह के मुह को बाध सकते है, यह बात मै नही मानता। विधाता और स्कूल मास्टर, इन दोनो मे से मै विधाता पर ज्यादा विश्वास रखता हूँ। इसीलिए मेरी धारणा यह है कि स्त्रिया कान्ट और हीगेल को पढ ले, तो भी शिशु को प्यार करेंगी ही और पुरुषो को भी तुच्छ नही मानेंगी। इसलिए स्त्री-पुरुष मे कही भी कोई अन्तर नही रहेगा, यह कहना विधाता को अमान्य करना है। विद्या के दो विभाग है—एक विशुद्ध ज्ञान, दूसरा व्यावहारिक ज्ञान। जहाँ विशुद्ध ज्ञान है, वहा तो स्त्री-पुरुष मे कोई फर्क नही है, लेकिन जहा व्यवहार की बात है, वहाँ अतर है ही। स्त्रियो के लिये विशुद्ध ज्ञान

की शिक्षा होनी चाहिये, पर उसके वाद स्त्रियो को स्त्री वनना सीखने के लिये व्यावहारिक शिक्षा का विशेपत्व भी ग्रहण करना होगा, यह मानने मे क्या दोप है ?

स्त्रियो के तन और मन की प्रकृति पुरुप से भिन्न और स्वतत्र है। इस कारण से उनके व्यवहार का क्षेत्र भी स्वभावत भिन्न और स्वतत्र है। विद्रोह की झोक मे आ कर कुछ स्त्रिया इस मूल बात को अस्वीकार करती है। वे कहती हैं कि व्यवहार के क्षेत्र मे भी स्त्रियाँ पुरुषो के बिल्कुल वरावर है। पुरुपो ने विविध क्षेत्रो मे कतृत्व-लाभ किया है, लेकिन स्त्रियो को अधिकाश विषयो मे पुरुपो का अनुगत होना पडता है। इस अनुगामिता को वे जरूरी नही मानती है। वे कहती है कि पुरुपो ने इतने दिन तक केवल शारीरिक वल से ही स्त्रियो के कधे पर इस अनुगामिता का वोझ डाल रखा है। यह वात सच है कि प्रकृति के विरुद्ध पुरुप की शक्ति ने स्त्रियो को दुनिया मे नीचे गिरा कर रखा है जिसमे ऐसा लगता है कि दासत्व ही स्त्रियो के लिये स्वाभाविक है। पर असल वात तो यह है कि स्त्री होना, माँ होना स्त्री का स्वभाव है, दासत्व नही। प्यार का अश स्त्रियो के स्वभाव मे ज्यादा है। यह न होता तो सन्तान वडी नही होती, ससार नही चलता। स्नेह है, इसलिये मा सन्तान की सेवा करती है। इसमे वाध्यता नही है, प्रेम है। स्त्री पति की सेवा करती है, इसमे भी मजवूरी नही है।

जहाँ वाध्यता है, वहाँ स्वाभाविक स्नेह-प्रेम नही रहता। यदि पति-पत्नी के वीच स्नेह की स्वाभाविकता हो तो फिर कहना ही क्या है, किन्तु ऐसा सम्भव नही होता। जो हो, जव तक समाज नाम की चीज है, तव तक मनुष्य को अनेक मामलो मे और काफी दूर तक एक-न-एक नियम मान कर चलना ही होगा। नियमो की सृष्टि करने के साथ-साथ समाज भीतर-भीतर अपने स्वभाव को कायम रखता है और उसी का अनुसरण भी करता है। स्त्रियो के सम्वन्ध मे समाज ने यह धारणा वना ली है कि उनके लिये प्यार ही सहज वस्तु है। इसीलिए स्त्रियो के सवध मे जो नियम वनाये गये है, वे प्रेम के ही नियम है, और इसीलिए यह दावा है कि स्त्रिया ऐसे ही काम करे, जिनमे प्यार है, पिता, माता, भाई, वहन, पति और वच्चे सव की वह सेवा करे। उसका काम स्नेह और प्रेम का काम है, वही उसका आदर्श है।

यही कारण है कि समाज स्त्रियो के वारे मे प्रेम के आदर्श की ही वात सोचता है। जो स्त्री अपने पति से प्रेम नही कर पाती, उसके व्यवहार को भी समाज प्रेम की मापकाठी से तौलना चाहता है। ससार को वह प्रेम कर सके या नही, उसके आचरण को परखने की कसौटी एकमात्र प्रेम ही है। प्रेम का धर्म ही आत्म-समर्पण है। अतएव उसका गौरव भी उसी मे है। जिसको अनुगामिता कह कर मानने मे लज्जा की जाती है, वह उसी हालत मे लज्जा का विषय है जव उसमे प्रेम नही होता, सिर्फ वाध्यता होती है। स्त्रियो ने अपने स्वभाव के द्वारा ही समाज मे ऐसा स्थान वना रखा है, जहाँ उनके आत्म-समर्पण का भाव है। यदि किसी कारण से समाज की अवस्था ऐसी हो जाये, जिसमे यह आत्म-समर्पण प्रेम के आदर्श से अधिक श्रेष्ठ माना जाय तो वह स्त्रियो के लिये पीडा और अपमान की स्थिति होगी।

स्त्रिया स्वभावत ही स्नेहशील है तथा एकनिष्ठ आत्म-समर्पण का आदर्श ही सामाजिक शिक्षा के रूप मे उनके मन मे बद्धमूल हो गया है। इसका लाभ उठा कर वहुत से पुरुष उन पर अत्याचार करते है। जहाँ पुरुप अपने पौरुप के आदर्श से श्रेष्ठ होते है, वहाँ स्त्रियाँ अपने इन उच्च आदर्शों के द्वारा पीडित और वचित हो जाती है। इसके दृष्टान्त हमारे देश मे जितने है, उतने और किसी देश मे भी है, इसमे मुझे सन्देह है। किन्तु यह कह और समझ कर बात को उडा नही दिया जा सकता। समाज मे स्त्रियो ने जो अधिकार प्राप्त किया है, वह उन्होने स्वभावत ही पाया है, वाहर के किसी अत्याचार के कारण नही।

इस बात को स्वीकार करना ही होगा कि समाज मे पुरुष का दायित्व स्त्रियो के दायित्व से कम नही है, वल्कि ज्यादा ही है। इतने दिनो के सघर्ष के बाद मनुष्य-समाज आज भी दासो की मेहनत पर ही चल रहा है। वास्तविक स्वाधीनता वहुत ही कम लोगो को प्राप्त है। राज्य-तत्र मे, वाणिज्य-तत्र मे, बल्कि समाज के सभी क्षेत्रो मे, दासो का दल ही प्राण न्यौछावर कर समाज रूपी जगन्नाथ के प्रकाण्ड रथ को खीच कर चला रहा है। कहाँ लिये चल रहा है, यह वह नही जानता। किसके रथ को वह खीच रहा है, यह भी वह नही समझ पाता। वह जीवन भर यह भार दिन-प्रति-दिन वहन कर रहा है। इसमे न प्रेम है, न सौदर्य। दासत्व का बारह आना भाग पुरुष के कन्धे पर ही है। स्त्रियो के तो प्रेम पर ही समाज का जोर और झुकाव है। इसीलिए स्त्रियो का दायित्व प्रेम का दायित्व है। पुरुष की शक्ति पर ही समाज का जोर है, इसीलिये पुरुष का दायित्व शक्ति का दायित्व है। अवस्था के अनुसार जब एक ही दायित्व पर अतिरिक्त जोर दे दिया जाता है तो प्रेम उत्पीडित हो जाता है और शक्ति दुर्वल हो जाती है। तब समाज मे सुधार की आवश्यकता होने लगती है। आज ऐसी ही हालत है, जब सुधार के लिये सारे समाज मे वेदना दिखाई देती है। सुधार की यह प्रगति कितनी भी बढे, सृष्टि के मूल तक नही पहुँचेगी और आखिर तक कवियो का दल यही कह कर आनन्द अनुभव करता रहेगा कि पुरुप पुरुप ही रहेगा और स्त्री स्त्री ही। वास्तव मे, स्त्री सकट मे पुरुप की सहायक, विचारो मे सहचिंतक, सुख-दुख मे सहचरी हो कर ही उसकी प्रकृत सह-जीवन-यात्री हो पायेगी।

—— o ——

सर्वोदयी क्रांति के मंत्र-दाता,
महात्मा गांधी के अनन्य सहयोगी

आचार्य विनोबा भावे

मातृ देवो भव !

हमारे समाज मे मनु की आज्ञा प्रमाण मानी जाती है। स्त्रियो के बारे मे मनु क्या कहता है? "उपाध्यायान् दशाचार्या आचार्याणा शत पिता। सहस्र तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते।" उपाध्याय यानी उपनयन के समय जो गायत्री मत्र आदि देता है, से दस गुनी अधिक योग्यता आचार्य की है। आचार्य विद्या देता है। सौ आचार्यो के समान एक पिता है और हजार पिताओ से बढ कर एक माता है। इसमे यह नही कहा कि हजार पिताओ के समान माता है बल्कि उससे बढ कर कहा है—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। एक जननी यानी माता और दूसरी मातृभूमि दोनो स्वर्ग से भी बढ कर हैं। इसमे बाप का नाम नही लिया। इस पर से आपके ध्यान मे आयेगा कि स्त्री की कितनी प्रतिष्ठा थी।

सब से श्रेष्ठ मेरी माता है जो मेरे सब दोषो को ढाकती है। वेद मे कहा है, "वस्याँ इद्रासि मे पितु। माता च मे छदयथ समा वसो।" हे इन्द्र! तू हमारे पिता से बढ कर है। हे ईश्वर! तू और मेरी मा ये दो ही ऐसे हैं जो मेरे पापो को, अपराधो को ढाकते हैं, तुम दोनो समान हो। इसलिए कहा है, "त्वमेव माता च पिता त्वमेव, बधुश्च सखा त्वमेव।" इसमे प्रथम माता का नाम आया है। उपनिषदो ने जो आज्ञा दी है, उसमे भी नम्बर एक मे कहा है—मातृ देवो भव। नम्बर दो मे पितृ देवो भव। और नम्बर तीन मे आचार्य देवो भव। और, नम्बर चार मे अतिथि देवो भव। माता को पहला देव माना है, पिता को दूसरा, आचार्य को तीसरा और अतिथि को चौथा। इसलिए जहाँ तक मुझे हिन्दू धर्म का विचार मालूम है, स्त्री को समान अधिकार देने का सवाल ही नही उठता क्योकि उसमे स्त्री को पुरुष से बहुत ज्यादा अधिकार दिये गये हैं। स्मृति मे एक वाक्य ऐसा है कि पुरुष को मुक्ति के लिए सन्यास की अपेक्षा हो सकती है, लेकिन माता को मोक्ष के लिए सन्यास आवश्यक नही है। अपनी सतान की सेवा ईश्वर भाव से करना मोक्षदायक है। जैसे राम की माता ने राम का पालन ईश्वर भाव से किया, जैसे कृष्ण की माता ने कृष्ण का पालन ईश्वर भाव से किया, वैसे ईश्वर भाव से जो माता अपने पुत्र का पालन करेगी, वह गृहस्थ रहते हुए भी मोक्ष पा सकती है।

परन्तु आधुनिक जमाने में स्त्रियो को घर के अन्दर दबा कर रखते है। यह कैसे हुआ? मुसलमानो के डर के कारण और अनुकरण के कारण। मुसलमान लोग जनाना को घर के अन्दर रखते हैं। बाहर नही आने देते है। मुझे याद है कि जब मै दिल्ली मे डा० जाकिर हुसैन साहब से मिलने गया था, जो लगभग मेरी ही उम्र के थे, तब उनकी पत्नी का दर्शन मुझे नही हुआ था, यद्यपि मेरे लिए उनको बहुत प्रेम था। यह तो डा० जाकिर हुसैन और विनोबा की बात है। तो दूसरे पुरुषो के बारे मे क्या कहा जाये? इस तरह मुसलमानो के राज मे उनका अनुकरण किया गया। जैसे अग्रेजो के राज मे गरमी मे भी 'नेक-टाई-कालर' लगा कर बैठते थे और आज भी बैठते है। दूसरा कारण था डर। बहनो को बाहर रखने से उन पर हमला हो सकता है। इन दो कारणो से बहनो को दबा कर रखा गया। लेकिन जहाँ तक भारतीय सस्कृति की बात है, उसमे स्त्री को समान नही, ज्यादा अधिकार है।

योरप मे इग्लैण्ड वगैरह मे स्त्रियो को वोट का अधिकार नही था। इसलिए उन्हें आदोलन करना पडा। वहाँ पर बहनो ने पार्लमेट मे जा कर पुरुषो पर अडे फेके। उसके बाद उन्हे वोट का अधिकार मिला। लेकिन हमारे देश मे स्त्रियो को वोट का अधिकार प्राप्त करने के लिए कुछ भी करना नही पडा। बल्कि यह स्वाभाविक ही माना गया कि जैसे पुरुषो का हक है, वैसे ही स्त्रियो का भी है। दूसरी बात यह है कि यहाँ पर स्त्री प्राइम मिनिस्टर हो सकती है और है भी। चीफ-मिनिस्टर, गवर्नर हो सकती है और थी भी। तात्पर्य यह है कि आज भारत मे स्त्रियाँ किसी भी पद पर पहुँच सकती है।

हाँ, बाल्यावस्था मे स्त्री को बाप के वश रहना है, यौवन मे पति के वश, वार्धक्य मे पुत्र के वश मे रहना है—न भजेत् स्त्री स्वतत्रताम्। इसका अर्थ यही है कि अगर स्त्री शादी करनेवाली हो तो अपने पेट पालने की, आजीविका-सपादन की जिम्मेदारी स्त्री पर नही होनी चाहिए। उस पर यह जिम्मेदारी डालना कि तुम बच्चे पैदा करो, उनका पालन-पोषण करो और आफिस मे जाकर काम भी करो, इतना जुल्म है कि इससे अधिक जुल्म की मै कल्पना नही कर सकता। इसलिए इसमे जो स्त्री-स्वातत्र्य का विरोध किया है, वह स्त्रियो के इडिपेन्डैन्स (स्वातत्र्य) का विरोध नही है, बल्कि आजीविका की जिम्मेदारी स्त्रियो पर डालने का विरोध है।

वास्तव मे, हमारे यहाँ स्त्री और पुरुष की बराबरी का सवाल ही नही उठता, क्योकि स्त्रियो को पुरुषो से ज्यादा हक है। स्त्रियो को समान अधिकार होना चाहिए, यह कहना उनके अधिकार कम करना है।

— ० —

मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ के
प्राध्यापक

श्री कैलाशचद्र भाटिया

स्त्री-शिक्षा और गांधीजी

गाधीजी का व्यक्तित्व महान् था। उन्होने अनेक दृष्टियो से जो-जो सेवाए की, वे ससार के इतिहास मे स्वर्ण-अक्षरो मे अकित रहेगी। उन्होने भारत की राजनीति की बागडोर ही नही सभाली, वरन् समाज के जिस भाग को भी स्पर्श किया, उसको ही सजीवनी शक्ति से पुनर्जीवित कर दिया।

शिक्षा-शास्त्री के रूप मे गाधीजी ने अहिंसक शान्ति द्वारा शिक्षा-क्षेत्र मे आमूल-चूल परिवर्तन किया, सेवाग्राम आश्रम मे हिन्दुस्तानी तालीमी सघ की स्थापना की, जिसमे मनोवैज्ञानिक ढग से बालको को बुनियादी तालीम दी जाती थी। नारी-शिक्षा की ओर भी बापू का पर्याप्त ध्यान गया। समाज मे नारी के महत्वपूर्ण स्थान को बापू ने समझा और उसका महत्व प्रतिपादित करते हुए अनेक बार व्याख्यानो मे और 'हरिजन' के सम्पादकीय लेखो मे अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये—

"स्त्री पुरुष की सहगामिनी है। वह बुद्धि मे पुरुष से जरा भी कुन्द नही है। उसे पुरुष के छोटे-से छोटे कामो मे भाग लेने का अधिकार है, पुरुष की भांति ही स्वाधीनता और स्वतत्रता पाने का भी अधिकार है। उसे अपने कार्य-क्षेत्र मे उसी प्रकार पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं जिस प्रकार पुरुष को अपने कार्य-क्षेत्र मे अधिकार प्राप्त है। दोनो की एक सुन्दर जोडी है, दोनो एक दूसरे के पूरक है। दोनो एक-दूसरे की सहायता करते हैं। अत एक के बिना दूसरे की सत्ता की कल्पना नही की जा सकती।" (२० फरवरी, १९१८)

जो देश, जो राष्ट्र स्त्रियो का सम्मान नही करता, वह कभी महान् नही बन सका है और न भविष्य मे बन सकेगा। हमारी जाति जो इतनी पतित हो गई है, इसका प्रधान कारण यह है कि हम मे शक्ति की इन सजीव प्रतिमाओ के प्रति कोई आदर नही है। यदि हम स्त्रियो का, जो जगन्माता की साक्षात् मूर्तियां हैं, उद्धार नही करेंगे, तो हमारा उद्धार नही होगा।" (३० मई, १९२९)

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध मे गाधीजी के विचारो को हम तीन मुद्दो मे बांट कर विश्लेषण कर सकते हैं।

बापू का मूल विचार यह था कि पहिले यह कोशिश की जानी चाहिए कि जहाँ तक हो सके, अधिक-से-अधिक सख्या मे स्त्रियो को उनकी वर्तमान अवस्था का

बोध कराया जाये। इस सम्बन्ध मे गाधीजी ने स्पष्टत लिखा है—"मैं उन लोगो मे नही हूँ, जिनका विश्वास है कि यह कोशिश शिक्षा द्वारा ही हो सकती है। इस आधार पर काम करने का अर्थ यह होगा कि हम अपने ध्येय की पूर्ति को अनिश्चित काल तक के लिए स्थगित कर देगे। उनका यह विश्वास था कि हम स्त्रियो को शिक्षा (सकुचित अर्थ मे) बिना दिये भी भलीभाति समझा सकते है कि उनकी दशा कितनी शोचनीय है। एकमात्र पढी-लिखी होने के आधार पर ही वे समान अधिकारो को प्राप्त कर सकती हैं, यह बापू नही मानते थे। लेकिन इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि वे लिखने-पढने के विरोध मे थे। बल्कि उन्होने स्पष्ट शब्दो मे घोषणा की—"यह ठीक है कि लिखना-पढना जाने बिना भी बहुत-सा उत्तम और लाभप्रद काम किया जा सकता है, फिर भी मेरा पक्का विश्वास है कि लिखना-पढना सीखे बिना वे ज्यादा कुछ नही कर पाती। लिखना-पढना सीख लेने से बुद्धि पैनी हो जाती है और सत्कार्यों के करने का उत्साह मिलता है। शिक्षा आवश्यक है ही ताकि वे इन प्राकृतिक अधिकारो को बनाये रखने, उनमे सुधार करने तथा प्रचार करने मे समर्थ हो सके। शिक्षा आवश्यक इसलिए भी है कि उसके बिना सच्चा आत्मज्ञान नही हो सकता। यह कहने मे अत्युक्ति नही होगी कि शिक्षा-विहीन मनुष्य और पशु मे बहुत थोडा अन्तर रहता है। इसलिए शिक्षा स्त्रियो के लिए भी उतनी ही जरूरी हे, जितनी पुरुषो के लिए है।"

स्त्रियो को क्या शिक्षा दी जानी चाहिए, इस पर भी बापू ने समय-समय पर अपनी विचारधारा ही नही प्रकट की, वरन् सेवाग्राम मे आदर्श शिक्षा का उदाहरण भी रखा। उनकी बुनियादी शिक्षा तो इस दिशा मे क्राति कही जा सकती है। उन्होने प्रारम्भिक अवस्था मे सह-शिक्षा पर बल दिया एव समान शिक्षा को भी आवश्यक बताया। पर स्त्रियो का कार्य-क्षेत्र एक तरह का है और पुरुषो का दूसरी तरह का। इस सम्बन्ध मे बापू ने कहा है—"गृह-जीवन पूर्ण रूप से स्त्रियो का क्षेत्र है, इसलिए घरेलू कामकाज के सबध मे, बच्चो की शिक्षा और उनके पालन-पोषण के सबध मे स्त्रियो को अधिक जानकारी होनी चाहिये। यह बात नही है कि ज्ञान को ऐसे विभागो मे बाँट दिया जाय कि एक का सबध दूसरे से न रहे अथवा ज्ञान की कोई शाखा किसी के लिए बन्द रखी जाय, लेकिन जब तक शिक्षा का क्रम इन मूल सिद्धातो के आधार पर न होगा, पुरुष और स्त्री का पूर्ण विकास नही हो सकेगा।"

बापू ने सभी क्षेत्रो मे स्त्रियो को शिक्षित करने की बात कही। बस केवल वही क्षेत्र उनके लिये वचित रखे, जो स्वभावगत उनके विपरीत है। औद्योगिक क्षेत्र मे कुटीर-उद्योगो के सचालन मे स्त्रियाँ महत्वपूर्ण योग दे सकती हैं। यह बात ठीक है कि स्त्री-पुरुष दोनो को समान अधिकार प्राप्त हैं और आज हमारी महिलाए भी पुरुषो की भाँति ही स्कूलो, कालेजो, दफ्तरो, अस्पतालो, कारखानो आदि अनेक क्षेत्रो मे सफलता से काम करती हुई छोटे-बडे सभी पदो पर आसीन हैं। पर इसका तात्पर्य यह नही कि स्त्री हर क्षेत्र मे पुरुष से होड लगाये। वह सब कुछ कर सकती है, उसमे सब कुछ करने की शक्ति है, सामर्थ्य है, पर उसके लिए

वही काम होने चाहिए जिनको वह अपनी नारी-सुलभ प्रकृति और कोमलता को विकृत किए बिना कर सकती है। एक सफल अध्यापिका, डाक्टर, नर्स, कलाकार, पत्रकार, समाज-सेविका का क्षेत्र नारी के लिए उचित है। शिक्षा के प्रसार के साथ बाल-कल्याण, समाज-कल्याण के केन्द्र स्त्रियों के हाथ मे होने चाहिए और मुख्य तौर से तत्सबधी शिक्षा स्त्रियों को दी जानी चाहिए। इस सबध मे उन्होंने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—"यह बात सच है कि स्त्री और पुरुष की शरीर-रचना मे बहुत अन्तर है। इसलिए दोनो के कार्य भी अलग-अलग होने चाहिए। माता के कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिये जिन गुणो की आवश्यकता है, उनका पुरुष मे होना जरूरी नही है। स्त्री निष्क्रिय होती है, पुरुष सक्रिय होता है। स्त्री स्वभाव से घर की स्वामिनी होती है। पुरुष कमाता है, स्त्री उस कमाई का उपयोग करती है और घर के लोगो को रोटी देती है। वह हर तरह से पालनहार है। मानव-जाति के दुधमुहे बच्चो को पाल-पोस कर बड़ा करना उसका विशेष और स्वाभाविक अधिकार है। वह सार-सभाल न करे तो मानव-जाति नष्ट हो जाय।'

"मेरे मत मे स्त्री को घर छोड़ कर घर की रक्षा के निमित्त कधे पर बन्दूक धरने के लिए आह्वान करने अथवा उनके लिए प्रोत्साहित करने मे स्त्री और पुरुष दोनो की हानि है। यह तो फिर जगली बनना हुआ और विनाश का प्रारम्भ हुआ। उस अश्व पर आरूढ होने का प्रयास करके, जिस पर पुरुष सवार हुआ करता है, वह स्वय अपना और उसका भी पतन करेगी।"

इस प्रकार स्त्री और पुरुष के कार्य-क्षेत्र का विभाजन करके ही बापू शिक्षा देने के पक्ष मे थे। उन्होंने कहा—"स्त्री अहिंसा की अवतार है। अहिंसा का अर्थ है अनन्त प्रेम, और अनन्त प्रेम का अर्थ होता है कष्ट उठाने की असीम क्षमता। स्त्री पुरुष की माता है। स्त्री के अलावा इस प्रकार की अहिंसा-क्षमता इतनी मात्रा मे कौन दिखाता है? युद्ध मे फसी हुई दुनिया को शान्ति की कला सिखाने का काम भगवान् ने स्त्री पर सौपा है। सारी दुनिया शान्ति रूपी अमृत के लिए तडप रही है।"

बापू बुनियादी तौर पर ऐसी शिक्षा मे विश्वास करते थे, जिसमे हाथ एव हृदय का समान महत्व हो। केवल लिखना-पढना मात्र ही शिक्षा का स्वरूप नही है। स्त्री-शिक्षा के मार्ग मे रुकावट, जैसे रूढिवादिता, अज्ञान, धार्मिक कट्टरता, विवाह की अनुचित धारणा, पर्दा प्रथा, देश की अविकसित दशा, सरकारी उदासीनता, जनता की निर्धनता, विद्यालयो का अभाव, व्यय-साध्य शिक्षा-प्रणाली, अध्यापिकाओं का अभाव, अनुपयुक्त पाठ्यक्रम आदि के विरुद्ध गाधीजी जीवन भर लडते रहे और समग्र रूप से समाज-सुधार के व्यापक प्रयास मे सलग्न रहे।

शिक्षा मे अग्रेजी के स्थान के सबध मे बापू का दृढ मत था—"साधारण जीवन मे न हमारे देश के पुरुषो को और न स्त्रियो को अग्रेजी की जानकारी की आवश्यकता है।" जहाँ तक स्त्रियो की शिक्षा मे अग्रेजी का प्रश्न है, बापू उसके विरोध मे रहे। जहाँ उन्होने स्पष्ट यह स्वीकार किया कि "यह सच है कि जीविका के लिए तथा राजनीतिक आदोलनो मे सक्रिय भाग लेने के लिए अग्रेजी आवश्यक

है", वही उनका यह भी मत था--"मैं स्त्रियो के जीविका उपार्जित करने अथवा व्यवसाय करने मे विश्वास नही करता। थोडी-सी स्त्रिया हो सकती हैं, जिनके लिए अग्रेजी शिक्षा आवश्यक होगी अथवा जो अग्रेजी शिक्षा चाहेगी। ऐसी स्त्रियाँ आसानी से पुरुषो के स्कूलो में भर्ती होकर अग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर सकती है। पर स्त्रियो की स्कूलो मे अग्रेजी शिक्षा रखने का अर्थ यह होगा कि हम अपनी असहाय अवस्था को दीर्घायु प्रदान करेगे? मैने बहुधा लोगो को कहते सुना है, पढा है कि अग्रेजी साहित्य का बहुमूल्य भण्डार पुरुषो और स्त्रियो के लिए समान रूप से खुलना चाहिए। मै नम्रतापूर्वक यह कहूँगा कि इस प्रकार के दृष्टिकोण मे थोडी-सी भ्राति है। यह कोई भी नही चाहता कि बहुमूल्य भण्डार पुरुषो के लिए तो खुला रहे पर स्त्रियो के लिए बन्द रहे। इस दुनिया मे ऐसा कोई नही है, जो आपको सारे ससार के साहित्य का अध्ययन करने से रोक सके, यदि आपकी रुचि साहित्य की ओर है। ससार मे बहुत से अनमोल रत्न है, लेकिन सभी रत्न अग्रेजी मे नही हैं। अन्य भाषाएँ भी इसी प्रकार की श्रेष्ठता का दावा कर सकती हैं। सर्वसाधारण के लिए सभी भाषाओ के रत्न सुलभ होने चाहिए और यह तभी हो सकता है, जब हमारे विद्वान् लोग इन रत्नो का अपनी भाषाओ मे अनुवाद करने का काम अपने ऊपर ले ले।

शिक्षा-प्रणाली के सबध मे भी बापू के विचार भिन्न थे। बापू यह जरूरी नही मानते थे कि स्त्री-पुरुष दोनो की शिक्षा-प्रणाली समान हो। उनका मत था--"स्त्री और पुरुष का दर्जा बराबर है, पर दोनो एक समान नही है। दोनो की एक सुन्दर जोडी है। वे एक-दूसरे के पूरक है। दोनो एक दूसरे की सहायता करते हैं, अत एक के बिना दूसरे की सत्ता की कल्पना नही की जा सकती। अत प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर तो बालिकाओ के लिए वही पाठ्य-क्रम हो सकता है, जो बालको के लिए हो, परन्तु माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के स्तरो पर उसमे स्त्रियो के कार्य-क्षेत्र की दृष्टि से आवश्यक परिवर्तन कर देना चाहिए। माध्यमिक स्तर पर स्त्रियो को भोजन-शास्त्र, धुलाई-सिलाई, कढाई, गृह-विज्ञान, शिशु-सरक्षण आदि विषयो की शिक्षा विशेष रूप से दी जानी चाहिए और उच्च शिक्षा के स्तर पर स्त्रियो की शिक्षा मे कला, इतिहास, चित्रकारी, सगीत, गृह-शास्त्र, मातृत्व-कला, गृह-प्रबध और गृह-परिचर्या आदि विषयो का समावेश किया जाना चाहिए। इस प्रकार माध्यमिक स्तर तक गृह-प्रबध तथा गृह-विज्ञान मे दीक्षित कन्या अपने गृह-कार्य का सुचारू रूप से तथा कुशलतापूर्वक प्रबध कर सकेगी और वह अपने परिवार, समाज तथा देश के सामाजिक स्तरो को ऊँचा उठाने मे उपयोगी सिद्ध होगी।"

स्त्री-शिक्षा से उनका व्यापक अर्थ था, जिसके अन्तर्गत शील-रक्षा और सयम के साथ पर्दा, बाल-विवाह जैसी दूषित सामाजिक कुरीतियो के उच्छेद की बाते भी थी।

गाँधीजी ने नारी को कभी अबला नही माना। जब उन्होने राष्ट्र के जीवन का रथ आगे बढाया, तब भारतीय नारी पर पहली बार उसका विद्युत्प्रभाव देखने मे

आया। वह मानो एकाएक अपने पूर्व गौरव और शक्ति की चेतना पा कर अपने प्रति आश्वस्त हो कर उठ खडी हुई। सकोच और लज्जा से सिमटी सदा की [illegible] छुईमुई-सी हो रही नारी ने पहली बार सिर उठा कर दुनिया की ओर देखा। उसकी आंखो मे तेज आया, उसके हृदय ने बल का अनुभव किया। उसके मस्तिष्क मे अनुभूति हुई कि वह घर की रानी तो है ही मानव-जाति की माता और इस-लिए समाज की विधात्री भी है। उसने निश्चय किया कि वह [illegible] कर और देख कर ही सतुष्ट न होगी वह इतिहास का निर्माण भी करेगी। [illegible] मे नारी-शिक्षा के विषय मे बापू का यही आग्रह था जिसकी [illegible] ग्राम-ग्राम मे पाठशालाएं सचालित कर देश के सामने उदाहरण भी रखें।

—— ० ——

महात्मा गांधी के सहकर्मी
सुप्रसिद्ध विचारक और लेखक

श्री काका कालेलकर

स्त्री-संस्कृति का नेतृत्व

स्त्री और पुरुष एक दूसरे के विना अपूर्ण है। दोनो मिल कर ही पूर्ण मानवता की सृष्टि करते है। जव स्त्री और पुरुष के सपूर्ण, हार्दिक सहयोग और सहजीवन से ही मानवता परिपूर्ण होती है, तव स्त्री और पुरुष दोनो तत्त्वो की 'समानता' मान्य करनी ही चाहिए। इस समानता का स्वीकार मानव-जाति की ओर से हुआ है या नही, यह वडा सवाल आज की दुनिया के सामने है।

इस सवाल का जवाव 'प्रेमतत्त्व' ने दिया है। 'प्रेम' कहता है—समानता की वात ही क्यो खडी करते हो? हमे समानता नही, किन्तु 'परिपूर्ण, समृद्ध और सर्जनशक्ति-सपन्न एकता' की ही वात करनी चाहिए। जहाँ एकता आयी, वहाँ समानता का सवाल ही उत्पन्न नही होना चाहिए। अलग-अलग तो स्त्री और पुरुष मे 'अपूर्णता' है। अपूर्णता अस्वस्थ रहती है। 'पूर्णता' प्राप्त करने पर ही स्वास्थ्य, शाति और सतोष मिलते है। प्रेम कहता है—शाति, स्वास्थ्य और सतोष तीनो मिलकर भी जीवन की पूर्णता नही होती। जीवन का स्वरूप ही सर्जनात्मक होता है। जीवन को जीना है। याने 'काल-तत्त्व' के बिना जीवन का हम खयाल ही नही कर सकते। और जहा काल-तत्त्व आया वहाँ पर हर एक क्षण दूसरे क्षण को जन्म देकर स्वय मृत्यु की शरण लेता है। जीवन का अर्थ ही है परम्परा। जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म की परम्परा को ही जीवन कहा जाता है। मृत्यु के बिना जीवन की परम्परा यानी 'जीवन-सिद्धि' अशक्य है।

प्रेम का यह सारा तत्त्वज्ञान हमने समझ लिया, मान्य भी किया। समृद्ध एकता का सर्वोपरीपन भी पूर्ण रूप से मान लिया। लेकिन स्त्री और पुरुष के सहयोग मे हम समानता मान्य करे या नही यह सवाल रह ही जाता है। इसका जवाब आज तक मिला नही है। अगर मिला है तो वह सतोषकारक नही है। और, जो जवाब मिला है, वह मानवीय जीवन की परम्परा के लिए पोषक भी नही है। इसीलिए यह सवाल खडा किया गया है।

दो अपूर्ण तत्त्वो के सहयोग से पूर्णता प्राप्त होती है, इस बात को मान्य करने से दोनो तत्त्वो का महात्म्य हमने कबूल कर ही लिया। लेकिन 'महात्म्य'

एक बात है और 'समानता' दूसरी चीज है। पूर्णता के लिए दोनो के सहयोग की आवश्यकता और अपरिहार्यता हमने मान्य की लेकिन उस पर से समानता सिद्ध नही होती।

अगर समानता की अपरिहार्यता पहले से मान्य होती तो यह सवाल उठता ही नही। किन्तु असमानता का स्वीकार करके भी सहयोग चलाना अशक्य नही होने से असमान सहयोग मनुष्य जाति ने युगो तक चलाया और मान लिया कि यही स्वाभाविक (कुदरतमान्य) है। लेकिन एक-दो पुश्त के अनुभव मे व्यापक सनातन जीवन-सिद्धात समझ मे नही आ सकता। अनेक युगो का अनुभव कह रहा है कि 'असमान सहयोग' एक तरह से सिद्धि तो प्राप्त कर सका, सहयोग के फल भी असतोषकारक साबित नही हुए, लेकिन एक-दो पुश्त का अनुभव सपूर्ण नही हो सकता। इतिहास का अनुभव कह रहा है कि असमान सहयोग खतरनाक साबित हुआ है। 'असमान सहयोग' के कारण जीवन मे जो तत्त्व दाखिल हुए है वे चाहे जितने आकर्षक क्यो न हो, खतरनाक साबित हो रहे हैं और उनकी अपेक्षा हमे सर्वनाश की ओर ही ले जायेगी।

इसलिए स्त्री-पुरुष का सहयोग—जीवन-व्यापी सहयोग—समानता के बिना चिरजीवी नही हो सकता। यह है इतिहास के अनुभव का सार। इसी अनुभव को लेकर समानता की आवश्यकता कितनी है, यह हम समझना चाहते है।

जब हम स्त्री-पुरुष के जीवन-व्यापी सहयोग की बाते करते हैं, तब केवल भारत के या किसी एक देश के सास्कृतिक अनुभव पर हम निर्भर नही रहते। हम समस्त मानव-जाति के अलग-अलग और अनेक युग-व्यापी अनुभव पर आधारित अनुमान निकालते है। इसीलिए हम शात होकर काल-भगवान् के विस्तार को ध्यान मे रख कर सोचना चाहते हैं।

सब भूखण्डो के, धर्मो के और सस्कृतियो के लोक-जीवन को देखा जाय तो उसमे कुटम्ब-व्यवस्था मे भी प्रभाव और अधिकार पुरुषो का ही पाया जाता है। सब क्षेत्रो मे पुरुषो का ही प्राबल्य है। सत्ता और सम्पत्ति के व्यवहार मे तो सारे अधिकार पुरुषो के ही हाथ मे हैं। ग्राम-जीवन हो या शहरी जीवन हो, अभी तक सारा बोझ अधिकतर पुरुष ही उठाते रहे हैं, अपवाद स्वरूप ही कही-कही स्त्रियो मे तेजस्विता और अधिकार-ग्रहण-शक्ति पायी जाती है। कही-कही स्त्री-राज्य की स्थापना भी हो चुकी है, लेकिन ऐसे विरल अपवाद मूल सिद्धात को ही अधिक मजबूत करते है।

स्त्री-पुरुष के दैनंदिन सहयोग से जो सस्था चलती है, उस कुटुब सस्था की हालत को प्रथम देखें। इस मे तो स्त्री-जाति के सतोष, प्रेरणा और निर्णय के बिना एक कदम भी बढना मुश्किल है। स्त्री-पुरुषो का सहयोग यहाँ सुन्दर ढग से चला भी है। पुरुष खेती करता है तो स्त्री घर चलाती है। पुरुष धन कमाता है तो स्त्रियाँ मितव्ययिता के द्वारा धन का दुरुपयोग टालती है और कुटेम्ब-सस्था की सुरक्षा बढाती हैं। पुरुष व्यापार-उद्योग मे और सामाजिक पुरुषार्थ मे अपना प्रभाव दिखाते हैं तो स्त्रियाँ कुटुब-सस्था मे प्रेम और सेवा के द्वारा

मानो स्वर्ग निर्मित करती है। स्त्रियो के हार्दिक सहयोग और उनकी दीर्घ दृष्टि की व्यवस्था के बिना बडी-बडी कुटुब-सस्थाओ को भी जमानो तक अपने को चलाने मे सफलता नही मिलती। यह सब ठीक है। किंतु कुटुब-सस्था मे भी अतिम अधिकार और निर्णय-शक्ति पुरुषो की ही मानी गयी है। स्त्रियाँ अपना अधिकार रख सकती है, अपना विरोध भी जाहिर कर सकती है लेकिन अतिम निर्णय तो पुरुषो का ही रहता है। कहा जाता है कि बाहरी दुनिया मे कठोरता की आवश्यकता रहती है जिसका इजारा पुरुषो ने अपने पास रखा है। कोमलता का सारा व्यवहार स्त्री-जाति के हाथ मे रखा गया है। जब प्रश्न पूछा जाता है कि सस्कृति की दृष्टि से कठोरता श्रेष्ठ है या कोमलता, तब जवाब मिलता है कि सास्कृतिक दृष्टि से कोमलता निर्विवाद श्रेष्ठ है, किन्तु जीवन चलता है व्यवहार के नियम के अनुसार। और, व्यापार मे स्वार्थ, लोभ, अविश्वास आदि स्वभाव-गुणो को स्थान देना ही पडता है। याने, उनके उच्च गुणो के कारण ही स्त्रियो के अधिकार कम है, उनकी प्रतिष्ठा कम है, और उसको व्यवहार की शरण मे जाना पडता है। प्रेम-धर्म, सामाजिकता, प्रगति, उन्नति आदि सब जीवन-तत्त्वो मे श्रेष्ठ सद्गुणो की आवश्यकता होती है, किन्तु राज्य चलता है व्यवहार-शास्त्र के अनुसार और वह 'शास्त्र' पुरुप-जाति ने सर्वत्र और सर्वकाल अपने ही हाथ मे रखा है।

जहाँ पुरुषो की चल ही नही सकती, वहाँ पर तो स्त्रियो के सामने पुरुप अनेक बार झुक जाते है। ऐसे समय स्त्रियो को आदर दिखाकर, उनकी खुशामद करके उनका निर्णय एक तरह से तो मान्य किया जाता है और दूसरी ओर उस निर्णय को कमजोर और अमान्य भी बनाया जाता है। स्त्रियो ने शिकायत की तो उन्हे जवाब सुनना पडता है—"व्यवहार की बात तुम क्या जानो, सभालना पडता है हमे। तुम्हे सतुष्ट रखने का हमारा प्रयत्न जरूर रहेगा। उतने भर से सतोप मान लो और व्यवहार मे हमारे निर्णय के अनुसार ही चलो।"

इन बातो की चर्चा लबाने की आवश्यकता नही है। कौटुम्बिक जीवन का, सामाजिक जीवन का, आर्थिक जीवन का अनुभव हरएक को है। इसमे स्त्रियो की कितनी चलती है, यह स्त्रिया भी जानती है और पुरुप भी जानते है। स्त्रियो ने पुरुषो का अतिम अधिकार सदा के लिए और पूरे हृदय से मान्य किया है। तभी तो जीवन शाति से चलता है। आज अगर हम कहे कि अतिम निर्णय स्त्रियो के हाथ मे रखा जाय तो स्त्रियाँ ही ऐसे प्रस्ताव को अमान्य कर देगी। आज की व्यवस्था जैसी है, उसे स्त्री-जाति ने पूर्ण रूप से मान्य कर रखी है।

लोग कहेगे—यूरोप, अमेरिका मे ऐसा नही है, वहाँ के समाज मे स्त्रियो की प्रतिष्ठा सर्वमान्य है। जवाब मे मैं कहता हूँ—ऊपर से यह बात बिल्कुल सही है। वहाँ के समाज मे 'स्त्री-दाक्षिण्य' का रिवाज है। (अग्रेजी शब्द 'शिव्हलरी' का अनुवाद हम स्त्री-दाक्षिण्य से करते है।) पुरुषो के समाज मे कोई स्त्री आ जाय तो आदर दिखाने के लिए सारे पुरुष खडे हो जायेगे। बैठने के लिए सब से अच्छी जगह स्त्रियो को दी जाती है। सभा मे जब भाषण होते है, तब 'लेडीज फर्स्ट' कह कर स्त्रियो को प्रथम बोलने का मान दिया जाता है। सब तरह से स्त्रियो

को प्रसन्न रखा जाता है। इन रिवाजो की हम लोगो को कद्र करनी चाहिए। अपने रस्म-रिवाजो मे वैठ सके, इस ढग से स्त्री-दाक्षिण्य का प्रचार होना ही चाहिए। लेकिन भूलना नही चाहिए कि यह केवल 'सामाजिक विवेक' है। यह चाहे जितना सुन्दर हो और समाज को शोभा देता हो, उसमे जीवन-निर्णय मे स्त्रियो को योग्य अधिकार देने की वात नही आती। वहाँ की स्त्रियाँ भी 'शिवलरी' की कीमत जानती हैं। उतने से ही उनको सतोष नही है।

समानता के हक स्त्रियो ने मागे, पुरुषो ने दिये। देनेवाले पुरुष, मागनेवाली स्त्रिया। यह भेद तो कायम रहा। मैं जब स्त्रियो से पूछता हूँ—'समानता का हक मागो किसलिये? अपनी ही तरफ से उसका अमल क्यों न करती जाओ?' तव वह हँस पडती है। मैंने यूरोप-अमेरिका की चद प्रातिनिधिक स्त्रियो से समानता की चर्चा की है। वे सव मेरे निरीक्षण का और अभिप्राय का समर्थन करती रही। "दाक्षिण्य" की वात सार्वजनिक है। किन्तु सामाजिक जीवन के सगठन मे, जीवन-विषयक निर्णयो मे समानता का अनुभव हमे नही है। समाज का नेतृत्व ज्यादातर पुरुषो के ही हाथ मे है और आखिरी निर्णय उन्ही का रहता आया है।

वडे-वडे देशो मे राजनीतिक क्षेत्र मे स्त्री-पुरुषो की समानता तत्त्वत मान्य हो चुकी है। सुधरे हुए देशो मे स्त्रियो का विकास काफी ठोस और तेजस्वी हो रहा है। लेकिन जो क्राति हम चाहते है, वह आप ही आप होनेवाली नही है। इस मानसिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक क्राति के लिए सकल्पपूर्वक पूरी निष्ठा से प्रवल प्रयत्न होने चाहिए। इसमे विरोध होने का डर कम है। उल्टा ऐसी क्राति का स्वीकार करने मे स्त्रियो की ओर से ही तैयारी का अभाव दीख पडेगा। किन्तु यह क्राति किये विना चारा नही है। मानव-जाति ऐसी हालत मे आ पहुँची है कि या तो इस क्राति को सिद्ध करे, अन्यथा सर्वनाश के लिये तैयार हो जाये।

स्वभाव-भेद अथवा जीवन-निष्ठा के स्वरूप-भेद के कारण ही जीवन मे जो फर्क पडता है, उसे सस्कृति का भेद कहना शायद किसी को योग्य न लगे। तो भी जो वात हम कहना चाहते है, उसको स्पष्ट करने के लिए 'सस्कृति' जैसा गम्भीर शव्द काम मे लाये विना चारा ही नही। पुरुषो के द्वारा, उनके नेतृत्व के कारण, सस्कृति ने जो रूप लिया है, उसमे प्रतिस्पर्धा, ईर्षा, सघर्ष, कमजोरो का शोषण और अत मे युद्ध, ये सव तत्त्व आ जाते है। इस सस्कृति के समर्थक कहते हैं—"वडे-वडे सगठन कर के उनके वीच सघर्ष और युद्ध चलाये विना मानवीय स्वभाव मे श्रेष्ठ गुणो का विकास ही नही हो सकता। हम नही कहते कि हरएक युद्ध के अत मे न्यायी पक्ष की अथवा प्रागतिक पक्ष की ही हमेशा विजय होती है। लेकिन किसी की पराजय कर के, अपनी विजय से लाभ उठाने से मानवीय जीवन मे अनेक तेजस्वी सद्गुणो का विकास होता है। इसलिए सघर्ष, शोषण और युद्ध का हम समर्थन करते है।" ऐसे लोग सार्वभौम अहिसा-तत्त्वो को प्रगति-विरोधी मानते हैं। हिसा और अहिसा दोनो तत्त्वो का जीवन के लिए उपयोग है। सगठन,

सहयोग आदि तत्त्व अत्यंत उपयोगी है सही, किन्तु उनको हिंसा और विजय की मदद मे ही अपना काम करना है।

सघर्ष, शोषण और युद्धवाली पुरुष-सस्कृति अब हमे छोड ही देनी चाहिए। जहाँ-जहाँ विरोध और झगडा शुरू हो, वहा-वहाँ वीच का रास्ता ढूढ कर समझौता और समन्वय का इलाज ढूढना चाहिए। ऐसे 'समन्वय' की मनोवृत्ति स्त्री-सस्कृति मे पायी जाती है। कौटुबिक वायुमडल मे हर झगडे के साथ दोनो पक्षो को सभाल कर वीच का रास्ता ढूढना ही पडता है। स्त्री-स्वभाव और स्त्री-सस्कृति की ही यह विशेषता है। स्त्री-मानस ही समन्वय के लिए अनुकूल है। इसलिए आयदा 'सघर्षपरायण पुरुष-मानस' का नेतृत्व छोड कर 'समन्वय-परायण स्त्री-मानस' को नेतृत्व देना चाहिए। हम जानते है कि आज की बहुत-सी स्त्रिया (समान हक के लिए लडनेवाली स्त्रिया भी) यह नया नेतृत्व लेने को तैयार नही होगी। पर स्त्री-जाति को अब समन्वय-सस्कृति का चितन और विकास करना ही चाहिए। स्त्री-मानस ही यह काम कर सकता है। स्त्रियाँ हो या पुरुष, जिनके पास झगडे टाल कर समन्वय करने का मानस है, वे अब मानव-जाति को नया नेतृत्व दें। जीवन के आदर्शो मे आमूलचूल क्राति अब अपरिहार्य हो रही है।

—'०'—

गुरुकुल महिला कालेज, पोरबन्दर (गुजरात) के
उपाचार्य

श्री शकरदेव विद्यालकार

महर्षि कर्वे का महत् अवदान

हमारे देश मे अपमानित और दुर्दशाग्रस्त नारीत्व के पुनरुत्थान तथा गौरव-वर्धन के पुण्य-कार्य को जिन तपस्वी कर्मवीरो ने अपना जीवन-व्रत बनाया और जिन्होंने नारी के कल्याण और सन्मान के लिए समर्पण और सेवा-धर्म का अलख जगाया, उन पावन-पुरुषो मे महर्षि अण्णा साहब (घोडो केशव) कर्वे का नाम भारतीय नव-जागरण के इतिहास मे अमर हो गया है।

घोडो केशव कर्वे का जन्म १८ अप्रैल सन् १८५८ मे महाराष्ट्र के कोकण प्रदेश मे शेरवली नामक गाँव मे हुआ था, जहाँ उनकी ननसाल थी। उनके पिता केशव पत रघुनाथ कर्वे मुरुड गाव के निवासी थे। उनकी माता का नाम लक्ष्मीबाई था। वे अनपढ थी परन्तु अत्यन्त सस्कार-शील थी।

इनका विद्यार्थी-काल शुरू से अन्त तक बहुत कठिनाइयो मे से गुजरा। "विद्या और ज्ञान के प्रकाश से मनुष्य ऊँचा बनता है"—यह भावना कुमार-काल से ही कर्वे के अन्तर मे बसी हुई थी। अत पढाई के प्रति कर्वे की बडी निष्ठा थी। वे शिक्षक बनना चाहते थे। अपने गाव मे प्रारभिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अग्रेजी के अधिक अध्ययन के लिये वे बम्बई गये और वहाँ राबर्ट मनी हाई स्कूल की पाँचवी कक्षा मे प्रविष्ट हो गये। एक वर्ष के बाद ही उनके पिता केशव पतका अवसान हो गया। बडे भाई भीखू पत अपनी सात रुपये मासिक की आमदनी मे से चार रुपये प्रतिमास कर्वे को भेजने लगे। अपने अध्ययन को आगे बढाने के लिये कर्वे ने प्रतिमास एक रुपये का एक ट्यूशन करना भी शुरू किया।

विद्याध्ययन का अधिकाश खर्च वे छात्रवृत्तियो और ट्यूशनो से ही पूरा करते थे। उनके जीवन मे विद्यार्थी और शिक्षक के कार्य इस कदर गुफित रहे कि विद्यार्थी कर्वे और शिक्षक कर्वे को पृथक कर के देखना बहुत कठिन है।

वह जमाना बाल-विवाहो का था। अत पन्द्रह वर्ष की उम्र मे ही कर्वे का विवाह आठ वर्ष की लडकी राधाबाई के साथ हो गया था। कालेज या स्कूल मे छुट्टिया होने पर कर्वे बम्बई से मुरुड आ कर पत्नी राधाबाई और बहन अम्बा को पढाया करते थे। दोनो ही मराठी भाषा मे अच्छी तरह पढना-लिखना सीख गई।

सन् १८८३ मे उनके प्रथम पुत्र रघुनाथ का जन्म हुआ। इस मे राधा बाई का शिक्षण अटक गया। बाद मे अढाई वर्ष के बालक रघुनाथ को ले कर जब राधा बाई बम्बई आई तो उनका अपूर्ण शिक्षण पुन प्रारम्भ हो गया। इस प्रकार घर मे ही पढाई-लिखाई करके वे अग्रेजी की भी दो पाठावलिया पूरी कर सकी। जिस जमाने मे पुरुष भी अल्प-शिक्षित या अशिक्षित रह जाते थे, उस समय राधाबाई को अग्रेजी का अल्प-शिक्षण करवा देना भी कर्वे की नारी-शिक्षण की एक अच्छी सफलता माना जा सकता है।

सन् १८८० मे मैट्रिक की परीक्षा मे कर्वे छठे नम्बर पर उत्तीर्ण हुए। उसके पश्चात् वे और उनके खास मित्र नरहरि जोशी दोनो शिष्य-वृत्ति प्राप्त करके बम्बई के विल्सन कालेज मे प्रविष्ट हुए। वहा प्रथम वर्ष की परीक्षा पास करके दोनो ही एलफिन्स्टन कालेज मे गये। सन् १८८४ मे सत्ताईस वर्ष की उम्र मे उक्त कालेज से मुख्य विषय के रूप मे गणित लेकर कर्वे ने बी० ए० की परीक्षा मे सफलता प्राप्त की। महामना गोपालकृष्ण गोखले उनके सहपाठी थे।

यद्यपि अल्प-शिक्षितता के उस युग मे अर्थोपार्जन के अनेक मार्ग खुले हुए थे, तथापि कर्वे ने स्वेच्छा से अध्यापन-कार्य पसन्द किया क्योकि वे मानते थे कि "ज्ञान-प्रदान जैसा उत्तम कार्य अन्य नही है।" इस प्रकार अध्यापन-कार्य को अपना जीवन-ध्येय बना कर वे बम्बई के एलफिन्स्टन स्कूल मे मैट्रिक के छात्रो को गणित और विज्ञान सिखाते थे और आशिक समय के लिए कैथेड्रल कन्या-शाला मे भी पढाने जाते थे। साथ ही, मजगाव के सेन्ट पीटर्स स्कूल मे अग्रेजी की कक्षाएँ चलाते थे।

अध्यापन-कार्य के साथ जुडी हुई गरीबी को स्वेच्छा से अपनाने वाले इस जन्मजात शिक्षक ने अपनी आत्म-कहानी मे लिखा है—"खूब पैसा कमा कर घर-बगले बनाने या चैनभरी जिन्दगी बिताने के विचार मेरे मन मे क्षण भर के लिए भी नही आये। परिवार के पोषण के लिए आवश्यक पैसे कमा कर बाकी का द्रव्य सत्मार्ग मे खर्चने के विचार मेरे मन मे गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करते ही रमने लगे थे।"

आज की तरह उस जमाने मे भी जन्म-दिन, उपनीत-सस्कार, विवाहोत्सव, मृत्यु और श्राद्ध आदि प्रसगो पर बडे-बडे भोज करने के लिये पैसे खर्च करने मे बडप्पन माना जाता था। परन्तु कर्वे ने इन रिवाजो मे पैसा न खर्च करके उनका सदुपयोग अन्य कार्यो मे करने की नवीन दिशा समाज को दिखाई। अपने पुत्र रघुनाथ के जनेऊ का प्रसग मुरुड मे न जा कर उन्होने बम्बई मे ही बडी सादगी के साथ केवल पन्द्रह रुपये खर्च करके सपन्न किया। इस प्रसग पर उन्होने तीन सौ रुपये की राशि स्वय-स्थापित 'मुरुड फड' मे इस शर्त पर प्रदान की कि उसका व्याज स्त्री-शिक्षण मे लगाया जाय। यह फण्ड उनकी ९९ वर्ष की ऊमर तक चालू रहा था। अपनी कुल आमदनी का पाच प्रतिशत वे हमेशा 'मुरुड फण्ड' मे देते रहे। यह पैसा शिक्षण-कार्य मे व्यय किया जाता था।

जब पत्नी राधाबाई का स्वर्गवास हुआ, उनकी उत्तर-क्रिया मे पैसे न खर्च कर उन्होंने पाच सौ रुपये राधाबाई के नाम पर शिक्षा-वृत्ति के लिए 'मुरुड फण्ड' मे ही दिये। इस प्रकार उन्होंने समाज-सुधार का भी आरम्भ किया।

उस जमाने मे विधवाओ की दशा अत्यन्त करुणाजनक थी। वे समाज मे मूक प्राणियो की तरह जीती थी। जीवन पर्यन्त उनके लिए रसोई और बच्चे पालना ही भाग्य मे लिखा होता था। जड धार्मिक मान्यताओ के कारण विधवा-विवाह एक घोर पाप समझा जाता था। ग्यारह वर्ष की उम्र मे ही विधवाओ और त्यक्ताओ की दुर्दशा की तरफ कर्वे का ध्यान गया। उनके पडोस मे एक गरीब और त्यक्ता ब्राह्मणी रहती थी। उसको गाँव का एक लफगा फसा ले गया था। उसके पापकर्म के कारण ग्रामवासियो ने उसे गाँव से बाहर खदेड दिया था। वर्षो पश्चात् उस लडकी को कर्वे ने कोल्हापुर की नरसोबावाडी के मदिर के समीप भीख मागते देखा। उसका तथा उसके बालक का क्या होगा, यह विचार तरुण कर्वे के मन को कपित कर देता था। वास्तव मे, उनका हृदय विधवाओ के प्रति सहानुभूति से भर उठा। उनकी पाठशाला के एक शिक्षक श्री सोमण को भी विधवाओ के प्रति खूब सहानुभूति थी। उनका प्रभाव भी कर्वे के मन पर पडा।

सन् १८८३ मे जब कर्वे कालेज मे पढते थे, लोकमान्य तिलक की उनके अपने पत्र "केसरी" मे विधवाओ की करुण दशा पर एक कविता छपी थी, जिसमे विधवाओ की दशा मे सुधार के लिए अपील की गई थी। कर्वे ने वह कविता कण्ठस्थ कर ली थी और अनेक प्रसगो पर वे उसे गाया करते थे। कर्वे के मन मे विधवाओ के पुनर्जीवन की बात बस गई और वे विधवा-विवाह को एक पुण्य-कर्म मानने लग गये। राधाबाई की मृत्यु के पश्चात् जब पुनर्विवाह करने की बात उनके सामने उपस्थित हुई, तो उन्होने निश्चय कर लिया कि यदि उनका कुटुम्ब विधवा-विवाह की सम्मति देगा तो वे किसी विधवा के साथ शादी करके उसे पुनर्जीवन प्रदान करेगे, अन्यथा वे विवाह करेगे ही नही। इस प्रसग मे उन्होंने अपनी जीवन-कथा मे लिखा है—"वैधव्य से अधिक दु खदायी वस्तु हिन्दू नारी के जीवन मे एक भी नही है। फिर विधुर कुमारिका के साथ विवाह करे, यह तो पशु से भी नीचा होने जैसा है।" अपने इस प्रकार के विचार व्यक्त करके कर्वे ने मा और भाई से विधवा-विवाह के लिए सम्मति प्राप्त की और १८९३ की ११वी मार्च को गोदू बाई नामक बाल-विधवा से विवाह किया। विवाह के बाद गोदू-बाई का नाम आनन्दी बाई रखा गया। गोदूबाई कर्वे के परम मित्र नरहरि बालकृष्ण जोशी की बहन थी। उनका प्रथम विवाह आठ वर्ष की उम्र मे सत्रह वर्ष बडे नथ्थू नामक पुरुष से हुआ था। विवाह के तीन महीने बाद उनका पति बम्बई गया। वही उसका देहान्त हो गया था। इस प्रकार आठवे वर्ष मे ही गोदू बाई विधवा हो गई थी। उसके पश्चात् चौबीस वर्ष की उम्र मे वे अपने भाई नरहरि के साथ पढने के लिए बम्बई आई और वहाँ पडिता रमाबाई की सस्था "शारदा-सदन" मे प्रविष्ट हुई थी। सयोगवशात् कुछ समय पश्चात् "शारदा-सदन" सस्था पूना आ गई। पडिता रमाबाई के साथ गोदूबाई भी पूना आ गई।

सन् १८९१ मे कर्वे को पूना की सुविख्यात शिक्षण-सस्था फर्ग्यूसन कालेज मे गणित के प्राध्यापक-पद का भार सभालने के लिए निमत्रण प्राप्त हुआ। यह निमत्रण उनके पुराने मित्र और सहपाठी श्री गोपालकृष्ण गोखले द्वारा प्राप्त हुआ था। श्री गोखले की सलाह से ही वे डेक्कन एजूकेशन सोसायटी के भी सदस्य बन गये। इस प्रकार कर्वे भारत के उन तपस्वी कर्मवीर सेवको की श्रेणी मे आ गये जिन्होने महाराष्ट्र मे राष्ट्र-जागरण का एक महान् यज्ञ प्रारम्भ किया था, और जिसके अग्रनायको मे विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, लोकमान्य तिलक, प्रिंसिपल आगरकर, आचार्य आपटे, प्रो० गोखले आदि पुण्य-पुरुष थे। पूरे चौबीस वर्ष तक कर्वे ने फर्ग्यूसन कालेज मे यशस्वी रूप मे प्राध्यापक का कार्य किया। इन्ही वर्षों मे उन्होने नारी के पुनरुत्थान को अपना जीवन-ध्येय बनाया और उसके प्रथम कदम के रूप मे गोदूबाई के साथ पुनर्विवाह किया।

उस जमाने मे विधवा-विवाह करनेवाले को ही नही, अपितु उसके सगे-सबधियो को भी विविध कष्ट भोगने पडते थे। पुनर्विवाह करने के कारण कर्वे को ग्राम-वासियो ने अ-ब्राह्मण करार देकर बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया। यदि उनके कुटुम्बी जन उनसे व्यवहार चालू रखे तो उनको भी जात-बिरादरी से बहिष्कृत करने की धमकिया दी गई। अपने कार्य का फल कुटुम्बियो को न भोगना पडे, इस हेतु कर्वे पुनर्विवाह के बाद जब पहली बार अपने ग्राम मुरुड मे आये, तब वे अपने निज के घर मे नही गये। गाव मे ही वे एक अन्य स्थान पर उतरे थे। ग्रामवासियो ने कई प्रस्ताव भी पारित किये, जैसे कर्वे को स्पर्श करके नही बैठना, उनके हाथ का पानी नही पीना, जिस सभा मे वे सम्मिलित हो, वहा नही जाना आदि-आदि। इसके अतिरिक्त मुरुड मे कर्वे द्वारा स्थापित "मुरुड फण्ड" और "स्नेह-सवर्धक मडल" से भी उनको बाहर कर दिया गया।

कर्वे के प्रति इस प्रकार का सामाजिक विरोध देख कर उनके भाई भीखाजी पत बडे विक्षुब्ध हो उठे। उनकी माता और बहन मध्य रात्रि मे, छिप-छिपाकर चोरी से कर्वे से मिलने के लिए उनके पडाव पर जाती थी और मिल कर शीघ्र ही लौट आती थी। इतना ही नही, वे अपनी अति ममतामयी माता की गम्भीर बीमारी तथा अवसान के समय तक भी उनसे खुले तौर पर नही मिल सके थे। सामाजिक बहिष्कार की यह कितनी मार्मिक चोट थी।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति को अपने पैरो पर खडा होना चाहिए, इस विचार के भक्त कर्वे ने अपनी पत्नी आनन्दीबाई को विवाह के तेरह महीने के बाद ही नागपुर डफरिन हास्पिटल मे नर्सिंग की तालीम के लिए भेज दिया था। अपने नन्हें से पुत्र शकर को लेकर वे नागपुर गईं और वहाँ उन्होने नर्सिंग की कला सीखी। वहा से आकर वर्षो तक वे यह काम करती रही।

जहाँ रूढिवादी लोगो ने कर्वे के पुनर्विवाह की निन्दा की, वही सुधार-प्रेमी लोगो ने उसका स्वागत भी किया। अनेक समाचार-पत्रो ने उनकी प्रशसा की, जिससे प्रोत्साहित होकर विधवा-विवाह को प्रोत्साहन देने के लिए कर्वे ने ३१ दिसम्बर १८९३ मे विधवा-पुनर्विवाह मडल की स्थापना की। जिसने विधवा-विवाह

किया हो अथवा जो ऐसे विवाह के प्रीतिभोज मे सम्मिलित हुआ हो, वही उसका सदस्य बन सकता था। विधवा-विवाह के पक्ष मे लोकमत तैयार करने के लिए कर्वे छुट्टियो मे देश के विभिन्न भागो मे भ्रमण करते थे, सार्वजनिक सभाए आयोजित कर व्याख्यान देते थे तथा सामयिक पत्रो मे लेख लिखते थे।

बाद मे कर्वे को लगा कि विधवाओं को शिक्षण प्रदान करके स्वावलम्बी बनाया जाय ताकि वे सुखी बन सकें। अत उन्होने विधवाओ को शिक्षण देने का निश्चय किया। सन् १८९६ मे सदाशिव पेठ, पूना मे उन्होने एक किराये के मकान मे अनाथ बालिकाश्रम की स्थापना की। उन्होने अपनी बचत मे से एक हजार रुपये का दान भी अनाथ बालिकाश्रम को दिया। सन् १८९९ मे अपनी बीमे की पालिसी भी "एक सद्‌गृहस्थ" के नाम से आश्रम के चरणो मे अर्पित कर दी। स्वय आश्रम मे शिक्षण-कार्य अच्छी तरह कर सके, इस भावना से वे कुटुम्ब सहित आश्रम मे ही आकर रहने लगे। सन् १८९९ मे, जब पूना मे महामारी फैल गई, तो आश्रम को पूना से हटा कर हिंगणे नामक स्थान पर ले जाना पडा। वहाँ आश्रम के हितैषी रावबहादुर श्री गणेश गोविन्द गोखले ने आश्रम के लिए छह एकड जमीन कर्वे को भेट मे दे दी। उस जमीन पर सन् १९०० मे उन्होने पाच सौ रुपये व्यय करके एक कुटी बना कर आश्रम की नव-रचना की। आठ विधवाओ के साथ दो कुमारिकाएँ भी विद्यार्थिनी के रूप मे उसमे प्रविष्ट हुई। कर्वे पूना से प्रतिदिन चार मील पैदल चल कर हिंगणे आश्रम मे पढाने जाया करते थे और वहाँ से निकल कर चार मील का रास्ता पैदल चल करके फर्ग्यूसन कालेज मे ठीक समय पर उपस्थित हो जाते थे। उनका दूसरा पुत्र दिनकर जब चार वर्ष का हो गया, तब वे पूना शहर छोड कर हिंगणे के अनाथ बालिकाश्रम मे आकर रहने लगे।

विचित्र बात तो यह थी कि जिस आश्रम के लिए कर्वे इतना त्याग और तप कर रहे थे, उसी मे रहने वाले कार्यकर्त्तागण भी इस बात को भूलने को तैयार नही थे कि कर्वे ने विधवा-विवाह किया था। आश्रम मे उनको तथा आनन्दीबाई को एक ही पक्ति मे भोजनार्थ नही बिठाया जाता था, आश्रम का कोई भी व्यक्ति इन दोनो के हाथ का पानी नही पीता था।

सन् १९०६ मे आश्रम मे कुमारियो की सख्या ७५ हो गई। तब ऐसा नियम बनाया गया कि आश्रम की कुल विद्यार्थिनियो मे कुमारिकाओ की सख्या २५ प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए। इस स्थिति मे जब कर्वे को यह लगा कि कुमारिकाओ के लिए शिक्षा-व्यवस्था की माग बहुत बढ रही है तो उन्होने व्यवस्थापको को सलाह दी कि आश्रम के साथ एक दूसरी सस्था भी जोड देनी चाहिए, जिसमे कुमारिकाएँ पढ सकें। आश्रम के व्यवस्थापक उनकी इस सलाह से सहमत नही हुए परन्तु श्री कर्वे को इस बात की छूट दी गई कि वे चाहे तो खुद इस प्रकार की सस्था स्थापित कर सकते हैं।

कुमारिकाओ को शिक्षण देने के लिए कर्वे ने १९०७ मे नारायण पेठ, पूना मे एक महिला-विद्यालय की स्थापना की। डेक्कन एजेकेशन सोसायटी ने उपयोग के लिए नारायण पेठ मे एक जगह दी और एक छोटे-से मकान मे रगपचमी के दिन

महिला-विद्यालय शुरू हुआ। उसमे छह छात्राएँ प्रविष्ट हुई। इस प्रकार अनाथ बालिकाश्रम के बीज मे से महिला विद्यालय रूपी पौधा उग निकला।

सन् १९११ तक आश्रम और महिला-विद्यालय एक ही स्थान पर थे, पर बाद मे विद्यालय का पृथक मकान बनाने की तैयारी की गई। उसके लिए पचीस हजार रुपये का व्यय कूता गया, जिसके लिए खर्च का एक-तिहाई हिस्सा एन० एम० वाडिया चेरिटी ट्रस्ट द्वारा प्राप्त हुआ। अन्य भी छोटे-बडे कुछ दान मिले। इस प्रकार सन् १९११ के दिसम्बर मे विद्यालय के लिए आश्रम की पृथक सुविधा हो गई।

अब अनाथ बालिकाश्रम तथा महिला-विद्यालय के लिए नि स्वार्थ कार्यकर्त्ताओ की आवश्यकता महसूस होने लगी। श्री मद्भगवद् गीता द्वारा प्रबोधित निष्काम कर्म के लिए जीवन देने वाले कार्यकर्त्ताओ को प्राप्त करने के लिए १९०८ मे कर्वे ने एक निष्काम कर्म-मठ स्थापित किया। कर्वे का ऐसा आग्रह था कि इस मठ की सद्रचना प्रधानतया महिलाए ही स्वीकार करे। वे खूब सादा और सेवाभावी जीवन व्यतीत करे। मठ मे कुछ ही सदस्य शामिल हुए होगे कि आलोचक उन पर टूट पडे और इस प्रकार निष्काम कर्ममठ को अनाथ बालिकाश्रम और महिला विद्यालय मे समाविष्ट कर दिया गया।

निष्काम कर्म-मठ की स्थापना के पश्चात् श्री कर्वे एक सच्चे ऋषि की तरह वानप्रस्थाश्रम का जीवन जीने लगे। अपनी आय में से आवश्यकता के बिना एक पाई भी अधिक नही लेते थे। सन् १९१४ मे वे डेक्कन एजुकेशन सोसायटी और फर्ग्यूसन कालेज के कार्यो से भी निवृत्त हो गये।

सन् १९१५ के अगस्त महीने मे श्री कर्वे के हाथ मे एक पत्रिका आई, जिसमे जापान मे १९०० मे स्थापित एक महिला-विश्वविद्यालय का परिचय था। श्री कर्वे इसी प्रकार के एक विश्वविद्यालय का स्वप्न पिछले दस वर्षों से ले रहे थे। उन्होंने महिला कालेज और महिला विद्यापीठ स्थापित करने का अपना विचार अनाथ बालिकाश्रम की व्यवस्था समिति के समक्ष प्रस्तुत किया। परन्तु उस समय उनके मित्रो और हितैषियो ने इस बात को जल्दबाजी समझा क्योकि अनाथ बालिका-श्रम को स्थापित हुए बीस वर्ष बीत चुके थे, तो भी उसमे से एक भी विद्यार्थिनी मैट्रिक पास होकर नही निकली थी। अत व्यवस्था समिति इस प्रस्ताव से सहमत नही हो सकी। तथापि श्री कर्वे ने दृढतापूर्वक कहा—"पूरी मेहनत करने पर भी यदि किसी कार्य मे सफलता न मिले, तो उसमे किसी प्रकार की लज्जा नही अनुभव करनी चाहिए।"

जब सन् १९१५ मे राष्ट्रीय सामाजिक परिषद् का अधिवेशन बम्बई मे उनकी अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ तो उसके अध्यक्ष पद से उन्होने महाराष्ट्र के लिए एक महिला विद्यापीठ स्थापित करने के विषय मे अपने विचार प्रस्तुत किये। दृढता और स्पष्टता से उन्होंने निवेदन किया कि नारी का कार्य-क्षेत्र पुरुष से पृथक और अधिक महत्व का है, अत महिलाओ के लिए विशेष और पृथक प्रकार की शिक्षा-दीक्षा की बहुत आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षण का माध्यम मातृभाषा

होने पर स्वाभाविक रूप से स्त्रिया योग्यतापूर्वक राष्ट्र के उत्थान मे बहुत सहायक हो सकती हैं।

महिला विद्यापीठ विषयक श्री कर्वे के उक्त विचार महात्मा गाधी को बहुत पसन्द आये, खास तौर पर मातृभाषा मे शिक्षण देने की बात। उन्होने विद्यापीठ स्थापित करने के प्रस्ताव का समर्थन किया और ऐसे विद्यापीठ के लिए वार्षिक दस रुपये चन्दा देना खुद गाधीजी ने स्वीकार किया। श्रीमती एनी बीसेन्ट ने भी १५०) रुपये का दान घोषित किया। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भविष्य मे ऐसे विद्यापीठ को सरकार द्वारा मान्य करा लेने का परामर्श दिया।

दूसरी ओर इस विचार के विरोधी भी पर्याप्त थे। बहुत से आलोचको ने इस योजना का विरोध करते हुए कहा कि मातृभाषा मे दिया जानेवाला उच्च शिक्षण सर्वथा निष्फल ही रहेगा। अनाथ बालिकाश्रम मे बीस वर्ष के अरसे मे एक भी छात्रा मैट्रिक नही पास कर सकी, इस बात को देखते हुए गणिताचार्य प्रो० परांजपे ने श्री कर्वे को खूब समझाया। श्री परांजपे की दृष्टि मे कर्वे का यह कदम अधकार मे छलाग मारने जैसा था, परन्तु सामान्यतया किसी का भी मन न दुखाने वाले श्री कर्वे सिद्धात के विषय मे किसी से सुलह नही करते थे।

३ जून सन् १९१६ को श्री कर्वे ने पूना मे भारत का प्रथम महिला-विद्यापीठ स्थापित किया। उस समय उनकी आयु ६० वर्ष की थी। उस विद्यापीठ की प्रथम विद्यासभा (सीनेट) की बैठक मे इस विद्यापीठ के प्रथम कुलपति महामनीषि डा० रामकृष्ण गोपाल भडारकर बनाये गये। गणिताचार्य श्री रघुनाथ पुरुषोत्तम पराजपे उप-कुलपति नियुक्त हुए। महिला महाविद्यालय के प्रथम प्रिंसिपल श्री कर्वे खुद बने। प्रथम वर्ष मे हिंगणे महिलाश्रम की ही चार छात्राए प्रविष्ट हुई। सन् १९१९ मे महिला विश्वविद्यालय की प्रथम स्नातिका (ग्रेजुएट) होकर श्रीमती बाऊबाई शेवडे निकली। अप्रैल सन् १९७२ तक इस विद्यापीठ से शिक्षा-लाभ पा कर निकलने वाली बहनो की सख्या इस प्रकार थी —

कला विभाग	१९,८२०
गृहविज्ञान	९१८
शिक्षण शास्त्र	४,९४४
नर्सिंग	९७
कुल	२५,७७९

श्री कर्वे की इस सारी योजना और प्रवृत्ति से प्रसन्न होकर बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति तथा शिक्षा-प्रेमी सर विट्ठलदास दामोदर थैकरसी ने इस विद्यापीठ को पन्द्रह लाख रुपये का दान दिया। यह दान उन्होने अपनी पूज्य माताजी की स्मृति मे प्रदान किया था, अत इस विद्यापीठ का नाम "श्रीमती नाथीबाई दामोदर थैकरसी भारतीय महिला विद्यापीठ" (एस० एन० डी० टी० इडियन विमेन्स यूनिवर्सिटी) रखा गया। पूना, बम्बई, सतारा, सागली, बेलगाम, सूरत, बडौदा,

अहमदाबाद, भावनगर, सुरेन्द्रनगर आदि अनेक नगरो के महिला कालेज इस विद्यापीठ मे सम्बद्ध है। अनाथ बालिकाश्रम के नन्हे मे बीज मे से महिला विद्यालय का पौधा उग निकला और वही आगे जाकर महिला विश्वविद्यालय के रूप मे महान् वट वृक्ष बन गया और महिलाओ की शिक्षा का प्रधान केन्द्र।

१८ अप्रैल, सन् १९२८ को श्री कर्वे की ७० वी जयती मनाई गई। उस समय श्री कर्वे ने जो उद्गार प्रकट किये थे, वे इस प्रकार है

"कुदरत मुझे राष्ट्रीय उत्कर्ष साधने का मनोबल और स्वार्पण की शक्ति प्रदान करे। कदाचित् मैं अपने स्वप्नो को इसी जीवन मे साकार हुआ न भी देख पाऊँ, परन्तु यदि पुनर्जन्म की बात मे कुछ भी तथ्य हो तो मैं याचना करूँगा कि मुझे फिर इसी देश मे जन्म प्राप्त हो और मैं अपना समस्त जीवन स्त्रियो के उत्कर्ष मे लगा दूँ। जब मेरा यह ध्येय पूरा हो जायगा तो मैं प्रसन्नतापूर्वक पचमहाभूतो मे मिल जाने के लिए तैयार रहूँगा।"

एक बार जब कर्वे से किसी ने प्रश्न किया—"आप अपना पुनर्जीवन किस प्रकार जीना पसन्द करेंगे?" तब उन्होने यही जवाब दिया था—"जिस प्रकार मैं जीया हूँ, उसमे जरा भी फेरफार किये बिना, ठीक उसी प्रकार।"

स्वाधीनता प्राप्त होने पर इस विद्यापीठ की उपयोगिता और सफलता देख कर बम्बई राज्य की सरकार ने इसको मान्यता प्रदान की और बाद मे सन् १९५१ मे भारत सरकार ने विश्व-विद्यालय के रूप मे इसे मान्य किया।

ऋषि-कल्प श्री कर्वे की नारी-उद्धार की महान् जीवन-साधना का समादर करते हुए हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी, महिला विद्यापीठ, पूना, और बम्बई के विश्वविद्यालय ने उनको डाक्टरेट की उपाधियाँ प्रदान की। और, सन् १९५७ मे भारत सरकार ने उनको पद्मविभूषण की उपाधि से अलकृत किया। सन् १९५८ मे जब सारे देश मे उनकी जन्म-शताब्दी मनाई गई, तो भारत सरकार ने उनको "भारतरत्न" की सर्वोच्च पदवी से भी समादृत किया।

इस अवसर पर अपने कार्य के विषय मे महर्षि कर्वे ने मे नम्रता पूर्वक कहा— "आप लोगो द्वारा की गई प्रशसा की अपेक्षा मैं अपने व्यक्तित्व को अधिक अच्छी तरह जानता हूँ। देश की वरिष्ठ पीढी के महापुरुषो के सामने तो मैं वामन जैसा हूँ। मेरे कार्यो मे कुछ भी उल्लेखनीय नही है। अपनी सफलता मेरे सयोगो और अवसरो के आधीन रही है। मेरी जैसी सफलता कोई भी तरुण स्त्री-पुरुष प्राप्त कर सकता है, यदि उसमे सामान्य सूझ-बूझ और कौशल हो।"

— o —

"राष्ट्र के उत्कर्ष के लिये देश की तमाम नारियाँ शिक्षित होनी चाहिए।"

—महर्षि कर्वे

श्री सत्यदेव विद्यालकार द्वारा लिखित
जीवन-चरित्र से सकलित

लाला देवराजजी का कर्तृत्व

सदियो से स्त्री-जाति के प्रति हो रहे घोर अन्याय और पक्षपातपूर्ण व्यवहार, सामाजिक अत्याचार और धार्मिक अनाचार के विरुद्ध प्रबल आवाज उठाने वाले कर्मवीर लाला देवराजजी का जन्म जालन्धर के एक धनधान्य से सम्पन्न राजभक्त सौंधी परिवार मे ३ मार्च १८६० ई० को हुआ था।

लाला देवराज के विद्यार्थी जीवन का प्रारम्भ जालन्धर मे मियाजी के मदरसे से हुआ। उसके बाद कुछ दिन वे मिशन स्कूल मे पढे परन्तु अधिक समय होशियारपुर के स्कूल मे ही व्यतीत हुआ। उनकी जो थोडी बहुत शिक्षा हुई, वह वही हुई। पढाई मे वे खूब मन लगाते थे, अपनी श्रेणी मे ही नही किन्तु सारे स्कूल मे वे सबसे अधिक होनहार समझे जाते थे।

स्त्री-जाति के प्रति बिगडी हुई भावना ने यो तो सर्वत्र ही परन्तु भारतीय समाज मे विशेषत उसकी दशा अत्यन्त दयनीय बना दी थी। स्त्री के व्यक्तित्व और अस्तित्व की कोई प्रतिष्ठा समाज की नजरो मे शेष नही रह गई थी। समाज-सुधारको के मार्ग मे रूढि, परम्परा, सामाजिक मर्यादा एव धार्मिक अन्धविश्वास के अतिरिक्त कुल के झूठे बडप्पन के विचार भी रोडा अटकाते थे।

उस समय घर मे कन्या पैदा होने पर मातम छा जाता था, उसके लालन-पालन के लिए किए जाने वाले व्यय को व्यर्थ का भार समझा जाता था और उसको शिक्षित करने की तो कल्पना भी किसी के हृदय मे पैदा नही होती थी। ईसाइयो ने स्त्री-शिक्षा के लिए नही, किन्तु ईसायत के प्रचार के लिए कही-कही छोटी-मोटी कन्या-पाठशालाए स्थापित की थी, जिनमे से एक जालन्धर मे भी थी। श्री मुन्शीरामजी ने उन दिनो की एक घटना का उल्लेख अपनी डायरी मे किया है। वे लिखते है—"जब मैं शाम को कचहरी से लौट कर घर आया, तो वेदकुमारी दौडी आई और जो भजन पाठशाला से सीख कर आई थी, वह सुनाने लगी—'इक बार ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल? ईसा मेरा राम रमैय्या, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया'। मैं बहुत चौकन्ना हुआ। पूछने पर पता लगा कि आर्य जाति की पुत्रियो को अपने शास्त्रो की निन्दा करनी भी सिखलाई जाती है। निश्चय किया कि अपनी जाति की खुद की पुत्री-पाठशाला अवश्य खोलनी चाहिए। तीसरे दिन रविवार को आर्य समाज मे कुछ लोगो से इस बारे मे चर्चा हुई और २६ दिसम्बर १८८६ को जालन्धर आर्य समाज की अन्तरग सभा मे यह प्रस्ताव पास हुआ कि

एक कन्या पाठशाला खोली जाए, जिसके लिए एक रुपया मासिक खर्च करना मजूर है। देवराज जी की माता काहनदेवी जी के घर मे माई लाडी, जो पहिले ईसाई स्कूल मे थी, पढाती रही और इसी का नाम कन्या पाठशाला रहा। थोडे दिनो बाद छात्राओ के न मिलने से यह बन्द हो गयी।

१८८६ मे फिर दूसरी वार यत्न किया गया परन्तु बात फिर भी सिरे न चढी। ५ जुलाई १८९१ मे तीसरी वार फिर लग कर प्रयास किया गया। १२ फीट लम्बे और १० फीट चौडे कमरे मे आठ छात्राओ के साथ काम प्रारम्भ किया गया। एक अध्यापिका और अध्यापक प० श्रीपति जी को शिक्षक नियुक्त किया गया। मासिक खर्च दस रुपए बाधा गया। यह यत्न सफल रहा। १८९२ की आर्य समाज (जालन्धर) की वार्षिक रिपोर्ट से पता चलता है कि विद्यालय ने अच्छी उन्नति की। उसमे ५५ कन्याए पढती थी। बहुत-सी कन्याओ ने आभूषणो को निन्दनीय समझ कर उतार दिया था। प्रायमरी पाठशाला के सफलतापूर्ण कार्य मे प्रेरित और उत्साहित होकर जालधर आर्य समाज ने कन्या महाविद्यालय स्थापित करने का निश्चय किया जिसके लिए लाला देवराज जी ने अपना तन, मन और धन सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। १५ अप्रैल १८९० को लाला मुन्शीराम और लाला देवराज ने स्त्री-शिक्षा के लिए योजना तैयार करके उसे भारत-विख्यात विशेषज्ञो के पास सम्मति के लिए भेजा। निम्नलिखित सज्जनो ने अपनी सम्मति से आर्य समाज को उपकृत किया—जस्टिस महादेव गोविन्द रानाडे, इडियन मिरर के सम्पादक श्री नरेन्द्रनाथ सेन, श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, पडिता रमाबाई, सीनियर इन्सपैक्टर आफ स्कूलस, सरदार रामसिंह, लाला लालचन्द्र एम० ए०, महात्मा हसराज, श्रीमती हरदेवी जी तथा मैसूर राज्य के दीवान श्री आयगर। प्राय सभी ने योजना को पसन्द किया परन्तु जब आर्थिक सहायता के लिए अपील प्रकाशित हुई, तो विरोध का तूफान उमड पडा। और तो और, स्वनामधन्य लाला लाजपत-राय और महात्मा हसराज जी ने भी विरोध मे कलम उठाई और कई लेख लिखे। परन्तु लाला देवराज जी के तपोमय जीवन के आगे सारे विरोध फीके पड गये। १८९३ मे डेरागाजीखान के सुप्रसिद्ध आर्य हकीम चिम्मनलालजी ने अपनी लडकी और बहू को जालन्धर विद्याध्ययन के लिए भेज कर सभी के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। अन्य प्रदेशो से भी कन्याएँ आनी प्रारम्भ हो गईं। परिणाम यह हुआ कि १४ जून १८९६ को कन्या पाठशाला ने कन्या विद्यालय का नाम धारण कर लिया। विद्यालय की पहली आचार्या पडित सावित्री देवी जी १९०४-५ मे विद्यालय की ओर से प्रचार के लिए दक्षिण की ओर गईं। वहाँ आपने स्वनामधन्य महर्षि कर्वे के विधवा-आश्रम का निरीक्षण किया। वहा से आप अपने महाविद्यालय के लिए नई स्फूर्ति लेकर आईं। विद्यालय ने एक और यशस्वी काम जोड लिया और वह था विवाहिता और बडी आयु की स्त्रियो और विधवाओ की शिक्षा। इसका श्रीगणेश देवराज जी ने अपने घर से ही किया था। उनकी पत्नी श्रीमती सुन्दरी देवी रात के १२-१२ बजे तक पढा करती थी और माताजी मे भी पढने के लिए ऐसी ही रुचि पैदा हो चुकी थी।

हिन्दी ही सारी पढाई का माध्यम थी। इसलिये हिन्दी के साहित्य की विशेष आवश्यकता थी। अक्षर-दीपिका से लेकर आठवीं श्रेणी तक के लिए देवराज जी ने स्वय ही पुस्तकें लिखी। आपकी सबसे पहली पुस्तक 'पाठशाला की कन्या' थी। पुस्तकों की प्रकाशित सख्या से उनकी लोकप्रियता एव प्रचार का अनुमान सहज मे लगता है। प्रतियों की कुछ सख्यायें हैं 'पाठशाला की कन्या'—२१०००, पहली पाठावली—७०५०, दूसरी पाठावली—४३५००, सुबोध कन्या—१७०००, इत्यादि। पजाब सरकार ने उनकी हरेक पुस्तक की हजारों प्रतियाँ खरीदी तथा १६०४ मे उनको रु० २००) का पारितोषिक भी दिया।

सन् १६०६ मे लाहौर मे कांग्रेस के समय होने वाली इडियन नेशनल सोशियल कान्फ्रेंस के लालाजी स्वागताध्यक्ष चुने गये। उस समय जो भाषण उन्होंने दिया था, वह बहुत प्रभावशाली एव योग्यतापूर्ण था। उसमे उन्होंने स्त्री-शिक्षा पर बहुत बल दिया था।

महाविद्यालय मे १६३२ मे उनकी ७२ वी वर्ष-गाठ मनाई जाने का आयोजन किया गया। उसमे सम्मिलित होने के लिए उनसे आग्रह किया गया। उत्तर मे उन्होंने पत्र मे लिखा—"मेरी मा ने मुझे जिस काम मे लगाया था, मैं यथाशक्ति उसमे लगा रहा और जो थोडी-सी सेवा कर सका, वह सब मा के ही आशीर्वाद का फल है। इसलिए इसमे मेरा कुछ नही। सब कुछ भगवान् या मा का है। इसलिए उनका ही यश गाओ, मेरा नही।"

सस्था के सचालक को अपना जीवन उसकी नीव मे, खेत मे डाले हुए बीज की तरह गला देना होता है। लाला देवराज ने कन्या विद्यालय के लिए ऐसा ही किया। कन्याओं को पढाने, उनकी देख-भाल करने, उनके लिए पुस्तके लिखने, सस्था के लिए फण्ड जमा करने, विद्यालय मे पेड-पौधे लगाने आदि छोटे-बडे सब काम उन्होंने स्वय ही किए। वे सस्था के सस्थापक तो थे ही, सचालक, सम्वर्धक और सम्पादक भी थे। उनके लिए विद्यालय केवल एक सस्था नही था बल्कि एक महान् मिशन था। उस मिशन के पीछे उन्होंने अपना सारा जीवन न्योछावर कर दिया था। ससार जिसे वैभव कहता और समझता है, वह सब उनको जन्म के साथ ही प्राप्त हुआ था। वे बिल्कुल निश्चित हो कर सासारिक दृष्टि से सुखी जीवन बिता सकते थे। परन्तु जिसके हृदय मे दूसरो की दीन-हीन अवस्था के लिए दर्द पैदा हो जाए और दूसरो की गरीबी, सकट एव दुरवस्था को दूर करने का जो सकल्प कर ले, वह ऐसा सुखी जीवन कैसे व्यतीत कर सकता है? महाविद्यालय की स्थापना के दिन से ही उन्होंने जिस पूजा मे अपने को लगाया, उसीके आजीवन पुजारी बने रहे। उनकी पूजा सफल और सार्थक रही। उसमे उन्होंने अपने इष्ट का दर्शन कर मुह-मागा वरदान पाया। विद्यालय की कीर्ति चहुँ ओर फैलने लगी और यश पताका सर्वत्र फहराने लगी। श्रीयुत् गोखले प्रेसीडेण्ट पटेल, श्री अब्बास तय्यब जी, देशबन्धु चित्तरजनदास, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय, आसाम के श्री टी० आर० फूकन, श्री विष्णु दिगम्बर, और स्वर्गीय सर साहबजी महाराज आनन्दस्वरूप आदि महा-मनीषियों ने कन्या

विद्यालय की भूरि-भूरि प्रशसा की। बगाल के सुप्रसिद्ध नेता श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने अपने पत्र 'सर्वेण्ट' मे बिल्कुल ठीक लिखा था—"भारत मे आज चारो ओर स्त्रियो को राष्ट्रीय शिक्षा देने की चर्चा है। पूना मे एक महिला विश्व-विद्यालय खुला है—परन्तु हमे नही मालूम कि वहाँ राष्ट्रीय शिक्षा के लिए किस आदर्श का अनुकरण किया जाएगा। हा, जालन्धर महाविद्यालय के बारे मे हम यह जरूर कह सकते हैं कि वहाँ वस्तुत एक महान् राष्ट्रीय विद्यालय की नीव रखी जा रही है। हम विद्यालय की इस प्रगति और महत्वाकाक्षा के लिए लाला देवराज जी को बधाई देते है।" महात्मा गाधी ने १३ नवम्बर सन् १९२० को अहमदाबाद मे गुजरात विद्यापीठ का उद्घाटन करते हुए कहा था—"गुजरात नेशनल कालेज राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का पहला कालेज है। यह सब कन्या महाविद्यालय, जालन्धर और हरिद्वार के गुरुकुल कागडी का उदाहरण सामने रख कर किया जा रहा है। मुझे आशा है कि यह गुजरात मे एक आदर्श कालेज का स्थान प्राप्त करेगा।"

७५ वर्ष की दीर्घ आयु के बाद १७ अप्रैल १९३५ की आधी रात को हृदय गति रुक जाने से लाला देवराज जी का अकस्मात अत हो गया।

जो कन्या पाठशाला एक रुपया मासिक के व्यय से प्रारम्भ की गई थी, वह आज एक शानदार महाविद्यालय के रूप मे १३०० से अधिक देश-विदेश की छात्राओ को एम० ए० तक प्रशिक्षित करने का पुण्य कमा रही है। कन्या विद्यालय का शानदार भवन और उसके द्वारा किया जा रहा विद्या-दान लाला देवराजजी की अक्षुण्ण कीर्ति का निरन्तर गान कर रहा है और करता रहेगा।

—— ० ——

गाधी-विचार-धारा के
गहन चिन्तक और व्याख्याकार,

दादा धर्माधिकारी

स्त्री-शिक्षा का यक्ष-प्रश्न

स्त्रियो के लिये विविक्त शिक्षा हो या सह-शिक्षा, यह प्रश्न एक तरह से अब गतकालीन हो चुका है। शिक्षण-शास्त्रियो ने सह-शिक्षा के पक्ष मे निर्णय दे दिया है और वर्षो से उसका उपक्रम भी चल रहा है। परन्तु कुछ ऐसा जान पडता है कि सह-शिक्षा के सारे फलितार्थो का पूरा-पूरा विचार कर के यह कदम नही उठाया गया। इसलिये लडकियो के बहुत से अभिभावक सह-शिक्षा से उत्पन्न समस्याओ को देख कर विस्मित, भयभीत और हतबुद्धि हो रहे है। स्त्री-शिक्षा का रास्ता तो प्रशस्त हो गया, पर उससे उत्पन्न समस्याओ का सामना करने का दायित्व अब उन स्त्रियो पर है, जिन्होंने सह-शिक्षा का प्रतिपादन किया था। स्त्रियो को शिक्षा से वचित न रखा जाय, उनके जीवन और शिक्षण का क्षेत्र सकीर्ण तथा परिमित न हो, यह तो हम भी चाहते थे। परन्तु स्त्री के स्वावलबन से उत्पन्न समस्याओ का समाधान अब शायद उदार से उदार और पवित्र से पवित्र पुरुष भी पूरा-पूरा नही कर पायेगा।

आज दो प्रकार के दृश्य दिखाई देते है। एक दृश्य है—चौराहो पर, क्रीडागणो मे, सिनेमाघरो मे और उद्यानो मे डरती हुई, शरमाती हुई, सिकुडती हुई आधुनिक वेश-भूषा से मडित ललनाओ और उनको सताने मे ही जीवन का लुत्फ और पुरुषार्थ मानने वाले आक्रमणशील पुरुषो का। दूसरा दृश्य है—पर्वतो के हिमाच्छादित शिखरो की ऊँचाई नापने के लिये, चन्द्रलोक की यात्रा करने के लिए और मानवीय अधिकारो के सरक्षणार्थ तीव्र से तीव्र सघर्ष के लिए नित्य तत्पर पराक्रमशालिनी महिलाओ का। ये दोनो दृश्य आज जिस परिमाण मे दृष्टिगोचर होते हैं, वे स्त्री-शिक्षा और सह-शिक्षा के ही परिणाम है। हम अब चाहते यह है कि पहला दृश्य लुप्त हो जाये, और दूसरा दृश्य उत्तरोत्तर अधिक मात्रा मे दिखाई दे।

इस दृष्टि से विद्यालयो और विश्वविद्यालयो मे आज जो सह-जीवन प्रचलित है, उसका विचार करना आवश्यक है। अब तो माग यह भी है कि लडके और लडकियो के छात्रावास अलग-अलग नही होने चाहिये। यह माग केवल लडको की

ही नही है, वरन् लडकिया भी इस माग को लेकर अग्रसर हो रही हैं। इसके भी कुछ विचित्र परिणाम हुए हैं। जो छात्रावास और पाठशालाए या महाविद्यालय केवल लडकियो के लिए ही है, उनको लडको के अतिक्रमण से बचाने के लिए पुलिस और फौज का सरक्षण खोजना पडता है। दूसरी ओर जहाँ-जहाँ उन्मुक्त सहजीवन की अनुमति है, वहाँ आज तक की अवरुद्ध कामुकता का स्वाभाविक विस्फोट हो रहा है। यह आज तक के दमन की प्रतिक्रिया है। उसकी इष्टा-निष्टता के विषय मे कोई मत व्यक्त करना यहाँ उद्दिष्ट नही है। यहाँ तो इतना ही विचार करना है कि उन्मुक्त शरीर-सबध का स्त्री की भूमिका और जीवन पर किस प्रकार का परिणाम होगा? आरम्भ मे शारीरिकता का उद्रेक तो होगा, और वह स्वाभाविक है। लेकिन शारीरिकता का यह अनिवार्य स्वभाव है कि वह दूसरे के शरीर को अपने आनन्द और उपभोग का साधन बनाना चाहती है। इसमे से आक्रमणशीलता का जन्म होता है। आक्रमणशीलता के वातावरण मे स्त्री की स्वतत्रता का कोई आश्वासन नही रह जाता। उसका शरीर पवित्र और अना-क्रमणीय बना रहे, इसका भरोसा कैसे हो सकता है? तरुण स्त्री मे यह आत्म-विश्वास कैसे पैदा हो? स्त्री की भूमिका की दृष्टि से स्त्री-शिक्षा के सदर्भ मे यह जीवन-मरण का प्रश्न है। उसका शरीर यदि अनाक्रमणीय नही रह सकता, तो उसकी मानवता खडित हो जाती है। स्त्री-शिक्षा ऐसे मुकाम पर आ पहुची है, जहा इस प्रश्न का विचार अनिवार्य हो गया है। स्त्री के लिये यह तो आत्म-नाश का प्रसग है। मेरी समझ मे स्त्री-शिक्षा मे रुचि रखनेवाले सभी मानवनिष्ठ व्यक्तियो को गम्भीरतापूर्वक इस समस्या का समाधान खोजना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि शिक्षण के फलस्वरूप समाज मे ऐसा मूल्य या सस्कार बद्धमूल हो जाना चाहिये, जिसके प्रभाव से स्त्री की मर्यादा अभेद्य रहे अर्थात् उसे न तो पुरुष का सरक्षण खोजना पडे, न समाज का। सरक्षण की आवश्यकता समाज के सदस्य के नाते जितनी पुरुष को है, उससे अधिक स्त्री को नही होनी चाहिये। उसकी शरीर-रचना के कारण एक स्वायत्त व्यक्ति के रूप मे उसका जीवन दुर्वह नही होना चाहिये। पुराने मूल्यो की तरफ लौटना सभव और व्यवहार्य नही है, वाछित भी नही है। परन्तु स्त्री की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने की दृष्टि से एक नये वैज्ञानिक सामाजिक मूल्य के रूप मे ब्रह्मचर्य का नव-सस्करण आज की अनिवार्य आवश्यकता है। प्रश्न है—क्या आज मुमुक्ष याने विमोचन की आकाक्षिणी लडकी इस नये मूल्य की स्थापना का पुरुषार्थ करेगी?

हाल ही मे "टाइम्स आफ इडिया" के एक रविवारीय सस्करण ("इलस्ट्रेटेड वीकली" नही) मे एक लेख निकला है—"रेप इन परमिसिव सोसाइटी"। जहा स्त्री-पुरुष सबध स्वैर और स्वच्छद है, वहा भी बलात्कार होते हैं। बल्कि, बला-त्कारो की सख्या कुछ बढ ही रही है। लेखक ने इसके कारणो की मीमासा करते हुए कहा है कि पुरुष मे सदियो से आक्रमण और विजिगीषा का सस्कार रहा है। वह स्त्री को जीतना और अपनी आधीनता मे रखना चाहता है। इसलिए जहा स्त्री की तरफ से कोई अवरोध या अनिच्छा न हो, वहा उसे विजेता का आनन्द

नही मिलता। यह पुरुष का सस्कार ही है, स्वभाव नही है। इसके पीछे एक प्राकृतिक तथ्य है। वह यह है कि स्त्री-पुरुष शरीर-सबध मे अभिक्रम (इनीशिएटिव) स्त्री के पास नही है, पुरुष के शरीर का उपभोग उसकी समति के बिना हो ही नही सकता। स्त्री पर बलात्कार हो सकता है और उस पर अवाछित मातृत्व का सकट भी आ सकता है। आधुनिक कृत्रिम उपायो से वह गर्भ-धारण के सकट से तो बच सकती है परन्तु बलात्कार से बचने का कोई उपाय उसके पास नही है। बलात्कार के परिणामो से बचने के उपाय वह खोज सकती है। परन्तु बलात्कार अपने-आप मे एक ऐसी घटना है, जो मानवीय व्यक्ति के नाते उसकी प्रतिष्ठा नष्ट कर देती है।

सुना है, आधुनिक तरुण-तरुणियो के कुछ ऐसे उपनिवेश है, जहाँ स्त्री-पुरुषो मे मुक्त शरीर-सबध है। अर्थात् इच्छानुसार किसी भी स्त्री या पुरुष के लिए एक-दूसरे से शरीर-सबध विहित माना गया है। परन्तु वहा भी किसी उन्मुक्त और उच्छृखल पुरुष के आक्रमण से बचने का स्त्री के पास क्या उपाय है? इस प्रकार के समाज मे व्यभिचार का अन्त हो सकता है, मगर बलात्कार का नही।

स्त्री को शस्त्र-विद्या से अवगत करा देने से यह प्रश्न हल हो जायगा, यह धारणा भी भ्रातिमूलक है। शस्त्रधारी स्त्री भी तो सशस्त्र सघर्ष मे परास्त हो सकती है, जैसे एक शस्त्रधारी पुरुष परास्त होता है। उसके बाद उसकी क्या स्थिति होगी? शस्त्र स्त्री को आत्म-सरक्षण मे एक हद तक सहायक हो सकता है, तथापि मूल समस्या रह ही जाती है।

समाज मे स्त्री की प्रतिष्ठा और सुरक्षितता पुरुष की सास्कृतिक प्रगति की द्योतक है। इसलिए पुरुष के लिए आत्म-विकास की यह अनिवार्य शर्त है कि समाज मे स्त्री सुरक्षित रहे और किसी पुरुष के आक्रमण का शिकार बनने का सकट उस पर न आये। परन्तु इसका तो अर्थ यह हुआ कि स्त्री की स्वतत्रता सदैव पुरुष की सज्जनता और उदारता पर ही निर्भर रहेगी। जब तक स्त्री किसी भी अर्थ मे पुरुष-निर्भर रहेगी, तब तक उसे मानवीय व्यक्ति का गौरव कदापि प्राप्त नही हो सकता।

अमेरिका मे और अन्यत्र भी 'वीमेन्स लिब' (स्त्री की उन्मुक्तता) के आन्दोलन ने जो भूमिका अपनायी है, वह प्रतिक्रिया-जनित है। पुरुष-निर्भरता से बचने के लिए पुरुष-बहिष्कार की नीति से स्त्री की मानवता क्षीण ही होगी। वह तो व्यावर्तक नीति है। उसमे व्यवच्छेद है, सबध नही। मानवीय जीवन का सत्व सबध मे है, विच्छेद मे नही, "रिलेशनशिप" मे है, "एलिनियेशन" मे नही। स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के साथ रहना है। और, बराबरी के नाते। आकाक्षा स्त्री-पुरुष की समानता की नही, बराबरी (तुल्यता) की है। लेकिन स्त्री जब तक इन सबधो मे पुरुष-निर्भर रहेगी, तब तक उसे इसान की शान से, रुतबे से महरूम ही रहना पडेगा।

मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस समस्या का समाधान खोजना किसी भी पुरुष के वश की बात नही है, चाहे वह पुरुष कितना ही श्रेष्ठ और पवित्र क्यो न हो। इसका समाधान किसी अद्भुत प्रतिभाशाली स्त्री को ही खोजना होगा। आवश्यकता यह है कि वह समाधान सामान्य स्त्री के लिए भी उपयुक्त हो।

भारत की प्रधान मंत्री

श्रीमती इदिरा गाधी

भारतीय नारी : नये अधिकार, नये उत्तरदायित्व

हम भारत की नारियाँ वास्तव मे सौभाग्यशालिनी है कि हमारे पक्ष की रहनुमाई के लिए राममोहन राय, विद्यासागर, महात्मा गांधी, मेरे पिता जवाहरलाल नेहरू और महर्षि कर्वे जैसी विभूतियाँ हमे उपलब्ध रही। आजादी मिलने के बाद नेहरूजी के उदार मस्तिष्क मे समाज के नव-निर्माण की कल्पना आई और उन्होने सामाजिक परिवर्तन को एक दिशा दी, जिससे स्त्रियाँ आर्थिक और सास्कृतिक क्षेत्र मे आगे आई। मेरा विश्वास है कि ऐसा महज भावुकता के कारण नही हुआ, वल्कि भारतीय नारी की योग्यता तथा कार्य की स्वीकृति के रूप मे हुआ। भारत की स्त्रियो ने पुरुपो के विरुद्ध कोई आन्दोलन नही किया। समान ध्येय मे मदद-गार होने के लिये वे पुरुपो के साथ कधे-से-कधे मिलाकर काम करती रही।

यह मेरे लिए वडे भाग्य की बात थी कि इस तूफान को मैने देखा और उसमे हिस्सा लिया। मुझे अव भी याद आता है कि भारत की स्त्रियो की मुक्ति के लिए मेरी माँ की कितनी तीव्र इच्छा थी और उसके लिए उन्होने लगातार कितनी मेहनत की, जिससे स्त्रियो को अधिक भरी-पूरी और काम की जिन्दगी विताने का ज्यादा-से-ज्यादा मौका मिले। उस जमाने मे और उन परिस्थितियो मे प्रतिक्रियावादी गढ का मोर्चा लेना आसान बात नही थी।

इस तरह भारतीय नारी-समाज के अधिकार एक विद्रोही, आग्रही तथा विस्तार-वादी स्त्रीत्व द्वारा पुरुष के सस्थापित अधिकार के विरुद्ध सघर्ष के नतीजे के रूप मे नही मिले, जैसा कि पश्चिमी देशो मे हुआ। भारत मे ये अधिकार डेढ सौ वर्ष की सामाजिक क्राति की उपज थे।

जिन देशो मे स्त्रियो को अपने अधिकारो के लिए लडना पडा, उन देशो मे पुरुषो के लिए यह आसान था कि वे स्त्रियो की स्वतत्रता के तथ्य को स्वीकार कर लेते। भारत मे हाला कि स्त्रियो की आजादी से बडी सामाजिक शक्ति पैदा हुई है, फिर भी लोगो ने अभी तक इस बात को नही माना कि स्त्रियो का दर्जा बराबरी का है। हमारे रास्ते मे यह एक बडी रुकावट है। दूसरी बाधा यह है

कि हमारी स्वतंत्र स्त्रियो तक के मन पर चुपचाप कष्ट-सहन करनेवाली सीता का आदर्श छाया हुआ है।

आज भारतीय नारी के सामने सब से बड़ा मसला यह है कि कानून ने उन्हें जो अवसर दिया है, वे उसके अनुरूप बनें। भारत की स्त्रियो ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, लेकिन उन अधिकारो को असली जामा पहनाने के लिए हमने क्या किया है? विधानसभाओ, संसद, कमेटियो और कमीशनो के जरिये जो काम होता है, उससे हमे कोई बहुत बडी उपलब्धि नही होती। आज तो सब से ज्यादा जरूरत इस बात की है कि पढी और बेपढी स्त्रियो के बीच समाज-हित की भावना पैदा करने के लिए उचित संगठन बनाये जाये और घर-घर जाकर काम किया जाय, जिससे वे राष्ट्रीय ध्येय की पूर्ति के लिए मिल-जुल कर काम कर सके।

अपने पूरे इतिहास मे और शायद सारे देशो के इतिहास मे हमने देखा है कि जिस समय स्त्रियाँ आजाद नही थी, उस समय भी ऊँचे पाये की ऐसी स्त्रियाँ थी, जिन्होंने समाज पर और कभी-कभी पूरे जमाने पर अपनी छाप डाली। लेकिन ऐसे नाम इने-गिने ही थे। हम चाहेंगी कि स्त्रियो का प्रभाव अधिक गहराई से अनुभव हो और यह मौका उन्हे किसी भी आदमी की अपेक्षा अधिक-से-अधिक मिले, क्योकि ज्यो ही बच्चा जन्म लेता है, स्त्रिया शिक्षक का काम करती है। उन्हे अपनी देख-रेख मे एक नये मस्तिष्क, एक नये शरीर और एक भावी नागरिक को ढालना होता है और यह ढालने का उत्तरदायित्व, जैसा कि हम कभी-कभी सोचते है, महज अच्छी सलाह दे देने मात्र से पूरा नही हो जाता, उसके लिये योग्यतापूर्वक कार्य करना होता है।

—— o ——

कभी-कभी कहा जाता है कि स्त्रियो की शिक्षा पुरुषो की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिये—स्त्रियो को शादी और घरेलू कामो के लिये ही तैयार किया जाना चाहिए। मैं स्त्री-शिक्षा के इस सीमित और एक-पक्षीय विचार से कदापि सहमत नहीं हूँ। मेरा विश्वास है कि स्त्रियो को मानवीय जीवन के प्रत्येक विभाग मे सर्वोत्कृष्ट शिक्षा मिलनी चाहिए, ताकि वे तमाम पेशो और क्षेत्रो मे सक्रिय भाग ले सकें।

—स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू

स्वराज्योत्तर भारत में स्त्री-शिक्षा

—प्रगति की रेखाएँ—

प्राथमिक विद्यालय
(विद्यालय-सख्या)
पुरुष
स्त्रियाँ
३२००
२८००
२४००
२०००
१६००
१२००
८००
४००
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६
(छात्र-सख्या)
पुरुष
स्त्रियाँ
(हजारों में)
१३०
१२०
११०
१००
९०
८०
७०
६०
५०
४०
३०
२०
१०
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६

प्राथमिक विद्यालय

पुरुष
स्त्रियाँ
(विद्यालय-संख्या)
(हजारों में)
४००
३६०
३२०
२८०
२४०
२००
१६०
१२०
८०
४०
२०
१०
१९४७
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६
पुरुष
स्त्रियाँ
(छात्र-संख्या)
(हजारों में)
४००
३६०
३२०
२८०
२४०
२००
१६०
१२०
८०
४०
१९४७
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६

(विद्यालय-सख्या)
माध्यमिक विद्यालय
पुरुप
स्त्रियाँ
(छात्र-सख्या)
पुरुप
स्त्रियाँ
(हजारो मे)
१००
२००
३००
४००
५००
६००
७००
८००
११
१०
९
८
७
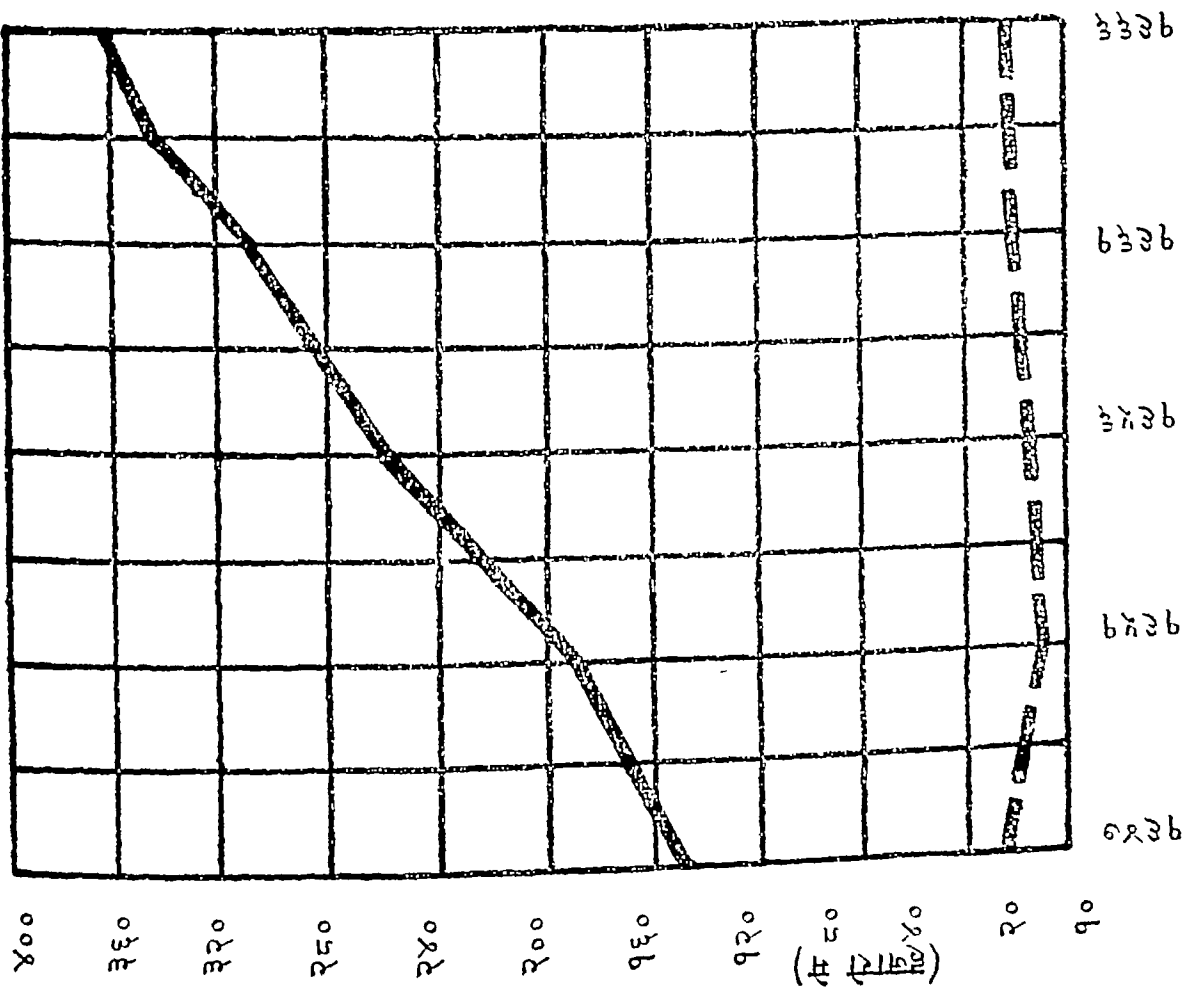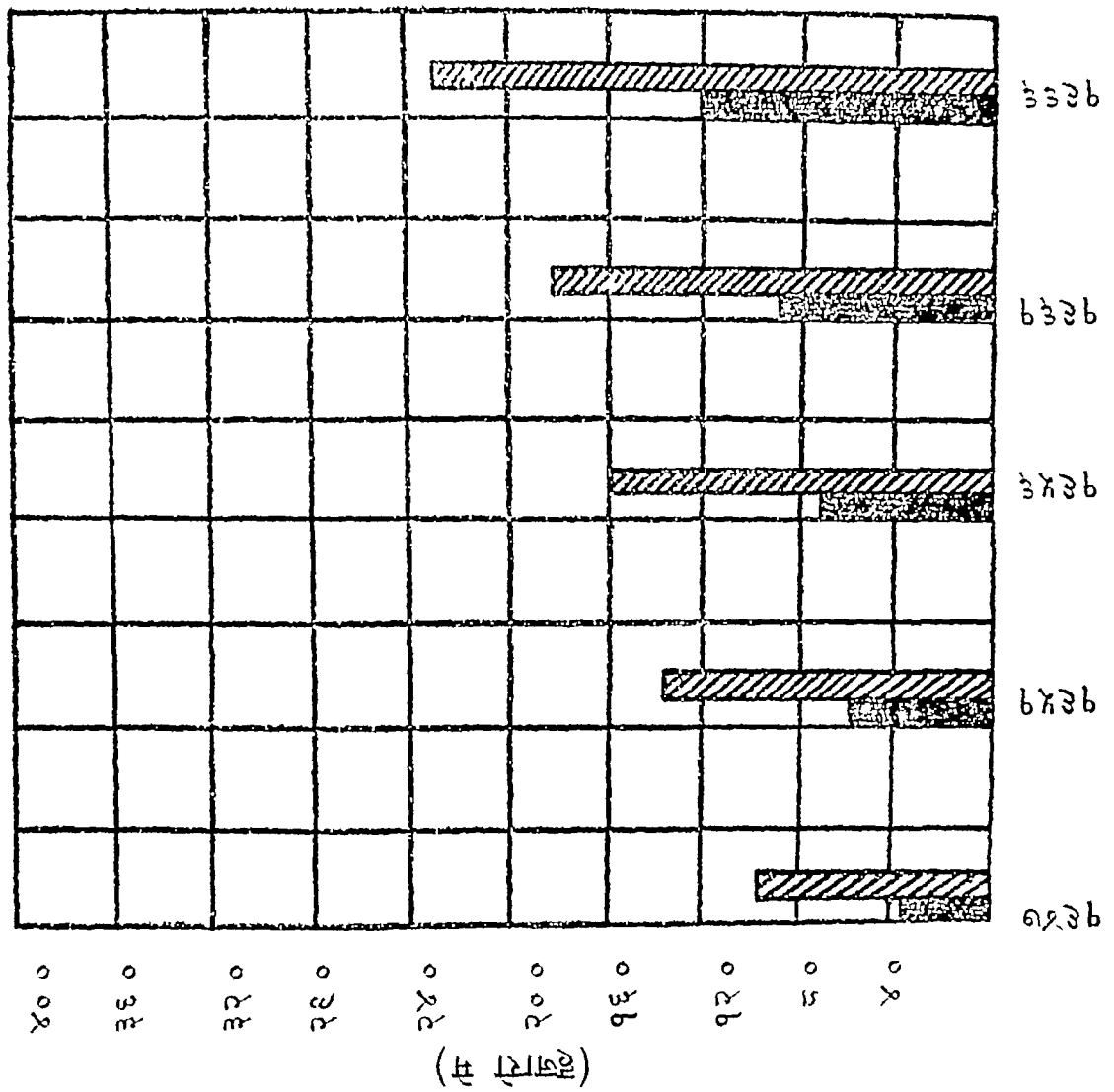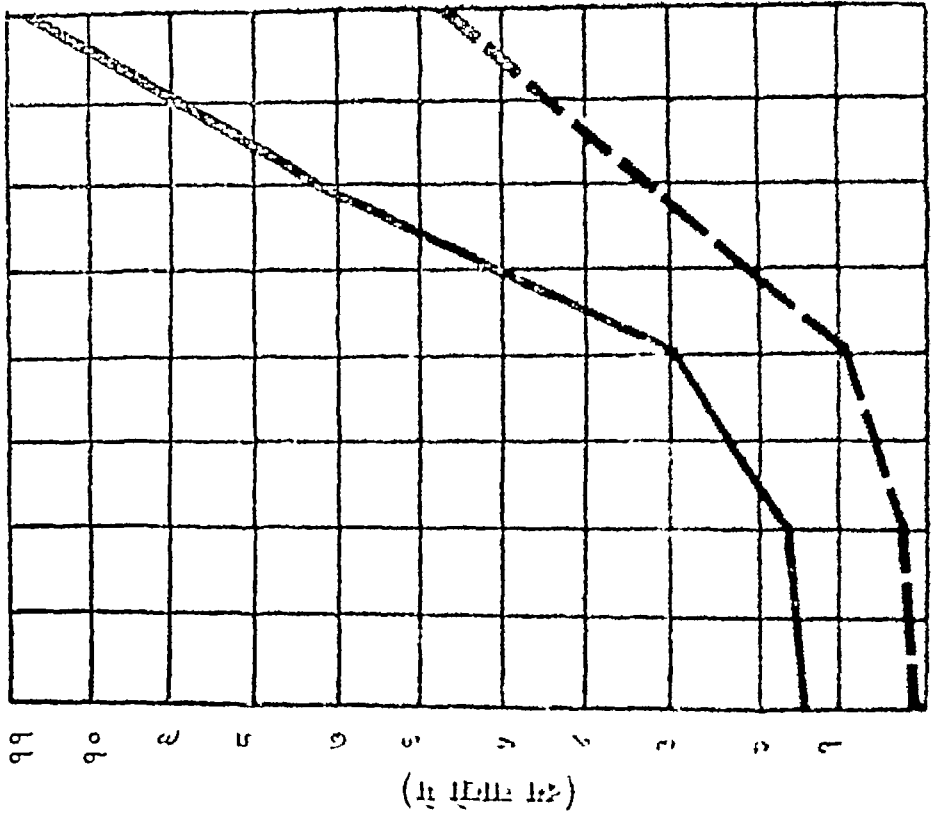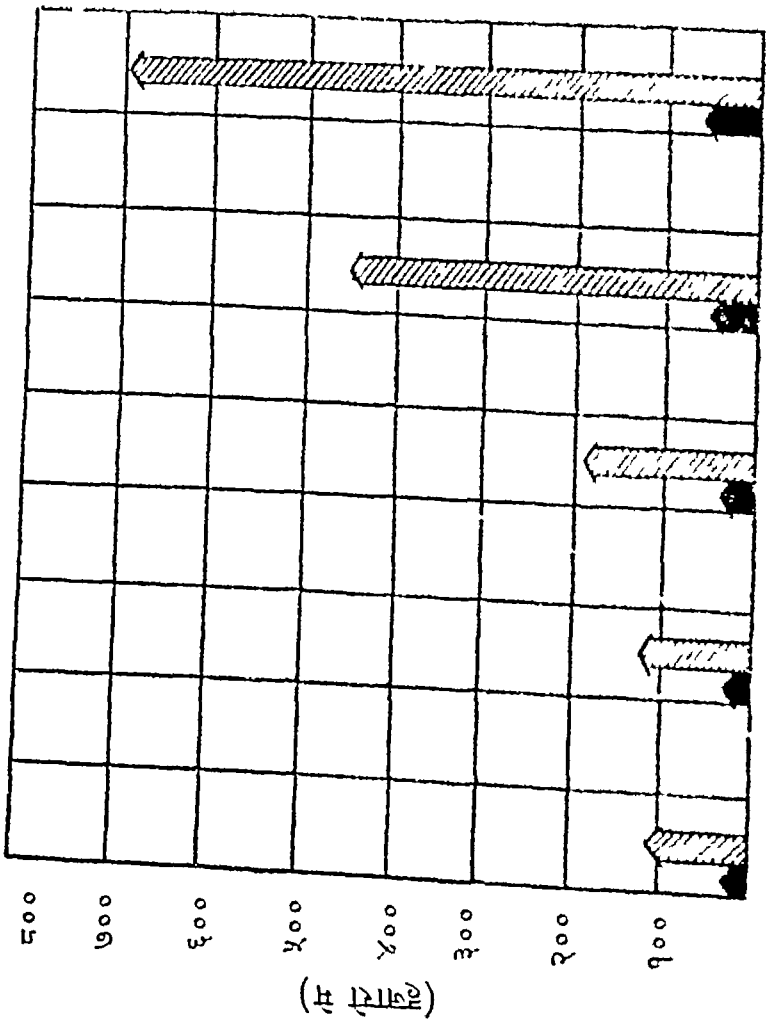
उच्च-उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
पुरुष
स्त्रियाँ
(विद्यालय-संख्या)
२४०
२१६
१९२
१६८
१४४
१२०
९६
७२
४८
२४
१९४७
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६
पुरुष
स्त्रियाँ
(छात्र-संख्या)
८८
८०
७२
६४
५६
४८
४०
३२
२४
१६
८
१९४७
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६

कामगार और तकनीकी विद्यालय
पुरुष
स्त्रियाँ
(विद्यालय-संख्या)
५०
४५
४०
३५
३०
२५
२०
१५
१०
५
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६
(छात्र-संख्या)
पुरुष
स्त्रियाँ
(हजारों में)
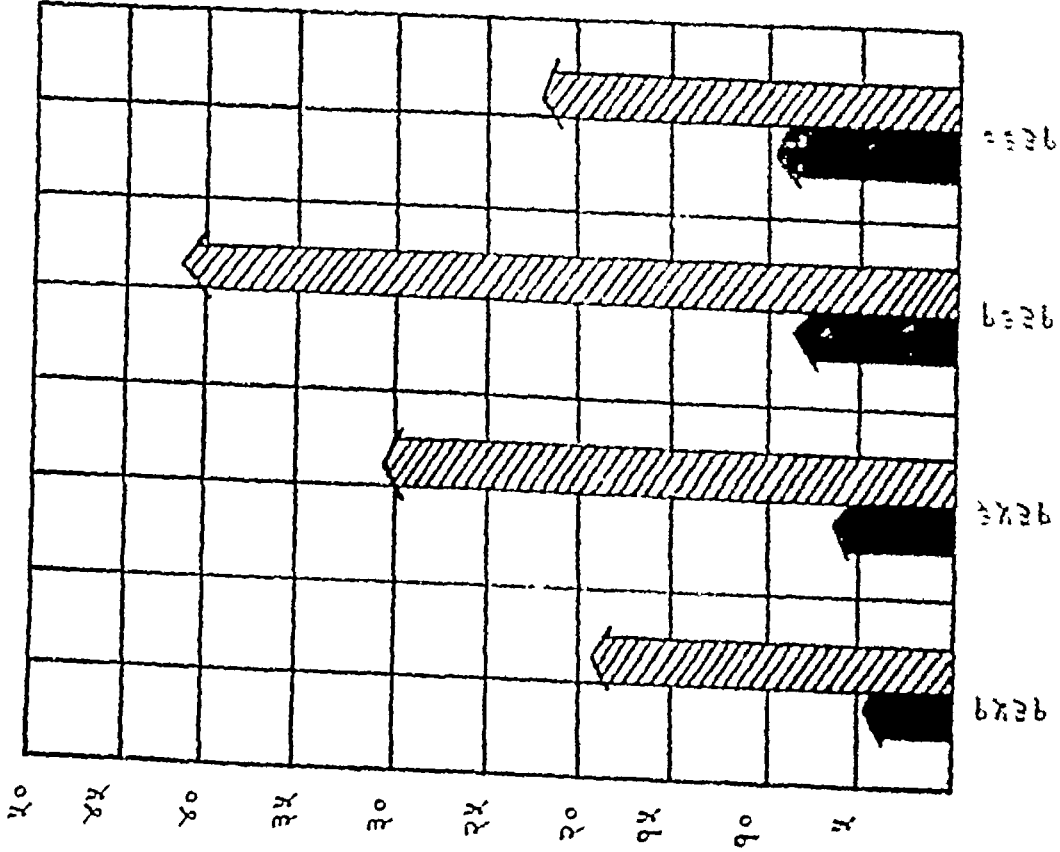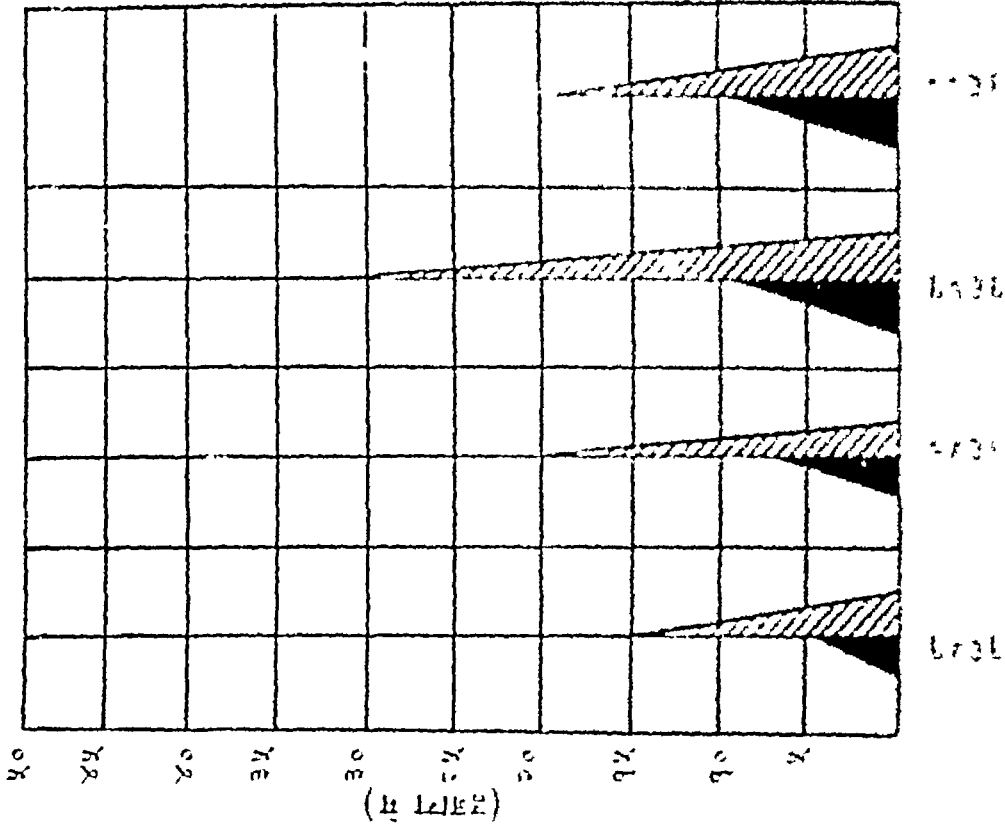
कालेज (कला एवं विज्ञान)
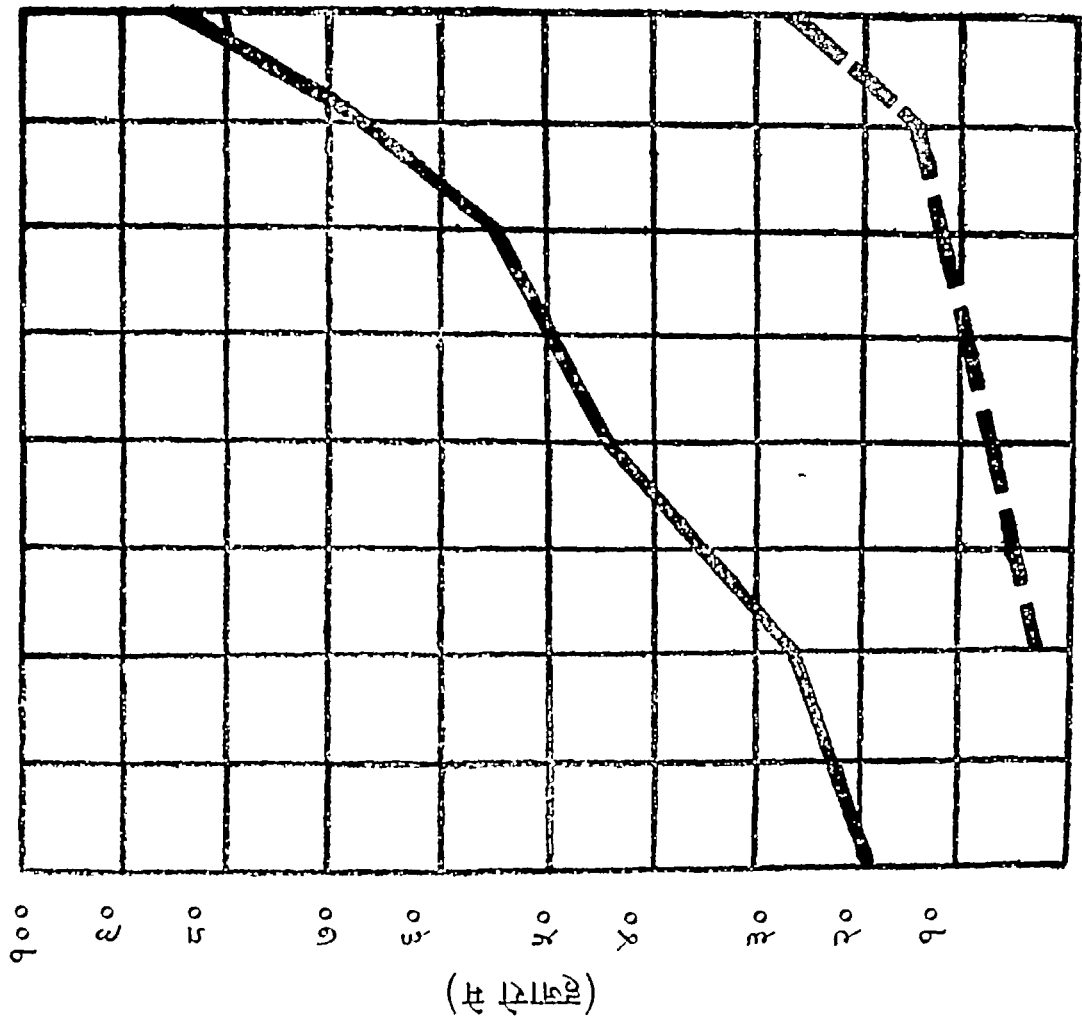
विश्वविद्यालय, परिषद् और शोध-संस्थाएँ
पुरुष
स्त्रियाँ
(सस्था-सख्या)
(छात्र-सख्या)
(हजारों में)
१६०
१२०
१००
८०
६०
४०
२०
१२५
१००
७५
५०
२५
१९४७
१९५१
१९५६
१९६१
१९६६
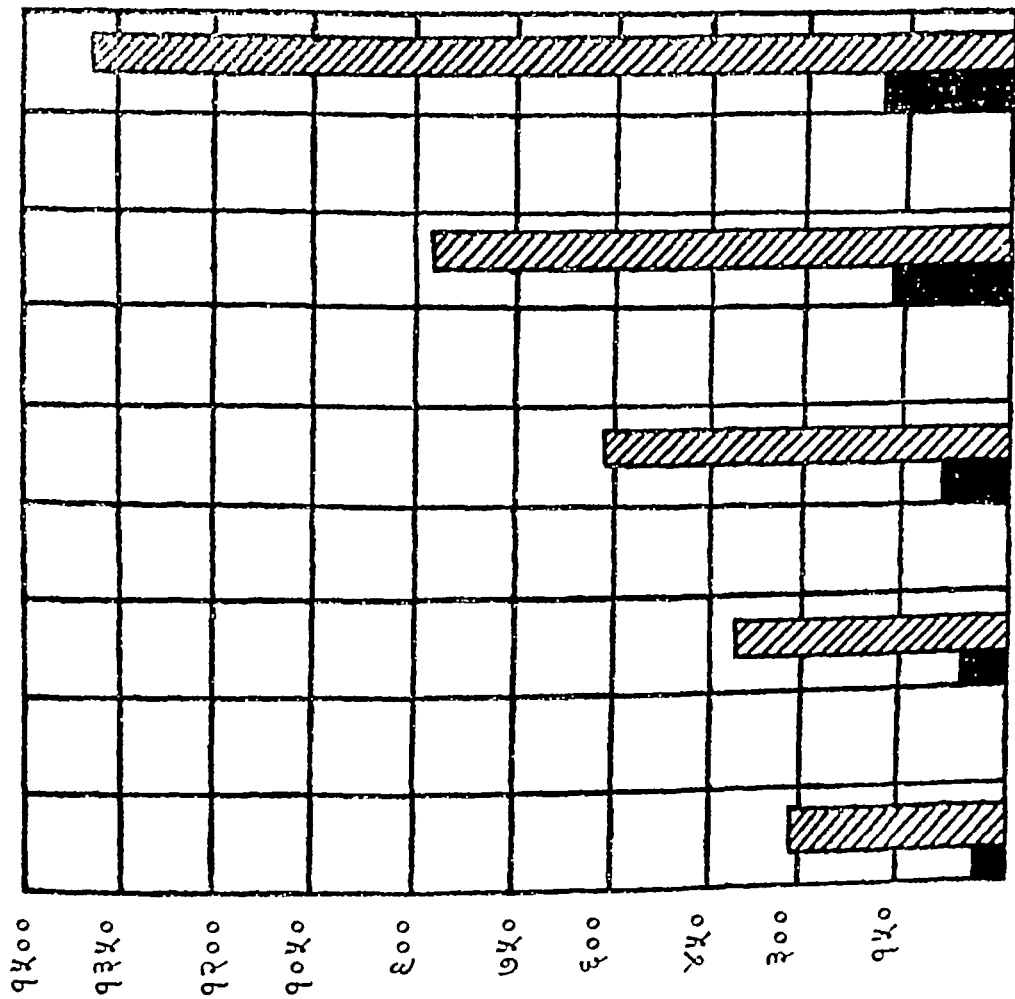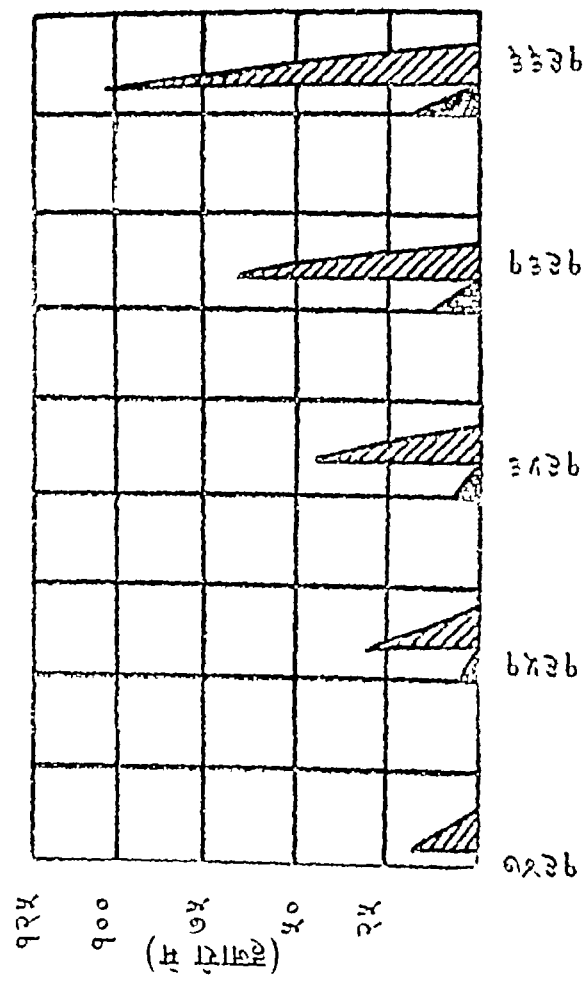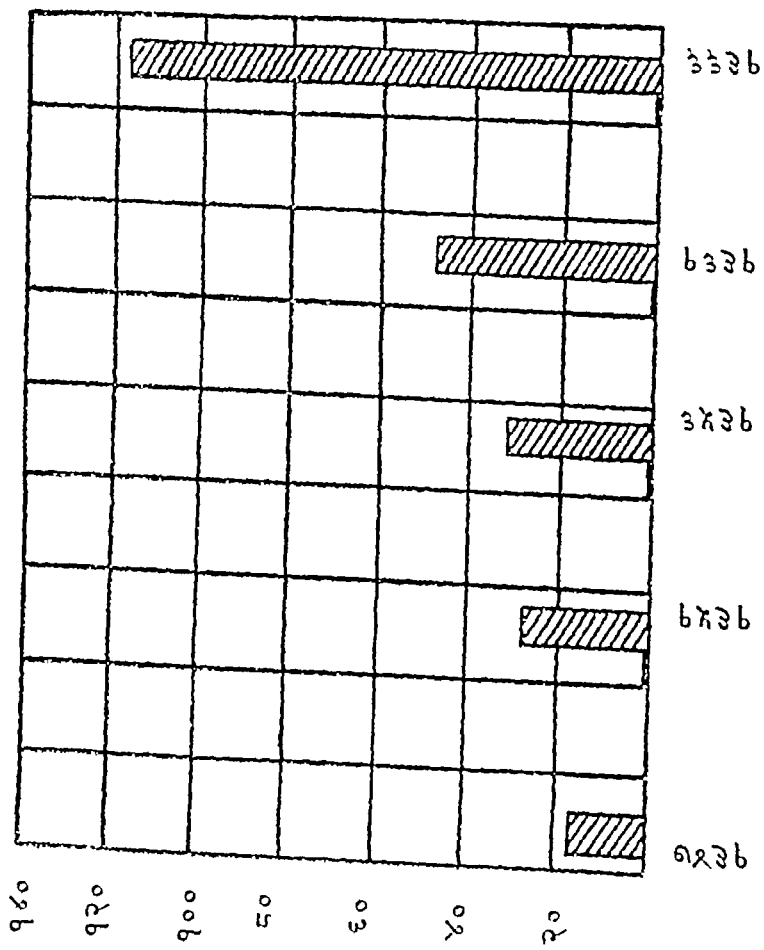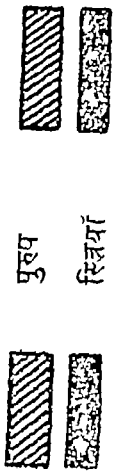
सप्तम खण्ड

अभिनन्दन

समिति

अध्यक्ष

डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी

मंत्री

श्री भँवरमल सिंघी

सदस्य

श्री प्रफुल्लचन्द्र सेन
श्री लक्ष्मीनिवास बिड़ला
श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका
डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष
डा० हीरालाल चोपड़ा
श्री रामकुमार भुवालका
श्री मनोज वसु
डा० (श्रीमती) रमा चौधरी
श्रीमती सुशीला सिंघी
श्री कन्हैयालाल सेठिया
डा० (श्रीमती) प्रतिभा अग्रवाल
श्री हरिप्रसाद माहेश्वरी
श्रीमती ज्ञानवती लाठ
श्री माधोदास मूंधड़ा
श्री परमानन्द चूड़ीवाल
श्री नथमल केडिया
श्री नन्दलाल सुरेका
श्री अजयकुमार मुखर्जी
श्री सुकोमलकांति घोष
श्री भागीरथ कानोडिया
श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल
श्री जगदीशनारायण सान
श्री रामेश्वर टांटिया
श्री राधाकृष्ण कानोडिया
श्री कल्याणमल लोढ़ा
श्री भगवती प्रसाद खेतान
श्री विष्णुकांत शास्त्री
श्री रमणलाल बी० शाह
श्री नथमल भुवालका
श्री रमणलाल बिनानी
श्री शिवकुमार जोशी
श्रीमती कुसुम खेमानी
श्री दीपचन्द नाहटा
श्री पुरुषोत्तम बेरीवाल

कार्य-समिति

श्री भागीरथ कानोडिया
श्री रामकुमार भुवालका
श्री रामेश्वर टांटिया
श्री परमानन्द चूड़ीवाल
श्री दीपचन्द नाहटा
श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका
श्री माधोदास मूंधड़ा
श्री हरिप्रसाद माहेश्वरी
श्री नथमल केडिया
श्री भँवरमल सिंघी, मंत्री

अभिनन्दन-समारोह का मंच

बायीं से दायीं ओर समासीन हैं—सर्वश्री भँवरमल सिंघी, भागीरथ कानोडिया, कल्याणमल लोढा, रमा च
सुनीतिकुमार चटर्जी, महादेवी वर्मा, सीताराम सेकसरिया और कृष्णचन्द्र अग्रवाल।

समिति की ओर से श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा शाल ओढ़ाये जाने के पश्चा
श्री सीतारामजी को समिति के अध्यक्ष डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी
काश्मीरी काष्ठ-पेटिका में अभिनन्दन-ग्रन्थ का समर्पण
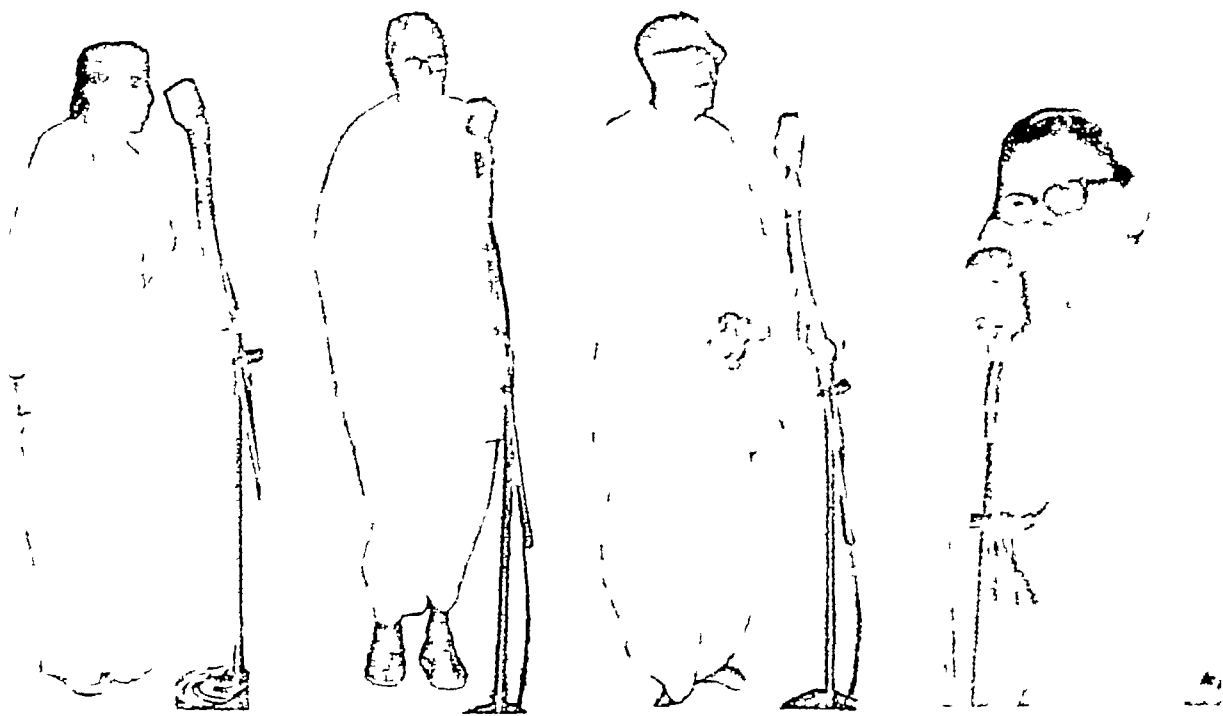
डा॰ रमा चोधरी, श्री भागीरथ कानोडिया, श्री भँवरमल सिंघी, श्रीमती महादेवी व
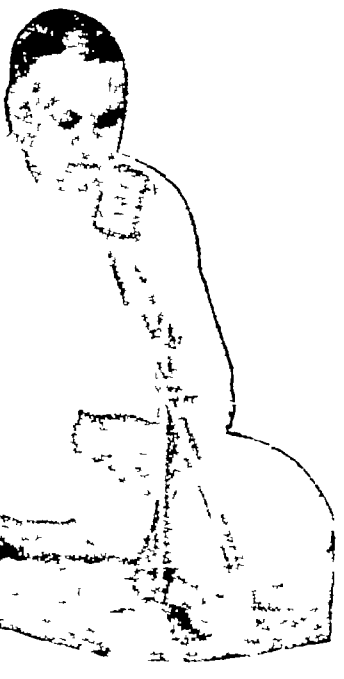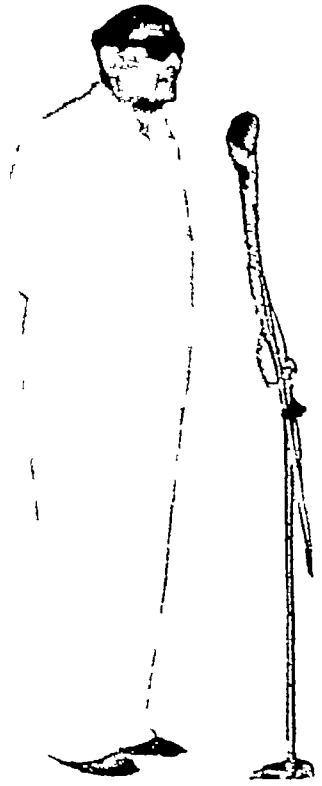
ी कृष्णचन्द्र अग्रवाल, श्री कल्याणमल लोढ़ा, श्री विजयसिंह नाहर, श्री अगरचन्द नाह
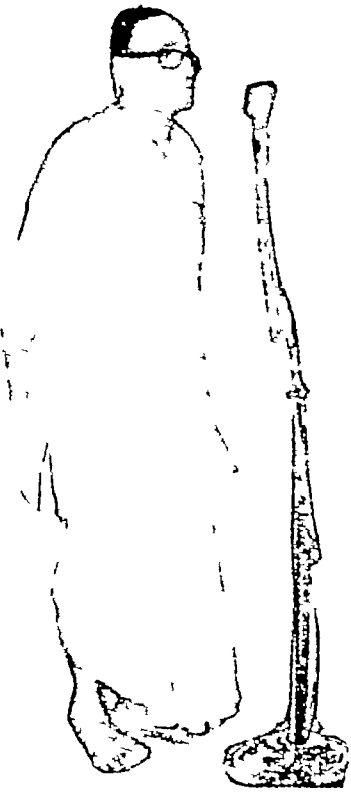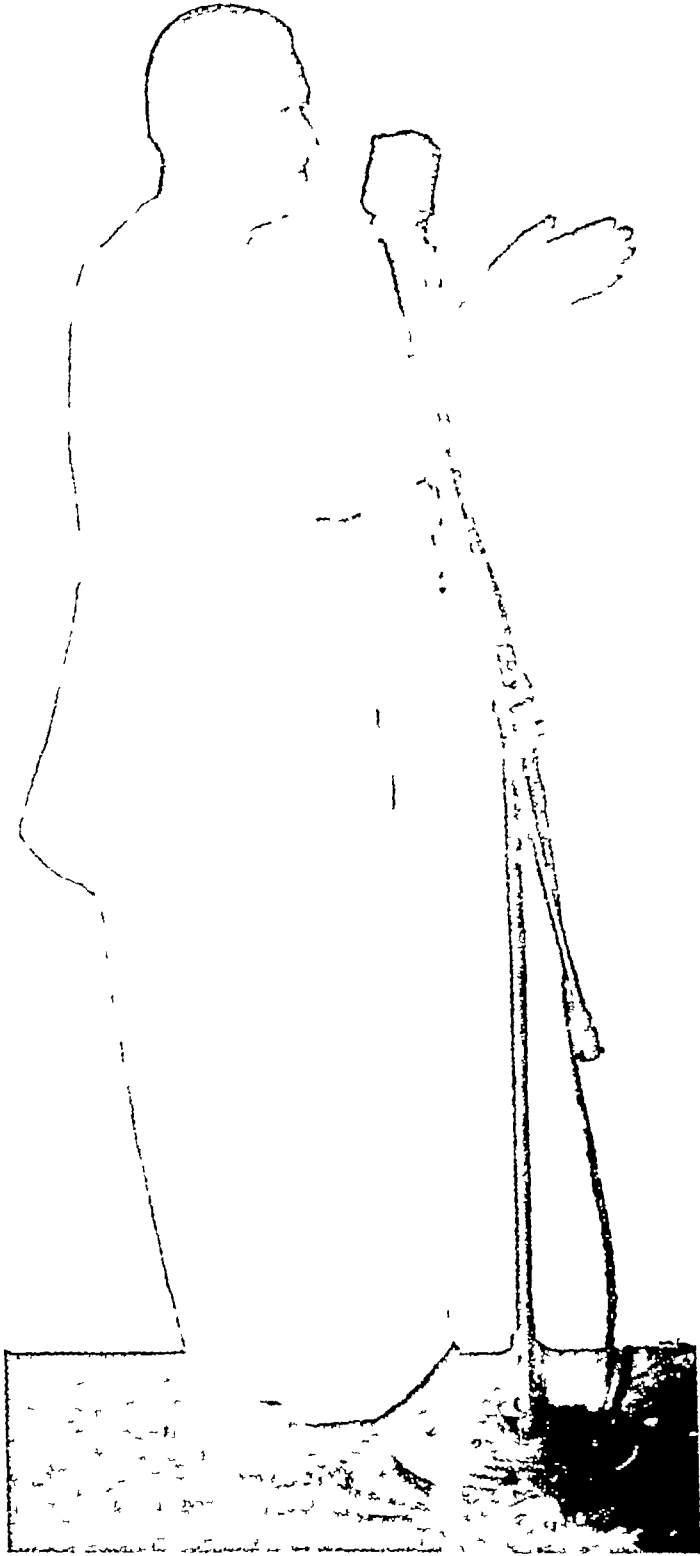
अभिनन्दन के लिये आभार प्रकाश करते हुए श्री सीतारामजी

समारोह

१९७४ । १ मई । श्रम-महिमा का मान्यता–दिवस, इसलिए सार्वजनिक अवकाश का दिन । सेवा-साधक श्री सीतारामजी सेकसरिया का ८३ वा जन्म-दिवस, इसलिये अभिनन्दन का दिन । साय ५।। बजे । सगीत कला मदिर (४८, शेक्सपियर सारणी, कलकत्ता-७०० ०१६) का भव्य सभागार । विशाल जन-समुदाय के बीच सुसज्जित मच पर समासीन है—अभिनन्दन समिति के अध्यक्ष विश्व-विश्रुत विद्वान् डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, समारोह की अध्यक्षा हिन्दी की मूर्धन्य कवियत्री श्रीमती महादेवी वर्मा, अभिनन्दनीय श्री सीतारामजी सेकसरिया, रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय की उप-कुलपति और भारतीय दर्शन की महान् पण्डिता डा० (श्रीमती) रमा चौधरी, अभिनन्दन समिति के मन्त्री और अभिनन्दन-ग्रथ के सम्पादक श्री भवरमल सिघी, 'दैनिक विश्वमित्र' के सचालक-सपादक श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल और कलकत्ता विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्री कल्याणमल लोढा । मच के पीछे प्रदर्शित है भगवान बुद्ध की प्रतिमा के दोनो ओर महात्मा गाँधी और कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र । पुरोभाग मे पुष्पित है जन-जन के हृदय की मगल-कामना— "शतायु भव" । साथ ही, एक ओर श्री सीतारामजी के जीवन के विगत ८२ वसन्तो के प्रतीक स्वरूप चित्रित लघु कुम्भो मे सुसज्जित गुलाव-गुच्छो की पक्ति और उनके बीच अजस्र जीवन-ज्योति का जगमगाता दीप, दूसरी ओर सुशोभित है सगीत-यन्त्र और गानेवाली किशोरियाँ—श्रीमती रुबी चटर्जी, श्रीमती माधुरी कपूर, कुमारी शान्ता बनर्जी, कुमारी यामा अग्रवाल और कुमारी सुस्मिता सिघी । सारा सभागार है गौरव-गम्भीर, गरिमा-मडित, श्रद्धा और स्नेह की भावना से आपूरित और अभिसिक्त ।

यवनिका उठी और मन्त्रोच्चार के स्वर निनादित हुए—"हरि ओम्, ईशावास्य इद सर्वम् यत् किं च जगत्याम् जगत् । तेन त्यक्तेन भुजीथा मा गृध कस्यस्विद् धनम् ।।" परम मगलमय शान्ति । तभी हिन्दी के महान् कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के छन्द समवेत स्वर मे मुखरित हो उठे—

जग के उर्वर आगन मे बरसो, ज्योतिर्मय जीवन !

* * *

बरसो सुख बन, सुषमा बन, बरसो जग-जीवन के घन,
दिशि-दिशि मे और पल-पल मे बरसो, संसृति के सावन ।

* * *

जग के उर्वर आगन मे, बरसो ज्योतिर्मय जीवन !

ज्योतिर्मय की इस जीवन-वर्षा ने सारे समारोह को भिगो दिया । अभिनन्दन के क्षण सुषमा से भर उठे । सर्वप्रथम श्री जयप्रकाश नारायण, जो अचानक अस्वस्थ

हो जाने के कारण पूर्व निश्चयानुसार समारोह की अध्यक्षता करने के लिये उपस्थित नही हो सके थे, की टेप-अकित वाणी सुनाई गई। उन्होने श्री सीतारामजी के साथ अपने ४२ वर्षो के घनिष्ठ सबध का उल्लेख करते हुए कहा कि स्वाधीनता-सग्राम मे और उसके बाद रचनात्मक जन-सेवा के विविध क्षेत्रो मे कार्य करते हुए वे नेताओ की अग्रिम पक्ति मे रहे हैं। हर आन्दोलन मे उनका हाथ निर्माता के हाथ जैसा रहा है। उनका अभिनन्दन करने के लिये मैं यहा उपस्थित हो सकने की स्थिति मे नही हूँ पर मन से, हृदय से मैं आपके साथ, आपके बीच मे ही हूँ।

अभिनन्दन-समिति के अध्यक्ष डॉ० सुनीति कुमारजी ने श्री सीतारामजी को उदार-मना एव सर्वजन-हितैषी बतलाते हुए उनकी जीवन-साधना के विभिन्न पक्षो का परिचय दिया और उनके प्रति देववाणी सस्कृत मे रची हुई अपनी प्रशस्ति-कविता का पाठ किया। और,सदा हास्यमय श्री सीतारामजी को पुष्पहार से सम्मानित-अभिनन्दित किया। दूसरा पुष्पहार उन्होने प्रदान किया समारोह की अध्यक्षा श्रीमती महादेवी वर्मा को। उसके साथ ही पुण्य-श्लोको के माध्यम से मगल की वर्षा की श्री सीतारामजी पर पण्डिता श्रीमती रमा चौधरी ने। भाषण लघु, पर भावना दीर्घ। उन्होने कहा—श्री सीतारामजी ऋषि-तुल्य हैं। प्रीति, मैत्री, त्याग और सेवा के द्वारा उन्होंने अमृत-तत्व पाया है। ब्रह्मानन्द की अनुभूति पा कर वे धन्य हुए है। पर-सेवा की साधना मे उन्होंने अपना समस्त जीवन अर्पित कर एक महान् आदर्श रखा है।

साधक की साधना 'स्वान्त सुखाय' होती है, पर उसका स्व तो सब का होता है। वह एकाकी चलता है पर सब के लिये चलता है। अकेला सारा सघर्ष झेल कर सब के जीवन का मगल साधता है। इसी भावना को स्वर देने वाला रवीन्द्रनाथ ठाकुर का गीत—"यदि तोर डाक शुने केउ ना आशे, तबे एकला चल, एकला चल, एकला चल रे।" गाया श्रीमती रुबी चटर्जी ने। सारा समावेश इसी भावना से सस्पृष्ट और सम्मोहित हो उठा।

श्री कृष्णचन्द्रजी अग्रवाल खडे हुए अभिनन्दन-भाषण देने के लिये पर उसके पहले वे सभागार मे अग्रपक्ति मे बैठी हुई अपनी वयोवृद्धा माता श्रीमती स्वदेश्वरी देवी को मच पर लाये, जिन्होंने श्री सीतारामजी के प्रति दीर्घकालीन स्नेह और आत्मीयता की भावना पिरोकर अपने हाथो से गूथी हुई सूत्र-माला इस अवसर के लिये बनाई थी। उन्होंने जब यह माला सीतारामजी को पहनाई और साथ ही सूत्रो से ही बनाया हुआ पुष्प उनके कुर्ते पर लगाया तो दोनो ओर स्नेह का जो फव्वारा छूटता-उछलता दीखा, उसने चारो तरफ एक नई आभा विकीर्ण कर दी। माताजी जा कर पुन अपने आसन पर बैठ गई और श्री कृष्णचन्द्रजी ने अपने स्वर्गीय पिता के साथ श्री सीतारामजी के दीर्घकालिक घनिष्ठ सम्बन्धो और सहकार्यों का उल्लेख करते हुए जो कुछ कहा, उससे मानो एक बीता हुआ युग वर्तमान हो उठा। उन्होने श्री सीतारामजी को स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र मे महर्षि कर्वे की तरह ही महान् बताया।

उनके बाद आये श्री कल्याणमलजी लोढा, जिन्होंने 'वन्दना के स्वरो मे एक स्वर मेरा भी मिला लो' से आरम्भ करते हुए श्री सीतारामजी के बहुविध व्यक्तित्व

ग्रौर कर्तृत्व की मगल-रेखाग्रो का विस्तार बताते हुए कहा कि पचास वर्षो से ग्रधिक की ग्रवधि मे उन्होने जो कुछ किया, उससे उनका जीवन धन्य हुग्रा है। वे इतिहास-पुरुष है, युग-पुरुष है। उनकी साधना का स्निग्ध सस्पर्श हम सभी पाते रहे है। ग्राज इतने सारे लोगो की स्नेहपूर्ण उपस्थिति मे तो यह सस्पर्श ग्रौर भी गहरा ग्रौर घना हो कर हमे भिगो रहा हे। उनकी धन्यता का हम भी ग्रनुभव कर रहे है।

सचमुच समवेत जन-समुदाय यह ग्रनुभव कर ही रहा था कि श्रीमती माधुरी कपूर के मधुर कठ से प्रवाहित हुग्रा गोस्वामी तुलसीदास का भजन—"हरि पतित पावन सुने   "। हरि की पतित-पावनता के प्रवाह मे सारे लोग डूबते-उतराते रहे।

भाषण-क्रम का दूसरा चरण ग्रारभ हुग्रा। पश्चिम बगाल की राजनीति के वरिष्ठ नेता ग्रौर प्रावतन उप-मुख्य मत्री श्री विजयसिहजी नाहर ने खडे होते ही कहा कि श्री सीतारामजी जैसा पुरुष बार-बार नही उत्पन्न होता। वह युग का प्रसाद है, जो कभी-कभी ही मिलता है। उन्होने कहा कि श्री सीतारामजी ने गाधीजी के ग्रहिसा एव सर्वजन-प्रियता के उच्चादर्शो पर चल कर ग्रपना सारा जीवन समाज ग्रौर देश, बल्कि सारी मानव-जाति के कल्याण की साधना के लिये समर्पित कर दिया। वे व्यक्ति नही रहे, समाज बन गये, सस्था बन गये।

राजस्थानी साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् श्री ग्रगरचद जी नाहटा ने श्री सीतारामजी के जन्म ग्रौर कार्य से राजस्थान की मिट्टी को धन्य हुग्रा बताया। वे 'वसुधैव कुटुम्बक' के ग्रादर्श के मूर्त रूप है। भौतिक उपलब्धियो के मार्ग को छोड कर श्री सीतारामजी ने विद्या, सस्कृति ग्रौर कला की दिशाग्रो मे जो उपार्जन खोजा ग्रौर पाया, उसने राजस्थान को भी महिमा प्रदान की। ग्राज उनका सन्मान करके हम स्वय सन्मानित ग्रौर गौरवान्वित हुए है।

स्नेह की भावधारा ऐसी उमडी कि हजार ग्रनिच्छा ग्रौर ग्रानाकानी के बावजूद ग्राखिर श्री सीतारामजी के ग्रतरग मित्र ग्रौर साथी श्री भागीरथजी कानोडिया की विह्वल वाणी भी मुखरित हो उठी। उन्होने भाव-विभोर हो कर कहा—भाई सीतारामजी सच्चे ग्रर्थो मे जिये, जी रहे है ग्रौर जीते रहेगे क्योकि उनका यश ग्रौर कीर्ति जीवित है। 'जीवती कीर्ति यस्य, स जीवति।' हृदय का धनी यदि किसी को कहा जा सकता है तो वह सीतारामजी ही है। कितनी स्मृतियाँ उभर कर उनके मानस मे ग्राई ग्रौर सारे सभागार को ग्रानन्द ग्रौर श्रद्धा के कितने-कितने बहुमूल्य क्षणो द्वारा भर गई। वे बोलना नही चाहते थे पर बोले तो ऐसा बोल गये कि सीतारामजी की साधना का सागर हिलोरे लेने लगा।

ग्रायोजन के प्रमुख उद्योक्ता ग्रौर ग्रभिनन्दन-ग्रथ के सम्पादक श्री भँवरमल सिघी ने खडे होते ही लोगो को चौका दिया, जब उन्होने यह कहा कि हमने विद्रोह किया जिसमे हम विजयी हुए ग्रौर सीतारामजी पराजित। उन्होने उस सघर्ष का उल्लेख किया जो वर्षो तक श्री सीतारामजी के मित्रो की इच्छा ग्रौर स्वय उनकी ग्रनिच्छा के बीच चलता रहा। मित्रो की इच्छा योजनाये बनाती

रही और सीतारामजी की अनिच्छा उनको रोकती-दबाती रही। अन्त मे, जब इच्छा ने विद्रोह की दृढता ग्रहण कर अभिनन्दन करने की बात पूरी ठान ली, तब ही आज यह क्षण सम्भव हुआ। उन्होंने कहा कि श्री सीतारामजी ने अभाव से जो जीवन-यात्रा आरम्भ की, वह भाव-सृष्टि करके अनेक प्रकार से धन्य बन गई। श्री सीतारामजी देश और समाज के इतिहास मे सामाजिक और सास्कृतिक जीवन के कई अध्याय जोड कर आज हर प्रकार से कृतकृत्य है, धन्य है और सचमुच अभिन्दनीय है।

तत्पश्चात् श्रीमती महादेवीजी वर्मा ने अपने राखी-बन्ध भाई सीतारामजी को अभिनन्दनो का शाल ओढाया और श्री सुनीति कुमारजी ने उनको काश्मीरी कलात्मक काष्ठपेटिका मे अभिनन्दन-ग्रथ भेट किया। करतल-ध्वनि हुई तो मानो होती ही रही।

श्रीमती महादेवीजी वर्मा ने अभिनन्दन के प्रवाह मे अवगाहन करते हुए कहा—"भाई सीतारामजी का यह अभिनन्दन उनकी साधना की भावी सम्भावना और शक्ति और उसके लिये हमारी इच्छा का ही द्योतक है। उन्होंने जीवन का जो अर्थ समझा, माना और सिद्ध किया, उसी का नाम मानव-जीवन है। हमारे ऋषियो और मनीषियो ने इसी अर्थ के द्वारा जीवन की महिमा बताई है। श्री सीतारामजी ने ऋषियो की वाणी को अपने जीवन मे सार्थक किया, समाज और मानवता के क्षेत्र मे उस सार्थकता का विस्तार किया, जिससे वे धन्य हुए और हम सब को उन्होने धन्य बनाया। सासारिक जीवन की काजल-कोठरियो मे जा कर भी वे कालिमा से असपृक्त रह पाये, यही उनकी धवलता की विशेषता है। वे हर तरह से शुभ्र-धवल है, पुण्य-पावन हैं। उनका अभिनन्दन व्यक्ति का नही, समाज की सेवा का अभिनन्दन है। उनके जीवन का प्रज्ज्वलित दीपक अनन्त वर्षों तक हमे उजाला दिखाता रहेगा।

भाव-विह्वल और गद्गद् श्री सीतारामजी जब उत्तर मे कुछ कहने के लिये खडे हुए तो मिनट-दो मिनट खडे जैसे ही रह गये। प्रशस्तियो और वदनाओ का भार जैसे उनकी वाणी का अवरोध कर रहा था। आखिर उन्होने कहा—प्रभु की कृपा पगु को भी गिरि पर चढने की शक्ति दे देती है, मैं ऐसा ही अनुभव कर रहा हूँ। मुझे पता ही नही कि कैसे क्या हो गया। हाँ, हुआ तो सही ही। करने-कराने वाला तो वह प्रभु ही है। उन्होंने अपनी उपलब्धियो की कम, अनुपलब्धियो, दोषो और त्रुटियो की ही ज्यादा चर्चा की और कहा—यदि आपका यह अभिनन्दन मुझे त्रुटि-मार्जन की शक्ति दे, अब तक नही हुए कार्यो को पूरा करने की क्षमता दे तो ही मैं आपकी प्रशस्ति का पात्र बन सकूगा। आभार के साथ-साथ मैं यही प्रार्थना आप सब से और उस परम प्रभु से, मेरे परम आराध्य भगवान् बुद्ध, महात्मा गाधी और कविगुरु रवीन्द्रनाथ से करता हूँ कि वे आपकी भावना के अनुरूप मुझे शक्ति दे। मेरे पास हृदय है, हृदय के सिवाय और कुछ नही है। और, उसे मैंने मातृ-जाति के चरणो पर अर्पित कर दिया है। इसी मे मेरे जीवन की तृप्ति है। यह तृप्ति मैं हमेशा पाता रहूँ,

यही मेरी भगवान् से और आप सब से प्रार्थना है। आपका यह स्नेह और अभिनन्दन मुझे इसी दिशा मे बल दे, यही मेरी कामना है। श्री सीतारामजी बोलते-बोलते बहे जा रहे थे कि उनके अत्यन्त प्रिय भजन के बोल गूंज उठे—

"वैष्णव जन तो तेने कहिये, जे पीड पराई जाने रे
पर दुखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।"

भजन का वैष्णव जन सम्मुख खड़ा ही था। भावना को उदाहरण चाहिये, विचार को आचार चाहिये। मूर्तिमान आचरण ही यहां उपस्थित था।

समारोह समाप्ति की ओर था। श्री भवरमल सिंघी ने आभार प्रकट किया श्री सीतारामजी के प्रति, जिन्होने अंत मे मित्रो की इच्छा के सामने झुक कर अभिनन्दन को स्वीकार किया, श्रीमती महादेवीजी वर्मा के प्रति, जिन्होंने समारोह को अपनी उपस्थिति से गरिमा प्रदान की, और सब-सब के प्रति जिन्होंने उपस्थित हो कर समारोह को सहृदय बनाया। और, उन सब के प्रति भी जिनके हार्दिक योग-सहयोग से कार्यक्रम इतने सहज भाव से स्नेहपूर्वक चला। उनके प्रति भी उन्होंने कृतार्थता प्रकट की जिन्होंने अभिनन्दन-ग्रंथ के लिये लेखन द्वारा, अर्थ द्वारा योगदान किया।

२॥ घण्टे तक बिना किसी विराम या व्यवधान के कार्यक्रम चलता रहा परम शान्ति और एकाग्रता के साथ और अंत मे जब यवनिका-निपात हुआ तो श्रीमती रवी चटर्जी के भाव-विभोर कंठ से गुंजरित हो रहा था—

"शरदं शतं जीवेम्....... सर्वे सन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।"

अंत मे, सभी खड़े होकर समवेत स्वर मे गा चले—**'जन गण मन अधिनायक जय हे।'**

दूसरे दिन अर्थात् बृहस्पतिवार, दिनांक २ मई १९७४ को सायं ६॥ बजे कला मन्दिर मे ही संगीत श्यामला, जिसकी संस्थापना मे भी श्री सीतारामजी का प्रमुख हाथ था, द्वारा श्रीमती महादेवी वर्मा की कविताओ पर भी आधारित 'स्वप्न-यामिनी' नामक नृत्य-रूपक प्रस्तुत किया गया। श्रीमती महादेवी, जो स्वयं उपस्थित थी, ने इस प्रयास की प्रशंसा की। इस अवसर पर भी संस्था की ओर से श्री सीतारामजी का अभिनन्दन करते हुए उनकी सेवाओ का उल्लेख किया गया और उनके शतायु होने की हार्दिक कामना प्रकट की गई। इस आयोजन का श्रेय संस्था की मन्त्रिणी श्रीमती ज्ञानवती लाठ और श्रीमती सोमेश्वरी तिवारी तथा उनके अन्यान्य सहयोगियो को है।

— o —